CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3556

विश्व की सभ्यताएँ

श्री विमलचन्द्र पाण्डेय

नवभारती प्रकाशन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व की सभ्यताएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास जीवन की थाती है। उसमें हमारे उन गुणों का सञ्चय होता है जिनके कारण हम ऊपर उठे और हमारी उन भूलों की गाथा होती है जिनके कारण हम गिरे। इतिहास हमें पुकारकर कहता है, संभलो, ये तुम्हारी भूलें थीं; इनसे बचो और अपनी उन गुणों की ओर देखो जिनमें तुम्हारा गौरव प्रकाशित हुआ था। इतिहास हमारे निराशा से थके हुए मन के अन्धकार का प्रकाशस्तम्भ है। वह हमसे कहता है, श्रेय को लो और प्रेय को छोड़ो। यही इतिहास का उपयोग है और यही उसका गौरव है।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व की सभ्यताएँ

●

लेखक

डा० विमलचन्द्र पाण्डेय, एम० ए० (प्रयाग)

[कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र]

●

प्राप्ति स्थान

साधना सदन

लूकरगंज, इलाहाबाद–१

मूल्य : आठ रुपये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
State Museum, Library, Lko.
क्रम 3556
प्राप्ति तिथि 7/2/69

901.9
प व
Vol. II.

प्रकाशक : नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद—१

●

प्रथम संस्करण : मार्च, १९६७

●

मुद्रक : कैक्सटन प्रेस, १-ए/१ बाई का बाग, इलाहाबाद—३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाहूतापि पुरः पदं रचयति प्रातिक्षेपकण्ठं हठात्,
पृष्टा न प्रविवक्ति कम्पमयते स्तम्भं समालम्बते ॥
वैवर्ण्यं स्वरभङ्गमञ्चति बलान्मन्दाक्षमन्दानना
कष्टं भोः प्रतिभावतोऽप्यभिसमं वाणी नवोढायते ॥

दो शब्द

वर्तमान युग सार्वभौमता की उदीयमान सम्मान्यता का युग है। देश, राष्ट्र, जाति, धर्म, भाषा आदि को विभेद-सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वभौम भावना अपने अंचल में सम्पूर्ण मानव-जाति की निर्विशेष कल्याणेच्छा का सुप्रसाद छिपाये, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का चिर-पूत मन्त्र गुनगुनाती, समस्त जगतीतल पर अविराम गति से प्रसरित हो रही है। विश्व के बाह्य रूपान्तर में अन्तरित कतिपय शाश्वत जीवन-मूल्यों का अभिज्ञान उन विच्छेद-भित्तियों को ढहा रहा है जो सहस्रों वर्षों से मानव के बीच कृत्रिम अवरोध के रूप में खड़ी थीं। युग-युग के वैभिन्य-विभ्रम में फँसे हुए मानव ने आज अपना सुपथ देख लिया है।

विश्व-कुटुम्ब अब स्वप्न नहीं, सम्भावना है। इस सम्भावना को सत्यरूप देने के हेतु हमें राजनीतिक उपकरणों की अपेक्षा सांस्कृतिक उपकरणों का उपयोग अधिक करना होगा। राजनीति की अपेक्षा संस्कृति अधिक विग्रह-विहीन है। विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ चाहे जितनी भिन्न क्यों न हों परन्तु उनके मूलतत्व साधारणतया समान ही होते हैं। इन मूलतत्वों को हृदयंगम करने के लिए विश्व की प्राचीन सम्यताओं के सम्यक् अध्ययन, विश्लेषण और चिन्तन की आवश्यकता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। अतीत के खण्डहरों में मानव की अक्षय निधि अन्तरित है जिसका उत्खनन, शोधन और प्रकाशन हमारे नव-निर्माण में सुयोग प्रदान करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—डा० विमलचन्द्र पाण्डेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

१. हेलेनिस्टिक सभ्यता ... १७-५६

[सिकन्दर का अभ्युदय, प्रारंभिक जीवन, सिकन्दर की विजय एवं साम्राज्य विस्तार, सिकन्दर के चरित्र का मूल्यांकन, राजनीतिक संगठन, हेलेनिस्टिक सभ्यता, यूनानी संस्कृति और हेलेनिस्टिक संस्कृतियों का विभेद, हेलेनिस्टिक सभ्यता का समय, हेलेनिस्टिक सभ्यता के ऐतिहासिक स्रोत, हेलेनिस्टिक कला की विशेषताएँ—विशालता, असाम्प्रदायता, अलंकरण, विषय व्यापकता, प्रकृति-चित्रण-विहीनता, प्रखर भावनाओं का प्रदर्शन, नवीन भावनाओं का समावेश, वास्तुकला-नगर-निर्माण-कला, गृह-निर्माण कला, धार्मिक गृह, असाम्प्रदायिक गृह, स्थापत्य, चित्रकला, साहित्य, काव्य, नाटक, गद्य, विज्ञान, खगोल और ज्योतिर्विद्या, चिकित्सा-शास्त्र,, भौतिक विज्ञान, गणित एवं ज्यामिति, भूगोल, धर्म, दर्शन-शास्त्र तर्कवाद, शंकावाद, एपिक्यूरियन दर्शन, स्टॉइक दर्शन, नवीन दार्शनिक विचारधारायें नियो-पाइथागोरियन, आर्थिक जीवन, व्यापार, कृषि, हेलेनिस्टिक सभ्यता की देन]

२. रोम की सभ्यता ... ६०-१७२

[रोम नगर की स्थापना, रोम की स्थापना के प्रमुख कारण, भौगोलिक कारण, जातीय गुणों का सम्मिश्रण, रोम के ऐतिहासिक साधन —प्रारंभिक अभिलेख, रोमन साहित्य, यूनानी इतिहासकार, लेवी, रोम के इतिहास का अध्ययन, एट्रस्कनकालीन रोम, असेम्बली, सीनेट एट्रस्कन, आर्थिक व्यवस्था, पेट्रीशियन, प्लेबियन, एट्रस्कन कला, गणतन्त्र, प्रायटर, सेन्सर, क्वेस्टर, एडिलीज, डिक्टेटर, ट्राइब्यून, प्रान्तीय शासन, रोम-विस्तार, कार्थेज के साथ युद्ध, हैनीबाल का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्तित्व, यूनानी राज्य, साम्राज्य विस्तार के परिणाम, सीनेट की सत्ता की स्थापना, नवीन वर्ग का उदय, राजनीतिक भ्रष्टाचार, वर्ग-संघर्ष, ग्रेकस, गणतन्त्र का विनाश, मेयस मेरियस, लिवियस ड्रसस, सुला, पाम्पेई, सिसेरो, जूलियस सीजर, सीज़र का शासन, राजनीतिक सुधार, सामाजिक सुधार, सीजर की हत्या, चरित्र, ग्राक्टेविग्रन ग्रागस्टस, शासन का रूप, प्रान्तीय संगठन, राजनीतिक सुधार, ग्रार्थिक संगठन, सामाजिक संगठन, सैनिक सुधार, लेजनरी फोर्स, सहायक सेना, प्रायटोरियन गार्ड, राजकीय संरक्षक, नागरिक ग्रश्वारोही दल, पहरेदार ग्रश्वारोही, ग्रन्य कार्य, साम्राज्य-विस्तार, चरित्र, रोम का स्वर्णयुग, साहित्य, वर्जिल, होरेस, प्रणयगीत, प्रणय-कला, एमोर्स, हरोयडस, प्रणय-सुरक्षा, फास्टो, गद्य, धर्म, विदेशीय धर्म, दर्शन, ग्नास्टिसिज्म, एपीक्यूरियनिज्म, नियो-पाइथागोरियनिज्म, नियो-प्लेटोनिज्म, विज्ञान, कला, स्वदेशीयता राजकीयता, उपदेशात्मकता, उपयोगीतात्मकता, कला-ग्रार्थिक उन्नति का भव्य प्रतीक, वास्तुकला, स्थापत्य, चित्रकला, रोम का कानून, शिक्षा प्रणाली, ग्रार्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, स्वर्ण युग को हीनता, उत्तर-ग्रागस्टस रोम, जूलियोक्लाडिग्रन काल, फ्लेबियन कल, एन्टोनाइन काल, रोम के ग्रन्तिम शासक, रोम साम्राज्य का पतन, भ्रान्तिपूर्ण कारण, नैतिक कारण, राजनीतिक कारण, ग्रार्थिक कारण, भूमि-ग्रनुर्वरता, स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारण मलेरिया, जातीय कारण, धार्मिक कारण, प्राकृतिक कारण, राजनीतिक कारण, सामाजिक कारण, ग्रार्थिक कारण, सैनिक कारण, साम्राज्य-भक्ति का ग्रभाव, धर्म, साहित्य ग्रौर कला की विफलता, ग्रयोग्य उत्तराधिकारी, प्रान्तीय विद्रोह, ग्रन्य कारण, वाह्य कारण, रोम-संस्कृति की देन]

३. ईसाई धर्म : जन्म ग्रौर विकास ... १७३-२१०

[ईसाई धर्म की उत्पत्ति, ईसा का जीवन-वृत्त, ईसा को सूली पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लटकाना, ईसा के उपदेश, सन्त पाल, पीटर, ईसाई धर्म तथा रोम का साम्राज्य, धर्म की विजय, ईसाई धर्म की सफलता के कारण, ईसाई धर्म का स्वरूप, सिद्धान्त और संगठन, त्रिमूर्ति का सिद्धान्त, अवतार, पतन, कन्या जननी, द्विविध रूप, प्रायश्चित्त, कृपा, पुनर्जन्म, चर्च का दैवी आधार, पुनरागमन, विभिन्न मत, ईसाई चर्च का संगठन, रोम का चर्च और पोप, मठ प्रथा का आरम्भ, ईसाई का प्रभाव]

४. चीन की सभ्यता ... २११-३०४

[चीन का प्रारम्भिक राजनीतिक इतिहास, चिन वंश का शासन, शी-ह्वांग-टी के सुधार, चीन का विस्तार, शी की मृत्यु, हान वंश, ल्यू पैंग, वू ती, वैंगमैंग, उत्तर हान वंश, हान वंश के शासन-काल में वैदेशिक व्यापार, हानकालीन राजनैतिक प्रगति, हानकालीन बौद्धिक प्रगति, हानकालीन वैज्ञानिक प्रगति, हान युग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान, चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश, हान युग की अन्य सांस्कृतिक धाराएँ, चीन की सांस्कृतिक प्रगति, राजनीतिक स्थिति, सांस्कृतिक विकास, विदेशों के साथ व्यापार, बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार, चीन में बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म के प्रचारक, तंग वंश : चीन का स्वर्णकाल—राजनीतिक अवस्था, कला, ग्रन्थ, विदेशीय कला-कृतियाँ, चित्रों एवं उत्कीर्ण आकृतियों से सहायता, चित्रकला, वास्तुकला, कृत्रिम चबूतरे का प्रयोग, प्रांगण की प्रधानता, प्राचीर-वेष्टिका का प्रयोग, लकड़ी का प्रयोग, उत्तुङ्गता विहीनता, स्तम्भ योजना, छतें, आकार, रंग, स्थापत्य, तक्षण एवं धातु-कलायें, साहित्य, चीनी धर्म, लिपि, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन, तंग वंश के पश्चात्, पाँच वंश,—हाऊ लिआंग, हाउ तंग, हाउ चिन, हाउ हान, हाउ चाउ, सुङ्ग वंश, सुङ्ग सम्राट्, मंगोल आक्रमण, सुङ्ग-कालीन सभ्यता, वांग आनशीह के सुधार, मत, शाओ युङ्ग, चाउ तुन-ई, चू सी, वान यान मिंग, साहित्य, कला, चित्रकला, मृन्मयी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला, स्थापत्य कला, वास्तु कला]

५. पार्थियन सभ्यता ... ३०५-३१६

[उत्पत्ति एवं मूल स्थान, तिरियातीज़, अर्तबेनुस प्रथम, फ्रियाप्तीयस, मिथ्देतीज़ प्रथम, फ्रातीज़ द्वितीय, अर्तबेनुस द्वितीय, मिथ्रादातीज़ द्वितोय, ओरोदीज़ द्वितीय, फ्रातीज़ द्वितीय, फ्रातीज़ चतुर्थ, फ्रातीज़ पंचम, वोनोनीज़ प्रथम, अर्तबेनुस तृतीय, वोलोजेसीज़ प्रथम, वोलोजेसोज़ द्वितीय, वोलोजेसीज़ तृतीय, अर्तबेनुस पंचम, पार्थियन संस्कृति, राजनैतिक संगठन, धार्मिक अवस्था, कला एवं नागरिक जीवन, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन]

६. ससैनियन सभ्यता ... ३१७-३३०

[उत्पत्ति एवं मूल स्थान, पपक, अर्देशिर, शापुर, हरमुज्द प्रथम एवं बहराम प्रथम, बहराम द्वितीय, बहराम तृतीय, शापुर द्वितोय, शापुर तृतीय तथा बहराम चतुर्थ, याज्दगर्द प्रथम, बहराम पंचम, याज्दगर्द द्वितीय, पेरोज, जद्धरज, कोसरोज प्रथम, होरमज्द चतुर्थ, कोसरोज़ द्वितीय, ससैनियन सभ्यता का सांस्कृतिक इतिहास, राजनैतिक संगठन, धर्म, कला एवं विज्ञान, साहित्य, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन]

७. भारतीय सभ्यता ... ३३१-४१९

[मौर्य युग की सभ्यता, समाज, स्त्रियों की दशा, भोजन एवं पान, मनोरंजन, नैतिकता, आर्थिक व्यवस्था, मौर्यकालीन साहित्य और भाषा, मौर्यकालीन धर्म, मौर्ययुगीन कला, शुङ्ग-सातवाहन युग की सभ्यता, शुङ्ग-सातवाहन युग का साहित्य, शुङ्ग-सातवाहन युग का धर्म, वैदिक युग का पुनरुत्थान, भागवत धर्म, शैव धर्म, बौद्ध धर्म और महायान सम्प्रदाय, महायान सम्प्रदाय, शुङ्ग-सातवाहन युग में कला, गान्धार कला की शैली, गुप्तकाल की सभ्यता एवं संस्कृति, वाकाटक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त युग का साहित्य, गुप्तकालीन कला—वास्तुकला, स्थापत्य एवं मूर्ति कला, चित्रकला, संगीत और अभिनय, वृहत्तर भारत—भारत का विदेशों के साथ सम्पर्क, अशोक के शासन-काल में अन्य देशों के साथ सम्पर्क, भारत एवं मध्य तथा उत्तरी एशिया, नेपाल, मध्य एशिया, कूचि, भारत एवं सुदूर पूर्व, उपनिवेशवाद का प्रारंभ, उपनिवेशवाद के कारण, बर्मा, मलाया, श्याम (थाईलैंड), इण्डोचीन, कम्बुज, चम्पा, इण्डोनेशिया और भारत, जावा, पूर्वी द्वीप समूह (बोर्नियो), भारतीय संस्कृति का सुदूरपूर्व पर प्रभाव—राजनैतिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव, साहित्यिक प्रभाव, धार्मिक प्रभाव, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, बौद्ध धर्म, अन्य धार्मिक मत, कलात्मक प्रभाव, भारत एवं पाश्चात्य देश]

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहला अध्याय

हेलेनिस्टिक सभ्यता

सिकन्दर का अभ्युदय—प्राचीन यूनान में मैसीडोनिया नामक एक लघु-राज्य था जिसने फिलिप द्वितीय के अन्तर्गत ३३८ ई० तक समस्त यूनान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसके इतिहास की आधार शिला एथेन्स और स्पार्टा थे। परन्तु ३३६ ई० पू० में उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु के बाद उसका बीस वर्षीय पुत्र सिकन्दर सिंहासनासीन हुआ। सिकन्दर ने अपनी अपूर्व प्रतिभा एवं सर्वगुण सम्पन्नता से इतिहास में एक नवीन युग का निर्माण किया जिसे 'हेलेनिस्टिक काल' कहते हैं। इतिहासकार स्वेन ने सिकन्दर को प्राचीन दुनिया का अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बताया है और उसकी तुलना नैपोलियन बोनापार्ट से की है।[१]

प्रारंभिक जीवन — जैसे कि प्रतिभा वय की अपेक्षा नहीं करती, युवक सिकन्दर शैशवकाल से ही सभी गुणों से परिपूर्ण था। इनके प्रदर्शन में उसके अपने गुरु वर्गों का विशेष हाथ था। जिसमें लियोनियास लिसीमेकस, अरस्तू एवं प्लूटार्क प्रमुख हैं। इन युग-विचारकों का मर्मभेदी शिक्षाओं ने उसके हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में विश्व-साम्राज्य की ज्वाला भड़काई। इसका निराकरण हमें स्वयं उसके पिता के शब्दों में मिलता है जहाँ उसने वीर सिकन्दर को मैसीडोन शहर तुच्छ बताते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी जीतने के लिये प्रोत्साहित किया है।

सिकन्दर की विजय एवं साम्राज्य-विस्तार — ३३६ ई० पू० सिंहा-

---

१ "Alexander was one of the most remarkable man of antiquity and Napoleon Bonnaparte of 3rd century B.C. with his marvellous skill and industry, he won the admiration and hearts of the people."—James Edger Swain.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सनारोहण के तुरन्त बाद सिकन्दर महान् ने अपने पूर्व सङ्कल्प को प्रक्रियात्मक रुप देने के लिये सर्वप्रथम आन्तरिक शक्ति को सुदृढ़ किया। इस दिशा में उसे थीब्स एवं स्पार्टा के अतिरिक्त अन्य कई छोटे शहर-राज्यों से युद्ध करना पड़ा। परन्तु अपनी रण-चातुरी से सिकंदर ने सभी पर विजय पायी।

तत्पश्चात् ३३४ ई० पू० में एन्टीपेटर के नेतृत्त्व में ३०० पदाति एवं ५००० घुड़सवारों के साथ विश्व-विजय अभियान के लिये प्रस्थान किया। इस क्षेत्र में उसने अनेकों मध्य-पूर्व के राज्यों को पराजित किया जिनमें दारा महान् एवं फारसी शासक प्रमुख हैं। इसी प्रकार सीरिया के अंतियोक, दमिश्क, सूडान टायर एवं मिश्र के सिनाई पठार, मेम्फिस, सिकन्दरिया, बैबिलोनिया के सूसा, सोग्डिआना, एरिटयाना तथा वैक्ट्रिया प्रमुख हैं।

सिकन्दर की विश्व-विजय चल रही थी। उसके झंझाभियान के समक्ष राज्य सीमाएँ जर्जरित हो रही थीं, राजकिरीट धरालुंठित और राजसिंहासन धूलि-धूसर हो रहे थे। दुर्गम वनों, बीहड़ मार्गों, उत्ताल पर्वतों तथा विजन मरुस्थलों का अतिक्रमण करते हुए सिकन्दर ने यूनान-संसार, एशिया माइनर, सीरिया, फिनीशिया, मिस्र, बैबिलोनिया, फारस और पार्थिया आदि देशों पर अपनी विजय-पताका फहराई। अद्यावधि अजेय विजेता अब भारत के उत्तर-पश्चिमीय द्वार पर था।

इस समय भारत के उत्तर पश्चिमीय प्रदेश की दुरवस्था थी। सम्पूर्ण प्रदेश अनेकानेक लघु राज्यों में विभक्त था। जिस समय सिकन्दर के झंझाभियान के समक्ष राज्य-सीमाएँ जर्जरित हो रही थीं, ठीक उसी समय उत्तर-पश्चिम-भारत अनेकों लघु राज्यों में विभक्त हो रहा था। उनके पारस्परिक विद्वेष के परिणाम स्वरूप राजनीतिक एकता शतधा विचूर्ण हो चुकी थी। इस परिस्थिति ने विदेशीयों का कार्य सुगम कर दिया। जिस समय सिकन्दर ने आक्रमण किया उस समय तक्षशिला-नरेश अम्भी ने बिना युद्ध के ही भारत की द्वार-शृंखला खोल दी। इस प्रकार एक देशद्रोही कुमन्त्रणा ने झेलम-पर्यन्त भारतीय प्रदेश को परतन्त्रता में निगड़ित कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झेलम के पूर्व में पुरु-राज्य था। सिकन्दर का अनुमान था कि अम्भी की भाँति वह भी आत्म-समर्पण कर देगा। अतः उसने पुरु के पास इसी अभिप्राय का सन्देश भेजा। परन्तु पुरु को समझने में आक्रमणकारी ने भूल की थी। पुरु पंजाब का लौह-पुरुष था। भारत की वीर-परम्परा ने उसे मरना सिखाया था, झुकना नहीं। सिकन्दर का संदेश सुनकर वह दंशित हो उठा। उसने विश्व-विजेता के पास कहला भेजा कि हम आपसे अवश्य मिलेंगे, परन्तु युद्ध-भूमि में।

निष्कर्ष स्पष्ट है। दोनों में युद्ध हुआ। यह युद्ध असम पक्षों का युद्ध था, शौर्यमयी संख्या और संख्याविहीन शौर्य का सामना था। सिकन्दर की वाहिनी की अपेक्षा पुरु की वाहिनी अत्यल्प थी। परिणाम पूर्वविदित था। तथापि भारतीय ने उस समय तक आक्रमणकारी से युद्ध किया जब तक उसका सम्पूर्ण शरीर आपूर्ण क्षत-विक्षत न हो गया।

यूनानी विजयी हुए, परन्तु भारतीयों की भयावह शूरता ने उन्हें आतंकित कर दिया। इस समय पंजाब के पूर्व में मगध राज्य था जिसके नन्द नरेश अपनी शक्ति और समृद्धि के लिये सुप्रसिद्ध थे। पुरु-ऐसे लघु-नरेश के विरुद्ध युद्ध करने में ही यूनानियों को भारतीय शौर्य का परिचय मिल गया था। अतः अब वे मगध-जैसे विशाल साम्राज्य के ऊपर आक्रमण करने के लिये किसी दशा में भी प्रस्तुत न थे। पुनः वे अनवरत युद्धों से श्रान्त हो चुके थे। उनके वस्त्र एवं पद-त्राण जर्जरित हो गये थे। पृथ्वी के इस दूरस्थ प्रदेश में पड़े हुए इन यूनानी सैनियों के क्लान्त हृदय अपने स्वदेशीय आवासों की मधुर स्मृति से आकुल हो उठे थे। वे वापस जाना चाहते थे। अतः सिकन्दर की व्यक्तित्व-प्रबलता और उसकी उद्दाम वक्तृता भी उनके निश्चय को न डिगा सकी। उसका विश्व-विजय का स्वप्न सतलज के सत्वर प्रवाह में बह गया। विदेशीय की अजेयता का उपहास करती हुई सरिता आगे बढ़ गई। सिकन्दर वापस चला गया। बैबिलोन में वह बीमार पड़ा और तीव्र ज्वर के कारण ३२३ ई० पू० में ३३ वर्ष की अवस्था में पृथ्वी पर अपने यशःशरीर को छोड़ वह संसार से कूच कर गया।

सिकन्दर के चरित्र का मूल्यांकन—सिकन्दर एक सहज सेनापति था। जिस साहस, शौर्य योजना और द्रुतगामिता के साथ वह विजय प्राप्त करता था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह इतिहास में असाधारण है। यूनान के एक लघु देश को विश्व-साम्राज्य के रूप में परिवर्तित करने की कल्पना उसकी असीम महत्वाकांक्षा की परिचायिका है। वह अजित योद्धा था। उसकी सुदीर्घ विजय-शृंखला उसकी कीर्तिमाला है। अपने प्रबल व्यक्तित्त्व के कारण वह अपने सैनिकों की अपार श्रद्धा का केन्द्र-बिन्दु था। अपने प्रिय नेता के एक संकेत पर वे सैनिक मृत्यु का वरण करने के लिये भी प्रस्तुत थे। अपनी इसी विशेषता के कारण इतिहासकार स्वेन ने उसकी तुलना नैपोलियन से की है।[१] सिकन्दर की प्रभावोत्पादिनी वक्तृता उनके श्रान्त प्राणों में पुनः स्फूर्ति का संचार कर देती थी। परन्तु चिरविजेता का व्यक्तित्त्व आवेश की अभद्रता से कलुषित है। क्रुद्ध होने पर वह नृशंसता का व्यवहार करने लगता था। अपने जीवन के ऐसे ही एक निर्बल क्षण में उसने फिलोटस और परमेनिओ नामक अपने सेनापतियों की हत्या कर दी थी। महान् सिकन्दर में मानव की दुर्बलताएँ भी थीं।

परन्तु साधारणतया वह उदार मनोवृत्ति का व्यक्ति था। उसने विजितों के साथ सदैव उदारता का व्यवहार किया। दारा और पुरु के दृष्टान्त इस कथन की पुष्टि करते हैं। यही नहीं, सिकन्दर ने विदेशीय आचार-विचारों और देवी-देवताओं का भी सम्मान किया। सिकन्दर अरस्तू का शिष्य था। इस प्रसिद्ध दार्शनिक की शिक्षाओं तथा यूनान के शुभ्र वातावरण ने उसके व्यक्तित्त्व पर स्थायी प्रभाव डाले थे। इतिहासकार वॉन सिकिल ने ठीक ही लिखा है कि यद्यपि सिकन्दर परम्परागत नियमों से क्रूर एवं शिक्षा से यूनानी था परन्तु

---

१ "One of the most remarkable man like Napoleon posed as God and gloried in an oriental splendour that would not have been accepted in the west but he was one of the greatest generals that the world has ever produced."

—J. E. Swain.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने व्यक्तित्व में वह निश्चय ही अपूर्व था।[१] वह एकमात्र योद्धा ही न था वरन् अन्वेषक और जिज्ञासु भी था। अपने अभियानों में वह सेनापतियों के साथ-साथ विद्वानों, भूगोलवेत्ताओं और अनुसन्धानकर्त्ताओं को भी ले गया था जिनके लेख इतिहास और भूगोल की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं।

महान् विजेता एवं मानव होते हुए भी वह साहित्यिक प्रतिक्रियाओं से पूर्णतया वञ्चित नहीं था। इस बात का प्रमाण स्वंय उसके गुरु प्लूटार्क के शब्दों से होता है जहाँ उसने सिकन्दर को सभी कला एवं ज्ञान का जिज्ञासु कहा। इसकी पुष्टि सिकन्दर के भारतीय-अभियान से भी होती है जब कि वह तक्षशिला में भारतीय साधुओं से पूर्वी दर्शन जानने की इच्छा प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त वह एक कुशल शासक एवं राजनीतिज्ञ भी था। सभ्यता के उन प्रारंभिक वर्षों में इतने विशाल साम्राज्य जिसकी परिधि पश्चिम में एशिया माइनर से पूर्व में व्यास नदी के तट तक थी, कुशलतापूर्वक एक सूत्र में सन्नद्ध करना निश्चय ही आश्चर्यजनक कार्य था। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट ने भी उसे निस्सन्देह सफल शासक की संज्ञा से विभूषित किया है।[२]

सिकन्दर के व्यक्तित्व का अन्य महत्त्वपूर्ण अङ्ग उसकी नवीन राजनैतिक कल्पनाएँ थीं जिनमें उसने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हुए अपने को यूनान के प्रसिद्ध देवता जियस अमन का पुत्र बताया। यही विधारधारा भविष्य में चलकर रोम की राजनीति का एक प्रमुख अंग बन गई।

सिकन्दर विजेता था और साथ में यूनानी सभ्यता का दूत भी। उसने राजनीतिक साम्राज्य के साथ-साथ सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना की कल्पना भी की थी। देश, जाति, भाषा, आचार-विचारादि की दुर्लंघ्य सीमाओं का अतिक्रमण कर उसकी भद्र बुद्धि उस एकात्मक संगठन का निर्माण करना चाहती

---

१ "A barbarian by inheritance, a Greek by training but a genius in his own right."—C. E. Van Sickle.

२ "He had a violent thirst for learning a lover of all kinds of art and knowledge."—Plutarch.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी जो विजेता राष्ट्र की अभिमानिनी संस्कृति से प्रसाधित हो। विभिन्न देशों के यूनानीकरण के हेतु उसने अन्तर्राष्ट्रीय विवाह को प्रोत्साहित किया और स्वयं पारसीक नरेश दारा की पुत्री के साथ विवाह किया। पुनः, उसने एकमात्र योग्यता के आधार पर सभी देशों के मनुष्यों की समानरूप से अपनी सेना में भरती होने की अनुमति दे दी। परन्तु यूनानीकरण की दिशा में उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था दूरस्थ प्रदेशों में प्रयाण-मार्ग पर यूनानी उपनिवेशों की स्थापना। सैनिक दृष्टि से ये विशालकाय यूनान साम्राज्यों में स्थिर रक्षागृह थे और सांस्कृतिक दृष्टि से यूनानी विचार-धारा के स्रोत थे। इन्हीं यूनानी उपनिवेशों के माध्यम द्वारा पूर्व और पश्चिम के सांस्कृतिक विचारों का आदान-प्रदान होता था।

राजनीतिक संगठन—सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् विशाल यूनानी साम्राज्य उसके प्रमुख सेनापतियों के अधीन तीन भागों में विभक्त कर दिया गया था (१) मिस्र का राज्य सोटर के अधीन किया गया। इसकी राजधानी सिकन्दरिया थी। (२) मेसीडोनिया, यूनान और थ्रेस का राज्य एण्टिगोनस को दिया गया। (३) तीसरे राज्य के अन्तर्गत पश्चिमी एशिया था। इसे सेल्यूकस के अधीन किया गया। महत्त्वाकांक्षी सेनापतियों के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु साम्राज्य के अनेक राज्यों ने अपने छोटे-छोटे राजनीतिक संगठन बना लिये थे। इनमें अचीअन लीग और आइटोलिअन लीग प्रमुख थीं। प्रथम के अन्तर्गत स्पार्टा और एलिस को छोड़कर पेलोपोनेसस के प्रदेश सम्मिलित थे और द्वितीय में एथेन्स को छोड़कर प्रायः समस्त मध्य यूनान। राष्ट्रीय एकता की ओर यूनानियों का यह अभूतपूर्व प्रयास था। इन संघों के शासन-कार्य के हेतु दो सभाओं की योजना बनाई गई थी— १ असेम्वली २ काउन्सिल। संघ-राज्यों के समस्त नागरिक असेम्वली के सदस्य होते थे। यही सभा पदाधिकारियों की नियुक्ति करती थी और सन्धि-विग्रह के विषय में निर्णय करती थी। यही एक सेनापति का निर्वाचन करती थी जिसके हाथ में देश की कार्यकारिणी और सैनिक सत्ता रहती थी। इसकी पदावधि एक वर्ष की होती थी। परन्तु इसे पुनर्निर्वाचन का अधिकार था। दूसरी सभा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काउन्सिल में संघ-राज्यों के प्रतिनिधि रहते थे। इसका प्रमुख कार्य कानून बनाना और सार्वजनिक हित के विषयों पर निर्णय करना था। विभिन्न सदस्य-राज्य अपने आन्तरिक शासन-सम्बन्धी विषयों में स्वतन्त्र थे। परन्तु सन्धि-विग्रह, मुद्रा, तौल आदि के विषय केन्द्रीय संघ-शासन के अधीन थे।

प्रायः प्रत्येक सदस्य-राज्य का शासन एकतन्त्रात्मक था। उनके शासक ईश्वरीय प्रतिनिधि समझे जाते थे और दैवी अधिकार के आधार पर राज्य करते थे। अपने ईश्वरीय तत्त्वों की रक्षा के हेतु मिस्र के नरेशों ने भाई-बहन के बीच विवाह करना प्रारम्भ किया। परिवार के बाहर विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने से रक्त-शुद्धता नष्ट हो जाने का भय था।

हेलेनिस्टिक सभ्यता—सिकन्दर-द्वारा स्थापित यूनानी साम्राज्य राष्ट्र, जाति, भाषा, धर्म, आचार-विचार आदि की दृष्टि से भिन्न-भिन्न देशों का समुदाय था। अतः इसके अन्तर्गत विभिन्न संस्कृतियों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप विजेता राष्ट्र की यूनानी संस्कृति विशुद्ध न रह सकी। पूर्वी देशों की समान रूप से विकसित संस्कृतियों ने उसे प्रभावित, परिवर्तित और संवर्द्धित किया। परिणामतः यूनानी संस्कृति अपनी विशुद्ध स्वदेशीयता का आवरण उतार कर हमारे समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय परिधान में उपस्थित हुई। यूनानी सभ्यता (Hellenic Civilization) का यह नवीन रूप इतिहास में हेलेनिस्टिक सभ्यता (Hellenistic Civilization) के नाम से प्रख्यात है। इसका काल सिकन्दर की विजय से प्रारम्भ होकर रोम साम्राज्य के उत्कर्षपर्यन्त रहता है।

यूनानी संस्कृति और हेलेनिस्टिक संस्कृतियों का विभेद—पेरिक्लीज़ काल-पर्यन्त यूनानी जीवन सरल और साधारण था। उसकी आवश्यकताएँ स्वल्प थीं और उनकी पूर्ति की क्षमता सीमित थी। अधिकांश निवासियों का जीवन ग्राम्य और उद्यम कृषि था। उनमें अधिकांश निर्धन थे परन्तु धनी भी अधिक न थे। अतः आर्थिक विषमता सामान्य और नगण्य थी। समाज में

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सदाचरिता और अनुशासनशीलता की प्रतिष्ठा थी। उसमें क्रूरता, हिंसा, विश्वासघात के दृष्टान्त अत्यन्त हैं। मनुष्य का व्यक्तिवाद समष्टि के हित को सम्मुख रखता था। देश में जनतन्त्रात्मक शासन था। सर्वसाधारण अपने राजनीतिक अधिकारों की रक्षा के हेतु अति जागरूक था। तर्कशीलता और आशावादिता ने मनुष्य के जीवन को अनुप्राणित कर रक्खा था। परन्तु हेलेनिस्टिक काल में परिस्थिति परिवर्तित हो गई। समृद्धि और शक्ति ने समाज की सरलता और सामान्यता को नष्ट कर दिया। उसमें बहुलता और जटिलता आ गई। मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ गईं; उनकी पूर्ति के साधन बढ़ गये। जीवन नागरीय गुणों से समन्वित होने लगा। उसमें विलासिता और प्रदर्शनकारिता आ गई। उत्पादन विशाल परिमाण एवं विस्तीर्ण आधार पर होने लगा। विशाल कारखानों, मिलों और फैक्टरियों की स्थापना हुई। गमनागमन की सुविधा के निमित्त पक्की, सीधी और व्यवस्थित सड़कों का निर्माण हुआ। बड़े-बड़े बाज़ार बड़ी-बड़ी दूकानों का आविर्भाव हुआ। स्वदेशीय एवं विदेशीय वस्तुओं का स्वतन्त्रतापूर्वक क्रय-विक्रय होने लगा। पूँजीपतियों का उदय हुआ। धन के असम वितरण के कारण देश का अल्पसंख्यक उद्योगपतियों का वर्ग अधिकाधिक धनी और बहुसंख्यक साधारण जन का वर्ग अधिकाधिक निर्धन होने लगा। आर्थिक प्रतियोगिता और असमता में समाज की शान्ति विनष्ट हो गई। अशान्तिमय वातावरण में जनतन्त्रतात्मक शासन-व्यवस्था का ह्रास हो गया। सर्वत्र एकतन्त्रात्मक शासनों का उदय हुआ जो साम्राज्य के प्रभुवर्ग की सत्ता और समृद्धि के द्योतक थे। जनसाधारण की असहायता और निरुपायता उसके दर्शन, साहित्य, कला और जीवन के मूल्यों में प्रतिबिम्बित हुई। आशावादिता के स्थान पर निराशावादिता आई। निराश व्यक्ति अपने आत्म-विश्वास को खो बैठा और अब आत्मोद्धार के निमित्त अन्य कोई साधन न देखकर उसकी विवश दृष्टि करुणामय परमात्मा की असीम श्रद्धा पर जा टिकी। इतिहास ने फिर करवट ली। समाज में एक बार फिर तर्क को तिलांजलि देकर श्रद्धा का राग अलापा गया। इस प्रकार के विभेद हेलेनिस्टिक सभ्यता को पूर्वगामी यूनानी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता से नितान्त पृथक् कर देते हैं।[१]

इसी प्रकार इतिहासकार काल्डवेल ने भी लिखा है कि जहाँ यूनानी सभ्यता पेरिक्लीज़ और उसके कई उत्तराधिकारियों के परिश्रम का परिचायक है, वहीं हेलेनिस्टिक सभ्यता सिकन्दर महान् की अपनी स्वयं की देन है।[१] इस मत का खण्डन करते हुए ब्रेस्टेड एवं हेनरी ल्यूकास ने कहा है कि हेलेनिस्टिक सभ्यता कोई नवीन सभ्यता नहीं वरन् यूनानी सभ्यता का ही अंतिम अध्याय है। उनके विचार में सिकन्दर महान् के विनाश से लेकर और रोम के उदय के पूर्व जिस सभ्यता का निर्माण हुआ उसे हेलेनिस्टिक कहा जाना चाहिए।

हेलेनिस्टिक सभ्यता का समय—इस विषय में मुख्य दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—(१) प्रथम के अनुसार जिसके समर्थक प्रसिद्ध विद्वान हेनरी ल्यूकास हैं, हेलेनिस्टिक सभ्यता का समय ३२३ ई० पू० से १४६ ई० पू० के बीच निर्धारित किया जाना चाहिए। (२) द्वितीय मत जिसके समर्थक बर्न्स महोदय हैं, के अनुसार हेलेनिस्टिक सभ्यता का सूत्रपात यद्यपि सिकन्दर महान् के पूर्व ही हो चुका था, फिर भी उसकी तिथि मरणोपरान्त मानना ही अधिक समीचीन होगा। अतएव उसका प्रारंभ ३२३ ई० पू० में हुआ होगा। इसी प्रकार अंतिम वर्षों के निर्णय में भी बर्न्स ने ३० ई० पू० तक की सीमा निर्धारित की है अर्थात् आगस्टस सीज़र के आगमन के पूर्व तक।

हेलेनिस्टिक सभ्यता के ऐतिहासिक स्रोत—द्वितीय ई० पू० से लेकर उन्नीसवीं ई० तक हेलेनिस्टिक सभ्यता का इतिहास केवल कल्पना की वस्तु थी। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास प्रसिद्ध यूरोपियन इतिहासकार ड्रायसेन का है। तत्पश्चात् काल्डवेल, बर्न्स, विलड्यूरेन्ट आदि ने कुशल लेखनियों से

---

१ "In view of these changes it seems justifiable to conclude that the Hellenistic Age was really the era of a new civilization as distinct from the Greek as modern civilization from the culture of the Middle Ages". —Burns.

१ "It is now considered as an age of advancement of expansion and of great importance and interest in the story of mankind." —Caldwell.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके विभिन्न ग्रध्यायों की रचना की। उपर्युक्त ग्राधुनिक इतिहासकारों के ग्रतिरिक्त इस सभ्यता के स्रोत मुख्य पाँच प्रकार के साहित्यों से मिलता है—(१) सिकन्दर महान् के साथ ग्राये हुए इतिहासकारों के संस्मरण (२) कर्टियस रूफस की ग्रनुपम कृति 'हिस्टोरिया' (३) प्लूटार्क एवं एरियन के लेख, (४) डिग्रोडोरस के लेख, (५) पॉलीवियस के ऐतिहासिक उद्धरण।

हेलेनिस्टिक कला—हेलेनिस्टिक कला की कुछ विशेषताएँ हैं जो उसके विभिन्न क्षेत्रों—वास्तु, स्थापत्य, चित्रकलादि में दृष्टिगत होती हैं—

(१) विशालता—इस कला ग्राधार विशालता है जो यूनानी साम्राज्य की सत्ता एवं समृद्धि की ग्रोर संकेत करती है। तत्कालीन विशाल भवन एवं मूर्तियाँ ग्राज भी इस कथन की पुष्टि करती है।

(२) ग्रसाम्प्रदायता—कला का प्रदर्शन धर्म के चतुर्दिक न होकर जीवन के ग्रन्यान्य विषयों के चतुर्दिक हुग्रा है। कलाकार ने देवालयों का निर्माण ग्रधिक नहीं किया। उसकी कला राजप्रसादों, भवनों, पुस्तकालयों, क्रीड़ास्थल तथा सभा-भवनों ग्रादि के निर्माण में प्रयुक्त हुई है। जिन देवालयों का निर्माण हुग्रा भी वे लघु ग्रौर हीन हैं।

(३) ग्रलंकरण—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, इस समय का प्रभु-वर्ग उत्तरोत्तर धनी होता जा रहा था। इस समृद्धि ने उनमें प्रदर्शन-रुचि को जाग्रत किया। उनके विपुल वैभव तथा दम्भ को चिरस्थायित्व देने के हेतु नियोजित कलाकारों ने ग्रपनी कृतियों पर ग्रत्यधिक ग्रलंकरण करने की चेष्टा की है। यही कारण है कि स्तम्भों का निर्माण साधारण रूप से डोरिक प्रणाली पर न होकर ग्रलंकार-प्रधान कोरिन्थियन प्रणाली पर हुग्रा है।

(४) विषय व्यापकता—विषय धर्म ग्रौर इतिहास के सीमित क्रोड़ से निकलकर बन्धनमुक्त विहारी हो गया है। ग्रब एकमात्र देवी-देवता ग्रौर ग्रादर्श-पुरुष ही कला के ग्राकर्षण-बिन्दु नहीं। धनिकों के भवन, ग्रकिंचन के पर्ण-कुटीर, श्रमजीवी के मिल ग्रादि में भी उसका प्रवेश हो गया है। उसमें जीवन का उज्ज्वलांश भी है ग्रौर निम्नांश भी। वह जहाँ मानव के उत्कर्ष ग्रौर हर्ष

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को प्रकाशित करता है वहाँ उसके पतन, विषाद, संकट, मृत्यु आदि को भी। सारांशतः कला बहुविषक हो गई है। वह आदर्शवादिनी न रहकर यथार्थवादिनी ही अधिक है।

(५) प्रकृति-चित्रण-विहीनता—हेलेनिस्टिक कला व्यावहारिकता तथा स्थूल उपयोगितात्मकता को लेकर चली है। उसमें उन्हीं वस्तुओं का निर्माण हुआ है जो मानव-जीवन में प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी हों। ऐसी व्यवस्था में प्रकृति-चित्रण निष्प्रयोजन समझा गया। कलाकार का ध्यान मानवी जगत् में ही आलिप्त है। प्रकृति के असीम सौन्दर्य के प्रति वह निरपेक्ष है। यदि कहीं प्रकृति-चित्रण भी तो वह पृष्ठ-भूमि में।

(६) प्रखर भावनाओं का प्रदर्शन—इस समय का कलाकार तीव्र भावनाओं के अंकन में विशेष रुचि रखता है। मानव की विह्वलता, उन्मत्तता, मरणासन्नता आदि को साकार करने में हेलेनिस्टिक कलाकार का प्रयास अति सफल रहा है। 'ज्यूस की सुमती वेदी', 'लकून' और 'मरणासन्न गाल' के चित्र इस दृष्टि से संसार की अति सुन्दर कृतियाँ हैं।

(७) नवीन भावनाओं का समावेश—हेलेनिस्टिक कला निश्चय ही प्राचीन यूनानी कला का परिवर्द्धित एवं नवीन स्वरूप है। इस काल के कलाकार ने केवल कुछ ही उच्च यूनानी तथ्यों का आश्रय लिया है परन्तु उन्हें भी अपनी कुशल छेनी से नवीन रूप प्रदान किया है जैसे मानवीय रूप के प्रदर्शन में यूनान के स्वर्ण-युग की अपेक्षा अधिक वास्तविकता, सांसारिकता, एवं कामुकता है। प्राचीन साधारण आयोनिक एवं डोरिक कला पद्धतियों का स्थान वैभवशाली एवं गगनचुम्बी इमारतों ने लिया है। इनके देखने से तत्कालीन मानव के सुख-समृद्धि वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। प्रसिद्ध इतिहासकार टर्नर ने भी उपर्युक्त नवीन भावनाओं की प्रशंसा की है।

वास्तुकला—इस क्षेत्र में हेलेनिस्टिक कलाकार की प्रतिभा मुख्य दो प्रकार के कृतियों में प्रदर्शित हुई है—

(१) नगर-निर्माण-कला—इसके अन्तर्गत अनेकों विशाल, सुन्दर नगरों का निर्माण हुआ जिनमें सिकन्दरिया, कोरिन्थ, सिराक्यूज़, टरेन्टेम, मसीलिया,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहोड्स, एवं पर्गेमस प्रमुख हैं। इसी कारण से इतिहासकार ट्रेवर ने इस काल की कला को शहरों की कला कहा है।[१]

सिकन्दरिया का शहर सबसे घनी ग्राबादी वाला था। इसकी जनसंख्या ५ लाख थी। स्ट्रोबो के अनुसार इसका क्षेत्रफल ३ वर्ग मील था। यह अपने विशाल पुस्तकालय, प्रकाश-गृह एवं वाणिज्य सम्बन्धी अन्य भवनों के लिये प्रसिद्ध था। इतिहासकार वर्न्स ने इसकी तुलना रोम से की है।[२] इसी प्रकार सिल्यूशिया का शहर जिसका निर्माण सिल्यूकस ने किया था, अपनी वैज्ञानिक नगर-निर्माण-योजना के लिये उल्लेखनीय है। इसकी सड़कें १०० फीट चौड़ी तथा अनेकों पुलों, नालियों से परिपूर्ण थीं। शहर के अन्दर अनेकों पार्क तथा मनोरंजन-गृह भी स्थित थे।

(२) गृह-निर्माण कला — इसकी सर्वप्रमुख विशेषता अलङ्करण थी। प्रत्येक गृह या प्रासाद विशाल कमरों से, स्तंभों से तथा विभिन्न चित्रों से सुसज्जित था। इसके उदाहरण फिलिप चतुर्थ के डेलास राजप्रसाद से मिलते हैं। साधारणतया गृह चौकोर ग्राकार के होते थे। इनका एक विशेष प्रकार 'एम्पीथियेटर' कहा जाता था जिसमें प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था भी थी। इनकी शैली प्राचीन ग्रायोनिक एवं डोरिक होते हुए भी अधिक विकसित थी। इन्हें दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) धार्मिक गृह — इसके अन्तर्गत अनेकों देवताओं के मंदिर ; जैसे जियस का मंदिर, एपोलो का मंदिर, पर्गेमम में बनी हुई जियस की वेदी प्रमुख हैं।

---

१ "Hellenistic Age was an age of the cities and city buildings far beyond anything known before."—Trever.

२ "The largest and the most famous of all the Hellenistic cities was Alexandria in Egypt with over 5,00,000 inhabitants and possibly as many as 10,00,000. No other city in ancient times, not ever Rome, surpassed it in size or magnificence."—Burnes.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) असाम्प्रदायिक गृह — सिकंदरिया का प्रकाश-गृह लगभग ४७५' ऊँचा था। इसमें तीन मंजिलें थीं। उच्चतम मंजिल में आठ स्तंभ थे जिनपर प्रकाश जलाया जाता है। इतिहासकारों के विचार में मध्यकालीन मीनारों के बनाने की कला का उद्‌गम इसी से हुआ है। इसी प्रकार सिकन्दरिया का विशाल पुस्तकालय भी उल्लेखनीय है।

स्थापत्य — हेलेनिस्टिक स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएँ विशालता, भावुकता और यथार्थवादिता हैं। जीवन की सुन्दर, असुन्दर, सत्य, असत्य सभी प्रकार की घटनाओं को अति उग्र रसात्मकता चाहे करुण हो या रौद्र, वीभत्स हो या शान्त। कभी-कभी यथार्थवादिता और उग्र रसात्मकता ने कला के उन सभी तत्त्वों की हत्या कर दी है जिनके कारण वह मानव को अभिरंजित करती हुई किसी उच्च आशा का संदेश देती है। पुनः हेलेनिस्टिक स्थापत्य कला बहुधा वास्तुकला की अनुगामिनी के रूप में प्रदर्शित की गई है। उसका उद्देश्य उद्दीपन है। स्थापत्यकारों ने अपनी कृतियों का निर्माण राजप्रसादों, भवनों, व्यायाम-शालाओं, क्रीड़ास्थलों तथा थियेटरों आदि को अलंकृत करने के हेतु किया। साम्राज्य की समृद्धि, शक्ति और प्रदर्शनकारिता के परिणामस्वरूप यह कला अपने चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। हेलेनिस्टिक कला का सर्वोन्नत अङ्ग स्थापत्य है। स्थापत्यकार ने मानवी, पाशविक और वानस्पतिक तीनों जगतों का अङ्कन किया हैं। यह अङ्कन प्रस्तर, संगमरमर, क्रिस्टल, शीशा, धातु और मिट्टी आदि पर किया गया है तथा स्वतन्त्र मूर्तियों और रिलीफ़ दोनों में है। हेलेनिस्टिक स्थापत्य के कुछ उदाहरण कला-जगत् में प्रसिद्ध हैं। लकून की मूर्ति का उल्लेख किया जा चुका है। यह ट्राय का पुजारी था और यूनानियों के विरुद्ध। अतः एथेना देवी ने उसे दण्डित करने हेतु दो विषधरों को भेजा है। उन्होंने प्रथम पुजारी के पुत्रों पर आक्रमण किया, परन्तु जब पिता उनकी रक्षा के हेतु आगे बढ़ा तो उस पर भी। अन्त में तीनों की मृत्यु हो जाती है। विषधरों की उग्रता, आक्रमण की विकरालता और तीनों मनुष्यों की रक्षा के हेतु विकल एवं विफल चेष्टा बड़ी ही भावुकता के साथ प्रदर्शित की गई है। प्लिनी के मता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नुसार यह चित्र प्लास्टिक कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। माइकेल एंजेलो की दृष्टि में यह कला का विस्मय है। दूसरा अंकन विजयदेवी नाइक का है जो एक आक्रमण के हेतु एक युद्ध-पोत का संचालन कर रही है। यह चित्रण उस नारी का है जो शक्तिरूप में पुरुष को उज्जीवन देती है। अन्य मूर्ति नील नदी के भयावह आप्लावन की है जिसमें दुर्बल मानव के विरुद्ध सबला प्रकृति का विशाल विस्फूर्जन है। कुछ जीवन की सामान्य घटनाओं के प्रभावोत्पादक प्रदर्शन भी हैं। इस काल में सर्वप्रथम मानव-हृदय के प्रणय की कारुणिक गाथा कठोर पाषाण पर अंकित की गई है। एक मूर्ति में प्रेमिका के विश्वघात से प्रताड़ित एक गड़रिये की जीवन-निष्फलता-जन्य असीम व्यथा पाषाण-हृदय को भी विदीर्ण कर गई है। दूसरी मूर्ति में प्रणय के हेतु दो पुरुषों का हिंसात्मक द्वन्द्व है जिसके परिणाम-स्वरूप एक प्रतियोगी प्रणय-वेदी पर अपने शोणित की अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ निस्पन्द हो जाता है। अन्य मूर्ति में एक लड़का अपने पाद से कंटक निकालता हुआ, प्रदर्शित किया गया है। यह चित्रण अति सरल और स्वाभाविक है। रिलीफ के स्थापत्य में सर्वप्रख्यात है देवातिदेव जियस की सुविशाल देवी। इसमें भयंकर देव-दानव युद्ध का प्रदर्शन है जिसके द्वारा देवातिदेव की असीम शक्ति की प्रतिष्ठा की गई है। अस्तु हेलेनिस्टिक स्थापत्य की महनीय मध्यमणि इसकी प्रतिमायें हैं जो प्राचीन इतिहास में अद्वितीय हैं। इतिहासकार बर्न्स में लिखा है कि मूर्तिकला का विकास हेलेनिस्टिक काल में सर्वोच्च स्थान पर था।[१] यह मूर्तिकला व्यक्तिगत जीवन लेकर राजाओं तथा देवताओं से सम्बन्धित थी। जहाँ एक तरफ रहोड्स, सिकंदरिया एवं पर्गेमम की असंख्य मूर्तियाँ अपना उदाहरण प्रस्तुत करती हैं वहीं दूसरी तरफ जियस की वेदी, डेयोस्थेनीज़ की ताम्र-मूर्ति, वेटिकन की एपोलो की मूर्ति, 'एफ्रोडाइट आफ़ मेलों' की मूर्ति एवं सेमोथ्रेस के देवी की मूर्तियाँ इत्यादि अपनी शांति, संतुलन एवं श्रद्धा के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। व्यक्तिगत जीवन से संबंद्धित अन्य चित्रों में

१ "Never has statuary been more abundant than in Hellenistic Age."

—Burns.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिशु-मूर्तियाँ, मदिरोन्मत्त स्त्रियों की मूर्तियाँ तथा नाचते हुये हंस की मूर्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं। इनकी अपेक्षा रोहड्स की विशाल मूर्ति जो लगभग १०५' ऊँची है विश्व के सात प्राचीन आश्चर्यों में गिनी जाती है। इसे इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट ने the noblest creation of Hellenistic art कहा है।

चित्रकला—हेलेनिस्टिक कला की समस्त विशेषताएँ चित्रकला में अभिव्यक्त हो गई हैं। उसकी गति अव्याहत है। मानव-जगत् के दुःख-सुख, हर्ष-विषाद, सबलता-निर्बलता, उज्ज्वलांश-निम्नांश आदि का वहन करती हुई वह पशु-जगत् और वानस्पतिक जगत् में प्रविष्ट हो गई है। धर्म और प्रकृति उसकी विशेष अभिरुचि नहीं। वह असाम्प्रदाय है। उसका प्रदर्शन प्रस्तर, संगमरमर, शीशे और लकड़ी सभी पर हुआ है। वह मोजाइक रूप में भी उपलब्ध होती है। चित्रणसम्बन्धी विविध रीतियों का भी आविर्भाव हो चुका था। छाया-दान, प्रकाश-दान, समुदाय-संगठन, Perspective और Foreshortening आदि के सिद्धान्तों से भी हेलेनिस्टिक कलाकार परिचित था।

हेलेनिस्टिक काल के अधिकांश चित्र नष्ट हो गये हैं, परन्तु जो अवशिष्ट रहे हैं उनसे उपर्युक्त विशेषताओं का प्रकाशन हो जाता है। प्रोटोगेनीज़ इस काल का एक प्रसिद्ध चित्रकार था। उसने एक बार एक कुत्ते का चित्र बनाया और तत्पश्चात् उसके मुख को फेनिल रूप में प्रदर्शित करने की चेष्टा की। परन्तु यथेष्ट रूप में वह फेन-प्रदर्शन करने में असफल रहा। अपनी असफलता से कुपित होकर उसने चित्र पर स्पांज पटक दिया। कहते हैं कि वह स्पांज उस कुत्ते के मुख पर लगा और अति स्वाभाविक फेन के समान एक श्वेत छाप लगाकर नीचे गिर गया। चित्रकार आह्लादित हो उठा। उसका कुत्ता अपने मुख से फेन गिर रहा था। इसी सफल कलाकार ने एक बार एक पक्षी का इतना सजीव चित्र अङ्कित किया कि उस वर्ग के अनेक पक्षी उड़-उड़कर उस चित्र के समीप एकत्र हो गये। मोजाइक के चित्रण में Battle of Issus शीर्षक चित्र विशेष उल्लेखनीय है। अश्वारोही सिकन्दर सैनिकों को चीरता हुआ अपने प्रतिद्वन्द्वी दारा के समक्ष आ पहुँचा है। वह

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने बरछे से पारसीक नरेश के ऊपर आक्रमण करता है। दारा के एक स्वामिभक्त सैनिक विद्युत्-गति से बीच में आ जाता है और उस सबल आघात को अपने शरीर पर ले लेता है। दारा उसकी स्वामिभक्ति से द्रवित होकर आत्मारक्षा भूल जाता है और एक क्षण के लिये झुककर उस आहत सैनिक की ओर चिन्ता एवं आभार की दृष्टि से देखता रह जाता है। सिकन्दर का बरछा ऊपर वायु में उठा रह जाता है। इस चित्र में आतप, आयास और आवेग से उत्पन्न सिकन्दर की अस्तव्यस्तता, स्वामिभक्त सैनिक की अपने अन्नदाता की प्राण-रक्षा में स्वशरीर-निरपेक्षता तथा कृतज्ञ दारा ने मुख पर उभड़ी हुई आभार और चिन्ता की सबल रेखाओं का अङ्कन बड़े दाक्षिण्य के साथ किया गया है। इससे अधिक उत्कृष्ट मोज़ाइक-चित्रण कदाचित् ही संसार में अन्यत्र मिले।[१]

साहित्य—हेलेनिस्टिक साहित्य में यद्यपि मौलिकता और गम्भीरता नहीं है परन्तु प्रचुरता है। आज हम लगभग ११०० तत्कालीन साहित्यकारों से परिचित हैं। सम्भव है, भविष्य के अन्वेषण अन्येतर साहित्यकारों को भी विस्मृति के गर्त से निकाले। तत्कालीन समाज की निम्नस्तरीया कार्य-संकुलता ने मनुष्य के जीवन को इतना व्यस्त कर दिया था कि उसके पास महाकाव्य-ऐसे विशाल ग्रन्थों के लिखने अथवा पढ़ने के हेतु न अवकाश था और न धैर्य। यही कारण है कि उस समय महाकाव्यों की रचना का प्रायः अभाव है। जो एकाधि महाकाव्य उपलब्ध भी हुए हैं वे साहित्य की दृष्टि से हीन हैं। न उनमें कथानक की सम्बद्धता है और न चरित्रनायक की धीरोदत्तता। वर्णन नितान्त विच्छृंखल है और कृति नितान्त उद्देश्यहीन। भाषा परिष्कृत नहीं है और न शैली ही आकर्षक। इन समस्त त्रुटियों का परिलक्षण सिकन्दरिया में प्राप्त रोडिअर्स कृत 'आर्गोनॉटिका' नाम के एक महाकाव्य में हो जाता है।

(१) काव्य—कविता के क्षेत्र में भी अधिकांश कृतियाँ या तो अपने धनदाताओं की कृत्रिम लघु कीर्तिप्रशस्तियाँ हैं या अपने रचयिताओं की उद्दाम आत्मश्लाघात्मक प्रवृत्ति की प्रदर्शिनी हैं। परिणामतः उनमें कवि-हृदय

१ "There is no greater mosaic than this."—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का वह स्वच्छन्द उच्छ्वास नहीं जो कृतियों को कलात्मकता देता है। हाँ, जिन कृतियों में कवियों ने नैसर्गिक जीवन की शुद्धता और सरलता का उन्मुक्त हृदय से चित्रण किया है वे अवश्य सुन्दर हैं। ऐसे कवियों में थियोक्रिट्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। निश्चितरूप से यह हेलेनिस्टिक काल का सर्वोत्कृष्ट कवि था। इसकी कवितायें दो कोटियों में विभक्त की जा सकती हैं—(१) Pastoral और (२) Mime प्रथम में ग्राम्य-जीवन की सरलता और सुन्दरता का वर्णन है और द्वितीय में नागरीय जीवन की अभिजातता और वैभवशालिता का। दोनों ही प्रकार की कवितायें कवि की तीव्र आत्मानुभूति एवं तन्मयता से रंजित हैं। ग्राम्य जीवन की निष्कलुष सरलता और प्रकृति की दिव्य बहुरूपता के बीच कवि ने जिस कलात्मकता के साथ तारतम्य स्थापित किया है वह हेलेनिस्टिक जगत में अद्वितीय है। इसी प्रकार Mimes में नागरीय जीवन की जटिल कार्यसंकुलता, कृत्रिमता, विलासिता और संघर्षशीलता अपने गुण-दोषों को लिये-दिये अव्याहतरूप में उभड़ आई है। थिऑक्रिटस की कविता पर विचार करते हुए विलड्यूरेण्ट ने लिखा है कि 'सम्पूर्णता यह यूरीपिडीज़ के पश्चात् सबसे पूर्ण पद्य-काव्य है, यही एकमात्र अवशिष्ट हेलेनिस्टिक कविता है जिसमें जीवन का स्पन्दन है।'[१] थिओक्रिटस सिराक्यूस का निवासी था जिसने तृतीय शताब्दी ई० पू० के पूर्वार्द्ध में अपनी कविताओं का संग्रह लिखा। इसके काव्य में ग्रामीण जीवन के सरस एवं मनोहर चित्रों का दर्शन मिलता है। उसे नागरिक जीवन से अत्यन्त घृणा थी अतएव वह एक स्थान पर कहता है—

"O Hevans, what a mob! I can'nt imagine,
How we're to squeeze through or how long it'll take."

[१] "All in all this is the most perfect Greek poetry written after Euripides, the only extant, Hellenistic verse that has the breath of life". —Will Durant.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ ही अन्य कवियों की अपेक्षा आत्मा का मानव के बाह्य स्वरूप से वास्तविक सम्बन्ध की कल्पना भी नितान्त महत्त्वपूर्ण है। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट ने तो यहाँ तक लिखा है कि उसकी कविताओं के पढ़ने से प्रकृति के विभिन्न अङ्गों जैसे सरिताएँ, मिट्टियाँ एवं आकाश के साथ तादात्म्य सम्बन्ध सा प्रतीत होने लगता है।[१]

थिओक्रिटस के काव्य का एक अन्य पहलू छायावादी कविताओं का था जिसे अंग्रेज़ी साहित्य में रोमान्टिसिज्म (Romanticism) कहते हैं। थिओक्रिटस के ही समकालीन अन्य कवियों ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया जिनमें कैलीमेक्स एवं एपोलोनोस के नाम प्रसिद्ध हैं। कैलीमेकस प्रधानतया प्रणय काव्य का प्रणेता था परन्तु एपोलोनोस की रचनाएँ साहित्यिक विशेषताओं के लिये उद्धृत की जाती हैं।

(२) नाटक—हेलेनिस्टिक काल विशेषतया नाटकों का काल था। साम्राज्य का वैभव बहुसंख्यक नाटकों के प्रदर्शन में प्रतिफलित होता था। प्रत्येक नगर में थियेटर थे जहाँ बहुसंख्यक दर्शक अपने मनोविनोद के निमित्त जाया करते। कुशल अभिनेता समाज में आदरणीय समझे जाते थे। उनमें बहुसंख्यक पर्याप्तरूप से धनवान् थे। साम्राज्य में अभिनेताओं के संगठन भी थे जो अपने सदस्यों की हित-रक्षा के हेतु सचेष्ट रहते थे।

जनसाधारण की अभिरुचि को सन्तुष्ट करने के निमित्त साहित्यकारों ने नाटकों की रचना की। ये नाटक प्रधानतः सुखान्त हैं। दुखान्त नाटक जनता की सुखाकांक्षिणी अवृत्ति के प्रतिकूल थे। नाटकों के विषय के जीवन की सामान्य घटनाएँ थीं। वे धर्म और राज्य तक ही सीमित न थे। युग की उद्दाम प्रदर्शनशीलता के परिणामस्वरूप

१ "Never before had Greek literature conveyed so feelingly the secret sense of kingship that stairs the soul with gratitude and affection for rocks, streams, water, soil and sky."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकांश नाटकों में शैली प्रधान और विषय गौण बन गये हैं।

हेलेनिस्टिक काल के नाटककारों में मीनेण्डर अमर है। इसकी शिक्षा-दीक्षा बड़े ही विदग्ध वातावरण में हुई थी। यह प्रसिद्ध नाटककार एलेक्सिस का भतीजा था। थिम्राफ्रेस्टस नामक विद्वान् के निरीक्षण में इसने शिक्षा पाई थी। एपिक्यूरस दार्शनिक इसका मित्र था। इनके प्रभाव के अन्तर्गत मीनेण्डर ने अपनी सहज प्रतिभा का प्रचुर विकास किया था। इसने लगभग १०४ नाटकों की रचना की। इनका प्रधान विषय प्रणय है। प्रणय में संयोग-वियोग, अनुविरक्ति-विरक्ति-कर्त्तव्यता-अकर्त्तव्यता, छल-कपट, विश्वासघात, उच्च आदर्शवादिता आदि सभी कुछ प्रदर्शित किया गया है। प्रणय के अतिरिक्त जीवन की अन्य सामान्य घटनाओं का भी वर्णन है, परन्तु राजनीति, धर्म और दर्शन आदि का प्रदर्शन नगण्य है। अपने समस्त नाटकों में मीनेण्डर ने सरल स्वाभाविकता को अत्यन्त सुन्दर शैली द्वारा व्यक्त किया है। परन्तु हेलेनिस्टिक युग का प्रतिनिधि होने के कारण उसने भी कथानक की अभिरामता और सम्बद्धता पर ध्यान नहीं दिया है। अनेक स्थलों पर वे अनाकर्षक, विच्छृङ्खल और खेदजनक हो गये हैं। परन्तु इन दोनों के होते हुए भी मीनेण्डर निर्विवाद रूप से अपने युग का सर्वोच्च नाटककार था। उसकी ख्याति का कारण वे सिद्धान्त काव्य भी हैं जिन्हें उसने अपनी कृतियों में यत्र-तत्र नियोजित किया था और जो आज प्रायः प्रत्येक देश में लोकविदित और लोक-गृहीत हैं। उदाहरणार्थ, All that injures in within, whom the Gods love die young. आदि लोक-कथन मीनेण्डर की लेखनी से ही निस्सृत हुए थे। मीनेण्डर अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण आज भी "The Great Scholar" की उपाधि से विभूषित किया जाता है। उसके समकालीन कवि अरिस्टोफेनीस ने लिखा है कि मीनेण्डर का काव्य मानव जीवन का भव्य दर्पण है।[१]

---

१ "O Menander O Life!
Which of you imitated the other." —Aristophanes.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य नाटककारों में फिलोमेन का नाम भी प्रसिद्ध है। उसके नाटक प्रमुख रूप से सुखान्त हैं जिनसे तात्कालीन सामाजिक भावनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

(३) गद्य—हेलेनिस्टिक काल गद्य-विकास के लिये भी प्रसिद्ध है। इस समय गद्य में बहुसंख्यक 'यूटोपिया' लिखे गये। इनमें लेखकों ने आदर्श राज्य की स्थापना के हेतु अनेक प्रकार की ऐसी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया जिनके अन्तर्गत मानव का जीवन सुख-शान्ति एवं समृद्धि से परिपूर्ण हो, जिनके कारण पारस्परिक संघर्ष एवं शोषण की समाप्ति हो। इन आदर्श व्यवस्थाओं के साथ-साथ गद्य-लेखकों ने जीवनियों की भी रचना की। यद्यपि इनमें निष्पक्षता, समालोचनात्मकता और संगठन-सौष्ठव का अभाव था तथापि इनकी रचनाओं ने गद्य के विकास में, विशेष योग दिया। परन्तु गद्य-साहित्य में सर्वाधिक महत्त्व इतिहास-ग्रन्थों का है। इनका निर्माण हेलेनिस्टिक काल के पूर्व ही से हो रहा था। पूर्वगामी इतिहासकारों में थ्यूसीडाइडीज़ सर्वप्रसिद्ध है। परन्तु इसका इतिहास प्रधानतः राजनीतिक था। उसमें सामाजिक और आर्थिक विषयों का सर्वथा अभाव था। इस अभाव की पूर्ति हेलेनिस्टिक-कालीन सर्वप्रसिद्ध इतिहासकार पोलीबिग्रस ने की। इसका दृष्टिकोण नितान्त वैज्ञानिक था। उसके इतिहास में रोम-विजय के वर्णन हैं। समस्त वर्णनों के पढ़ने से इतिहासकार की सत्यानुसारित स्पष्ट हो जाती है। पॉलीनियस अपनी इसी ऐतिहासिक सभ्यता के लिये 'इतिहासकारों का इतिहासकार' "Historians of the Historians" कहा जाता है। इस उपाधि का श्रेय उसकी ऐतिहासिक नियमावली एवं विषयों में निहित है। साथ ही साथ इतिहास को सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से निर्मित्त करना भी पॉलीवियस की ही देन हैं। उसके अनुसार ऐतिहासिक ज्ञान से ही हमें भविष्य के विषय में निश्चित एवं स्वतंत्र विचारधारा अपनाने का संकेत प्राप्त होता है यद्यपि विश्व ने उसे भुला दिया है, फिर भी वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहासकारों के लिए सदव एक ग्रध्याय का विषय बना रहेगा। इतिहासकार बर्न्स ने उसे हेरोडोटस एवं थ्यूसीडाइडीज़ की कोटि में रखा हैं।[१]

पॉलीवियस के समकालीन ग्रन्य इतिहासकारों में हायरोनिमस एवं फिलार्कस प्रमुख हैं जिन्होंने तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाग्रों का संग्रह लिखा है। इसी प्रकार पाज़ीडोरस नामक इतिहासकार ने भी ग्रपनी भाषा, तथा ग्रलंकार शैली के लिये हेलेनिस्टिक काल के साहित्य में विशिष्ट स्थान बना लिया है।

ऐतिहासिक प्रन्थों का ही एक ग्रन्य ग्रंग संस्मरण ग्रन्थ हैं जिसके रचयिता सेटिरस एवं एन्टिगोनस है। सेटिरस ने यूरोपिडीज़ के यात्रा-संस्मरणों की एक रोचक कहानी प्रस्तुत की है।

उपर्युक्त वर्णन से विदित हो जायेगा कि हेलेनिस्टिक काल में मनुष्य साहित्यानुराग ग्रौर विद्याध्ययन के प्रति निरपेक्ष न था। यूनानियों के साम्राज्य-विस्तार के साथ-साथ उनकी भाषा का भी प्रचुर प्रसार हुग्रा। वह एक विशाल भू-खण्ड के भद्र-समाज की सुसंस्कृत भाषा बन गई। यह सत्य एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। ग्रपने धार्मिक ग्रन्थ 'Old Testament' को ग्रधिक बोधगम्यता देने के हेतु यहूदियों ने उसका यूनानी भाषा में ग्रनुवाद करा दिया। साम्राज्य के ग्रनेक नगर विद्या-केन्द्र थे। इनमें सर्वप्रमुख था सिकन्दरिया का केन्द्र। विज्ञान, गणित, ज्योतिष, भूगोल ग्रादि के गम्भीर ग्रध्ययन के हेतु यहाँ एक विश्व-

---

१ "By far the ablest of all the writers of history and the only Greek fit to make a trial with Herodotus and Thucydes was Polybius of Megalopolies.........Though the world has almost forgotten him, yet the historians will long continue to study him as one of the greatest theorists and practones of historiography." —Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यालय की स्थापना की गई। विद्वान् इसे संसार का सर्वप्रथम विश्व-विद्यालय मानते हैं। सिकन्दरिया में भी एक पुस्तकालय की स्थापना की गई। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसमें पेपिरस पर लिखित बहुसंख्यक पुस्तकों का भी संग्रह था। पुस्तकालय संग्रह के अतिरिक्त पुस्तकों के प्रकाशन और विक्रय का भी कार्य करता था।

विज्ञान—जिस प्रकार ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में यूनानी साहित्य की और ई० पू० चौथी शताब्दी में यूनानी दर्शनशास्त्र की चरमोन्नति हुई उसी प्रकार ई० पू० तीसरी शताब्दी में यूनानी विज्ञान की।[१] इतिहासकार बर्न्स ने भी हेलेनिस्टिक कालीन वैज्ञानिक प्रगति को आधुनिक सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व सर्वोच्च प्रतिभाशाली बताया है। यहाँ तक कि अधिकांश आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार हेलेनिस्टिक कालीन सिकन्दरिया, पर्गमम एवं सेराक्यूस के अभाव में असंभव से होते हैं।[२] हेलेनिस्टिक काल अपनी वैज्ञानिक प्रगति के लिये संसार प्रसिद्ध है। गणित, ज्योतिष, भूगोल, चिकित्सा, भौतिकशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिकों की प्रतिभा समानरूप से उन्मुख हुई है। इन क्षेत्रों में उन्होंने जो अन्वेषण एवं अनुसंधान किये थे वे आज विद्वज्जगत् की अमूल्य निधि हैं। उनसे अभाव में वर्तमान विज्ञान का वह रूप न होता जो आज उसे प्राप्त है। हेलेनिस्टिक काल पर विचार करते हुए

१ 'The fifth century saw the zenith of Greek literature, the fourth the glowering of philosophy, the third culmination of science'. —Will Durant.

"The most brilliant age in science piror to the 17th century A. D. was the period of Hellenistic civilization. Indeed many of the achievements of modern age would scarcely have been possible without the discoveries of the scientists of Alexandria, Pergamum, Syracuse and other great cities of the Hellinistic world."—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बर्न्स महोदय ने उल्लेख किया है कि १७ वीं शताब्दी के पूर्व विज्ञान के इतिहास में उज्ज्वलतम युग हेलेनिस्टिक सभ्यता का काल था।

विज्ञान की इस समन्तात् अभ्युन्नति के अनेक कारण थे—

(१) हेलेनिस्टिक कालीन मनुष्य की मनोवृत्ति नितान्त भौतिक, सांसारिक कि और सुखार्थिनी थी। परिणामतः उसने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आधिकाधिक सुख-समृद्धि लाने के निमित्त अनुसंधान कार्य किये। विज्ञान इन्हीं अनुसंधान कार्यों का परिणाम था।

(२) हेलेनिस्टिक कालीन समृद्धि ने साम्राज्य के विभिन्न देशों में व्यापारी वर्ग का उदय किया। यह वर्ग धर्म की अपेक्षा विज्ञान में भी अधिक अभिरुचि रखता था। इसके प्रोत्साहन ने भी विज्ञान की प्रगति में योग दिया।

(३) स्वयं तत्कालीन नरेश भी विज्ञान-प्रमी थे। उनके धन, उत्साह प्रोत्साहन और संरक्षा ने भी वैज्ञानिकों के अनुसंधान कार्यों को अग्रसर किया। उदाहरणार्थ सिकन्दर ने विभिन्न स्थलों पर प्राप्त बहुसंख्यक Tablets को यूनान भेजकर उनका यूनानी भाषा में अनुवाद कराया था। मिस्र के टालमी ने सिकन्दरिया में विशाल संग्रहालय और पुस्तकालय की स्थापना कराई थी जिन्होंने गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंघान में प्रचुर योग दिया था।

(४) परन्तु विज्ञान की अपूर्व उन्नति का प्रधान कारण था विशाल साम्राज्य की स्थापना। इस साम्राज्य के अन्तर्गत मिस्र, चाल्डिया, भारत और यूनान आदि सुसभ्य एवं समुन्नत देश थे। इनके बौद्धिक आदान-प्रदान ने भी विज्ञान के चतुर्दिक विकास में योग दिया।

खगोल एवं ज्योतिर्विद्या—इस क्षेत्र में, सर्वप्रथम विद्वान् हेराक्लिटीज था। इसने मंगल (Mars) और शुक्र (Venus) नामक ग्रहों की गति का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ये दोनों ग्रह सूर्य के चतुर्दिक परिक्रमा करते हैं। परन्तु उसका इससे अधिक महत्वपूर्ण कार्य पृथ्वी की दैनिक गति का अनुसंधान था। इस विद्वान् ने सर्वप्रथम घोषित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया कि पृथ्वी अपनी कीली पर २४ घण्टे में एक बार पूर्ण परिक्रमा कर लेती है। दूसरा विद्वान् एरिस्टार्कस था। इसने अपने प्रमुख अनुसंधान के रूप में सूर्य की स्थिरता और उसके चतुर्दिक पृथ्वी की परिक्रमा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसे सूर्य की विशालता का भी ज्ञान था जो पृथ्वी की विशालता से कई गुनी अधिक थी। उसके मतानुसार विभिन्न ग्रह पृथ्वी से अति दूर होने के कारण ही स्थिर प्रतीत होते हैं। इन समस्त सिद्धान्तों की सत्यता को वर्तमान संसार ने भी अनुमोदित किया है। वास्तव में एरिस्टार्कस हेलेनिस्टिक युग का कोपर्निकस था। इतिहासकार बर्न्स ने इसे प्राचीनकाल का सर्वोच्च खगोल वेत्ता और हेलेनिस्टिककालीन कार्पनिकस कहा है।[१] इस युग का अन्य महत्वपूर्ण विद्वान् हिपार्कस था। इसने चन्द्रमा के व्यास और उसके तथा पृथ्वी के बीच के अन्तर का अनुमान लगाया। अपनी इसी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रतिभा, धैर्यपूर्ण खोज एवं वास्तविक पर्यवेक्षण के कारण उसे 'सत्य का प्रेमी' कहा गया है।[२] अन्तिम हेलेनिस्टिक विद्वान् सिकन्दरिया का टालमी था जिसने एल्मागेस्ट नामक ग्रन्थ की रचना कर ज्योतिःशास्त्र के विभिस्र सिद्धान्तों का संगठित-रूप में प्रतिपादन किया। इसे मौलिक ग्रन्थ न रहकर संग्रह-ग्रन्थ ही कहेंगे।

चिकित्सा-शास्त्र—हेलेनिस्टिक कालीन वैज्ञानिक प्रगति में चिकित्सा

१. "The most famous of the earlier astronomers of tbis time was Aristarchus of Samos who is sometimes called the 'Hellenistic Copernicus.'

—Burns.

२. "He was an epoch making blunderers scientist of the highest type, endlessly curious to know, devotedly patient in research, so carefully accurate in observation and report that antiquity called him, the lover of truth."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शास्त्र का अभूतपूर्व स्थान था इसका अतिक्रमण अन्य क्षेत्र करने में पूर्णतया असफल रहे। परिणामतः प्राचीन यूनान एक चिकित्सा-पर्यवेक्षण-केन्द्र के रूप में परिवर्द्धित हो गया था।[१] हेरोफिलस इस काल का महत्वपूर्ण चिकित्सा-शास्त्री था। इसे प्राचीन संसार का सर्वोच्च शरीर-रचना-विशेषज्ञ कहा गया है। इसने अरस्तू के मत का खण्डन करते हुए घोषित किया कि शिराओं में वायु-मिश्रित रक्त नहीं वरन् एकमात्र रक्त ही होता है। ये शिरायें ही रक्त को हृदय से लेकर सम्पूर्ण शरीर में संचारित करती हैं। हेलेनिस्टिक युग का यह हार्वे था। इसने सर्वप्रथम नाड़ी-ज्ञान प्राप्त किया और नाड़ी-परीक्षा के द्वारा रोग-निर्धारण-प्रणाली की स्थापना की। इसने मनुष्य के मस्तिष्क का विशेष अध्ययन किया और स्नायु, शरीर एवं मानवी चेष्टाओं के साथ उसके सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। इसी ने सर्वप्रथम मनुष्य के शरीर का चीर-फाड़ भी प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् एरैसिन्टैटस का उदय हुआ जिसे संसार स्वतन्त्र विद्या के रूप में शरीर-विज्ञान (Physiology) का संस्थापक कहता है। वह औषधि-चिकित्सा से अधिक प्राकृतिक चिकित्सा को महत्व देता था। उसका विचार था कि अत्यधिक औषधि-प्रयोग अस्वाभाविक होने के कारण शरीर के लिये अहितकर है। अतः मनुष्य को भोजन, स्नान और व्यायाम के द्वारा ही रोग-निवारण करना चाहिए। उसने मस्तिष्क के विविध अवयवों एवं कार्यों का और भी अधिक विवेचन किया। उसके मतानुसार शरीर का प्रत्येक भाग Nerves, Arteries और veins के द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित है। निस्सन्देह वह प्राचीन युग का सर्वोच्च शल्य-चिकित्सक एवं शल्य-विज्ञान-वेत्ता था।[२]

---

१. "Perhaps none of the Hellenistic seiences, surpassed in advance then the progress in medicine."

—Burns.

२. "Without question he was the greatest anatomist of the antiquity." —Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तव में हेरोफिलस एवं एरैसिन्टैटस ने प्राचीन सिकन्दरिया को आधुनिक वियना की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शोध-शाला का केन्द्र बना दिया था।

तत्कालीन अन्य चिकित्सा शास्त्रियों में फिलीनस, एस्क्लेपिडीज़ आगस्टस एवं गेलेन प्रमुख हैं। अंतिम वैज्ञानिक ने इस क्षेत्र में लगभग २२ पुस्तकें लिखीं जो चिकित्सा शास्त्र में आज भी वृहद् कोश के रूप में रखी जा सकती हैं। इरैसिस्ट्रेटस सेल्यूकस का चिकित्सक था। वह हृदय रोगों का विशेषज्ञ था और उसने इस विषय पर अनेक नये-नये सफल अनुसंधान किये। एस्क्लिपियाडिज प्राकृतिक चिकित्सक था। वह समस्त रोगों को उपवास व्यायाम, मालिश, कल्प और आसन द्वारा ठीक करता था। आगस्टस भी अपने समय का प्रसिद्ध चिकित्सा-शास्त्री था। उसने चिकित्सा संबंधी एक विशाल ग्रंथ की रचना की थी।

भौतिक विज्ञान—भौतिक विज्ञान के विद्वानों में सर्वप्रमुख आर्कि-मेडीज़ था। उसका जन्म २८७ ई० पू० में सिराक्यूज नामक स्थान पर और उसका पिता फीडियस नक्षत्रों का विशेषज्ञ था। आर्किमेडीज प्रारंभ से ही विज्ञान प्रेमी था। वह विज्ञान पढ़ने के लिए सिकन्दरिया गया। विज्ञान की नई-नई खोज करने में इतना निमग्न रहता था कि वह खाना-पीना भूल जाया करता। उसने विज्ञान सम्बन्धी दस ग्रंथों की रचना की जिसमें 'आन स्पिरिल्स', 'ऑन फ्लोटिंग बॉडीज', 'दी मेथेड', तथा 'सैंड रेकरन' विशेष प्रसिद्ध हैं। इसके उत्कर्ष के पूर्व भौतिक विज्ञान दर्शन का ही एक भाग समझा जाता था, परन्तु आर्किमेडीज ने अपने अनुसंधानों से इसे एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप दे दिया। उसे प्राचीन संसार का यान्त्रिक याङ्की (Technical Yankes of Antiquity) कहा जाता है। उसने आधुनिक अमेरिका-निवासी की भाँति अनेक यन्त्रों—Compound Pulley, Screw propeller, Screw, Burning Lens आदि—का आविष्कार किया।

जीवन की सामान्य घटनायें बहुधा क्रान्तिकारी परिणामों की जननी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन चुकी हैं। आर्किमेडीज़ के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। एक दिन वह जलपूर्ण टब में बैठा हुआ स्नान कर रहा था कि जल में उसे अपना शरीर हलका प्रतीत हुआ। यह एक साधारण घटना थी, परन्तु आर्कि-मेडीज़ के जागरूक मस्तिष्क के लिये यह कौतूहल का विषय बन गयी। उसने इस पर अध्ययन, मनन और प्रयोग करना प्रारम्भ किया और अन्त में एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो विज्ञान में 'आर्किमेडीज़ के सिद्धान्त' या 'लास ऑफ वेट' के नाम से प्रख्यात है। इसके अनुसार पानी में पड़ी हुई वस्तु भार में उतनी हलकी हो जाती है जितना कि उसके द्वारा हटाये गये पानी का भार होता है। इसी का विस्तार कर उसने आपे-क्षिक घनत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। विल ड्यूरेण्ट के शब्दों में 'हमें आर्किमेडीज़ को न्यूटन के समकक्ष स्थान देना चाहिए और उसे गणित-विषयक सफलताओं के एक ऐसे योग के लिये श्रेय देना चाहिए जिसकी समता विश्व-इतिहास में किसी एक मनुष्य ने नहीं की है।'[१] कहते हैं कि जिस समय रोम-सम्राट मार्सेलस ने उसके देश पर आक्रमण किया और उसे आमन्त्रित किया उस समय वह किसी प्रश्न का हल खोजने में संलग्न था। अतः उसने राजसैनिक से प्रतीक्षा करने हेतु कहा। वैज्ञा-निक की दृष्टि में विद्यानुराग राजनिमन्त्रण की अपेक्षा अधिक गौरवपूर्ण था। सैनिक ने इसे राजाज्ञा का अपमान समझा और आर्किमेडीज़ की हत्या कर डाली।

आर्किमेडीज़ के पश्चात् यन्त्र-निर्माण में हेरो का नाम आता है। कहते हैं कि उसने स्टीम-इंजिन का भी आविष्कार कर लिया था। इसके अतिरिक्त अग्नि-परिचालित इंजिन, फोर्स पम्प, स्लाट यन्त्र और थर्मास्कोप आदि अन्य महत्वपूर्ण यन्त्रों का निर्माण किया। कुछ विद्वान् हेरो को इन

---

१ 'We must rank Archimedes with Newton and credit him with 'a sum of mathematical achievement unsurpassed by any one man in the world's history'.—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समस्त निर्माणों का श्रेय नहीं देते। सम्भव है कि इनमें से कुछ आविष्कार अन्य वैज्ञानिकों के भी रहे हों। हेरो का ही समकालीन क्टेसीबियस था जिसने व्यावहारिक भौतिक-शास्त्र का परिचय सर्व प्रथम प्रदान किया। ताम्र-काल एवं कांस्य-काल के पश्चात् यही युग था जब कि प्राकृतिक शक्तियों का मानव-जीवन के व्यावहारिक रूप में प्रयोग लाने का श्लाघनीय प्रयास किया गया था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आधुनिक सोलहवीं शताब्दी से पूर्व यन्त्रों का विकसित ज्ञान एवं प्रयोग किसी अन्य युग में नहीं था।[१]

गणित एवं ज्योमिति—हेलेनिस्टिक काल में गणित के क्षेत्र में भी प्रचुर कार्य हुआ। गणितज्ञ यूक्लिड ने सिकन्दरिया में गणित के अध्ययन के निमित्त एक विद्यालय खोला और 'एलिमेन्टस ऑफ जामेटरी' नामक एक पुस्तक लिखी। यूक्लिड के कार्य की महत्ता इसी बात से अङ्कित हो सकती है कि उसकी यह पुस्तक अद्यावधि संसार के प्रत्येक विश्वविद्यालय में पढ़ायी जाती है। और उसका नाम स्वयं ज्योमिति-शास्त्र का पर्यायवाची बन गया है।[२] वास्तव में यह 'रेखागणित की

[१] "Hellenistic science was not divorced from the practical life of the producer as Bronze age learning and Natural Philosophy after 450 B. C. had been. The two Centuries beginning in 330 B. C. brought forth a crop of mechanical inventions that can not be paralleled in any period till 1600 A. D."

—V. G. Childe.

[२] "Neverthless the greatest victories of Hellinistic science were in Geometry. To this period belongs Euclid, the renowned Mathematician whose name for two thousand years would provide Geometry with a synonym."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तुकला' (Mathematical Architecture) है। दूसरा गणितज्ञ एपालोनिग्रस था। गणित के क्षेत्र में Parabola, Ellipse और 'हाइपरबोला' (Hyperbola) नाम इसी विद्वान् की देन है। इसकी लिखी हुई कोनिक्स (Conics) नाम की पुस्तक में कोन की विविध विवेचना है। परन्तु सबसे मौलिक गणितज्ञ कदाचित् हिपार्कस था। इसने ट्रिग्नोमेटरी (Trignometry) का अनुसंधान किया।

भूगोल—इस विद्या का प्रथम उल्लेखनीय विद्वान डिकार्गस था। उसने विश्व का मानचित्र प्रस्तुत किया तथा उसमें पर्वतों की ऊँचाई का भी अनुमान किया। परन्तु सर्वप्रसिद्ध विद्वान एरैटोस्थेनीज़ था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह भूगोल के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान, काव्य, ज्योतिष आदि का भी विशेषज्ञ था। वह सिकंदरिया का पुस्तकालयाध्यक्ष भी था। उसने कोलम्बस के सैकड़ों वर्ष पूर्व ही घोषित कर दिया था कि अटलांटिक महासागर के पूर्व में यात्रा करते हुए मनुष्य भारतवर्ष पहुँच सकता है। अपनी गणना के अनुसार इसने पृथ्वी की परिधि ३८००० मील निर्धारित की जो सत्य से लगभग २०० मील ही दूर थी। प्राचीन संसार में इस प्रकार की गणना एक विस्मयकारी सफलता थी। इसके द्वारा निर्मित विश्व का मानचित्र पूर्ववर्त्ती मानचित्रों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित था। इसमें अक्षांश और देशान्तर की योजना-द्वारा प्रत्येक स्थल की स्थिति का निर्धारण किया गया था इस दृष्टि से वह सर्वप्रथम वैज्ञानिक भूगोल वेत्ता था जिसने विश्व के मानचित्र पर अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं का जाल प्रस्तुत किया।[१] अन्तिम भूगोल विशारद पोसीडोनिग्रस था। इसने पता लगाया कि चन्द्रमा ही समुद्र के ज्वार-

---

[१] "He was the first geographer who was able to lay out on his map a cross-net of lines indicating latitudes and longtitudes. He thus, became the first founder of scientific geography."

J. H. Breasted.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाटा का कारण है। इसने पृथ्वी को ५ कटिबन्धों में विभाजित किया जो आज भी मान्य है इस विषय में उसकी पुस्तक 'On The Ocean' विशेष उल्लेखनीय है।

पोसीडोनस का साथी पिथियस था जिसने सभ्यता के उन प्रारंभिक वर्षों में अन्ध महासागर के अनेकों द्वीपों की यात्रा करके कई उत्साहवर्द्धक कहानियाँ लिखी जिसके कारण आज भी उसे "Sensational fable monger" कहा जाता है।

अंतिम भूगोल-वेत्ता अगार्थाकिडोज़ था जिसने अपने गुरु इरेटोस्थनीज़ के कार्यों का परिवर्द्धन किया।

इस प्रकार विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक अभ्युन्नति को देखते हुए कहना पड़ेगा कि हेलेनिस्टिक युग मानव-सभ्यता का सर्वप्रथम वैज्ञानिक युग था।

धर्म — हेलेनिस्टिक धर्म के दो पक्ष थे — १, लौकिक और २. बौद्धिक। अपने लौकिक पक्ष में यह धर्म जनसाधारण में प्रतिष्ठित था। धर्म का यह रूप साम्राज्य के अन्तर्गत प्रवाहित होने वाली अन्तर्देशीय धर्म-धाराओं के पारस्परिक संघर्षण-विघर्षण से उद्भूत था। विभिन्न धार्मिक प्रभावों के परिणामस्वरूप हेलेनिस्टिक धर्म में अनेकरूपता आ गयी थी। कहीं उसमें भक्तिवादिता थी तो कहीं भाग्यवादिता। कहीं धर्म में रहस्यात्मकता की प्रतिष्ठा होती थी, तो कहीं आध्यामिकता की। पारसीक जोरस्टर-धर्म ने मिथ्राइज्म और ग्नोस्टिसिज्म को जन्म दिया था। इन मतों के अनुसार यह संसार मनुष्य की कारा है। अतः यह निवृत्ति एवं काया-क्लेश के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था। इस संसार के कष्टों से निवृत्ति-प्राप्ति के हेतु देवातिदेव की उपासना आवश्यक थी। मिथ्राइज्म में यह देवातिदेव सूर्य था। इसकी उपासना के निमित्त विविध संस्कारों, पवित्र दिवसों, पूजाओं और मन्त्रपाठों की कल्पना की गयी। अपनी भक्तिवादिता, कल्पनात्मकता और सैद्धान्तिक सरलता के परिणामस्वरूप यह धर्म हेलेनिस्टिक काल के मनुष्य के हेतु विशेष आकर्षक बन गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्नोस्टिसिज्म ने मनुष्य की मुक्ति के हेतु तर्क को निष्प्रोजन समझ कर भक्ति का आश्रय लिया था। मानव के उद्धार के लिये समय-समय पर मानव रूप में ईश्वर का अवतरण होता है। ग्नोस्टिसिज्म रहस्यमूलक धर्म है। इसके अनुयायियों के विश्वासानुसार उनके धर्म में विविध रहस्यों का उद्घाटन है। परिणामतः इस धर्म में बहुसंख्यक रहस्यमय संस्कारों और कर्मकाण्डों का समावेश है। इस समय साम्राज्य के विभिन्न देशों पर पूर्व की धार्मिक विचारधारा का विशेष प्रभाव पड़ा था। मिस्र की आइसिस देवी की पूजा कुछ काल तक बड़ी लोक-प्रिय रही। इसकी पूजा अनिष्ट-निवारण, भौतिक फलों की प्राप्ति के लिए की जाती थी। आगे चलकर ईसाई धर्म में यही वर्जिन मेरी की पूजा में परिणत हो गई। इतिहासकार टार्न में इसे ईसा की प्रथम शताब्दी का सार्वजनिक धर्म बताया है।[१]

इसी प्रकार हेलेनिस्टिक धर्म पर पूर्वी धर्मों का भी प्रभाव शक्तिशाली था जिसने अनेकों नवीन विचारधाराओं का सूत्रपात किया। जैसे एकेश्वर-वाद की भावना, ज्योतिष एवं भाग्यवाद, सम्राट-पूजा, मूर्ति-पूजा, देव-पूजा एवं अवतारवाद इत्यादि। इनके साथ ही साथ विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान एवं आचार भी अपनाये गये।

यह तो था धर्म का लौकिक पक्ष। इसके साथ-साथ उसका बौद्धिक पक्ष भी था। साम्राज्य के बुद्धिवादी वर्ग ने लोकप्रिय रहस्यात्मक अनुष्ठानों एवं धार्मिक क्रियाओं की अपेक्षा अपना ध्यान धर्म के तर्कशील एवं चिन्तनशील पक्ष की ओर अधिक दिया। इसके अन्तर्गत कुछ नास्तिक हो गये, जिनकी दृष्टि में देवी-देवता अद्भुत एवं अलौकिक शक्ति न होकर मूलतः प्रख्यात एवं प्रतिष्ठित मानव ही थे। कुछ मनुष्य भाग्यवादी, कुछ शंकावादी और कुछ आचारवादी हो गये। इनमें (Epicureanism

---

१. "By the first century, it seemed that if there was to be an universal religion, it could be only this."

—W. W. Tarn.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Stoicsm एवं Ikepticism) के नाम प्रमुख हैं।

कुछ इतिहासकारों ने हेलेनिस्टिक धर्म को बाद के ईसाई धर्म के प्रचार का मुख्य कारण बताया है। बर्न्स के अनुसार यहूदियों के फैल जाने से इसमें अनेक परिवर्तन आये। भाषा के साथ यूनानी संस्कृति भी अपनाई। इनकी संख्या लगभग १० लाख है जो एशिया माइनर में केन्द्रित है।

दर्शनशास्त्र—हेलेनिस्टिक दर्शन ने अनेकरूपता है। इसका कारण तत्कालीन मनुष्य के दृष्टिकोण तथा जीवन-मूल्यों का क्रमिक परिवर्त्तन है। प्रारम्भ में मनुष्य बुद्धिवादी और तर्कवादी था। तर्क की सहायता से उनसे अपने जीवन के समस्त विषयों को हल करने की चेष्टा की, अपनी समस्त शंकाओं के समाधान करने का प्रयास किया। बहुत दिनों तक तर्क की यह आँधी चलती रही। एक समय ऐसा आया जब उसकी सम्पूर्ण शक्ति व्यय हो गयी और वह निस्पन्द हो गयी। मनुष्य ने देखा कि तर्क भी निर्बल है। वह भी उसके समस्त प्रश्नों को हल नहीं कर सकता। तर्क का प्रश्रय लेने के पश्चात् भी उसकी अनेक शंकायें पूर्ववत् रहीं; अनेक नवीन शंकायें भी उत्पन्न हो गयीं। जीवन की शङ्काओं ने उसे शङ्कावादी बना दिया। उसकी दृष्टि में अब संसार में कोई भी निश्चित सत्य न था; प्रत्येक वस्तु अनिश्चित थी। हेलेनिस्टिक दर्शन की यह दूसरी अवस्था थी। परन्तु कुछ समय के बाद इस चतुर्दिक शङ्कावाद ने उसके जीवन को शुष्क और श्रान्त कर दिया। सन्दिग्धता के इस गहन तिमिर में उसका जीवन दुर्वह हो गया। अतः तीसरी अवस्था में मनुष्य ने शङ्कावाद का भी परित्याग कर दिया। अब उसने आचारवादिता का दामन पकड़ा। दर्शनशास्त्र उसके प्रश्नों को हल न कर सका था, कदाचित् आचार-शास्त्र कर सके, इसी आशा से मनुष्य के जीवन का पुनः मूल्याङ्कन किया गया। इस प्रकार हेलेनिस्टिक दर्शन में तर्कवाद, शङ्कावाद और आचारवाद की तीन प्रमुख शाखायें हैं। संक्षेप में हेलेनिस्टिक दर्शन की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(१) दर्शन का विकास कोई आकस्मिक घटना नहीं वरन् एक क्रमिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास का द्योतक है जिसके बीज यूनान के स्वर्णयुग में ही बोये गये थे। उदाहरण के लिए अरस्तू एवं सुकरात के रहस्यवादी विचार।

(२) ज्ञान की वृद्धि के साथ सांसारिक वस्तुओं की उत्पत्ति तथा विनाश के विषय में रहस्य जानने की चेष्टायें।

(३) सभी हेलेनिस्टिक दर्शनों की विभिन्नता होते हुये सांसारिक बाधाओं से मुक्त होने के मार्ग के विषय में एकमत होना।

(४) इसी प्रकार वैयक्तिक महत्व के साथ ही साथ नैतिकता के प्रश्न पर भी सहमत होना।

(५) दर्शन का वास्तविक ध्येय आन्तरिक शान्ति एवं मानव आदर्श की उपलब्धि था।

(६) सभी दार्शनिक मत संसारवादी थे जिसमें अध्यात्म नाम की कोई वस्तु नहीं थी।

(७) पूर्वी दर्शन की भाँति निराशावादी भावनाओं से प्रभावित।

तर्कवाद—वास्तव में यह पेरिक्लीज-काल की विशेषता थी जो उसकी मृत्यु के पश्चात् भी कुछ दिनों तक-सक्रम रही। सुकरात, प्लेटो और अरस्तू ने जिस बुद्धिवाद की स्थापना की थी वह अपने युग का अतिक्रमण कर हेलेनिस्टिक युग में भी कुछ काल के लिये प्रविष्ठ रही। हेलेनिस्टिक युग के बुद्धिवादी प्रतिनिधियों में विशेष उल्लेखनीय हैं थिओफ्रैस्टस और जेनोक्रेटीज। प्रथम विद्वान् की प्रतिभा चतुर्मुखी थी। उसने जीवन के विविध विषयों पर ग्रन्थ लिखे जिनकी संख्या ४०० है। इनमें उसने तर्क का आश्रय लेकर ही मनुष्य के समस्त प्रश्नों को हल करने की चेष्टा की है। प्रसिद्ध हेलेनिस्टिक नाटककार मीनेण्डर इसी विद्वान् थिओफ्रेस्टस का शिष्य था। इसी विद्वान् ने हेलेनिस्टिक युग में सर्वप्रथम वनस्पतिशास्त्र का विकास किया था। द्वितीय विद्वान् जेनोक्रेटीज अति अध्ययन-व्यसनी था। इसके जीवन का प्रमुख ध्येय अध्ययन था। कहते हैं कि निःशुल्क विद्यादान के कारण यह व्यक्ति अत्यन्त निर्धन हो गया था। इसने भी तर्क का आश्रय लेकर जीवन का मूल्यांकन किया था और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुकरात की परम्परा को सक्रम रक्खा था।

शंकावाद—परन्तु जेनोक्रेटीज की मृत्यु के पश्चात् तर्कवाद का अन्त हो गया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उसका स्थान शंकावाद ने ले लिया। इसका सर्वप्रथम प्रतिपादक पिरोह (Pyrrho) था। इसका दर्शन कतिपय महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर अवलम्बित था—

(१) संसार में निश्चित सत्य अप्राप्य है। यहाँ जो कुछ सत्य के नाम से प्रतिपादित किया जाता है वह व्यक्ति विशेष का मत-मात्र होता है।[१]

(२) जब सत्य अप्राप्य है तो उसकी प्राप्ति के हेतु मनुष्य का अन्धप्रयास कैसा? मनुष्य के लिये अधिक श्रेयस्कर तो यह है कि वह सत्य-प्राप्ति के स्थान पर शान्ति-प्राप्ति की चेष्टा करे। सत्य और असत्य की भ्रामक धारणाओं को वहन करते हुए मनुष्य समाज-सुधार का उद्घोष करता है, धर्म-विशुद्धीकरण का आन्दोलन करता है। परन्तु जब संसार में प्रत्येक वस्तु अनिश्चित है तो फिर मनुष्य की ये समस्त चेष्टायें भी मिथ्याचार-मात्र हो सकती हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि शान्तिपूर्वक विद्यमान परिस्थिति को स्वीकार कर ले। इसी में उसके जीवन का सुख है और उसकी शान्ति है।[२]

आर्केसिलाज ने शंकावाद को और भी अग्रसर किया। उसका सिद्धान्त कि 'कुछ भी सत्य नहीं है—यह भी नहीं' शंकावाद की चरम स्थिति को सूचना देता है।

परन्तु सबसे अधिक प्रसिद्ध शंकावादी दार्शनिक था कार्नीडीज। उसके मत के अनुसार भी संसार में कोई निश्चित सत्य नहीं है। हमारी

१. Everything is opinion, nothing is true.

२. Best of all is a calm acceptance not to reform the world but to bear with it patiently, not to fevour ourselves with progress but to content ourselves with, peace'

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं। अतः उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान भी अपूर्ण है। ऐसी परिस्थिति में जो वस्तु सत्य प्रतीत होती है वह सम्भवतः सत्य न हो। जब सत्य का निश्चितरूप निर्धारित नहीं तो फिर पूर्व-प्रचलित परम्पराओं को विसर्जित क्यों किया जाय? जब सत्य अप्राप्य है तो सम्भावना के आधार पर ही जीवन-यापन क्यों गर्हित है? अतएव मनुष्य को सत्य-असत्य, अच्छाई एवं बुराई तथा सांसारिक चिन्ताओं को त्याग देना चाहिए तभी अन्तिम शान्ति मिल सकती है।[१] इस दार्शनिक का शंकावाद इतना अधिक बढ़ गया था कि जिस बात को आज वह प्रतिपादित करता था उसी का कल खण्डन करता था। एथेन्स ने उसे रोम में अपना राजदूत नियुक्त किया था। पहले वह न्याय के पक्ष में बोला। रोम निवासी उसके तर्क को सुनकर बड़े प्रभावित हुए। परन्तु उनके क्षोभ की सीमा न रही जब दूसरे दिन उन्होंने दार्शनिक को अपने ही विरोध में उद्दाम वक्तृता देते हुए सुना। शंकावाद की यह पराकाष्ठा थी। तीसरे दिन दूतावास बन्द कर दिया गया।

हेलेनिस्टिक दर्शनशास्त्र की तृतीय क्रमिक स्थिति वह थी जब शंका-हत मनुष्य का जीवन दुर्वह हो गया और उसने अपने परित्राण के हेतु आचार-शास्त्र की ओर ध्यान दिया। वह दर्शन को समष्टि के निमित्त विश्लेषित न कर सका था। अतः उसने अब व्यक्ति के निमित्त उसका मूल्यांकन किया। यह दर्शन न तो कल्पना का दर्शन था और न आदर्श-वादिता का। इसमें न धर्म के गोपनीय सिद्धान्तों का विवेचन था और न आत्मा-परमात्मा-सम्बन्धी गूढ़ विषयों पर वितण्डावाद। यह दर्शन तो एकमात्र उन्हीं मान्यताओं को लेकर उदित हुआ था जो मनुष्य के ऐहिक जीवन की व्यावहारिकता की रक्षा करते हुए उसे सुख-शान्ति प्रदान कर सकें। यह दर्शन नितान्त व्यक्तिवादी, भौतिकवादी और निराशावादी

---

१. If man quits the quest of absolute truth and worries of good and bad, he attains peace—the highest satisfaction.
—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। हेलेनिस्टिक काल में यह दर्शन दो शाखाओं में विभक्त हो गया था—एपिक्यूरियन और स्टाइक।

एपिक्यूरियन दर्शन—इसका संस्थापक एपिक्यूरस था। इसका जन्म ई० पू० ३४१ में समोस में हुआ था, परन्तु अध्ययन के हेतु यह एथेन्स में आया था। उसने ३०० पुस्तकों की रचना की और अपने मत के सिद्धान्तों का विशद प्रतिपादन किया। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार थे :

(१) मनुष्य पूर्णरूपेण स्वेच्छाचारी है। उसके समस्त कार्य स्वतः आयोजित होते हैं। यह 'स्वतन्त्र इच्छा' (Free will) के सिद्धान्त का प्रतिपादन था।

(२) जीवन का ध्येय सुख-प्राप्ति है। यह सुख इन्द्रियजन्य भी हो सकता है। इन्द्रिय-सुख दार्शनिक की दृष्टि में वर्जित नहीं। परन्तु यह कष्टजन्य भी हो सकता है। अतः मनुष्य को आत्म-शान्ति के रूप में ही सर्वोच्च सुख की प्राप्ति करनी चाहिये। यह आत्म-शान्ति विवेकपूर्ण जीवन से उपलब्ध होती है। 'विवेकशीलता, सम्मान्यता और न्यायशीलता के बिना सुखपूर्ण जीवन सम्भव नहीं है और न सुखपूर्णता के बिना विवेकशील, सम्मान्य एवं न्यायपूर्ण जीवन ही सम्भव है[१]। ऐसी परिस्थिति में मानवी जीवन में विवेक और सुखाकांक्षा का सन्तुलन अति आवश्यक है।

(३) मानसिक शांति तभी प्राप्ति हो सकती है जब मनुष्य अपने मस्तिष्क से सभी अधिभौतिक सत्ताओं की स्थिति को निकाल दे।

(४) सर्वोच्च मानुषिक आनन्द आत्मा की पवित्रता से मिलता है तथा जिसकी प्राप्ति अधिभौतिक सत्ता में विश्वास न करने पर ही होती है।

---

[१] 'It is not possible to live pleasantly without living prudently, honourably and justly nor to live prudently, honourably and justly without living pleasantly.'

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) आत्मा भौतिक है। संसार स्वयं नियमबद्ध हैं उसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं है।

(६) मनुष्य के गुण वास्तव में उसके फलदाता हैं।[१]

(७) इसके अनुसार सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का कोई स्थान नहीं। राज्य केवल सुविधा के लिये है।[२]

(८) परन्तु मनुष्य चाहे जितने अधिक विवेक और परिश्रम का प्रदर्शन करे, वह सम्पूर्ण संसार का सुधार कभी नहीं कर सकता, वह समष्टि को कभी सुखी नहीं कर सकता। अतः उसे व्यक्तिगत सुख की प्राप्ति के हेतु चेष्टा करनी चाहिए।

(९) संसार में सदाचारिता का महत्व है, इसलिए नहीं कि उसमें अन्तर्निहित शाश्वत सत्य है, वरन् इसलिये कि उससे सुख की प्राप्ति हो सकती है। यही कथन राज्य के कानून और न्याय के विषय में भी सत्य है।

(१०) मनुष्य भौतिक है। उसकी आत्मा भी भौतिक अंशों से निर्मित है। अतः शरीर के नाश के साथ उसका भी नाश हो जाता है।

(११) समस्त ज्ञान इन्द्रियों द्वारा ही प्राप्य है।

(१२) धर्म के कारण ही संसार अव्यवस्था फैली है। अतः वह त्याज्य है।

(१३) देवी-देवता हैं, परन्तु वे पूर्णरूप से तटस्थ रहते हैं। मानवी विषयों में उनकी अभिरुचि नहीं। वे ऐहिक जीवन के प्रति निरपेक्ष हैं। ऐसी अवस्था में वे न मनुष्य को उसके कर्मों के हेतु पुरस्कृत करते हैं

"१. I scorn virtue when it results in no pleasures."

—Epicurns.

२. "In its brilliant concept of the evolulion of human sociaty, Epicurians made a distinct conteintion to scientifice thought."

—TRAVER.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और न दंडित। उनके विषय में भ्रान्तिमूलक धारणाओं का प्रसार धर्म ने किया है। दर्शन का ध्येय इस कल्पित देव-भीति से मनुष्यों की मुक्ति कराना है।

(१४) सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में एपिक्यूरस के सिद्धान्त डेमाक्रिटस के अनुवाद में प्रभावित थे। अतः इस हेलेनिस्टिक दार्शनिक ने भी समस्त संसार की असंख्य, अविभाज्य, एवं अगणित गतिशील अणुओं के द्वारा निर्मित बताया है। ये अणु, आकार, क़द और तौल में परस्पर-भिन्न होते हैं। ये रंगहीन, तापहीन, गन्धहीन, स्वादहीन और ध्वनिहीन होते हैं।

स्टॉइक दर्शन—इस दर्शन का संस्थापक ज़ेनो था। यह साइप्रस द्वीप में उत्पन्न हुआ था, परन्तु अध्ययन के हेतु एथेन्स में आ गया था। इसके सिद्धान्त निम्न प्रकार थे :

(१) संसार पूर्णतया नियमित। इसमें सभी विभिन्नतायें अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती हैं।

(२) अशुभ का सम्बन्ध शुभ से सीमित है और सभी सांसारिक दुख मनुष्य को पूर्णता प्राप्ति करने में सहायक होते हैं।

(३) मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी नहीं है वरन् भाग्य उसमें शृंखलाबद्ध एक कड़ी की तरह है। मनुष्य भाग्य का विरोध कर सकता है परन्तु उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता।

(४) मनुष्य का सर्वोच्च कर्त्तव्य सांसारिक नियमों का पालन करना है।[१]

(५) मस्तिष्क की पवित्रता सर्वोच्च अच्छाई है।

[१] "The truly happy men is who by the asseration of his rational nature has accomplished a perfect adjustment of his life to the cosmic purpose and purged his soul of all bitteness."

—ZENO.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६) सभी मनुष्य ईश्वर के पितृत्व में भाई-भाई है।

(७) संसार में शुभ और अशुभ दोनों हैं, परन्तु अन्तोगत्वा इसकी परिणति शुभ में ही होगी।

(८) मनुष्य का भाग्य पूर्व-निर्धारित है। उसे वह परिवर्त्तित नहीं कर सकता। अतः उसके लिये हितकर यही है कि वह सहर्ष आत्मसमर्पण कर दे, भाग्य के अनुसार अपना जीवन व्यवस्थित कर ले। ऐसा करने से उसे आत्मशान्ति मिलेगो।

(९) 'गुण' (Virtue) मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वोच्च अङ्ग है। इसी के द्वारा मनुष्य का जोवन सफल हो सकता है।

(१०) प्रत्येक मनुष्य सुखार्थी है। परन्तु सुख केवल बुद्धिमान मनुष्य को प्राप्त होता है क्योंकि अपनी बुद्धि की सहायता से वह जीवन में संतुलन रखता है।

(११) इस दर्शन में सदाचार पर विशेष बल दिया गया है। मनुष्य को चाहिए कि वह सहिष्णु, उदार, श्रमशील, अनुशासित और कर्तव्य-निष्ठ हो।

(१२) दर्शन का आधार सार्वभौमता है। सब मनुष्य परम पिता कि सन्तान हैं। वे पस्पर भाई-भाई हैं। भौतिक अंशों में असम होते हुए भी वे आत्मा की उच्चता की दृष्टि से सम होते हैं। सार्वजनिक हित में इसने दास-प्रथा और युद्ध का विरोध किया।

(१३) यह दर्शन कर्त्तव्य के रूप में प्रवृत्ति मार्ग की शिक्षा देता है। इस संसार में रहते हुए मनुष्य को सार्वजनिक हित के कार्यों में भाग लेना चाहिए।

अपने इन उदार सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप स्टॉइक दर्शन हेलेनि-स्टिक काल की सर्वोत्कृष्ट कृति कहा जाता है।[१] इसकी सार्वभौमता, विश्वबन्धुता और शान्तिप्रियता ने तत्कालीन सामाजिक विषमता को

---

१ '....The Stoic philosophy was the noblest product of the Hellenistic Age.'—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिथिल-करने में प्रचुर योग दिया। अपनी नकारात्मक विशेषताओं के बावजूद भी स्टोइक दर्शन हेलेनिस्टक काल का सर्वोच्च दर्शन था।[१]

नवीन दार्शनिक विचारधारायें—उपर्युक्त मुख्य दार्शनिक मतों के अतिरिक्त हेलेनिस्टिक दर्शन अन्य कई विचारों से भी प्रभावित था—

(१) **नियो-पाइथागोरियन**—जिसके मुख्य प्रणेता पाइथागोरस (१००—ई० पू० से १०० ई०) थे। इनके अनुसार विश्व आत्मा एवं पदार्थ में विभाजित है। सभी भौतिक पदार्थ बुराइयों से पूर्ण है और उनसे छुटकारा कठिन देहिक क्रियाओं द्वारा ही हो सकता है। अंतिम लक्ष्य ईश्वर से रहस्यपूर्ण मिलन है।

(२) नियो-प्लेटोनिज्म

(३) चारणवर्ग का दर्शन

(४) अन्य धार्मिक विचारधारायें।

आर्थिक जीवन—१ व्यापार—हेलेनिस्टिक काल अपनी औद्योगिक और व्यापारिक समृद्धि के लिये प्रख्यात है। विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत दूरस्थ प्रदेश एक दूसरे के सम्पर्क में आये और उन्होंने अन्तर्देशीय आधार पर विविध-वस्तुओं का आदान-प्रदान, क्रय-विक्रय प्रारम्भ किया। सुरक्षित सामुद्रिक एवं स्थलीय मार्गों तथा सोने और चाँदी की अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रचलन ने भी व्यापारिक प्रसार में योग दिया। साम्राज्य के शासक देश की आर्थिक अभ्युन्नति के प्रति विशेषरूप से जागरूक थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर सड़कें बनवायीं, बन्दरगाह बनवाये, पुल बनवाये, नहरें बनवायीं और क्रय-विक्रय की सुविधा के निमित्त बहुसंख्यक बाजारों की स्थापना की। उनके जहाज सामुद्रिक मार्गों तथा पदाधिकारी स्थलीय मार्गों पर गश्त लगाते थे। राज्य की ओर से विक्रय-मूल्य निर्धारित थे। राज्य की ओर से भी देश में विविध कारखाने खोले गये थे। इनमें विशाल परिमाण

---

१ "Despite its nagative character, the Stoic phlisophy was the noblest product of the Hellenistic age."

—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में वस्तुओं का उत्पादन होता था। राज्य देश की सर्वप्रमुख औद्योगिक संस्था थो। व्यक्तिगत पूंजीपतियों के द्वारा संचालित कारखाने भी राज्य के निरीक्षण में ही उत्पादन करते थे। राज्य देश के व्यापारियों से भी भारी कर लेता था। इस प्रकार राज्य की आय के अपार साधन थे।

इन समस्त कारणों के परिणामस्वरूप हेलेनिस्टिक काल में व्यापार-व्यवसाय की अत्यधिक उन्नति हुई। निश्चय ही हेलेनिस्टिक कालीन व्यापारिक उन्नति यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति एवं आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति की भाँति विश्व-इतिहास में उल्लेखनीय है।[१] यूनानी साम्राज्य के सर्वप्रमुख व्यापारिक केन्द्र सिकन्दरिया में भारत का सोना, चीन का रेशम, अरब के मसाले, एशिया माईनर की सुन्दर दरियाँ और चटाइयाँ, ईजियन की चाँदी, साइप्रस का ताँबा और इंग्लैण्ड का टीन आदि प्रचुर मात्रा में आयात होने लगा। इन वस्तुओं के बदले में सिकन्दरिया विलासिता के सुन्दर उपकरण और आभूषण, सुगन्धित पदार्थ सूती वस्त्र, धातु और प्रस्तर के सुन्दर पात्र तथा शीशे की विविध वस्तुओं का निर्यात करता था। धनधन्य से पूर्ण सिकन्दरिया अपने उत्कर्ष की सीमा पर पहुँच गया। इसकी जनसंख्या ५००,००० हो गयी। इसमें विभिन्न जातियों के उद्भट विद्वान्, दार्शनिक, कलाकार और व्यापारी समानरूप से नगर की भव्यता समृद्धिशीलता के हेतु योग दे रहे थे। नगर का विशाल बन्दरगाह, पुस्तकालय और संग्रहालय संसार के लिए आश्चर्य के केन्द्र बन गये थे। यहीं फेरोस नामक ज्योतिगृह था जो ३७० फुट ऊँचा होने के कारण संसार का सर्वोच्च ज्योतिगृह था। नगर की सुव्यवस्थित सड़कें, उनके दोनों ओर निर्मित भव्य भवन, नालियों की आयोजना, बड़े-बड़े बाजार, क्रीड़ास्थल,

---

१ "The history of Hellenistic civilization was marked by economic devolopments, secnod only in magnitude to the commercial and Industrial Revolutions of the modern era."

—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थियेटर आदि ने सिकन्दरिया को अभूतपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया था। सिकन्दरिया के समान सेल्यूकिया अन्तियोक आदि भी यूनानियों के व्यापार तथा कला-कौशल के सुप्रसिद्ध केन्द्र थे। हेलेनिस्टिक काल विशाल नगरों के उत्कर्ष का काल था। जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका में शहरों का अभ्युदय हुआ था ठीक उसी प्रकार इस काल में भी अनेकों नगरों की उत्पत्ति हुई।[२]

(२) कृषि – साधारण जनता कृषि-कर्म करती थी। परन्तु कृषकों की दशा विशेष सन्तोषजनक न थी। हेलेनिस्टिक काल में छोटे-छोटे खेत बड़े-बड़े खेतों में संगठित हो रहे थे। अतः बहुसंख्यक कृषक भूमिहीन हो गये थे। वे श्रमजीवी के रूप में जीवन-निर्वाह करते थे। जो कृषक थे भी वे निर्धनावस्था के कारण ऋणी हो रहे थे और ऋण न चुकाने के कारण उन्हें दासवृत्ति स्वीकार करनी पड़ती थी। उधर बड़े-बड़े शासक और भूमिपति विशाल भूखण्डों के स्वामी थे। वे स्वेच्छानुस र अन्य मनुष्य को कृषि-हेतु भूमि देते थे और उनसे लगान के रूप में प्रचुर धन लिया करते थे। अपने इन भूमि-खण्डों को वे न तो स्वेच्छानुसार बेच सकते थे। और न फसल कटने के पूर्व छोड़ ही सकते थे। परन्तु साधारणतया बड़े-बड़े खेतों में कृषि-उत्पादन सन्तोषजनक था। आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होने के कारण अन्न, जैतून और तेल का निर्यात अधिक किया जाता था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जायगा कि साम्राज्य की समृद्धि एकमात्र राजकीय वर्ग, उच्चवर्ग और व्यापारीवर्ग तक ही सीमित थी। समाज के कृषकों छोटे उद्योगियों, श्रमजीवियों एवं दासों की आर्थिक दशा असन्तोष-जनक थी। उनकी आय अत्यल्प थी परन्तु जीवन का मूल्य पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया था।

---

२ "In cities multiplied and grew in the Hellenistic empiras almost as rapidly as in the 19th centuary America."

—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेलेनिस्टिक सभ्यता की देन—विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में केवल रोम को छोड़कर कोई भी ऐसी सभ्यता नहीं है जिसकी आत्मा आधुनिकता से अधिक नजदीक हो। आधुनिक सभ्यता की भाँति इस काल में भी विभिन्न प्रकार के राज्य, सैनिक व्यवस्था में, तथा प्रजातांत्रिक भावनाओं का पूर्ण स्थान था। न केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही वरन् सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी बड़े-बड़े व्यापारिक संघ, वैज्ञानिक आविष्कार प्रतिस्पर्धात्मक भावनायें महान नगर एवं विशाल बौद्धिक तथा कलात्मक केन्द्र विद्यमान थे। इनका विकास हेलेनिस्टिक शासकों की धर्म-निरपेक्ष नीति एवं राजकीय संरक्षणों के फलस्वरूप अपनी चरमोत्कर्ष अवस्था पर पहुँच चुका था।

उपर्युक्त सभी सभ्यताओं के आधार पर ही इतिहासकारों ने हेलेनिस्टिक सभ्यता को आधुनिकता की जन्मदात्री कहा है। इतिहासकार राल्फ टर्नर के विचार से यही सभ्यता है जिसने हमें "विश्व-साम्राज्य", "सभ्य-दुनिया" एवं "मानवता" के पाठ पढ़ाये। इसकी उर्वर भूमि पर ही सर्वप्रथम पाश्चात्य एवं प्राची के आदर्शों का संगम हुआ। यह अतिशयोक्ति न होगा कि आधुनिक यूरोप, उत्तरी अफ्रीका एवं पूर्वी एशिया की सभी सभ्यताएँ हेलेनिस्टिक सभ्यता की ऋणी हैं।[१]

---

१ "In the Hellenistic Age the west and east met for 1(first time but neither imposed a cultural dominence on the other, each became more like the other. Also it is not wrong to recognize that Hellenistic age gave outlines to European, North African and Asiatic culture areas which remained little changed until modern times."

—Ralph Turner.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

रोम की सभ्यता

रोम नगर की स्थापना—जहाँ एक ओर विशाल रोम साम्राज्य ने विश्व के इतिहास में शीर्ष स्थान को प्राप्त किया है, वहाँ दूसरी तरफ उसकी स्थापना, विकास, विस्तार एवं विनाश का इतिहास अब भी संदेह के क्षेत्र से बाहर नहीं है। इतिहासकार रीड[१] ने ठीक ही कहा कि रोम के इतिहास की दो प्रमुख समस्यायें हैं—(१) उसके उत्पत्ति का कारण। (२) उसके विनाश की प्रगति।

सदियों पूर्व जब कि यूनान के स्वर्ण-युग की स्मृति मानव के मस्तिष्क में नहीं आ पाई थी, रोम नगर अपनी जन्मदात्री टाइबर नदी के किनारे विशाल रोम-साम्राज्य के बीज बो चुका था। इसके प्रणेता परम्परानुसार 'रोमुलस' नामक एक साहसी व्यक्ति थे जिनके नाम पर बाद में 'रोम' की संज्ञा दी गई। परन्तु यह एक मनोरंजक कहानी है और ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्णतया वंचित है।

रोम की स्थापना के इतिहास के विषय में विद्वानों में दो मत हैं—(१) इतिहासकार बर्न्स एवं ट्रेवर के अनुसार रोम की स्थापना पूर्व-पाषाण-काल से की जा सकती है जिसके प्रमाण क्रो-मैग्नन प्रकार के आदिम मानव के अवशेष हैं जो उत्तरी-अफ्रीका, स्पेन एवं गाल से प्राप्त हुए हैं। पूर्व-पाषाण काल के बाद लगभग १२०० ई० पू० यह नगर इन्डो-यूरोपियन नामक विशाल जाति द्वारा बसाया गया। १२०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक इसमें दो विभिन्न जातियों ने अपने अधिकार जमाये।

---

१. "The two greatest problems in history of Rome are how to account for the rise and how to deal with fall"

J. S. Reid.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अ) एट्रस्कन—जो संभवतया एशिया माइनर से आये थे। इन्हें एक वर्णमाला का ज्ञान था तथा व्यापारिक एवं राजनैतिक विचारों से परिचित थे। इन्होंने रोम की सभी छोटी-छोटी जातियों को हराकर अपने साम्राज्य की स्थापना की। इनका शासन लगभग ५०० ई० पू० तक रहा। इनके प्रमुख शासकों का नाम टार्किवन प्रथम, सर्वियस टूलियस एवं टार्क्विन दी प्राउड हैं। इतिहासकार वॉन सिविल के विचार से एट्रस्कन लोग रोम के वास्तविक संस्थापक थे।

(ब) दूसरी जाति यूनानियों की थी जो ५०० ई० पू० के बाद आये और अपना प्रभुत्व जमाया।

(२) इतिहासकार रॉल्फ टर्नर के अनुसार रोम के वास्तविक संस्थापक इटैलियन जाति के लोग थे जो लेटियम के पास रहते थे। इन्होंने सर्व-प्रथम ७५३ ई० पू० में लेटियम में एक ग्राम का निर्माण किया तत्पश्चात् ७०० ई० पू० उसी के पास छह अन्य ग्राम बसाये गये। इनके सहयोगी सैब्राइन जाति के लोग थे जिन्होंने चार ग्रामों का शिलान्यास किया। इस प्रकार रोम कुल सात ग्रामों का समूह बन गया। प्राचीन इतिहास में (Septimonotium) कहते हैं।

रोम की स्थापना के प्रमुख कारण—इतिहासकार टर्नर के अनुसार निम्न प्रमुख तथ्य रोम के विकास में सहायक थे—

(१) **भौगोलिक कारण**—रोम की महनीय भौगोलिक स्थिति जो उत्तर में भारत के हिमालय की भाँति आल्पस पर्वत से तथा तीन दिशाओं में एड्रियाटिक सागर से घिरा हुआ था। प्राकृतिक समुद्र-तट एवं विशाल टाइबर नदी में रोम की वही प्रेरणा दी जो गंगा-यमुना में उत्तर भारत की सभ्यता के विकास में दिया था।

(२) **जातीय गुणों का सम्मिश्रण**—रोम प्राचीन काल से ही विभिन्न जातियों का संग्राम-स्थल रहा है जिन्होंने इसके विकास में अभूत-पूर्व योगदान दिया।

रोम के ऐतिहासिक साधन—यद्यपि प्राचीन रोम ने यूनान की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाँति हेरोडोटस एवं थ्यूसीडाइडीज़ जैसे इतिहासकार तथा होमर जैसे महाकवियों के जन्म नहीं दिये तथापि उसका प्राचीन इतिहास बहुत कुछ बोधगम्य है ।[१] इसके प्रमुख स्रोत चार हैं—

(१) **प्रारम्भिक अभिलेख**—इसके अन्तर्गत ट्वेल्व-टेबुल्स, एनाल्स-पाँटिफेम्स, एनाल्स मैक्सीमी प्रमुख हैं ।

(२) **रोमन साहित्य**—इसके अन्तर्गत ३०० ई० पू० से लेकर अनेकों इतिहासकारों एवं लेखकों की कृतियाँ हैं जिनसे प्राचीन रोम का इतिहास मिलता है । इनमें फेबियस पिक्टर इननियस, केटो दी सेन्सर, वलेरियस अन्टियस एवं मार्कस टेरेन्टियम वरो के नाम प्रमुख हैं ।

(३) **यूनानी इतिहासकार**—इस कोटि में पॉलीबियस एवं डिओ-डोरस की कृतियाँ मुख्य हैं ।

(४) **लेवी**—इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ अपनी विशिष्ट शैली के लिये अद्वितीय है । इसमें घटनाओं का वर्णन बड़ी सतर्कता से, तथा साहित्यिक शैली में किया गया है ।

रोम के इतिहास का अध्ययन—रोम का इतिहास मुख्य चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) एट्रस्कन कालीन इतिहास या प्रारम्भिक राजतंत्र
(२) रोमन गणतंत्र का इतिहास
(३) रोमन साम्राज्यवाद का इतिहास
(४) उत्तरकालीन साम्राज्यवाद

(१) **एट्रस्कनकालीन रोम**—इतिहासकार वान सिकिल के अनुसार

---

१. "The Romans are the only people whose entire scroll of life can be unrolled before our eyes while with others the, picture is fragmentary, either we can not see them die."

—Joss Gasset.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह काल रोम के प्राचीन इतिहास का पुनर्जागृति काल था।[१] एट्रस्कन शासकों के छोटे-छोटे ग्रामों को तोड़कर शहरों का निर्माण किया। शहरों की सुरक्षा के लिये चहार दीवारी बनाई। नगर को सुशोभित करने के लिये राज-प्रासादों का निर्माण किया। प्रमुख शहरों में Veii एवं Viscus Tuscus प्रसिद्ध हैं।

इनका राजनीतिक ज्ञान काफी वृद्ध था। वे प्रजातांत्रिक भावनाओं में विश्वास करते थे। राज्य भी छोटी इकाई परिवार था जिसका अधिकार श्रेष्ठ व्यक्ति होता था उसे सभी अधिकार प्राप्त थे। उसकी उपाधियाँ Imporium एवं Auspicium थीं।

शासन का कार्य दो भागों में विभाजित था—

(१) **असेम्बली** या Comitia Curiata—यह आधुनिक लोकसभा की भाँति रोम के सभी पेट्रोसियन एवं प्लेबियन वर्ग से संयुक्त थी। इसके ३० सदस्य थे जिसमें सफलता प्राप्त करने के लिये १६ मत आवश्यक थे। इसे अंतिम निर्णय या वीटो करने का अधिकार था। परन्तु यह कानून नहीं बना सकती थी।

(२) **सीनेट**—यह वृद्ध व्यक्तियों की सभा थी। जिसके सदस्य राजा होते थे। राजा की मृत्यु के बाद शासन सत्ता इसी के हाथों में जाती थी।

एट्रस्कन आर्थिक व्यवस्था—यह निश्चित सत्य है कि रोम सभ्यता का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ था। उसकी परम्परा सदियों पूर्व से आई जिसके प्रमुख संचालक एट्रस्कन लोग थे। इन्होंने टाइवर नदी के कणों को इकट्ठा करके जहाजों का निर्माण करके विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करके रोम की महानता का शिलान्यास किया। रोम को सात शहरों का नगर एवं दिव्य नगर Eternal city की संज्ञा

---

[१] "It was an era of change and readjustment."

—Van Sickle.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। ये शहर आज भी पैलेटीन, कैपिटोलीन, अवेन्टीन एवं किवीरीनल की पहाड़ियों पर स्थित हैं।

एट्रस्कन निवासियों का कृषि प्रमुख व्यवसाय था उसकी सहायता में पशु-पालन क्रिया थी। यद्यपि मुद्रा प्रचलन विशेष नहीं था परन्तु आपसी लेन-देन की क्रिया पशुओं के द्वारा होती थी जिसे (Pecunia) कहते थे।

धार्मिक क्षेत्र में एट्रस्कन लोग साधारण मत के समर्थक, ईश्वर में विश्वास करने वाले तथा अनेकों मन्त्रों एवं उच्चारणों के अनुयायी थे। साथ ही साथ अनेकों अदृश्य शक्तियों की पूजा भी करते थे जिन्हें (Numina) कहा जाता था जैसे—Lares या कपड़ों का संरक्षक, Pentens जो दरवाजे का संरक्षक और Vesta पारिवारिक देवता था तत्कालीन प्रमुख देवताओं में जुपीटर या सर्वोच्च देव, जूनो या प्रधान संरक्षिका तथा मिनर्वा या शिल्पी देव प्रसिद्ध हैं। मार्स को युद्ध का देवता समझा जाता था। वास्तव में इस धर्म में बहुदेववाद प्रथा प्रचलित थी। इसके अन्तर्गत अनुशासन एवं नैतिकता समानार्थी थे।

एट्रस्कन लोग देशभक्त, कठोर परिश्रमी, एवं कल्पना जगत में विश्वासी थे। उनका दर्शन एवं व्यावहारिक ज्ञान देश के गौरव एवं राष्ट्र-भक्ति का प्रतीक है। वे लोग विश्वजनीन विचारों के समर्थक थे जिसके कारण ही वे अनेकों जातियों को संगठित करने में सफल हुए।[१] एट्रस्कन समाज को वर्गों में विभाजित था।

(१) **पेट्रीशियन**—या उच्च वर्ग जिन्हें सभी राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। इनमें प्रमुख के नाम Fabii, Clandii and Cardii हैं।

(२) **प्लेबियन**—या निम्न वर्ग जिन्हें कम अधिकार थे। दोनों वर्गों

१. "The etruscans became the most successful welders togeather of races and peoples that the world ever knew before the rise of modern America." —Earnest Barker.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सम्मिश्रण बहुत कम था। परिवार का प्रमुख अधिकारी पिता या Patria Portestas होता था जिसे सभी अधिकार प्राप्त थे।[१] अनेकों परिवारों का समूह Clan या गोत्र कहलाता था जिसे Gentes भी कहते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने नामकरण इसी के आचार पर करते थे जैसे Geiús के नाम पर Geius, julius caesar इत्यादि।

एट्रस्कन कला—इस कला की विशेषतायें यूनानो आदर्शों का नवीन आदर्शों के साथ सम्मिश्रण था। स्थापत्य कला प्रमुख थी। मूर्तियाँ पत्थरों एवं कांसे दोनों की थीं। मंदिर भव्य एवं विशाल थे जिन पर अनेकों चित्रकारी होती थी। हस्त-कला में भाण्ड-निर्माण-कला भी प्रमुख थी। इसकी प्रसिद्ध शैली 'विलैनेवान शैली' कहलाती थी। स्थापत्य की प्रतिभा तत्कालीन विशाल प्रासादों, कब्रस्तानों तथा नहरों में प्रदर्शित है। उदाहरण के लिए जुपीटर के मंदिर, सर्वियस टुलिय के राज-प्रासाद प्रमुख हैं यद्यपि एट्रस्कन कला अपनी ऊपरी चाक-चिक्य के लिए प्रसिद्ध है फिर भी इसमें अपनी एकता एवं व्यक्तितत्व है तथा जो यूनानी आदर्शों का सम्मिश्रण प्रस्तुत करती है।[२]

आज एट्रस्कन सभ्यता इतिहास से ओझल हो चुकी है फिर भी

---

१. "The custom of the elders was taken as a guide to life and until the end of republic in the first century B. C. it had almost became the force of law and made society solid and conservative." —J. E. Swami.

२ "Although their artistic efforts were mainly imitative they are yet marked by an unmistakable indinduvality. It is as though the Greek sweetne ss had been boured in alien atmosphere of Etrusia." —J. C. Stobart.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके अवशेष अनेकों रूपों में विद्यमान है जैसे रोमन चिन्हों में हाथी दाँत की वस्तुओं में, कुर्सियों एवं कुल्हाड़ियों में तथा सुरक्षा दीवालों में। इन सभी आदर्शों में निश्चय ही रोम के विशाल साम्राज्य की भूमिका तैयार की थी जिस पर भव्य रोमन प्रासाद का निर्माण हुआ। इन सब कारणों से ही एट्रस्कन कालीन लोग रोम की सभ्यता के वास्तविक संस्थापक माने जाते हैं।[१] कुछ लोग तो यहाँ तक कह गये हैं कि अगर एट्रस्कन लोग न होते तो रोम का इतिहास एक नये सिरे से आरंभ हुआ होता।[२]

गणतन्त्र—उपर्युक्त राजतन्त्र एट्रस्कन राजाओं द्वारा संचालित था। ५०९ ई० पू० में रोम निवासियों ने इन्हें मार कर भगा दिया और नगर में गणतन्त्र की स्थापना की। इस नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत राजा के स्थान पर दो कान्सलों की नियुक्ति हुई। ये जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। इनकी कार्यावधि केवल एक वर्ष की होती थी। दोनों के अधिकार समान होते थे। इन विशेष धाराओं का अभिप्राय यही था कि कहीं कान्सल निरंकुश न हो जायँ। वे राज्य के सर्वोच्च पदाधिकारी, सीनेट और असेम्बली के सभापति तथा देश के सेनापति होते थे।

राजतन्त्र के अन्तर्गत सीनेट एकमात्र परामर्शदायिनी समिति थी। परन्तु गणतन्त्र में यह सर्वसत्ताधारिणी बन गयी। इसके सदस्यों की संख्या ३०० थी। ये सदस्य राज्य के भूतपूर्व मजिस्ट्रेट होते थे। सन्धि-विग्रह, राजदूत-नियुक्ति, अर्थ एवं प्रान्तीय शासन-सम्बन्धी समस्त महत्त्व-पूर्ण विषय इसके अधीन होते थे। इसकी सहमति के बिना राज्य में कोई कानून न बन सकता था।

---

१ "The beginning of splendour of Rome was done by the early Etruscans." —Montesque.

२ "Had it not been for the Etruscans domination, her constitution might have taken a different form." —E. Burgh.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असेम्बली (कमिशिआ सेंचुरिआटा) में अभिजात वर्ग और सामान्य वर्ग, दोनों के प्रतिनिधि रहते थे। यही राज्य के सर्वोच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करती और मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध अपील सुनती थी।

राज्य में निम्नलिखित कुछ प्रमुख अधिकारी भी थे जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में शासन-संचालन में सहायता देते थे—

(१) **प्रायटर**—इनकी संख्या दो थी। एक प्रायटर रोम-निवासियों के दीवानी विषयों पर विचार करता था और दूसरा विदेशियों के। आवश्यकता पड़ने पर ये सीनेट का अधिवेशन बुला सकते थे और सैनिक अधिकार भी ग्रहण कर सकते थे।

(२) **सेन्सर**—इनकी संख्या दो थी। इनकी कार्यावधि डेढ़ वर्ष की होती थी। सेन्सर वही व्यक्ति निर्वाचित किया जा सकता था जो पहले कान्सल रहा हो। इस पदाधिकारी के प्रमुख कार्य व्यक्ति का चरित्र-निरीक्षण, आय-निर्धारण और सीनेट के निरीक्षण में राजकीय अर्थ की व्यवस्था थे।

(३) **क्वेस्टर**—इनका प्रमुख कार्य वेतन-वितरण था।

(४) **एडिलीज़**—ये सार्वजनिक निर्माण के अधिकारी थे।

(५) **डिक्टेटर**—संकट-काल में दो कान्सल के स्थान पर एक डिक्टेटर की नियुक्ति की जाती थी। छः मास तक इसके अधिकार निरंकुश रहते थे।

(६) **ट्राइब्यून**—प्रारम्भ में इनकी संख्या दो थी, परन्तु कालान्तर में वह दस कर दी गयी थी। इनकी नियुक्ति सामान्य वर्ग के हितों की रक्षा के लिये होती थी। इनके अधिकार अति महत्वपूर्ण थे। आवश्यकता पड़ने पर ये कान्सल को कारा में डाल सकते थे और सीनेट का अधिवेशन स्थगित कर सकते थे।

परन्तु कभी-कभी इन पदाधिकारियों की अतिसंख्या से अधिकार-क्षेत्र अनिश्चित हो जाता था। एक ही स्थान पर अनेक अधिकारियों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तित्व बहुधा शासन में शिथिलता उत्पन्न कर देता था। परन्तु इन दोषों के होते हुए भी गणतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली पर्याप्तरूप से सन्तोषजनक थी। उसका आधार 'निरोध और सन्तुलन' (Check and Balance) था। एक के स्थान पर दो कान्सलों की नियुक्ति, कान्सल और सीनेट के ऊपर ट्राइब्यून की नियुक्ति, अनेक लोक-समितियों की स्थापना तथा पदाधिकारियों की प्रायः अल्पकालीन कार्यावधि शासन-पद्धति को अतिवाद के दोषों से मुक्त रखती थी।

प्रान्तीय शासन—इटली के बाहर के प्रान्त गवर्ननरों के अधीन थे। छोटे प्रान्तों में ये गवर्नर प्रो-प्रेयटर और बड़े प्रान्तों में प्रो-कान्सल होते थे। यद्यपि ये सीनेट-द्वारा निर्धारित कानूनों के अनुसार शासन करते थे तथापि व्यावहारिक रूप में इनके अधिकार असीम थे। अपने क्षेत्र में ये लघु राजा के रूप में थे। जब तक ये अपने क्षेत्र में शान्ति रखते और केन्द्रीय सरकार को कर के रूप में धन दिये जाते तब तक केन्द्रीय सरकार इनके आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करती थी। इनका पद अवैतनिक और एकवर्षीय होता था। अतः इस लघुकाल में ही ये अनुचित रूपों में अधिक से अधिक धनोपार्जन करने की चेष्टा करते थे। परिणामतः प्रजा का शोषण होता था। करों का भार प्रायः प्रान्त की निर्धन जनता पर ही पड़ता था। कभी-कभी कर एकत्र करने का कार्य Publicani नामक ठेकेदारों को दे दिया जाता था। इन्हें सरकार को एक निश्चित रकम देनी पड़ती थी। परन्तु ये अपनी कठोरता से उस रकम से कहीं अधिक धन प्रजा से वसूल करते थे परिणामतः प्रान्तीय शासन के अन्तर्गत जनता की अवस्था बहुधा शोचनीय हो जाती थी।

कर वसूल करने के अतिरिक्त प्रान्तीय गवर्नर अपने क्षेत्र में दीवानी और फौज़दारी मुक़दमों के सर्वोच्च न्यायालय थे। उनके पास अपनी सेनायें थीं जिनके द्वारा वे प्रान्त में शान्ति और सुरक्षा स्थापित करते थे। परन्तु गवर्नर स्वेच्छानुसार अन्तःप्रान्तीय युद्ध न कर सकते थे। साम्राज्य की सम्पूर्ण वैदेशिक नीति का उत्तरदायित्व केन्द्र पर था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम-विस्तार—गणतन्त्र की स्थापना के पश्चात् ही रोम को अनेकानेक शत्रुओं का सामना करना पड़ा। उसके ये शत्रु थे एक्वीअन, वोल्सिअन, और एट्रस्कन जातियाँ। प्रारम्भ में प्रथम दो जातियाँ पराजित हुईं। परन्तु तृतीय जाति एट्रस्कन का विरोध अति प्रबल रहा। अन्त में बेई के नगर पर अधिकार करके रोम ने एट्रस्कन जाति को पूर्णरूप से पराजित कर दिया। इस प्रकार ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक टाइबर नदी के दोनों तटों पर स्थित समस्त प्रदेशों पर रोम का आधिपत्य स्थापित हो गया। परन्तु ३९० ई० पू० के लगभग गाल निवासियों ने रोम के ऊपर आक्रमण किया और उसे जला दिया। रोम की इस विपत्ति से लाभ उठाकर एक्वीअन, वोल्सिअन और एट्रस्कन जातियों ने पुनः रोम-राज्य पर आक्रमण किया। परन्तु रोम ने एक-एक करके उन सबको पराजित कर दिया। इसके पश्चात् प्रभुता-स्थापन के निमित्त रोम को लैटिन जातियों के साथ युद्ध करना पड़ा। इस लैटिन युद्ध में भी रोम की विजय हुई। परिणामतः उसका आधिपत्य समस्त लैटिन पर स्थापित हो गया।

तत्पश्चात् रोम को मध्य और दक्षिणी इटली पर अधिकार-स्थापना की महत्वाकांक्षा हुई। वहाँ सैम्नाइट जाति थी। इसके साथ रोम-राज्य को तीन युद्ध करने पड़े। वह विजयी हुआ और समस्त मध्य तथा दक्षिणी इटली के अधिकांश पर उसका अधिकार हो गया।

अब यूनानी उपनिवेश टैरण्टम की बारी आयी। उसने एपिरस की सहायता से रोम-राज्य से युद्ध किया, परन्तु वह पराजित हुआ। इस विजय के पश्चात् रोम का आधिपत्य दक्षिणी इटली में भी अबाध हो गया। कालान्तर में उसने गाल-निवासियों को पराजित कर सम्पूर्ण उत्तरी इटली पर उसकी साम्राज्य-स्थापना हो गयी।

कार्थेज के साथ युद्ध—८२५ ई० पू० फोनेशिया-निवासियों ने कार्थेज उपनिवेश की स्थापना की थी। अपनी सामुद्रिक एवं व्यापारिक शक्ति के कारण शीघ्र ही यह पश्चिमोय भूमाध्यसागर में अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य बन गया। उत्तरी अफ्रीका, कार्सिका और सार्डीनिया के ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका अधिकार हो गया। उधर रोम भी भूमध्य सागर पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के हेतु चिन्तित था। अतः दोनों शक्तियों में युद्ध अवश्यम्भावी था। एकमात्र किसी अवसर की प्रतीक्षा थी और यह अवसर शीघ्र ही उपस्थित हो गया। कार्थेज का पश्चिमीय सिसिली पर अधिकार था। वहाँ से वे यूनानी नगरों सिराक्यूस और मेसाना पर भी अपना अधिकार करना चाहते थे। यह स्थिति रोम-साम्राज्य की संरक्षा के लिये घातक थी। अतः उसने कार्थेज के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रोम और कार्थेज का युद्ध इतिहास में प्यूनिक युद्ध के नाम से प्रख्यात है। रोम-निवासी कार्थेज-निवासियों को पोयनी (फोनेशियन) कहते थे। इसी से इस युद्ध को 'प्यूनिक युद्ध' की संज्ञा मिली। प्रथम प्यूनिक युद्ध २३ वर्ष तक चला। अन्त में रोम-साम्राज्य की विजय हुई, सिसिली पर उसका अधिकार हो गया और कार्थेज ने उसे ३२०० टैलेण्ट धन दण्ड-कर के रूप में दिया। इस युद्ध से कार्थेज की सामुद्रिक शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। कार्थेज की निर्बलता से लाभ उठाकर रोम ने सार्डीनिया और कार्सिका का भी अपहरण कर लिया। विजय का उन्माद न्याय-अन्याय की अपेक्षा नहीं करता।

कार्थेज अपनी इस पराजय को न भूल सका। वह प्रतिशोध की भावना से जल रहा था। दोनों राज्यों के इस स्थायी वैमनस्य में ही द्वितीय प्यूनिक युद्ध के बीज विद्यमान थे। कार्थेज ने अपनी क्षति-पूर्ति के हेतु स्पेन पर अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहा। भाग्य से उसे युग के सर्वकुशल सेनापति हैनीबाल का नेतृत्व भी प्राप्त था। हैनीबाल ने स्पेन के तट पर स्थित सैगण्टम नामक नगर पर आक्रमण किया। यह नगर रोम का मित्र था। अतः रोम ने इसकी संरक्षा के हेतु तत्काल कार्थेज युद्ध-घोषणा कर दी। हैनीबाल ने इस घोषणा का स्वागत किया। उसका आत्माभिमान दीर्घकाल से स्वदेश की पराजय के प्रतिशोध की माँग कर रहा था। अब उसका अवसर भी आ गया।

द्वितीय प्यूनिक युद्ध एक महान् पुरुष और एक महान् राष्ट्र के बीच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भयंकर संघर्ष था।[१] एक ओर हैनीबाल था जो कार्थेज की आहत प्रतिष्ठा के पुनरुज्जीवन के हेतु अपने समस्त साधनों को संगठित कर अति कुशलता के साथ युद्ध-संचालन कर रहा था। कार्थेज ने इसी युग-सेनापति के ऊपर युद्ध-संचालन का सम्पूर्ण भार छोड़ दिया था। इतिहास साक्षी है कि हैनीबाल ने अपने प्राणों का पण लगाकर इस भार को वहन किया। वह विजयी न हो सका, परन्तु पराजित होने पर भी इतिहास में सम्मानित अवश्य हुआ। दूसरी ओर रोम राष्ट्र का समस्त धन-जन संलग्न था। उसके लिए अस्तित्व-रक्षा का प्रश्न था। इस प्यूनिक युद्ध के परिणाम के ऊपर ही उसके जीवन-मरण का प्रश्न निर्भर था।

द्वितीय प्यूनिक युद्ध ई० पू० २१८ से ई० पू० २०२ तक चलता रहा। इस दीर्घकालीन युद्ध में अन्तोगत्वा रोम की विजय हुई। हैनीबाल की विस्मयकारिणी सैनिक कुशलता एवं रणनीतिज्ञता भी कार्थेज की रक्षा न कर सकी। कार्थेज की पराजय के अनेक कारण थे : (१) जैसा कि ऊपर कहा गया है, रोम-राष्ट्र के लिये यह युद्ध जीवन-मरण का प्रश्न था। अतः उन्होंने इसमें अद्‌भुत अध्यवसाय, धैर्य और आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया। अनेकानेक संकटों और विनाशों के पश्चात् भी वे हताश न हुए और उस समय तक अन्यमनस्क होकर युद्ध करते रहे जब तक उन्हें विजयश्री उपलब्ध न हुई। (२) यद्यपि हैनीबाल अद्वितीय सैन्य-संचालक था, तथापि गृह-सरकार से समुचित सहायता न मिलने के कारण उसकी योजनायें विफल हो गयीं। (३) हैनीबाल को बलवती आशा थी कि इस दीर्घकालीन युद्ध में रोम के मित्र उससे पृथक् हो जायेंगे और उस परिस्थिति में एकाकी रोम को पराजित करना उसके लिए दुष्कर न होगा। परन्तु हैनीबाल की यह आशा पूर्ण न हुई। रोम के मित्रों ने विश्वासघात न किया। (४) रोम की सेना में उसके देश-भक्त नागरिक

---

[१]- The second Punic war was a gigantic contest between a great man and a great nation—between Hannibal and the Romans.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे जो अपने राष्ट्र की रक्षा में प्राण-विसर्जन गौरवप्रद समझते थे। इसके विरुद्ध कार्थेज-सेना में आयुधजीवी विभिन्न देशों के वृत्तिकार सैनिक थे। ये एकमात्र अर्थलाभ के हेतु युद्ध करते थे। इनके लिए कार्थेज की विजय अथवा पराजय का कोई विशेष महत्व न था। इस विजय के परिणाम-स्वरूप समस्त स्पेन पर रोम का अधिकार हो गया। कार्थेज की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा खर्व हो गयी। उसकी सामुद्रिक एवं व्यापारिक प्रगति सदैव के लिये अवरुद्ध हो गयी। रोम समस्त पश्चिमी भूमध्यसागर का अधिपति बन गया।

हैनीबाल का व्यक्तित्व—हैनीबाल विश्व-इतिहास का एक महान् सेनापति और रणनीतिज्ञ है। सैनिक कुशलता उसकी पैतृक सम्पत्ति थी। उसका पिता हेमिलकार बार्कस भी कार्थेज का सेनापति रहा था। स्वयं हैनीबाल ने १८ वर्ष की अल्पावस्था में सेनापति का उच्चपद प्राप्त किया था। यदि भाग्य ने उसका साथ दिया होता तो आज हम रोम-साम्राज्य के इतिहास के स्थान पर कार्थेज-साम्राज्य का इतिहास पढ़ते होते। उसकी पराजय का कारण क्रूर परिस्थितियों का ऐसा सबल कलाप था जिसके ऊपर विश्व का अजेय रणनीतिज्ञ भी कदाचित् विजय प्राप्त न कर सकता। रोम के विरुद्ध वह विजय प्राप्त न कर सका, केवल इसीलिए कि वह असम्भव को सम्भव न कर सका। संसार में असम्भव का अभाव कवि-हृदय की कोरी कल्पना है, महत्त्वाकांक्षी की अव्याहत दिवस-स्वाप्निलता है। अस्तु, इस युद्ध में हैनीबाल ने जिस निस्सीम शौर्य का परिचय दिया वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। अनेकानेक दुःसह कष्टों की उपेक्षा करते हुए उसने आल्प्स पर्वत को पार कर विशाल रोम-साम्राज्य के सत्ता-केन्द्र रोम नगर पर सहसा आघात की जो योजना बनायी थी वह उसके अपरिमित साहस की संकेतिका है। एक कुशल रणनीतिज्ञ के नाते भली-भाँति जानता था कि कार्थेज की शिथिलीकृत सामुद्रिक शक्ति से वह खुले समुद्र पर रोम का सामना नहीं कर सकता। अतः उसने रोम पर स्थलीय भाग से आक्रमण करने का निश्चय किया था। स्वयं इटली में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रविष्ट होकर रोमन सेनाओं को कैनी आदि अनेक युद्धों में पराजित करना एक लौह सेनानायक का ही कार्य हो सकता था। उसके आक्रमण की सत्वरता ने रोम-निवासियों को अवाक् कर दिया था। यद्यपि उसकी सेना में अनेक देशों के आयुधजीवी भाड़े के सैनिक ही थे तथापि हैनीबाल के कुशल नेतृत्व में उन्होंने कभी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का किंचिन्मात्र भी प्रदर्शन न किया। परन्तु जामा का युद्ध उसके लिए वाटरलू का युद्ध सिद्ध हुआ। इसमें वह पराजित हुआ। तत्पश्चात् भाग्य ने करवट ली। विजयश्री किसी अवमानिता दयिता की भाँति उससे अपना दामन छुड़ाकर सदैव के लिये चली गयी। डूप्ले के देशवासियों की भाँति कार्थेज-निवासियों ने भी अपने नेता के व्यक्तित्व का अङ्कन परिणाम के आधार पर किया। उसे वापस बुला लिया गया और उसे अपनी अमूल्य देश-सेवाओं के लिये देश-निर्वास का पुरस्कार मिला। बहुधा महती विभूतियों का सम्मान उनकी मृत्यु के पश्चात् होता है। अपने व्यक्तित्व के विविध उज्ज्वलाँशों के कारण हैनीबाल पराजय की धूमिल छाया में भी चमकता रहेगा।

विजयी की विश्रान्ति और पराजित की श्रान्ति ने कुछ समय के लिये कार्थेज और रोम में शान्ति रखी। रोम अधिगत प्रदेशों के संगठन में लगा था कार्थेज अपने ध्वंसों के पुनर्निर्माण में एक-एक शिला-खण्ड को जोड़कर कार्थेज ने पुनः अपनी समृद्धि का निर्माण करना प्रारम्भ किया। अचिरात् वह अपने विलुप्त गौरव को शनैः-शनैः अधिगत करने लगा। इस परिस्थिति को देख कर रोम सशंक हो उठा। वह कार्थेज की चिरहीनता में ही अपने गौरव की सुरक्षा देखता था। अतः उसने शत्रु के अधिक सबल होने के पूर्व ही उसे उन्मूलित करने का निश्चय किया। रोम ने कार्थेज-निवासियों से माँग की कि वे अपने नगर का परित्याग कर समुद्र-तट से कम से कम १० मील की दूरी पर बसे। मांग असम्भव थी। अतः युद्ध निश्चित था। कार्थेज-राष्ट्र ने आत्महत्या की अपेक्षा युद्ध-विनाश को अधिक गौरवपूर्ण समझा। यह तृतीय प्यूनिक युद्ध था। रोम-इतिहास के मुखपृष्ठ पर यह अमिट कलंक-कालिमा है। इस युद्ध का कोई भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण न था। यदि था भी तो वह था एकमात्र रोम की दम्भपूर्ण सबलता और कार्थेज की दयनीय निर्बलता। कार्थेज-निवासियों ने इस बार सब कुछ दाँव पर लगा दिया। इस युद्ध के प्रचण्ड विनाश के छींटे आज भी इतिहास पृष्ठों पर सूखे नहीं। इतिहासकार बर्न्स ने तृतीय युद्ध को विश्व इतिहास का सबसे घातक युद्ध बताया है।[१] आज भी उसके वर्णन से कार्थेज की निरीह जनता का आर्तनाद और रोम की विजयिनी सेना का पाशविक विजयोल्लास प्रतिध्वनित होता है। ई० पू० १४९ से लेकर ई० पू० १४६ तक के तीन वर्ष कार्थेज के लिये विवश विनाश का काल था और रोम के लिये बर्बरता के नग्न-नृत्य का। इन तीन वर्षों के भयंकर युद्ध के पश्चात् जब यवनिका उठती है तो हम मानचित्र पर स्वतन्त्र राज्य के रूप में कार्थेज का नाम भी नहीं पाते। वह रोम-साम्राज्य में समविष्ट होकर उसका एक प्रान्त बन जाता है।

यूनानी राज्य—उधर सीरिया के साथ भी रोम का वैमनस्य चल रहा था। सीरिया मेसीडोन का मित्र था। वह यूनानी राज्यों के साथ सन्धि कर यूनान से रोम को निकलना चाहता था। अतः १९१ ई० पू० रोम ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। १९० ई० पू० सीरिया-नरेश अन्तियोक तृतीय मैग्नेशिया-युद्ध में रोम द्वारा पराजित किया गया। इस पराजय के परिणाम स्वरूप एशिया माइनर का राज्य उसके हाथ से निकल गया। इसी प्रकार १६८ ई० पू० मिस्र भी रोम-साम्राज्य के अधीन हो गया। अब यूनानी नगर-राज्यों की बारी आयी।

प्यूनिक युद्धों के समय यूनानी राज्य रोम के विरुद्ध कार्यवाही कर थे। मैसीडोन के राजा फिलिप पंचम ने रोम के विरुद्ध हैनीबाल के साथ मैत्री की सन्धि की थी और उसे सैनिक सहायता भी दी थी। उसके उत्तराधिकारी पर्सिअस ने भी रोम के विरुद्ध अपना सैनिक संगठन जारी

१. "Seldom has the world witnessed a more desperate and barbarous struggle."

—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखा। मैसीडोन की शक्ति का दमन करने के लिये रोम को चार युद्ध करने पड़े जिन्हें इतिहास में मैसीडोनिश्रस युद्धों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अन्ततोगत्वा विजय रोम की हुई और मैसीडोनिया रोम-साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया। इसके पश्चात् यूनानियों के आन्तरिक झगड़ों में भाग लेकर रोम ने कौरिन्थ पर भी आक्रमण किया और उसे भी हस्तगत कर लिया। १४६ ई० पू० तक यूनान की स्वतन्त्रता लिया हो गया।

१२६ ई० पू० तक रोम साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया था। उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण इटली, मिस्र, यूनान मेसीडोनिया, स्पेन, कार्सिका, सिसली, सार्डीनिया और 'एशिया' के देश सम्मिलित थे। पारसीक साम्राज्य के अतिरिक्त प्राचीन संसार ने कभी भी इतना बड़ा साम्राज्य न देखा था। इतिहासकारों ने इसे प्राचीन विश्व का सबसे विस्तृत साम्राज्य बताते हुये कहा है कि इससे सम्पूर्ण प्राच्य विचार एवं सभ्यता प्रभावित हुये थे।[१]

साम्राज्य-विस्तार के परिणाम—रोम के साम्राज्य-विस्तार ने उसके जीवन के सफल क्षेत्रों—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक—में प्रचुर प्रभाव डाला।

रोग में अपनी विजयों का अभियान में प्रभूतमात्रा में धन इकत्रित कर लिया था जिससे उसके वैभव का शिलान्यास हुआ। इसके प्रभाव नैतिक एवं आर्थिक जीवन में दृश्य हैं।[२] कुछ इतिहासकारों में अंतिम

---

[१] "It was one of the greatest world empirs which changed the oriental ideas and culture." —Burns.

[२] "The influx of wealth and spread of Hellenic culture during the period of the great wars had combined to affect a profound revolution in the moral and economic life of Roman community." —Burgh.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन ई० पू० शताब्दियों को युद्धपूर्ण बताया तथा उनकी अपेक्षा प्रथम दो शताब्दी ई० को रोम के शांति एवं समृद्धि का सूचक कहा है।[१]

(१) **सीनेट की सत्ता की स्थापना**—प्रारम्भ में सीनेट एकमात्र परामर्शदायिनी समिति थी। विशेष कार्य असेम्बली के द्वारा ही होते थे। इस समिति के सदस्य सामान्य नागरिक होते थे। इनकी संख्या अत्यधिक थी और ये दूर-दूर प्रदेशों में रहते थे। इन विशेषताओं के कारण युद्ध-काल में न तो असेम्बली का अधिवेशन शीघ्र बुलाया जा सकता था और न वह कुशलतापूर्वक युद्ध-संचालन ही कर सकती थी। इसके विरुद्ध सीनेट के सदस्यों की संख्या कम थी। भूतपूर्व मजिस्ट्रेट होने के कारण उसके सदस्य शासन-सम्बन्धी कार्यों में अनुभवी थे। अतः वे गृह-नीति और वैदेशिक नीति के गम्भीर प्रश्नों को अधिक सुगमता और निपुणता से समझ सकते थे। इसी सत्य को अनुभव करते हुए रोम निवासियों ने युद्ध-काल में सीनेट को ही देश की सर्वोच्च शासन-समिति मान लिया। अब शासन के सभी महत्त्वपूर्ण विषय सीनेट के अधिकार-क्षेत्र में आ गये।

(२) **नवीन वर्ग का उदय**—युद्ध काल के पूर्व रोम दो वर्गों में विभक्त था—प्लेबिअन और पैट्रीशिअन। इन वर्गों का आधार जन्म था। निम्न वंश में उत्पन्न हुए मनुष्य प्लेबिअन और उच्च वंश में उत्पन्न हुए मनुष्य पैट्रीशिअन कहलाते थे। दोनों की सामाजिक प्रतिष्ठा वंशानुगत थी। युद्ध-काल में निम्न वर्ग के भी बहुसंख्यक मनुष्यों ने राजनीतिक कार्यों में महत्वपूर्ण भाग लिया। इनमें से अनेक उच्च पदों पर भी प्रतिष्ठित हुए। इस परिवर्त्तित परिस्थिति में राजनीतिक अधिकार और

---

[१] "If the last three centuries B. C. were filled with wars and enslarements the first two centuries A. D. were an era of peace not without distress but on the whole more orderly than the Mediterrarean."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामाजिक पद एक मात्र अभिजात वर्ग के ही विशेषाधिकार न रहे। वे निम्नवंशीय मनुष्यों को भी मिलने लगे। इस प्रकार अब समाज में उच्च वंश और निम्न वंश के वर्गों के स्थान पर अधिकारी और सामान्य वर्गों का उदय हुआ। रोम के इतिहास में ये वर्ग क्रमश: Optimates और Populeres के नाम से प्रख्यात हैं।

राजनीतिक भ्रष्टाचार—अब राज्य के समस्त पद समस्त नागरिकों के लिए खुल गये। अधिकांश पदों पर नियुक्ति निर्वाचन द्वारा होती थी। अतः निर्वाचन में सफलता प्राप्त करने के हेतु महत्वाकांक्षी मनुष्य उत्कोचादि भ्रष्ट विधियों का अनुसरण करने लगे। ऐसे स्थिति में पद-प्राप्ति योग्यता के ऊपर नहीं वरन् अधिकाधिक आर्थिक व्यय के ऊपर निर्भर होने लगी। रोम का राजनीतिक जीवन उत्तरोत्तर भ्रष्ट होने लगा। साम्राज्य के साथ रोम में समृद्धि आयी और समृद्धि के साथ विलासिता। परिणामतः राजनीतिक जीवन के समान रोम का सामाजिक जीवन भी पतनोन्मुख हो गया। रोम-निवासी की सहज सरलता और कर्मठता विलुप्त हो गयी। वह अधिकाधिक विलासी और सुखाकांक्षा होने लगा। मनोविनोद के लिए हिंसात्मक क्रीड़ाओं, नर-पशु अश्लील नृत्यों एवं अनैतिक उत्सवों की सृष्टि हुई।

साम्राज्य-विस्तार परिणाम रोम के आर्थिक जीवन में भी परिलक्षित होते हैं। अपनी विजयों में जहाँ रोम को धन-धान्य मिला वहाँ विशाल दास-समूह भी। विदेशी दासों के आ जाने से रोम में श्रम सस्ता हो गया और स्वतन्त्र श्रमजीवी दासों से प्रतियोगिता न कर सकने के कारण बहु-संख्या में आजीविकाहीन होने लगे।

युद्ध-काल में बहुसंख्यक कृषक युद्ध-कर्मों में संलग्न होने के कारण कृषि-कर्म के प्रति उदासीन हो गये। बहुसंख्यकों की उसमें अरुचि हो गयी। अतः युद्ध-समाप्ति पर ये अपने खेतों को बेच कर नगरों में जा बसे और वहाँ के उद्योग-धन्धों के द्वारा जीविकोपार्जन करने लगे। पुनः विदेशों के आयात अन्न के कारण रोम में उसका मूल्य गिर गया। अतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम के छोटे-छोटे कृषकों के लिये कृषिकर्म अधिक लाभकर न रहा। परिणामतः उन्हें भी अपने खेत बेचने पड़े और नगरों में जाकर जीविका के अन्य साधनों की खोज करनी पड़ी। इन समस्त परिवर्तनों का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि उत्तरोत्तर ग्रामों की जनसंख्या कम होने लगी और नगरों की बढ़ने लगी। उधर लघु परिणाम पर कृषि विघटित हो चली। उसके स्थान पर धनी भूमिपतियों ने निर्धन कृषकों के लघु भूमि-खण्डों को खरीद कर विशाल स्तर पर कृषिकर्म को जन्म दिया।

साम्राज्य-विस्तार ने रोम-संस्कृति पर भी प्रभाव डाला। विजित देशों की विभिन्न संस्कृतियों ने रोम के आचार-विचार, साहित्य, कला, धर्म आदि को प्रभावित किया। परन्तु सबसे प्रबल प्रभाव-धारा यूनानी संसार से आयी। 'रोम के भौतिक बल ने यूनान को पराभूत किया था परन्तु यूनान के मस्तिष्क ने रोम को अपने अधीन कर लिया।' राजनीतिक दृष्टि से विजेता रोम सांस्कृतिक दृष्टि से यूनान का दास बन गया। यूनान की उन्नत संस्कृति के विविधांग—आचार-विचार, भाषा, साहित्य, कला आदि—रोम के लिये आदर्श बन गये। रोम के निवासियों ने बहुसंख्या में अपने बालकों को यूनानी भाषा एवं साहित्य का अध्यापन करना प्रारम्भ किया। बहुसंख्यक रोम-कलाकारों ने यूनानी कला-पद्धतियों से प्रेरणा ग्रहण की। यूनान की स्वतन्त्र भावनाओं ने रोम के नवयुवकों के मस्तिष्क पर नवीन संस्कारों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। परिणामतः रोम में भी विभिन्न वर्गों के अधिकार-प्राप्ति के हेतु विभिन्न आन्दोलन द्रुतगति से चल चड़े। परन्तु इस स्वतन्त्र प्रवृत्ति ने रोम की अन्य-आज्ञाकारिता और कठोर अनुशासनीलता को नष्ट कर दिया। यद्यति कैटो आदि कुछ व्यक्तियों ने यूनानी संस्कृति के उद्दाम प्रवाह में भग्न होते हुए रोम के पुरातन प्राचीरों की संरचा के हेतु आन्दोलन किया परन्तु वह निष्फल रहा। उसके बावजूद भी रोम परिर्वात्तत होता रहा।

वर्ग-संघर्ष—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रोम-समाज में प्रारम्भ में दो वर्ग थे—पेट्रीशिअन और प्लेबिअन। प्रथम अभिजात वर्ग

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को और द्वितीय सामान्य वर्ग की संज्ञा थी । प्रारम्भिक अवस्था में पेट्रीशिअन विशेषाधिकारी वर्ग और प्लेबिअन नितान्त अधिकारहीन वर्ग था । राज्य के कान्सल, मजिस्ट्रेट, पुजारी आदि के समस्त उच्च पदों पर पेट्रोशिअन ही नियुक्त होते थे । वही कानून बनाते थे । प्लेबिअन के विशेषाधिकार भारी कर-दान और सैनिक सेवी थे । अपनी सैनिक सेवाओं के लिये उन्हें वेतन भी न मिलता था । देश-सेवा निर्धन का अवैतनिक अधिकार थी । प्लेबिअन सैनिकों ने युद्धों में अपना रक्त बहाया था । विजयों का श्रेय अधिकांशतः उन्हीं को था । परन्तु विजित भूमि के वितरण के समय उन्हें निस्पृहता का पाठ पढ़ाया जाता था । वितरण में उनका अधिकार न था । सैनिक कर्त्तव्यों का पालन करने में बहुसंख्यक प्लेबिअन अपने कृषि-कर्म से विरत हो गये थे । जीविका का एकमात्र साधन भूमि भी बहुतों के हाथ से निकल कर बड़े-बड़े पेट्रीशिअन भूमिपतियों के हाथ में जा पड़ी थी । बहुसंख्यक प्लेबिअन ऋणी हो गये थे । ऋण-सम्बन्धी कानून इतने कठोर थे कि उऋण न हो सकने के कारण बहुत से ऋणी प्लेबिअन दास बना लिये गये थे । इन राजनीतिक एवं आर्थिक विषमताओं के साथ-साथ प्लेबिअन की सामाजिक विषमतायें भी थीं । पेट्रीशिअन एक विशिष्ट वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित थे । वे प्लेबिअन को निम्न और निन्द्य समझते थे । अतः दोनों का अन्तर्जातीय विवाह-सम्बन्ध तथा अन्नपान वर्जित था । प्लेबिअन उनके धार्मिक उत्सवों और सामाजिक समारोहों में भाग न ले सकते थे ।

इन असमताओं के कारण रोम में दीर्घकाल तक अन्तर्वर्गीय संघर्ष चलता रहा । इस संघर्ष की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है इनकी वैधानिकता । इसने कभी भी हिंसात्मक साधनों का प्रश्रय न लिया । प्लेबिअन की राजनीतिक चेतना एवं उनके आन्दोलन के औचित्य ने उन्हें एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में संगठित कर दिया । धीरे-धीरे उनकी विजय होने लगी और उनकी परिस्थिति सुधरने लगी । ४९४ ई० पू० उनके हितों की रक्षा के निमित्त राज्य ने ट्राइब्यून नियुक्ति करना प्रारम्भ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया। लिखित व्यवस्था न होने के कारण पेट्रीशिअन मजिस्ट्रेट बहुधा प्लेबिअन के साथ अन्याय करते थे । अतः प्लेबिअन के आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप ४५१ ई० पू० रोमन व्यवस्था को लिखित रूप दिया गया। व्यवस्था का यह लिखितरूप इतिहास में Twelve Tables के नाम से प्रख्यात है। इसकी रचना Decembirate दस सदस्यों के बोर्ड ने की थी। इसने न्याय-विभाग में प्लेबिअन की न्यूनाधिक मात्रा में रक्षा की। ४४५ ई० पू० एक अन्य कानून (Lex Canuleia) द्वारा प्लेबिअन और पेट्रीशिअन के अन्तर्जातीय विवाहों को मान्यता दी गयी। ३६७ ई० पू० एक दूसरा कानून (Licinion- Rogations) पास हुआ। इसके अनुसार दो कान्सल में एक कान्सल निश्चित रूप से प्लेबिअन होने लगा। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सुधार था। इसने राजनीतिक क्षेत्र में पेट्रीशिअन और प्लेबिअन का समानाधिकार स्वीकार कर लिया। २८७ ई० पू० Lex Hortonsia नामक एक अन्य अधिनियम बनाया गया। इसने सीनेट की शक्ति का अपहरण कर प्लेबिअन की सभा Comitia Tributa को राज्य की सर्वोच्च सत्ताधारी सभा बना दिया। इन विभिन्न कानूनों ने बहुरूप विषमता को दूर कर देश में एकात्मकता की स्थापना का प्रयास किया।

प्लेबिअन और पेट्रीशिअन वर्गों की पृथक् सीमायें तो प्रायः नष्ट हुईं, परन्तु उनके स्थान पर नवीन सीमाओं का उदय हुआ। पहले बताया जा चुका है कि साम्राज्य-विस्तार-काल में समाज पुनः दो वर्गों में विभक्त हो गया। इस बार विभाजन जन्म के आधार पर न होकर धन के आधार पर हुआ था। एक ओर तो Optimates का वर्ग था जिसमें पुराने पेट्रीशिअन और नये लब्धप्रतिष्ठ तथा धनाढ्य प्लेबिअन थे। दूसरी ओर Populares थे जो निर्धन सामान्य मनुष्यों का वर्ग था। युद्ध-काल में देश की समृद्धि प्रथम वर्ग के हाथ में केन्द्रित हो गयी थी। द्वितीय वर्ग दीन-हीन था। पूर्वोल्लिखित कारणों से उनके हाथ से भूमि निकल गयी थी। उन्हें अपने घर-बार छोड़कर नगरों में जीविका के अन्य साधनों की खोज में द्वार-द्वार घूमना पड़ रहा था। Optimates उनकी विवशता से लाभ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठाकर चाँदी के टुकड़ों पर उनके वोट खरीदते, स्वयं निर्वाचन में विजयी होकर उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होते, और 'सामान्यों' के चरित्र को भ्रष्ट करते हुए उन्हें निम्नस्तरीय स्थिति में ढकेलते जाते। देश में सीनेट सर्व-सत्ताधारी संस्था थी। इसमें सरदारों (Optimates) की प्रधानता थी। अतः वे सदैव कानूनों के द्वारा अपने हितों की रक्षा करते रहते थे। 'सामान्य' विवश, असहाय और निरुपाय थे परन्तु उत्तरोत्तर उनका असन्तोष संगठित हो रहा था।

ग्रेकस—रोम की ऐसी पृष्ठभूमि पर दो सुधारकों का आविर्भाव हुआ—टाइबेरिअस ग्रेकस और केअस ग्रेकस। दोनों भाई थे। प्रमुखतया प्रथम था सामाजिक सुधारक और द्वितीय था राजनीतिक सुधारक। दोनों भाई सेम्प्रोनिअस ग्रेकस के पुत्र थे। इनकी माता कार्नेलिया एक सुसंस्कृत एवं धर्मनिष्ठ महिला थी। संसार के अनेक प्रख्यात पुरुषों की भाँति ग्रेकस भाइयों के चारित्रिक गुण भी अपनी माता के गम्भीर स्नेह का सम्बल लेकर प्रदीप्त हुए थे। माता के प्रबल व्यक्तित्व, उच्च शिक्षा तथा उससे भी उच्च प्रोत्साहन ने दोनों बालकों के कोमल मस्तिष्क पर जिन सबल संस्कारों का आरोपण किया था वे विद्याध्ययन से और भी सुदृढ़ हो गये। दोनों के उद्देश्य पवित्र और उच्च थे, परन्तु दोनों ही अपनी कार्य-अकुशलता के कारण असफल रहे और दोनों को ही अपनी अदम्य सुधारेच्छा के हेतु अपने प्राणों का मूल्य चुकाना पड़ा। बहुधा सुधारकों का अन्त कारुणिक होता है।

१३३ ई० पू० टाइबेरिअस ट्राइब्यून निर्वाचित हुआ। उसने अपने उच्च पद से लाभ उठाकर भूमि-सुधार के द्वारा कृषक-वर्ग की स्थिति सुधारनी चाही। एक अधिनियम द्वारा उसने ५०० जुगेरा प्रति व्यक्ति से अधिक भूमि रखना दण्डनीय घोषित करा दिया। इससे अधिक भूमि के स्वामियों को मुआवजा देकर उनकी अतिरिक्त भूमि ले ली गयी और वह निर्धन नागरिकों में वितरित करा दी गयी। असेम्बली में कानून बनने से पूर्व टाइबेरिअस ने नियम के अनुकूल अपना बिल सीनेट में उपस्थित न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया था, क्योंकि वह सीनेट को धनाढ्य मनुष्यों की प्रतिनिधि-सभा समझता था। सीनेट अपने प्रति सुधारक का यह उपेक्षापूर्ण व्यवहार देखकर संक्षुब्ध हो उठी। जनसाधारण के पक्ष में इसी प्रकार के अन्य सुधार करने के लक्ष्य से टाइबेरिअस ने अपनी पदावधि की समाप्ति पर ट्राइब्यून का पुनर्निर्वाचन प्राप्त करना चाहा। यह नियम-विरुद्ध था। कोई भी व्यक्ति क्रम से दो बार ट्राइब्यून न हो सकता था। सीनेट के सदस्य तो पहिले से ही उसके घोर विरोधी थे। अब उन्हें टाइबेरिअस की आलोचना करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। उस पर अवैधानिकता एवं निरंकुशवादिता का आरोप लगाकर उसके विरुद्ध जनता की उग्र भावनाओं को प्रज्वलित करने की चेष्टा की गयी। इसी पृष्ठभूमि में एक दिन टाइबेरिअस की हत्या कर दी गयी। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, टाइबेरिअस के उद्देश्य उच्च थे। जनसाधारण का शोषण एवं परिपीड़न देखकर उसका उदार हृदय करुणा से आप्लावित हो गया था। वह सुधार चाहता था और निस्संदेह सुधार की आवश्यकता थी भी। परन्तु टाइबेरिअस की आकुलता, धैर्यहीनता और अवैधानिकता ने उसके उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणत होने का अवसर न दिया। यदि वह वैधानिक पद्धति का अनुगमन करते हुए मन्थर गति से चलता तो कदाचित् उसके मार्ग में अधिक अवरोध न आता। पुनः अपने सहाय एवं अवलम्ब के लिए किसी शक्तिशाली दल को संगठित किये बिना सर्वशक्तिशाली सीनेट का अप्रच्छन्न विरोध आमन्त्रित करना एक भारी राजनीतिक भूल थी। टाइबेरिअस असफल हुआ; इसलिए कि वह सुधारकमात्र था, साथ में राजनीतिज्ञ नहीं।

केअस ग्रेकस, टाइबेरिअस ग्रेकस का कनिष्ठ भ्राता था। वह भी अपने भाई की ही भाँति जनता की दशा सुधारने के लिए चिन्तित था। परन्तु उसके सुधार का मार्ग राजनीतिक था। उसकी धारणा थी कि जब तब सीनेट धनाढ्यों को प्रश्रय देती रहेगी तब तक उनका दमन नहीं किया जा सकता। अतः उसने सीनेट की शक्ति को सीमित करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रयास किया। १२३ ई० पू० वह ट्राइब्यून निर्वाचित हुआ। उस तिथि से वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने की चेष्टा करने लगा।

अभी तक प्रान्तीय गवर्नरों के विरुद्ध अभियोग पर विचार करने का अधिकार सीनेट के सदस्यों को था। केग्रस ने उनके इस अधिकार का अपहरण कर Equites में हस्तान्तरित कर दिया। ये प्रायः मध्यवर्ग के मनुष्य होते थे। एक दूसरे अधिनियम के द्वारा 'एशिया' में कर-संग्रह का कार्य भी इसी नवनिर्मित पदाधिकारी वर्ग को दे दिया गया। अभी तक यह कार्य सीनेट-द्वारा सम्पादित होता था। प्रान्तों में कान्सल की नियुक्ति सीनेट-द्वारा होती थी। निर्वाचन के पश्चात् बहुधा ऐसा होता था कि सीनेट जिन कान्सलों को अपने विरुद्ध देखती थी उन्हें निम्नकोटि के प्रान्तों में नियुक्त करती थी और अपने दलगत कान्सलों को उच्चकोटि के प्रान्तों में। इस पक्षपातपूर्ण प्रणाली में सुधार करने के लिए केग्रस ने एक नियम बनवा दिया कि कान्सल की नियुक्ति निर्वाचन के पश्चात् नहीं वरन् पूर्व हुआ करे।

उपर्युक्त राजनीतिक सुधारों के द्वारा सीनेट को शिथिल करने के साथ-साथ केग्रस ने कुछ अन्य जनोपयोगी सुधार भी किये। ये इतिहास में Sempronion Laws के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा उसने उपनिवेशों की स्थापना की और वहाँ अपने देश के समस्त नागरिकों को निर्विशेष रूप से बसाया। समस्त सैनिकों की आवश्यक सामग्रियों के क्रय का भार राज्य को दिया और नागरिकों को बाजार के मूल्य से कम पर अन्न देने की प्रथा चलायी।

इन समस्त सुधारों ने धनाढ्य वर्ग को केग्रस का घोर शत्रु बना दिया। वह सुधारक को अपदस्थ करने के हेतु अवसर की प्रतीक्षा करने लगा और वह अवसर शीघ्र ही उपस्थित हो गया। केग्रस उदार व्यक्ति था। उसने रोमन नागरिकों की भाँति इटली के अन्य मनुष्यों को भी नागरिकता देने का प्रस्ताव किया। सीनेट ने रोम के नागरिकों को जातीयता के नाम पर उत्तेजित कर केग्रस के विरुद्ध खड़ा कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस असन्तोषपूर्ण वातावरण से लाभ उठाकर शत्रुओं ने टाइबेरिअस की भाँति उसकी भी हत्या कर दी।

उच्च उद्देश्य होते हुए भी केअस के सुधारों में अनेक दोष थे। उसके Equite सीनेट के सदस्यों से भी अधिक भ्रष्ट निकले। पुनः सीनेट के विरुद्ध एक नवीन पदाधिकारी-वर्ग का सृजन कर उसने देश में एक नवीन कलह का सूत्रपात किया। सस्ते मूल्य पर अन्न-वितरण के परिणाम-स्वरूप राज्य के कोष को भारी क्षति पहुँची। इसके अतिरिक्त सस्ते अन्न के लोभ से बहुसंख्यक मनुष्य ग्राम छोड़-छोड़ कर नगर में आने लगे। परिणामतः ग्रामों की जनसंख्या और भी कम होने लगी।

गणतन्त्र का विनाश—ग्रेकस भाइयों की हत्या के पश्चात् रोम में और भी अशान्ति व्याप्त हो गयी। जनसाधारण अपनी परिस्थिति में कोई सुधार होता हुआ न देखकर अति क्षुब्ध हो उठा था और अब वह हिंसात्मक रूप धारण करने के संकेत दे रहा था। उधर देश का अधिकारी वर्ग सीनेट के अधिकारों की रक्षा में ही अपनी रक्षा की सम्भावना देख रहा था। अतः जनता-द्वारा सीनेट की सत्ता को कम करने का जो आन्दोलन चल रहा था उसका वह घोर विरोध कर रहा था। इन परस्पर विरोधी दलों के पारस्परिक संघर्ष ने हत्याओं, विद्रोहों और गृह-युद्धों को जन्म दिया। इस गृह-संकट से लाभ उठाकर साम्राज्य के अधीनस्थ देशों ने विद्रोह करना प्रारम्भ किया। जैसा कि सुविदित है, अशान्तिकाल एकतन्त्रवाद का जन्मदाता है। चिर-अशान्ति से व्यग्र जनता किसी भी ऐसे महत्वाकांक्षी साहसिक को सम्पूर्ण शासनाधिकार देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है जो अराजकता का दमन कर उसके धन-जन की रक्षा कर सके। वही रोम में भी हुआ। शीघ्र ही वहाँ मेरिअस, सुला आदि एकतन्त्र-वादी सेनानायकों का उदय हुआ। परन्तु इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध थे पाम्पी और जूलियस सीज़र। इन सेनानायकों ने अपनी उग्र नीति के द्वारा रोमन गणतंत्र को सैनिक तानाशाही में परिवर्तित कर दिया जो (सैनिक तानाशाही-युग) 'Era of Military Dictatorship' के नाम से प्रसिद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इसके मुख्य अभिनेता निम्नलिखित थे—

(१) **मेयस मेरियस**—इसके जीवन का अधिकांश भाग सैनिक सेवा में व्यतीत हुआ जिसके उपलक्ष्य में वह १०७ ई० पू० में कौन्सल नियुक्त किया गया। अपनी उदारनीति के कारण ही वह पाँच बार इस पद पर आसीन हुआ। उसके प्रमुख सुधार सैनिकों के वेतन में वृद्धि तथा १६ वर्ष तक अनिवार्य सेवा आदि थी। इन्हीं सुधारों के कारण वह रोमन साम्राज्यवाद का 'वास्तविक कर्त्ता' एवं 'रोम का तृतीय संस्थापक' कहा जाता है।

(२) **लिवियस ड्रूसस**—यह ९१ ई० पू० में कौन्सल निर्वाचित हुआ। इसने न्याय एवं व्यापार के क्षेत्र में प्रगति का मार्ग दिखाया।

(३) **सुला**—यह ८२ ई० पू० में असीमित काल के लिए तानाशाह निर्वाचित हुआ। इसने अपनी सैनिक प्रतिभा से सभी विरोधियों को परास्त करके एक ट्रिब्यून की रचना की जिसके सभी अधिकार स्वयं हाथों में ले लिये। सीनेट केवल ८ प्रायटरों को थी। प्रत्येक की सदस्यता के लिए उम्र की व्यवस्था थी जैसे प्रो-कौन्सल पद के लिए ४३ वर्ष। प्रायटर के लिए ४० वर्ष एवं क्वेस्टर के लिए ३० वर्ष। इतिहासकार मापसेन ने उसे रोम का महान संविधानदाता कहा है।

(४) **पाम्पेई**—यह एक योग्य सेनापति, योद्धा, एवं राजनीतिज्ञ था। इसने सभी प्रान्तीय विद्रोहों जो सिसली एवं अफ्रीका में हुए, सफलतापूर्वक शान्त किया। दासों की दशा में सुधार करने के लिए क्रेसस को इन प्रान्तों में भेजा और अनेक शांतिपूर्ण कार्य किये।

(५) **सिसेरो**—अपनी प्रसिद्ध वाकशक्ति के कारण यह 'रोम की आवाज' (Voice of Rome) कहा जाता है। अपने कट्टर विरोधियों के बावजूद भी इसने रोम में अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक कार्य किये जिससे इसे रोम का सुधारक (Moderator of Rome) कहा जाता है। धार्मिक क्षेत्र में अपने को सर्वोच्च पुजारी एवं धर्म-संरक्षक की पद्वी प्रदान की जिसे 'Pontifex Maximus First' कहते हैं।

उसकी प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए कैटीलीन ने षड्यन्त्र रचा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु ६२ ई० पू० में पाम्पेई के पुनः राजनीति में आने पर एक नवीन दल की स्थापना हुई जिसे प्रथम त्रिगुट या First Triumrerate कहते हैं जिसके नेता सीजर पाम्पेई एवं क्रेसस थे। इनका उद्देश्य सिसेरो को कुचलना था परन्तु अन्ततः यह अपने उद्देश्य में असफल रहा और क्रेसस भी मृत्यु के बाद ५३ ई० पू० में नष्ट हो गया।

अब पाम्पेई एवं सीजर में राज्य के लिए गृह-युद्ध छिड़ा जिसमें प्रारंभ में पाम्पेई सफल रहा परन्तु अन्त में सीज़र महान ने अपनी कूटनीतिज्ञता तथा रणचातुरी से उसे फारसेलस के युद्ध में पूर्णतया परास्त किया और इस प्रकार उसकी उन्नति का दरवाजा सदैव के लिए बाधाहीन हो गया।

जूलियस सीज़र—जूलियस सीज़र का जन्म १६० ई० पू० में हुआ था। वह जन्मतः अभिजात वर्ग का था, परन्तु विवाह के द्वारा वह सामान्य वर्ग से भी सम्बन्धित था। उसकी पत्नी इसी वर्ग की महिला थी। सीजर में प्रारम्भ से ही दुर्दमनीय महत्वाकांक्षा तथा उस महत्वाकांक्षा को फलित करने की विस्मयकारिणी क्षमता थी। वह राज्य के पॉण्टिफ, क्वेस्टर, प्रेयटर आदि उच्च पदों पर आसीन हो चुका था। इन पदों पर कार्य करते हुए उसकी तत्वग्राहिणी प्रखर बुद्धि ने शासन-सम्बन्धी समस्त विषयों की रूप-रेखा का अध्ययन कर लिया था। वह जनसमूह का सहज नेता था। उसकी मनोवृत्ति से परिचित होने के कारण वह भलीभाँति जानता था कि किस कार्य से जनता की प्रतिक्रिया क्या होगी। वह अपने एक हाथ की उँगलियों से जनता की नाड़ी की गति की परीक्षा करता और दूसरे हाथ की उँगलियों से अपने उत्कर्ष का इतिहास लिखता। लोकभावना को सन्तुष्ट करने के लिए उसने मेरिअस की उन्मुक्त हृदय से सराहना की और उसकी भव्य मूर्तियों की स्थापना करायी। लोक-कल्पना को जाग्रत करने के लिए उसने स्पेन में सफलतापूर्वक युद्ध किया और वहाँ से लौटने पर अपनी लोक-सम्मान्यता को घोषित करने के हेतु

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विजय-प्रदर्शन (Triumph)[१] की माँग की। परन्तु सीनेट ने इस माँग को अस्वीकार कर दिया। विजेता सीज़र का आत्माभिमान पदाक्रान्त विषधर की भाँति फूत्कार कर उठा। उसी दिन से उसने प्रत्यक्ष रूप से इस सभा को अपदस्थ करने का बीड़ा उठाया। सीनेट अभिजात एवं धनाढ्य वर्ग की सभा थी अतः सीज़र पूर्णरूप में सामान्य दल का नेता बन गया। शीघ्र ही वह कान्सल निर्वाचित हो गया। परन्तु सीनेट ऐसी चिरप्रतिष्ठित संस्था का विरोध करना सामान्य कार्य न था। इसके लिए सीज़र को सैनिक और आर्थिक दोनों प्रकार के सहयोग की आवश्यकता थी। सीनेट की अदूरदर्शी नीति ने पहिले से ही अभीष्ट उपकरण एकत्र कर दिये थे। सीज़र को एकमात्र उनका संगठन करना था। उसका समकालीन पाम्पी एशिया में सफल युद्धों के परिणामस्वरूप सैनिक ख्याति प्राप्त कर चुका था। उधर क्रेसस देश का सबसे अधिक धनाढ्य व्यक्ति समझा जाता था। सीज़र के भाग्य से दोनों को ही सीनेट ने रुष्ट कर रखा था। अतः उभयनिष्ठ शत्रु के विरुद्ध इनके साथ संघ बनाना सीज़र के लिए दुष्कर न था। यह संघ इतिहास में प्रथम त्रिमूर्ति (First Triumvirate) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी संघ की सहायता से सीजर कान्सल के पद पर पहुँचा था। इसी की सहायता से उसने कान्सल पद की अवधि की समाप्ति पर ५ वर्ष के हेतु गाल प्रान्त पर शासन करने का अधिकार प्राप्त किया था। सीज़र का यह कार्य उसकी दूरदर्शिता की घोषणा करता है। वह जानता था कि अन्ततोगत्वा उसकी सफलता सैन्य-बल के ऊपर ही आश्रित है। गाल के शासक के रूप में उसके पास युद्धानुरागी कठोरकर्मा मनुष्यों की एक प्रबल सेना हो गयी। पुनः संघ की सहायता से हो उसने अपने विरोधी सिसरो और केटो को रोम से हटा दिया। संघ की ही सहमति से

---

[१] यह विजयी सेनापति का सर्वोच्च सम्मान था। अपनी विजय-यात्रा की समाप्ति पर जब वह अपने देश लौटता था तब सीनेट की अनुमति से उसका जलूस निकाला जाता था जिसमें देश के सैन्य-बल और बन्दियों तथा निधियों का प्रदर्शन होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीज़र ने गाल, जर्मनी और ब्रिटेन के ऊपर आक्रमण किया और अपनी सैनिक सफलताओं के कारण अतुल कीर्ति प्राप्त की।

परन्तु समानरूप से महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अनिश्चित मित्र होते हैं। थोड़े ही दिनों में क्रेसस की मृत्यु हो गयी और पाम्पी तथा सीज़र में पारस्परिक वैमनस्य प्रारम्भ हो गया जिसकी परिणति गृह-युद्ध में हुई। इसमें सीज़र विजयी हुआ। पाम्पी मिस्र भाग गया। वहाँ उसकी हत्या कर दी गयी। विजय के पश्चात् सीज़र ने मिस्र, एशिया, अफ्रीका और स्पेन पर आक्रमण किया और वहाँ अपने शत्रुओं को पराजित किया।

४५ ई० पू० तक सीज़र वस्तुतः रोम का सर्वसत्ताधारी व्यक्ति बन गया था। सीनेट ने उसका अभूतपूर्व सम्मान किया। उसे इम्परेटर की उपाधि दी गयी। वह आगामी दस वर्ष के लिए कान्सल और जीवन भर के लिए डिक्टेटर बना दिया गया। उसकी शरीर-रक्षा के निमित्त विशेष सैनिक प्रबन्ध किया गया। निर्बल सीज़र सीनेट द्वारा अपमानित हुआ था। आज वह सबल सीज़र की परिचारिका थी। परन्तु एक व्यक्ति के हाथ में सम्पूर्ण सत्ता का एकत्रीकरण साम्राज्य के आगमन की सूचना दे रहा था। परन्तु दोष सीज़र का न था। गणतन्त्रात्मक शासन के अन्तर्गत देश की अवस्था दयनीय हो गयी थी। सामाजिक अशान्ति, आर्थिक विषमता और राजनीतिक पक्षपात ने जनता को नितान्त निराश कर दिया था। उसे न Optimates में विश्वास था और न Populares में। उसे तो एकमात्र सुसंगठित शासन की आवश्यकता थी जो उसके धन-जन की रक्षा कर सके। सीज़र ने उसकी इस माँग की पूर्ति की। अतः जनता ने उसे सम्मान्यता दी। जनता प्रायः सुख-शान्ति चाहती है, आदर्श शासन-पद्धति की रूप-रेखामात्र नहीं। इस प्रकार सीज़र का निरंकुशवाद परिस्थिति का परिणाम था।

सीज़र का शासन—सीज़र अतीव कूटनीतिज्ञ एवं व्यावहारिक पुरुष था। अतः रूप की अपेक्षा तत्व के ऊपर उसकी दृष्टि अधिक थी। उसे शासन की सर्वोच्च सत्ता से अनुराग था, शासन की रूप-रेखा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रति वह पूर्णरूपेण निरपेक्ष था। यही कारण है कि उसने राज्य की सम्पूर्ण सत्ता ग्रहण करने के पश्चात् भी उसके गणतन्त्रात्मक शासन की रूप-रेखा नष्ट न की। ऊपर से गणतन्त्र के सभी अङ्ग विद्यमान थे, परन्तु भीतर से सभी निर्जीव। उनकी समस्त शक्ति अनेकानेक अधिनियम-शिराओं के द्वारा सीज़र में पुञ्जीभूत हो चुकी थी। सीनेट थी, परन्तु सीज़र की आज्ञाकारिणी अनुगामिनी की भाँति। प्रान्तों में गवर्नर रहे, परन्तु सभी सीज़र-द्वारा मनोनीत और सीज़र के प्रति उत्तरदायी। संविधान के अनुसार अधिनियम भी बनते थे, परन्तु वही जिन्हें सीज़र चाहता था। इस प्रकार सीज़र का शासन गणतन्त्र के परिधान में कोरा एकतन्त्र था।

राजनीतिक सुधार—सीज़र ने अपने विस्तृत अनुभव से राजनीतिक क्षेत्र में अनेक सुधार किये। उसने सीनेट की सदस्यता का द्वार एकमात्र रोम के निवासियों के लिए ही नहीं वरन् विदेशियों—स्पेन और गाल के निवासियों के लिए भी खोल दिया। उन्हें नागरिकता और सैनिक भर्ती के अधिकार मिल गये। सीनेट के सदस्यों की संख्या भी बढ़ाकर ९०० कर दी गयी। उसने इटली की नगर-पालिकाओं की शक्ति बढ़ा दी। वे रोम के मजिस्ट्रेट के अधिकार से मुक्त हो गयीं। एशिया में प्रजा से लिये जाने वाले कर कम और हलके कर दिये गये। उसने प्रान्तों के नागरिकों को भी केन्द्रीय शासन में भाग दिया। वह रोमन कानून का भी संग्रह कराना चाहता था, परन्तु मृत्यु ने उसे अवसर न दिया।

सामाजिक सुधार—जन-साधारण की स्थिति में सुधार करने के हेतु उसने कृषि को प्रोत्साहन दिया और जीविकाहीन मनुष्यों को सार्वजनिक निर्माणकार्यों में नियुक्त किया। देश में ब्याज की दर कम कर दी गयी और मनुष्यों की अपव्ययता के ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। सीज़र ने कोरिन्थ और कार्थेज में नये उपनिवेश स्थापित किये जहाँ भूमिहीन एवं गृहहीन मनुष्यों को बसाने की व्यवस्था की गयी। उसने एक कलेण्डर का निर्माण किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीजर की हत्या—परन्तु राज्य में बहुसंख्यक मनुष्य ऐसे थे जो सीज़र को वैधानिक जीवन का शत्रु समझते थे। वे सीज़र के निरंकुशवाद एवं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का विनाश कर देश में गणतन्त्रात्मक शासन की पुनः स्थापना करना चाहते थे। ऐसे ही मनुष्यों की मनोभावना का नेतृत्व करते हुए ब्रूटस और केसिअस आदि नेताओं ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र सङ्गठित किया और ४४ ई० पू० उसकी हत्या कर दी।

चरित्र—जूलियस सीजर संसार के उन अग्रगण्य पुरुषों में है जो अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान बना गये हैं। सेनानायक के रूप में उसकी गणना सिकन्दर, नेपोलियन आदि विजेताओं के समकक्ष होती है। उसकी सैनिक कुशलता सहज थी, अधीत अथवा ग्रहीत नहीं। उसने अपने प्रारम्भिक जीवन में कोई विशेष सैनिक शिक्षा न पायी थी। उसका सैनिक जीवन तो अकस्मात् ४० वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ हुआ। परन्तु फिर भी उसने अनेकानेक युद्धों में जिस शौर्य एवं नीति का प्रदर्शन किया वह संसार के लिए विस्मयकारी है। विजय के इस वरद पुत्र की अभियान-गति एवं सैन्य-संचालन में कुछ ऐसी रहस्यात्मकता थी जिससे तत्कालीन विश्व का कोई भी सेनानायक अवगत न था। गाल, जर्मनी, ब्रिटेन, मिस्र, एशिया, अफ्रीका और स्पेन आदि देशों पर वह टूटा वज्र की कठोरता और झंझावात की सत्वरता लेकर। सर्वत्र उसका विजय-पथ अव्याहत रहा। एशिया-विजय के सम्बन्ध में 'मैं आया, मैंने देखा, मैंने जीत लिया' का ऐतिहासिक कथन एकमात्र दम्भोक्ति नहीं था। उससे रोमन सेनानायक का अजेय शौर्य और असीम आत्म-विश्वास प्रकट होता है।

वह चण्डी का प्रचण्ड उपासक, पर करुणा का श्रद्धालु भक्त भी था। वह योद्धा था, विजेता था, परन्तु नृशंस हिंसक नहीं। उसने कदाचित् ही कभी निरीह शोणित से अपने हाथ दूषित किये हों। उसके आक्रमण का लक्ष्य विजय होता था, विध्वंस नहीं। विजितों के साथ उसका उदार व्यवहार इतिहास-विदित है। विजित प्रदेशों के प्रति उसने सम्मान-प्रदर्शन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया और बहुतों को नागरिक का अधिकार भी दे दिया। उसकी सेना में जहाँ रोमन थे वहाँ विदेशी भी।

सीज़र एक उच्चकोटि का राजनीतिक एवं सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति था। उसकी प्रखर बुद्धि एक क्षण में ही वस्तु-स्थिति समझ लेती थी। वह जानता था कि समय की पुकार क्या है। इसी से उसने एकतन्त्र और सामान्य वर्ग का पक्ष लेकर अपने लिए एक स्पष्ट कार्य-क्रम निर्धारित किया। यदि पाम्पी की भाँति एकतन्त्र और गणतन्त्र के बीच तथा सामान्य वर्ग और अधिकारी वर्ग के बीच सन्दिग्ध रूप से मँडराता रहता तो वह अचिरात् ही दोनों दलों के सन्देहजन्य असहयोग का लक्ष्य बन जाता है। क्रियाशील होने के साथ-साथ सीज़र व्यावहारिक बुद्धि का भी था। उसने एकतन्त्र की स्थापना की, परन्तु गणतन्त्र के निष्प्राण अस्थि-पंजर को गिराकर व्यर्थ में जनता की भावुकता पर आघात नहीं किया। प्रान्तों के साथ उदारता के व्यवहार, नागरिकता के विस्तार एवं जन-हित के अनेकानेक कार्यों ने सीज़र को एकमात्र विजेता के पद से कहीं अधिक उठा दिया है। कृषि, वाणिज्य एवं साहित्यादि को प्रोत्साहन देकर तथा उपनिवेशों, भवनों, पुलों, सड़कों आदि का निर्माण कर उसने अपनी लोक-कल्याण की भावना का परिचय दिया है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में भी सीज़र अति उदार और क्षमाशील व्यक्ति था। उसके आजीवन शत्रु सिसरो का यह कथन है कि 'आप चोटों के अतिरिक्त और कुछ भी भूलने के अभ्यस्त नहीं[१]' विशेष महत्त्व रखता है। उसके व्यक्तित्व में एक अद्भुत आकर्षण था। स्वाभावतः विचारशील होने के कारण वह एकान्तवासी था। उसके मित्रों की संख्या भी अधिक न थी। परन्तु उसके स्वभाव की गम्भीरता अभद्रता के ऊपर थी। अपने इन विभिन्न गुणों के कारण विद्वान उसे रोम का सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति समझते हैं। संसार के इतिहास में युद्ध और राजनीति के सम्मि-

१. 'You are accustomed to forget nothing but injuries.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लित क्षेत्र में उसके समान बहुत कम व्यक्ति हुए हैं[१]। इसके चरित्र का प्रमुख दोष था, उसकी अपरिमित महत्त्वाकांक्षा। इसी के कारण उसके प्राण गये। यह सत्य महाकवि शेक्सपियर ने बड़ी कुशलता से 'जूलियस सीज़र' नाटक के पात्र ब्रूटस के मुख से व्यक्त कराया है : 'सीज़र मुझसे स्नेह करता था, इसलिए मैं उसके लिए रोता हूँ; वह भाग्यशाली था इसलिए मुझे हर्ष है; वह वीर था, इसलिए मैं उसका सम्मान करता हूँ; परन्तु वह महत्त्वाकांक्षी था, इसलिए मैंने उसका बध कर डाला।'[२] इसी पात्र का अन्य कथन कि मैंने सीज़र को मारा, 'इसलिए नहीं कि सीज़र से मुझे कम प्रेम था, परन्तु इसलिए कि रोम से मुझे अधिक प्रेम था' भी पर्याप्त यथार्थता रखता है।[३] कुछ भी हो, अपने समस्त गुण-दोषों को लिये हुए सीज़र मानव ही था और फिर अपने अराजकतापूर्ण युग का शिशु भी।[४] परन्तु उसके जीवन का एक दूसरा भी पहलू है जिसमें सीज़र एक अत्यन्त क्रूर, आततायी एवं कठोर तानाशाह के रूप में चित्रित है। उसे रोम का संरक्षक कहना अनुचित होगा क्योंकि उसी ने सभी गणतंत्रीय आदर्शों की कब्र खोदी तथा रोम के विकास की प्रगति के समक्ष अवरोध उपस्थित किया। उसका शासनकाल एक आतंक एवं आततायी का था जिसमें मनुष्य का कोई स्थान नहीं।

---

१. 'He was the greatest genius Rome produced, and in the combined fields of war and politics, few have been his equal in world history.'

२. 'As Caesar loved me, I weep for him; as he was fortunate I rejoice at it; as he was valiant I honour him, but as he was ambitious, I slew him.'

३. 'Not that I loved Caesar less, but that I loved Rome more.'

४. With all his genius he was no god, but preiminently a child of his chaotic age.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु उपर्युक्त व्यवहार भी सीज़र जैसे महान विजेता के प्रति उपयुक्त नहीं प्रतीत होता । अतएव मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुये इतना ही कहना अधिक उचित होगा कि वह इतिहास की दृष्टि में एक महान अच्छाई एवं बुराई दोनों का प्रतीक था । उसकी अच्छाई अधिकारों के सही उपयोग में तथा बुराई अधिक शक्ति प्राप्त करने में है ।[१]

आक्टेविअन आगस्टस—अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व सीज़र ने अठारह वर्ष के अपने एक भतीजे आक्टेविअन आगस्टस को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था । उसकी मृत्यु के समय आगस्टस इलीरिया में अध्ययन कर रहा था । सीज़र की मृत्यु का सम्वाद पाकर वह रोम आया । यहाँ सीज़र के दो मित्रों एण्टानी और लिपिडस ने इससे सन्धि कर ली । इन्होंने सन्देह में सिसरो की हत्या कर दी । ब्रूटस और केसिअस भाग गये । परन्तु अन्त में वे पराजित हुए । कुछ समय बाद एण्टानी और आगस्टस में भी अनबन हो गयी । एण्टानी अन्त में पराजित हुआ और आगस्टस ३१ ई० पू० रोम का सर्वशक्तिशाली शासक हुआ । आगस्टस की विजय रोम के इतिहास में एक शांति एवं समृद्धि के युग का सूचक थी । यद्यपि उसके प्रारंभिक वर्ष अशांतिपूर्ण रहे परन्तु उसने अपनी कुशल नीतियों से उनका दमन किया । २७ ई० पू० में वह प्रथम कौन्सल निर्वाचित हुआ । अपने को इतिहास में विभिन्न करने के लिए उसने **आगस्टस** की उपाधि धारण की जिसका तात्पर्य ईश्वर के द्वारा मनोनीत होता है । इसी प्रकार अधिकारों का सूचक **इम्पेरेटर** की उपाधि अपनाई । अपने शासन को नवीन नाम दिया जो प्रथम प्रिन्सिपेट या First Principate या First citizen of state के नाम से प्रसिद्ध है । अपने को ईश्वर से सम्बन्धित करने के लिए Sebastos की

---

१. "To us Caesar symbolises both as a great evil and a great good the evil springs from his lust for power and the good rises from his right use of power."

—R. E. Turner.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदवी धारण की थी। सबका संरक्षक या Pater Patrii बना। सीनेट से सभी युद्ध एवं संधि-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किये। उसके नाम प॰ इतिहास में प्राचीन मिश्र के फर्रो (Pharooh) की भाँति आगस्टस मूर्ति-पूजा (Augustan Cult) प्रसिद्ध है। उसने इन कार्यों में रोम को निश्चय ही सर्वप्रथम एक नवीन युग की चेतना प्रदान की जिसमें सभी मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त थे। इस बात की पुष्टि आगस्टस स्वयं के शब्दों से होती है।[१]

शासन का रूप—आगस्टस नितान्त कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी व्यक्ति था। स्वभावतः वह एकतन्त्रात्मक मनोवृत्ति का मनुष्य था और देश में तानाशाही की स्थापना करना चाहता था। परन्तु सीज़र का उदाहरण उसके समक्ष था। रोम की जनता परम्परा-पोषक थी। उसे अपनी प्राचीन शासन-प्रणाली में अटूट श्रद्धा थी। जब इस शासन-प्रणाली को नष्ट कर सीज़र ने अपनी एकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली को प्रच्छन्न रूप में आरोपित करना चाहा तो उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। अतः आगस्टस ने दूरदर्शिता से कार्य किया। उसने सीज़र से भी अधिक प्रच्छन्न रूप में एकतन्त्र की स्थापना की और प्रकाश्य रूप में गणतन्त्र की रक्षा का तुमुल उद्‌घोष उठाया। उसके शासन की आत्मा एकतन्त्रात्मक थी परन्तु शरीर गणतन्त्रात्मक। असेम्बली और सीनेट दोनों पूर्ववत् रहीं। उनका कार्य, व्यवस्था बनाना एवं शासन-संचालन था। देश की न्याय-व्यवस्था भी मजिस्ट्रेटों के हाथ में रही। उनकी नियुक्ति भी निर्वाचन द्वारा होती रही। इस प्रकार बाहर से देखने पर गणतन्त्र का आकार-प्रकार अपरिवर्त्तित रखा गया। परन्तु वास्तव में यदि विचार किया जाय तो पता लगेगा कि अनेक नलिकाओं के द्वारा गणतन्त्र के शरीर की सारी शक्ति प्रवाहित होकर शनैः शनैः आगस्टस के शरीर में पहुँच गयी थी। जो अवशिष्ट रहा वह गणतन्त्र न था;

१. "I transferred the Republic from my own authority to the control of the Roman senate and people."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी छाया-मात्र थी; जिसमें न स्पन्दन था, न चेतना और न गति। इस भूसे से भरे हुए निर्जीव बछड़े को सम्मुख रखकर आगस्टस निश्चिन्त होकर एक चतुर दोग्धा की भाँति रोम को दुहता रहा।

शनैः शनैः उसने सारी शक्ति अपने में हस्तान्तरित कर ली। उसने इम्परेटर की उपाधि धारण की और देश का सर्वसत्ताधारी शासक हो गया। Proconsulare Imperium के द्वारा देश का सर्वोच्च सेनापति बन गया। सेन्सर के रूप में सीनेट में पद-नियुक्ति का कार्य भी उसी के हाथों में आ गया। Princeps के रूप में वह सीनेट का अध्यक्ष था। Pontifix Maximus द्वारा रोमन धर्म का संरक्षक था। इस प्रकार वास्तव में समस्त राजकीय शक्ति उसके हाथ में केन्द्रित हो गयी।

परन्तु फिर भी उसने डिक्टेटर और जीवन भर के लिए कान्सल की उपाधि स्वीकृत न की जिससे जनता गणतन्त्रात्मक शासन-पद्धति के अस्तित्व में विश्वास करती रहे। आगस्टस ने Princeps की उपाधि धारण की थी। अतः उसके शासन-काल को Principate के नाम से पुकारते हैं। इसका शासन-काल ३१ ई० पू० से लेकर १४ ई० तक रहा। अपने ४४ वर्ष के दीर्घ शासन में उसने रोम को अभूतपूर्व सुख-शान्ति और समुन्नति दी। इतिहासकार सीम के अनुसार आगस्टस की शासकीय सुधार नीति इस प्रकार कार्य रूप में परिणत हुई कि उसका प्रभाव लगभग पाँच शताब्दियों तक रोम पर स्पष्ट रूप से रहा तथा यूनान के पेरीक्लीज़ को छोड़कर वह विश्व-इतिहास का एक अपूर्व राजनीतिज्ञ था।[१]

---

१. "He devised his administrative policy in such a manner that it lasted in the West for five centuries and in the East nearly for fifteen years except Pericles. Jud ged by his results, Augustus was really a consummate statesman and ranks as the greatest statesman in the history of the world." —R. Syme.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्तीय संगठन—आगस्टस अपने प्रान्तीय संगठन के लिए प्रसिद्ध है। उसने समस्त प्रान्तों को दो कोटियों में विभक्त किया—१. Senatorial और २. Imperial. प्रथम कोटि के अन्तर्गत साम्राज्य के पुराने प्रान्त थे जहाँ विद्रोह अथवा अशान्ति की आशंका कम थी। ये प्रान्त सीनेट-द्वारा नियुक्त गवर्नरों द्वारा प्रशासित होते थे। इन प्रान्तों का अर्थ-विभाग भी गवर्नरों के अधीन था। वही प्रान्तों में अपने समस्त कार्यों के लिये सीनेट के प्रति उत्तरदायी थे। द्वितीय कोटि में नवविजित प्रान्त थे जो विशेष ध्यान की अपेक्षा करते थे। इनका प्रशासन स्वयं सम्राट् द्वारा नियुक्त गवर्नरों के अधीन रखा गया। ये अपने समस्त कार्यों के लिए सीनेट के प्रति नहीं वरन् सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे। पुनः इनकी निरंकुशता की सम्भावना को दूर करने के लिए आगस्टस ने प्रान्तों का अर्थ-विभाग इनके हाथ से छीन लिया। वह प्रोक्यूरेटरों के अधीन कर दिया गया। ये पदाधिकारी गवर्नरों के अधीन न होकर आगस्टस के ही अधीन थे।

समस्त गवर्नरों के पद वैतनिक कर दिये गये। अब उन्हें निश्चित वेतन दिये जाने लगे जिससे अनुचित साधनों द्वारा वे प्रान्तों से अर्थलाभ के निमित्त प्रजा का शोषण न करें। पुनः गवर्नरों को आदेश दिया गया कि वे अपना शासन-संचालन न्याय और उदारता के साथ करें। इन समस्त सुधारों के परिणामस्वरूप प्रान्तीय शोषण पहिले की अपेक्षा बहुत कम हो गया। इसी प्रकार इटली का भी संगठन किया गया। देश ग्यारह भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक भाग एक-एक प्रेयटर के सिपुर्द कर दिया गया। इस नवीन संगठन ने समस्त देश को अभूतपूर्व सुव्यवस्था दी।

राजनीतिक सुधार—सीज़र के समय सीनेट के सदस्यों की संख्या ९०० हो गयी थी। इतनी बड़ी संख्या में बहुसंख्यक विदेशीय और निम्न-वर्गीय मनुष्य भी थे। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, सीज़र ने रोमन नागरिकता का विस्तार कर राजकीय कार्यों में विदेशीय एवं प्रान्तीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्यों का भी सहयोग प्राप्त किया था। परन्तु उसके इस सुधार से सीनेट की संख्या दुर्वह-सी हो गयी। उसमें बहुसंख्यक अयोग्य व्यक्ति भी आ गये। अतः आगस्टस ने उसका पुनः संगठन किया। उससे अयोग्य व्यक्ति निकाल दिये गये। अब उसके सदस्यों की संख्या ६०० कर दी गयी। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सीज़र की भाँति आगस्टस विभिन्न जातियों में रोमन नागरिकता के समान प्रसार में विश्वास न करता था। वह रोमन जाति को प्रभु-जाति समझता था। उसकी धारणा में विदेशीय और निम्न-वर्गीय मनुष्य रोमन नागरिक के समकक्ष नहीं रखे जा सकते थे। सीनेट-संगठन के पश्चात् आगस्टस ने राज्य के न्याय-विभाग का भी संगठन किया। देश की नगर-पालिकाओं को स्वायत्त शासन दिया गया।

आर्थिक संगठन—गणतन्त्रात्मक शासन में प्रजा पर अनेक प्रकार के भारी कर लगते थे। उनके लगाने का न कोई निश्चित आधार था और न वसूल करने की कोई निश्चित प्रणाली। परिणामतः राजकीय अर्थ-विभाग नितान्त सन्दिग्ध हो गया था। उधर अव्यवस्थित परिस्थिति मे प्रजा का भी शोषण होता था। आगस्टस ने इस ओर ध्यान दिया। उसने पूर्ववर्त्ती समस्त कर रद्द कर दिये और उनके स्थान पर दो प्रकार के कर निर्धारित किये—(१) भूमिकर और (२) आयकर। इन प्रमुख करों के अतिरिक्त सड़कों, बाजारों और बन्दरगाहों आदि पर माल-चुङ्गी वसूल करने की भी सुव्यवस्था की गयी। धातु-खनन, लवण-निर्माण तथा मत्स्य-व्यापार राज्य के उद्योग घोषित किये गये। इनसे राजकीय आय में वृद्धि हुई। राज्य में अन्न-वितरण के लिए एक नवीन विभाग एक प्रिफेक्ट के अधीन बनाया जिसका कार्य उचित मूल्य पर वितरण एवं क्रय-विक्रय तथा अकाल के समय उचित सहायता करना था।

राज्य की आय को नियन्त्रित करने के लिए एक Imperial Board of Revenue की स्थापना की। इसके अधिकारी रोम के उच्च वर्ग के लोग थे जो प्रोक्यूरेटर्स एवं दासों की सहायता से राज्य के वित्त एवं खर्च की जाँच करते थे तथा अपराधियों को यथोचित दंड देते थे। साधारण-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तया सीनेट के शासित प्रान्तों की आय वहाँ के शासकीय खर्च में व्यय होती परन्तु शासकीय प्रान्तों की आय का अधिकांश भाग राजकीय कोष में जाता था।

सामाजिक संगठन—सामाजिक-सुधार आर्थिक सुधारों की अपेक्षा अधिक मजबूत थे। आगस्टस ने एक कुशल शासक की दृष्टि से राज्य के प्रत्येक वर्ग में अत्याचार एवं व्यभिचार रोकने के लिए अनेक कानूनों की व्यवस्था की। जैसे अवारा स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करना प्रत्येक सिनेटर के लिए गैरकानूनी था। दो प्रमुख कानून प्रथम एवं द्वितीय "जूलियन कानून" के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनके अनुसार प्रत्येक २५ वर्ष के व्यक्ति के लिए शादी करना आवश्यक था तथा साथ ही व्यभिचारिणी एवं स्वच्छन्द स्त्री के साथ व्यवहार भी वर्जित था।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख स्थान सैनिक शिक्षा का था। उसने इस कार्य के लिए स्वयं महान शिक्षक कवियों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया जैसे ओविड एवं लेवी। साधारण लोगों के लिए धार्मिक कानूनों को व्यवस्था की जिनका उल्लंघन घोर अपराध समझा जाता था।

देश के उज्जीवन एवं उन्नयन के हेतु आगस्टस ने सामाजिक सुधार भी किये। पूर्वगामी काल को अव्यवस्था ने मनुष्य के नैतिक जीवन को भी विच्छृंखल कर दिया था। समाज का पारिवारिक जीवन बहुसंख्यक मनुष्य की व्यभिचारिता एवं विवाह-हीनता से कलुषित हो गया था। चतुर्दिक कामुकता एवं विलासिता के वातावरण ने रोम-निवासी की स्वाभाविक सरलता और कर्मठता कों नष्ट कर दिया था। यद्यपि व्यक्ति के रूप में आगस्टस निष्कलुष न था, उसका जीवन नैतिक भ्रष्टाचार से परे न था तथापि शासक के रूप में उसे जीवन के उच्चतर मूल्यों का प्रतिपादन कर समाज में नैतिक एवं चारित्रिक व्यवस्था की स्थापना करना ही था। अतः उसने विवाहित जीवन की श्लाघ्यता तथा वान्छनीयता का उपदेश दिया। अविवाहित जीवन को हतोत्साह करने के निमित्त उसने अविवाहित मनुष्यों के ऊपर कर भी लगा दिया। विवाह-विच्छेद-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषयक अधिनियम इतने कठोर कर दिये गये कि उनका प्रयोग बहुत कम हो सके। बलात्कार, व्यभिचार आदि गम्भीर अपराधों के विरुद्ध कठोर नियम बनाये गये।

सैनिक सुधार—डायो कैसियस ने ठीक ही लिखा था कि आगस्टस की शक्ति का वास्तविक केन्द्र सैनिक नियंत्रण एवं वित्त-व्यवस्था था। यद्यपि वह कोई सीजर की भाँति महान सेनानायक नहीं था फिर भी उसने अपने पूर्वज की भाँति आक्टेवियन की उपाधि धारण की और एक नवीन सैनिक तानाशाही की स्थापना की। इसका प्रमुख अंग स्थायी सेना थी जिसकी संख्या १,५०,००० थी। इसके छः भाग थे :—

(१) **लेजनरी फोर्स**—जिसके सैनिक मुख्य रूप से रोमन नागरिक ही होते थे। इसमें २७-२८ डिवीजन थे प्रत्येक सैनिक को २२ साल तक सेवा करना अनिवार्य था। इसकी संख्या ३०,००० थी।

(२) **सहायक सेना**—यह विजित प्रान्तों के सैनिकों की सेना होती थी। इन्हें ·५ वर्ष तक अनिवार्य सैनिक सेवा करनी पड़ती थी।

(३) **प्रायटोरियन गार्ड**—इनकी संख्या ६००० थी। ये मुख्य रूप से इटली के सैनिकों से संयुक्त थी। इनके सैनिकों को १६ वर्ष सेवा करना अनिवार्य था।

(४) **राजकीय संरक्षक**—यह जर्मनी के हृष्ट-पुष्ट सैनिकों से संयुक्त थी।

(५) **नागरिक अश्वारोही दल**—यह विशाल नगरों में आपत्ति के समय सहायता के लिए बनाई जाती थी।

(६) **पहरेदार अश्वारोही**—इनके कार्य बाह्य आक्रमणों की सूचना देना एवं देश की रक्षा करना था।

इसी प्रकार आगस्टस ने सैनिकों की नियुक्ति सम्बन्धी सभी अधिकार एक कमेटी (Senetus Consultum) को दिया तथा निश्चित एवं समान वेतन की व्यवस्था की।

सेना का एक अभिन्न अंग सामुद्रिक सेना भी थी जिसके चार भाग थे—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) यह भाग एड्रियाटिक तट का संरक्षक था।

(२) गाल एवं फ्रेजस के तट का संरक्षक

(३) पश्चिमी भूमध्य सागरीय भाग जिसमें प्रसिद्ध माइसेनम, अवेरस एवं लूक्रिया के डाक स्थित थे।

(४) टाइबर नदी पर स्थित जहाजी बेड़ा।

अन्य कार्य—देश की समृद्धि एवं अभ्युन्नति के निमित्त आगस्टस ने और भी अनेक प्रकार के जनोपयोगी कार्य किये। साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में उसने पुलों, सड़कों, नहरों, मन्दिरों, नाट्यशालाओं आदि का निर्माण कराया। उसे रोम-साम्राज्य का निर्माणकर्त्ता कहा जाता है। रोम में सर्वप्रथम उसी ने भवन-निर्माण में प्रस्तर का प्रयोग किया। उसका कथन कि 'मैंने रोम को ईंटों का नगर पाया और उसे संगमरमर का नगर कर दिया' पर्याप्त रूप से यथार्थ है। अग्नि-काण्डों से जनता की रक्षा के निमित्त उसने फ़ाएर ब्रिग्रेड की स्थापना करायी। व्यापारिक संरक्षण एवं आयात-निर्यात के हेतु उसने एक जहाजी बेड़े का भी निर्माण किया। रोम को सुन्दरता से विभूषित करने के लिए ८२ मन्दिर बनवाये जिनमें अपोलो का मंदिर सर्वोत्तम है। शासकीय सुधार के लिए २६५ लघु भागों में विभाजित किया। प्रत्येक भाग चार मजिस्ट्रेटों के अन्तर्गत था जो सुरक्षा के लिए पुलिस की टुकड़ी से लैस रहते थे। अकाल से बचाने के लिए राजकीय अन्नागार की भी व्यवस्था की। इस प्रकार प्राचीन इतिहास में यह सर्वप्रथम नागरिक शासन-व्यवस्था थी जिसकी समता आधुनिक म्यूनिसिपलिटी से की जा सकती है। यह उसके स्वायत्त शासन प्रणाली का भी एक भव्य उदाहरण प्रस्तुत करता है। आगस्टस तथा उसका मन्त्री मेसीनस दोनों ही विद्यानुरागी थे। उनके प्रोत्साहन में साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। होरेस, वर्जिल तथा ओविड इस काल के प्रसिद्ध कवि तथा प्लिनी और लिवी प्रसिद्ध इतिहासकार थे। इनकी रचनायें विश्व-साहित्य की बहुमूल्य निधियाँ हैं।

साम्राज्य-विस्तार—आगस्टस बाल्यावस्था से ही दुर्बलगात्र था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुधा वह रुग्ण भी रहता था। अपनी इस शारीरिक हीनता के कारण वह उत्तम सैनिक न बन सका। सीज़र की भाँति न तो उसमें सेनानायक में प्राप्य नित नूतन विजयों के हेतु उत्साह था और न थी उनके प्रति कोई अभिरुचि। यही कारण है कि आगस्टस अपने दीर्घकालीन शासन में रोम साम्राज्य का अधिक विस्तार न कर सका। साम्राज्य-विस्तार के हेतु उसने दो प्रयास किये थे, परन्तु दोनों असफल रहे। पहिला प्रयास था दक्षिणी अरब में और दूसरा जर्मनी में। दोनों ही प्रदेशों में उसकी पराजय हुई। जर्मनी के विरुद्ध युद्ध अधिक विनाशकर सिद्ध हुआ। बात यह थी कि आगस्टस अपने साम्राज्य में जर्मनी को भी समाविष्ट करना चाहता था। अतः उसने अपने पुत्र ड्रूसस को इस कार्य के निमित्त जर्मनी भेजा। प्रारम्भ में आक्रमणकारी को सफलता मिली। रोम साम्राज्य जर्मन सरिता एल्ब तक विस्तृत हो गया। परन्तु शीघ्र ही जर्मन निवासियों ने आगस्टस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उसकी सम्पूर्ण सेना का विनाश कर दिया और पुनः अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। रोम-साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमा फिर राइन सरिता तक खिसक आयी। यद्यपि आगस्टस साम्राज्य का विस्तार न कर सका तथापि वह उसे पूर्ववत् रखने में समर्थ हुआ। यह साम्राज्य उत्तर में इंग्लिश चैनल, राइन और डेन्यूब द्वारा, पूर्व में काले सागर और फुरात सरिता द्वारा, दक्षिण में सहारा मरुस्थल द्वारा, और पश्चिम में अटलाण्टिक सागर द्वारा घिरा था।

चरित्र—४४ वर्ष के दीर्घकालीन शासन के पश्चात् आगस्टस की १४ ई० में मृत्यु हो गयी। रोम-इतिहास में उसका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। पूर्ववर्त्ती शासनों के अन्तर्वर्गीय संघर्षों, परस्पर-विरोधी सैनिक अभियानों, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक अव्यवस्था एवं नैतिक पतन ने मनुष्य के धन-जन की सुरक्षा का विनाश कर दिया था। आगस्टस ने अपने सर्वतोमुखी सुधारों से रोम-साम्राज्य के चिर-संत्रस्त मनुष्य को सुख-शान्ति प्रदान की। यही उसकी सबसे बड़ी देन थी। यदि उसके ४४ वर्षों के शासन में साम्राज्य के क्षत-विक्षत कलेवर की सुश्रूषा न हुई होती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो वह निश्शोणित होकर निर्जीव हो गया होता। शक्ति और सुरक्षा के साथ-साथ इस शासन ने उसे पारिवारिक पवित्रता, नैतिक विशुद्धता और बौद्धिक प्रकृष्टता देने का भी प्रशंसीय प्रयास किया।

अगास्टस कुशल कूटनीतिज्ञ तथा सूक्ष्मदर्शी शासक था। वह काल-गति को पहचानता था। उसने भलीभाँति समझ लिया था कि तत्कालीन मनुष्य की सबसे बड़ी माँग संरक्षा है। अतः वह उसके समक्ष प्रमुखतया संरक्षक के रूप में अवतरित हुआ। मानव-चरित्र का चतुर विश्लेषक होने के कारण वह उसकी समस्त सबलतायें एवं दुर्बलतायें जानता था। रोम-निवासी रूढ़िवादी था। उसे अपनी चिर-सम्मानित परम्पराओं के प्रति मोह था। अतः उनके आमूल परिवर्तन का वह सर्वथा विरोधी था। यही कारण है कि एकतन्त्रवादी होते हुए भी आगस्टस ने रोम की गणतन्त्रात्मक शासन की रूप-रेखा का उन्मूलन न किया। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, उसका शासन गणतन्त्र के वेश में एकतन्त्र था। गिबन महोदय का कथन है कि वह आजीवन छल-छद्म का आवरण पहने रहा। परन्तु तथाकथित छल-छद्म का आवरण आगस्टस की सफल व्यावहारिकता का सर्वोत्तम परिवेश था। उसकी कुशल राजनीतिज्ञता उसकी सैनिक अक्षमता की क्षतिपूरिका थी। उसके निर्बल शरीर में अति प्रखर बुद्धि थी।

आगस्टस प्रारम्भ में क्रूर स्वभाव का था। राज्य-प्राप्ति के निमित्त उसने अपने विरोधियों का अति कठोरता के साथ दमन किया। अपने अवतरण-काल में एण्टानो की सहायता से उसने जिस रक्तरंजित काण्ड का निर्माण किया वह इतिहास के पृष्ठों पर सदैव सिर धुनता रहेगा। बेचारा वृद्ध तथा निरपराध सिसरो भी उसकी क्रूर दृष्टि से न बच सका। उसकी भी हत्या कर दी गयी। परन्तु कालान्तर में राजकार्यों की गम्भीरता ने उसकी चारित्रिक क्रूरता का दमन कर दिया। तदुपरान्त वह हमारे समक्ष सहिष्णु और दयालु के रूप में ही उपस्थित होता है।

आगस्टस का व्यक्तिगत जीवन सरल था। उसके आचार-विचार, वेश-भूषा, अन्न-पान सभी कुछ सरल थे। प्रदर्शनकारिता से उसे अरुचि थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकांश सरल मनुष्यों की भाँति आगस्टस में न्यूनाधिक मात्रा में विचार-संकीर्णता भी थी। वह रोमन जाति को संसार की विजेता एवं सर्वोत्कृष्ट जाति समझता था। इसी से वह विदेशियों एवं निम्नवर्गीय मनुष्यों को रोमन नागरिकों के समकक्ष स्थान न देना चाहता था। इसी प्रकार आगस्टस पुरातन अधिनियमों, धार्मिक क्रियाओं एवं सामाजिक परम्पराओं का भी पोषक था। सीनेट की प्रतिष्ठा को अक्षत्र रखने, प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार और प्राचीन उपासना-विधियों का पुनरुज्जीवन कराने में उसकी पुरातनवादिता भी एक कारण थी।

परन्तु आंशिक लघुताओं के होते हुए भी आगस्टस सम्पूर्ण रूप से महान् था। उसके शासन की सुख-शान्ति ने मनुष्य को अवकाश दिया। इस अवकाश का प्रयोग उसने अपनी संस्कृति के विविध अंगों के उन्नयन में किया। परिणामतः आगस्टस-काल में साहित्य, कला, दर्शन आदि की भी प्रचुर उन्नति हुई। अपनी इन समस्त विशेषताओं के कारण ही इस काल को रोम का स्वर्ण-युग कहलाने का श्रेय उपलब्ध हो सका। इस स्वर्ण-युग का वास्तविक निर्माता है आगस्टस। इसी से इसे आगस्टस-युग भी कहते हैं।

रोम का स्वर्णयुग

आगस्टस का सुख-शान्तिमय शासन-काल बहुरूपा संस्कृति की अभूतपूर्व अभ्युन्नति के रूप में फलित हुआ। साहित्य, दर्शन, धर्म, कला-कौशल आदि रोमन साम्राज्य की चरमोत्कृष्ट विशेषताओं को वहन करते हुए अपने युग की उन समस्त अनुभूतियों को परिलक्षित करते हैं जिनके सामूहिक परिणाम का नाम विकास है। संस्कृति के इन सर्वांगों में रोमन जीवन के कुछ निश्चित निष्कर्ष हैं, और कुछ संघर्षमयी प्रवृत्तियाँ भी। कहीं उनकी सबलतायें हैं तो कहीं दुर्बलतायें भी। परन्तु सर्वत्र आगस्टस का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है जिसकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ने तत्कालीन रोम-निवासियों के कार्य-कलापों की समस्त रूप-रेखाओं को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभावित किया। आगस्टस स्वर्णयुग की आत्मा है।[१] निश्चय ही आगस्टस काल विश्व इतिहास में एलिजाबेथ काल एवं यूनान के पेरिक्लीज काल के समक्ष रखा जा सकता है। प्लिनी ने इसे शांति एवं समृद्धि का काल कहा है "the immense majeasty of the Roman peace" अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने इसकी प्रशंसा में लिखा है—

"No war or battle's sound
Was heard the world around
The idle spear and sheild were high uphung.
× × ×
And king sat still with awful eye
As if they surely knew their sovran Lord was by."
—Milton : 'Ode on the Morning of Christ's Nativity.'

वास्तव में आगस्टस काल ने सभ्यता के सभी क्षेत्रों में एक प्रकार के पुल का निर्माण किया जिसके द्वारा प्राचीन एवं आधुनिक सम्यताओं में सम्बन्ध स्थापित हो सका।[२]

साहित्य—आगस्टस काल के पूर्व ही रोम-काव्य की एक परम्परा चल रही थी। रोम के गणतन्त्रात्मक शासन-काल में ही कुछ ऐसी रचनाओं का निर्माण हुआ जिनमें स्थल-स्थल पर यूनान के स्वर्णकालीन

---

१ The soul of the new era was Augustus.'

२. "Alike in litareture, in art and philosophy and in religion Augustus built the bridge over which many of the best thoughts and the finest models of antiquity found their way into the medieval and thence into the modern world."

H. H. Asquith.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखकों की-सी मौलिकता और कलात्मकता है।[१] ऐसे रचनाकारों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय प्लाटस है। यह नाटककार था। इसने लगभग बीस नाटकों की रचना की थी। इनमें Menaechmi नामक कृति विशेष प्रसिद्ध है। इसी के अनुकरण पर शेक्सपियर ने अपनी Comedy of Errors कृति की रचना की। प्लाटस की रचनाओं पर हेलेनिस्टिक प्रभाव स्पष्ट है। यह अपनी व्यंगात्मक शैली के लिए विशेष प्रसिद्ध था। जिस प्रभावोत्पादक रूप में इसने रोम की अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं का उपहास किया है, वह अति रोचक है। उसकी समस्त रचनायें लेखक की अव्याहत भाषा-गति और सुन्दर सम्वादशालिता के लिए प्रख्यात हैं। परन्तु नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से ये रचनायें दोषपूर्ण हैं। कहीं-कहीं हेलेनिस्टिक प्रणाली के अन्धानुकरण ने उसकी रचनाओं को निर्जीव कर दिया है। दूसरा प्रसिद्ध नाटककार टेरेन्स था। इसकी कृतियों में नाट्यशास्त्र के नियमों का परिपालन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्लाटस की अपेक्षा अधिक है। इसपर आचारशास्त्र के उदात्त सिद्धान्तों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है।

आगस्टस का पूर्वगामी काल नाटकों की भाँति अपनी काव्योन्नति के लिए भी प्रसिद्ध है। गीति काव्य के क्षेत्र में कैटुलस (८४—५४ ई० पू०) सर्वप्रसिद्ध है। उसकी गणना संसार के प्रसिद्ध गीतिकारों में होती है।[२] उसके गीतों में विफल प्रेम की आत्मानुभूति, भग्नाश हृदय की करुणामयी व्यथा और चिरविरही का निश्छल क्रन्दन है। अपने गीतों में उसने अपनी प्रेयसी लेस्बिया को शरीर की आत्मा, हृदय के स्पन्दन और जीवन की चेतना के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यूनानी गीतिकाव्य से प्रभावित होने के कारण अनेक गीत मौलिकता-विहीन हैं।

---

१ 'Several of the early Roman writers showed promise at times of equaling the originality and artistry of the Greeks in the Classical age.'

२ '....One of the greatest lyric poets of all times.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु सर्वोत्कृष्ट कवि ल्यूक्रेटियस था। वह वास्तव में दार्शनिक था। कविता के माध्यम-द्वारा उसने मानवी जीवन के अनेक विषयों पर अपने मत प्रकाशित किये हैं। एपिक्यूरियन दर्शन का जितना स्पष्ट दिग्दर्शन इस कवि की रचना On the Nature of Things में मिलता है उतना किसी अन्य रोमन की रचना में नहीं। ल्यूक्रैटियस देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करता था, परन्तु उसके मतानुसार वे न तो विश्व के निर्माता थे और न संचालक। वे सांसारिक विषयों में हस्तक्षेप न करते थे। संसार की प्रत्येक वस्तु यान्त्रिक विकास के नियमों से स्वतः संचालित है। मनुष्य की देव-भीति तथा नरक-भीति व्यर्थ है। शरीर के विनाश के साथ आत्मा भी नष्ट हो जाती है। अतः दण्ड और पुरस्कार को ग्रहण करने के लिए मनुष्य का कोई भी भाग मृत्यु के पश्चात् अवशिष्ट नहीं रहता। कवि की दृष्टि से भी ल्यूक्रैटियस कम महत्वपूर्ण नहीं है। अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे उसने प्रागैतिहासिक काल का जो चित्र खींचा है वह आधुनिक अन्वेषणों के आधार पर निर्मित निष्कर्षों से बहुत-कुछ मेल खाता है। लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उसने जो-कुछ भी लिखा उसमें उसकी भावना की प्रखरता प्रत्यक्षरूप से परिलक्षित होती है। इसी काव्य-परम्परा के ऊपर स्वर्णकालीन साहित्य खड़ा हुआ है।

रोम का स्वर्ण-युग रोम-साहित्य का भी स्वर्ण-युग है। अपनी अनेक-रूपता, रम्यता और विदग्धता में यह साहित्य रोम-साहित्य के पूर्वगामी युगों में अपनी समता नहीं रखता। इस साहित्य को भी अपने सम्राट् से ही प्रेरणा मिली थी[१]। उसी के चतुर्दिक इसकी अनेक शाखायें परिवर्धित हुई थीं। स्वयं शिक्षित, मानवतावादी और उत्कृष्ट अभिरुचियों का व्यक्ति होने के कारण वह साहित्य-निर्झरिणी के कलकलनिनाद में

१. 'Literally educated a man of broad humanism, refined tastes and a genuine appreciation of literature, as well as a man of great deeds, he was the fitting sponsorer for the Golden Age of Latin Literature.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तरित उन समस्त सन्देशों को समझने की क्षमता रखता था जिनमें मानव-हृदय का उल्लास भी है और विषाद भी, उत्कर्ष भी है और अपकर्ष भी, आशा भी है और निराशा भी।

रोम के स्वर्णयुगीन साहित्य की कतिपय विशेषतायें इस प्रकार हैं :

(१) यह राष्ट्रीय गौरव और संस्कृति की विशाल प्रशस्ति है। बहु-संख्यक कृतियाँ रोम-निवासी के चतुर्दिक उज्जीवन से स्पन्दित हैं। कहीं रोम की महत्ता है तो कहीं जाति की उत्कृष्टता। कहीं सम्राट् की अपौरुषेयता है तो कहीं साम्राज्य की विशालता।

(२) यह साहित्य प्रमुखतया सम्राट् के संरक्षण एवं प्रोत्साहन में परिवर्धित हुआ था। अतः उसमें सम्राट् के यशोगान प्रचुर-मात्रा में पाये जाते हैं। बहुधा साहित्य ने राजसभा के साहित्य का रूप धारण कर लिया है। परिणामतः इस प्रकार के साहित्य में मौलिकता एवं उन्मुक्तता का अभाव है।

(२) रोमन साहित्यकार के हेतु बहुधा उसका अतीत भी आकर्षक है। वह अपनी कृतियों में उस अतीत के भी सुन्दर चित्र उत्कीर्ण करता है जिसमें मनुष्य का जीवन अधिक सरल, सबल और निश्च्छल था। अतः रोम-साहित्य बहुधा अतीतविषयक हो गया है।

(४) यद्यपि यह साहित्य गद्यात्मक भी है, तथापि पद्य की बहुलता और लोकप्रियता स्पष्ट है। बहुधा साहित्यकारों ने पद्यबद्ध महाकाव्यों एवं गेय-काव्यों की ही रचना की।

(५) स्वर्णयुग प्रदर्शनकारिता का युग था। साहित्य-सृजन में साहित्यकार का लक्ष्य किसी आदर्श की स्थापना न होकर बहुधा पाण्डित्य-प्रदर्शन ही होता था। यही कारण है कि वर्जिल ऐसे कतिपय साहित्यकारों को छोड़कर सबकी कृतियों में एक प्रकार की निरुद्देश्यता आ गयी है। प्रदर्शनमूलक होने के कारण रचयिताओं की दृष्टि बहुधा भाषा की उत्कृष्टता पर अधिक रही है, विषय पर कम। कवियों की क्या, स्वयं लिवी जैसा इतिहासकार भी बहुधा अपनी रचना में काव्य-सौष्ठव लाने के निमित्त सत्य की हत्या करता दिखाई देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६) साम्राज्य की समृद्धि एवं विलासिता भी साहित्य के अनेक अंशों में प्रतिबिम्बित हुई है। बहुधा साहित्यकार थोथी वासना का संवाहक है, निम्नस्तरीय तृप्तियों का समर्थक है।[१]

(७) रोम-निवासी के जीवन में तर्कवाद की अपेक्षा रूढ़िवाद और भाग्यवाद की मान्यता अधिक है। यह विशेषता उसके साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होती है।

अपनी इन विशेषताओं को लिये-दिये स्वर्णयुगीन रोम-साहित्य अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। उसमें रोम निवासी की ओजस्विता है और नव-युग की चेतना है। यद्यपि इस युग ने होमर, साफ़ोक्लीज अथवा थ्यूसीडाइडोज के समान किसी ऐसे साहित्यकार का सृजन नहीं किया जिसकी कृतियाँ देश, काल और अभिरुचि की विभिन्नता का अतिक्रमण करती हुई सर्वयुगीन मानव की अमर निधि बन जायँ तथापि इस युग की सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ अपनी भाषा-प्रकृष्टता, संगीत-शीलता, प्रकृति-चित्रण एवं उदार मानवीयता के लिए प्रख्यात हैं।

परन्तु यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि रोम का स्वर्णयुगीन साहित्य यूनान और इंग्लैण्ड के स्वर्णयुगीन साहित्यों की अपेक्षा अति हीन है। इसमें उन साहित्यों की भाँति न मौलिकता है और न सृजनात्मकता। राजकीयता एवं पाण्डित्यप्रदर्शनकारिता के आवर्त में उसकी उन्मुक्तता निमज्जित हो गयी है। कृत्रिमता का उद्वेलन रोम-साहित्य को जीवन से दूर बहा ले गया है। उसमें यथार्थता का अभाव है।

वर्जिल—वर्जिल स्वर्णयुग का सर्वोच्च कवि था। इसका जन्म मण्टुआ नामक ग्राम में हुआ था। ग्राम्य वातावरण में परिपालित होने के कारण इसके मस्तिष्क पर ग्राम्य जीवन की सरसता और सरलता के दृढ़ संस्कार जम चुके थे। इन्हीं संस्कारों के परिणाम-स्वरूप उसकी रचनाओं में ग्राम्य वर्णन अति सजीव बन पड़े हैं। प्रारम्भ से ही अति

---

१. Its only aim is a refined sensuality and its only philosophy of life a degraded epicureanism.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्ययनशील होने के कारण उसने साहित्य एवं दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। इसकी तीन कृतियाँ—एक्लोग्ज़, जिऑर्जिक्स और एनीड—रोम साहित्य की अमर निधि हैं। एक्लोग्ज़ Pastoral है। इसमें ग्राम्य-जीवन का मुख्य चित्रण है। भाषा और शैली की उत्कृष्टता प्रभावोत्पादक है, यद्यपि अशिक्षित ग्रामीणों के मुख से निस्सृत होने के कारण कभी-कभी अस्वाभाविक प्रतीत होती है। जिऑर्जिक्स में कवि हमारे सम्मुख उपदेशक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। कभी-कभी उसकी यह उपदेशात्मकता उसके काव्य के नैसर्गिक प्रवाह में बाधक हुई है। रचना का विषय कृषि-कर्म की महत्ता एवं ग्राम्य जीवन की विशुद्धता है। सम्पूर्ण रचना अपनी संगीतमयी भाषा तथा प्रकृति-विचार के कारण अति आकर्षण-पूर्ण हो गयी है।

परन्तु वर्जिल की तीनों कृतियों में एनीड सर्वप्रमुख है। यह एक महाकाव्य है जिसकी रचना होमरकृत इलियड और ओडिसी नामक महाकाव्यों के अनुकरण पर हुई है। यह रोम-निवासी की राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण है। कवि का उद्देश्य साम्राज्य का गौरव-गान था।[१] कथानक की सुसम्बद्धता, सुन्दर शब्द-चयन एवं वाक्य-संगठन ने इस कृति को अति सजीवता एवं भव्यता प्रदान की है। वर्णन के बीच में बिंधे हुए प्रकृति के चल-चित्र महाकाव्य में कभी आलम्बन का और कभी उद्दीपन का कार्य करते हैं। वास्तव में एनीड महाकाव्य आगस्टसकालीन संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियाँ कितनी सुन्दरतापूर्वक लिखी गई हैं—

"God's temple is the earth, the sea, the air, the sky, the pure in heart. Why seek we further ? All thou dost see, all thou feel is love."

१. 'The Aeneid was in fact an epic of the empire recounting the toils and truimphs of the founding of the State, its glorious traditions and its magnificent destiny.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी कारण से इतिहासकारों ने उसे सरल एवं आकर्षक कवि कहा है। मध्यकालीन ईसाई लेखकों ने उसे महाकवि की संज्ञा दी है। पुनर्जागृति काल के सभी लेखक उससे प्रभावित थे। माइकेल ने उसे न केवल रोमन इतिहास वरन् विश्व-इतिहास का सबसे बड़ा कवि माना है।

परन्तु होमर के काव्यों की भाँति न इसमें गति है और न कल्पना। यूनानी महाकवि ने जिस सरलता से जीवन के उल्लास के सजीव चित्र अङ्कित किये हैं वह एनीड में सर्वथा अदृष्ट है। वर्जिल की शैली में कृत्रिमता है। अतः उसके काव्य में स्वच्छन्द प्रवाह नहीं। परन्तु इन दोषों के होते हुए भी एनीड रोम-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है।[१]

होरेस—रोम का दूसरा महत्वपूर्ण कवि होरेस था। इसकी मुक्तक कविताओं से क्विटेलियन इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने कहा कि 'हमारे मुक्तक-कवियों में सम्भवतः होरेस ही एकमात्र पठनीय है!' यह कवि स्वभावत: अत्यन्त शिष्ट, संयत और सन्तुलित था। इसकी कविताओं मे विनोद है, परन्तु अश्लीलता से परे; सुखाकांक्षा है, परन्तु विलासिता से परे। होरेस ने जातीयता के गीत गाये हैं, परन्तु इस प्रकार नहीं कि उनसे अन्य जातियों की हेयता परिलक्षित हो। वह राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत होते हुए भी विश्व-बन्धुता एवं सार्वभौम एकता का प्रतिपादन करता था। उसकी इन समस्त विचारधाराओं ने उसके काव्य-कलेवर को आपूर्ण अभिषिक्त कर रखा है।

होरेस ने अनेक प्रकार की कविताओं की रचना की। Epodes उसके साहित्यिक जीवन के प्रथम प्रयास हैं। इनमें उसने ग्राम्य जीवन एवं नागरिक जीवन के विविध विषयों पर पद्य-रचना की है। कविता में सर-

---

१. 'Though far below Homer, it is the supreme masterpiece of Latin literature and stands out with the epics of Homer, Dante and Milton, as one of the five greatest in world literature'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लता है, परन्तु परिष्कृति नहीं। अपने व्यंगों (Satires) में कवि ने सामाजिक जीवन के व्यंगात्मक चित्र अंकित किये हैं। इनमें से अनेक अति प्रभावोत्पादक हैं। परन्तु जिस प्रकार की कविता के लिए होरेस विश्वविख्यात है वह हैं उसके Odes। इनमें कवि के उन्मुक्त हृदय का उच्छ्वास है। मानव-जीवन के विषयों—ग्राम्य जीवन, देशभक्ति, सुधार, देवस्तुति आदि—को सुन्दर पदावली में ढाल कर कवि ने अपनी कल्पना का पुटपाक देकर अति मनोहर बना दिया है। कभी वह नागरीय विषमता एवं कार्य-संकुलता से खिन्न होकर ग्राम्य जीवन को शान्ति और सरलता के गीत गाता है तो कभी समाज की भ्रष्टता से क्षुब्ध होकर सदाचारिता के। कभी वह हमारे समक्ष विनोदक के रूप में आता है तो कभी उपदेशक के रूप में। यत्र-तत्र प्रकृति की सुरम्यता का भो अंकन है। कविता के छन्द परिष्कृत हैं। निश्चित रूप से ये Odes रोम-साहित्य के सर्वोत्तम गेय-काव्य हैं। एक विद्वान का कथन है कि होरेस ने जिन सांचों में अपने विचारों को ढाला था वे उसकी मृत्यु पर तोड़ दिये गये।[१] अतः इस प्रकार के गेय-काव्य का पुनः सृजन न हो सका।

परन्तु इन विशेषताओं के साथ-साथ इन Odes में कतिपय दोष भी हैं। बहुधा विषय की पुनरावृत्ति हो गयी है। एक ही विषय पर एक ही प्रकार के अनेकानेक पद बहुधा खेदजनक होते हैं। छन्दों में परिष्कृति है, परन्तु आयासजन्य। अतः अनेक स्थलों पर कविता की स्वच्छन्द गति में अवरोध आ गया है। वर्णन बहुधा हलके हैं। उनमें गम्भीरता का अभाव है। परन्तु अपने विचारों में यूनानी भावों से प्रभावित होने के कारण होरेस एपीक्यूरियन आनंदों तथा स्टोइक बहादुरी में विश्वास करता है। उसके अनुसार सांसारिक सुख दुःखों की अनुपस्थिति नहीं वरन् आत्मसंयम में निहित है। इस उद्देश्य को होरेस ने अपने निम्न पद्य में प्रस्तुत

---

[१] The moulds which he cast his thoughts were broken at his death.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है—

"Be brave in trouble meet distress,
with dauntless front but when the gale,
too prosperous blows,
be wise no less, and shorten sail".

उसके समकालीन समालोचक क्विरिलियन ने उसे पढ़ने योग्य कवि कहा है। अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेजी कवियों ने,उसकी महत्ता वर्जिल से अधिक बताते हुए उससे प्रेरणायें ली हैं। जैसे होरेसवेलपोल, बर्क, पिट, फॉक्स, ग्लैडस्टन इत्यादि। उसकी महानता के प्रतीक उसके स्वयं के वाक्य हैं—

"I have built me a monument more lasting than bronze".

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त होरेस ने तीन अन्य ग्रन्थों की भी रचना की—

(१) संप्रदायहीन कविताएँ
(२) काव्य-कला
(३) एपिस्टिल्स

इनमें वर्ग-विहीन सभी सामजिक दोषों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रणयगीत—सतत समृद्धि, अशान्ति, संघर्ष और युद्ध का सामूहिक प्रभाव नैतिकता पर अच्छा नहीं पड़ता। प्रायः समाज विपथ हो जाता है। जीवन के उच्च मूल्यों का ह्रास हो जाता है। बौद्धिक गम्भीरता के स्थान पर विलासिता एवं क्षुद्र सुखाकांक्षा अपना घर बना लेती हैं। इस प्रकार की सामाजिक तथा मानसिक स्थिति का प्रतिबिम्ब हमें रोम-साहित्य के प्रणय-गीतों (Love Elegy) में मिलता है। इनमें समाज की अन्तर्वर्तिनी सभी कलुषित मनोवृत्तियाँ उभड़ आई हैं। प्रणय के नाम पर जिस अव्याहत वासना का उद्दाम प्रदर्शन किया गया है उसने काव्य के

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन सभी आधार-तत्वों की हत्या कर दी है जिनसे मानव का उन्नयन होता है। विषय अति गर्हित हैं। निम्न कोटि का नायिका-वर्णन और उन्मुक्त प्रेम का प्रदर्शन कभी-कभी अपनी उच्छृंखलता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। हाँ, भाषा और शैली अलंकरण-प्रधान होने के कारण कहीं-कहीं पर आकर्षक हो गयी है। परन्तु अभिराम आवरण में परिवेष्ठित कल्मषमयी स्वैरिणी उस अभिजात कुलवधू के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकती जिसका अन्तःसौन्दर्य पद-पद पर पुरुष के महाप्राणों में कल्पना एवं चेतना का संचार करता हुआ मंगलमयी सृष्टि की आकांक्षा करता है।

इस कोटि के प्रारम्भिक कवियों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं एलिम्बियस टिविलस और सेवस्टर्स प्रापर्टियस। इनके अधिकांश प्रणयगीतों की नायिकायें निम्नवर्ग की प्रतिनिधि हैं। वासनामूलक प्रणय, प्रणय के निमित्त प्रतियोगिओं की कलह, प्रवंचना, घृणा आदि विषय ही इन कवियों के आकर्षण हैं। हाँ, जहाँ कहीं इन कवियों का उज्ज्वलांश प्रबल हो उठा है वहाँ विशुद्ध एवं संयत प्रणय के भी चित्र मिलते हैं। इन कवियों की भाषा-प्राञ्जलता एवं शैली-लालित्य सर्वथा प्रशंसनीय है।

रोम के प्रणयगीतकारों में सर्वप्रमुख है ओविड, यद्यपि वह अपने युग के प्रधान दोषों से मुक्त नहीं। उसकी भी अनेक रचनायें निम्नस्तरीय प्रणय-विषयक हैं जिनकी निरुद्देश्यता कविता को जर्जरित कर देती है। आदर्शविहीन होने के कारण ये कृतियाँ राष्ट्रोपयोगी नहीं हैं। परन्तु कुछ रचनायें अपने कल्पनाविहार एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण के कारण अति ललित बन पड़ी हैं। कवि का हास-परिहास मनुष्य के कार्यसंकुल जीवन में सुखद क्षण प्रदान करता है। उसकी भाषा-प्रांजलता तथा शैली-रोचकता मनोहारिणी है। ओविड की सर्वप्रथम कृति मेटामार्फोसिस है। इसमें कवि ने अतीत के इतिहास, कथानकों एवं जनश्रुतियों के अपार भण्डार से विषय ग्रहण किया है और अपनी कवित्व-शक्ति से उन्हें प्रणय-गीतों में परिणामतः यह कलाकारों तथा लेखकों के हेतु प्राचीन आख्यानों की निधि

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन गयी ।[१] इसके अतिरित उसकी पाँच अन्य रचनायें भी उल्लेनीय हैं—

(१) **प्रणय-कला**—जिसमें सुन्दरियों के जीतने का उपाय बड़े मार्मिक ढंग से किया है ।

(२) **एमोर्स**—जिसमें रोम की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरतम लड़की कार्निया का सरल शैली में वर्णन है ।

(३) **हरोयड्स**—यह सामाजिक इतिहास की एक झाँकी प्रस्तुत करता है ।

(४) **प्रणय-सुरक्षा**

(५) **फास्टी**—जिसमें रोम के त्योहारों का वर्णन है,।

जैसा कि कहावत प्रचलित है आगस्टस के द्वारा उसकी पुत्री के साथ प्रणय स्थापित करने के उपलक्ष्य में वह देश-निष्कासित किय गया था उसके उपहार में ओविड में दो पत्र लिखे जो Letters from Pontus एवं Poems of Sadness के नाम से विख्यात हैं । इनकी शैली चॉसर, लोकेशियो एवं मिल्टन इत्यादि से मिलती है ।

गद्य—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, आगस्टस-कालीन साहित्य पद्य-प्रधान है । गद्यात्मक रचनाओं की ओर साहित्यकारों ने अधिक ध्यान नहीं दिया, यद्यपि उनका सृजन आगस्टस के पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था । सिसरो ने गद्य-शैली के विकास में पर्याप्त योग दिया । वह अपने काल का सर्वोत्कृष्ट गद्य-लेखक था । अनेक विद्वान् उसे योरप के गद्यात्मक साहित्य का जन्मदाता कहते हैं । वह अपनी भाषा-प्रांजलता और प्रवाह-पूर्ण शैली के लिये प्रख्यात है । उसका समकालीन जूलियस सीज़र भी गद्य-लेखक था । अपनी गद्यबद्ध 'कमेण्टरी' में उसने अनेक युद्धों के वर्णन किये हैं ।

---

१. Ever since its publication, his Metamorphoses has been even more than Homer, a mine of ancient legend for artists and writers.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्णयुग के गद्य लेखकों में लिवी सर्वप्रसिद्ध है। वह इतिहासकार था। उसका इतिहास-ग्रन्थ (History of the Roman Republic) अतीव काव्यात्मक है। यही कारण है कि इसे 'गद्यात्मक एनीड' (Aeneid in prose) की संज्ञा दी गयी। वास्तव में इस ग्रन्थ की वर्णन-शैली, भाषा-परिष्कृति, चरित्र-चित्रण एवं वक्तृता-प्रवाह इतिहास-रचनाओं में अद्वितीय हैं। परन्तु विशुद्ध इतिहास-रचना की दृष्टि से यह ग्रन्थ दोषपूर्ण है। लेखक को सबल राष्ट्रीयता एवं स्वदेशनुरक्ति उसके कर्तव्य में बाधक हुई है। रोम का इतिहास लिखने के स्थान पर बहुधा वह उसका गुणगान करने लगता है; देश के अभावों, त्रुटियों एवं दोषों के निराकरण के निमित्त उपदेश देने लगता है। पुनः, अपने वर्णनों में उसने समालोचनात्मक बुद्धि से कार्य नहीं किया। बहुधा जिन्हें वह विशुद्ध इतिहास समझ बैठा है वे एकमात्र असत्य अथवा अर्धसत्य जनश्रुतियाँ और किम्वदन्तियाँ थीं। परिणामतः उसके ग्रन्थ में थ्यूसीडाइडीज और पोलोबिअस की भाँति न वैज्ञानिक दृष्टिकोण है और न ऐतिहासिक सत्य। लेवी सत्य की अपेक्षा शैली की ओर अधिक सचेत था।[१] उसका ग्रन्थ इतिहास के रूप में नहीं वरन् गद्य-काव्य के रूप में अधिक प्रतिष्ठित है। ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त लेवी में कुछ उपन्यास भी लिखे जिसमें रोम की तत्कालीन सामाजिक कुंठाओं का नग्न चित्रण मिलता है। एक स्थल पर वह स्वयं उच्च वर्ग के नागरिकों के व्यभिचार से क्षुब्ध होकर कहता है—

"Our vices have attained to such a height, of enormity that we can neither endure, the burden of them nor the sharpness necessary to correct them."

गद्यलेखक के रूप में लेवी की जो ख्याति हुई उसने गद्य के विकास को सत्वरता प्रदान की। आगस्टस-कालीन गद्य-परम्परा सम्राट् की

---

१. As a historian Levy is more interested in style than he is in truth.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत्यु के पश्चात् भी अक्षत रही। लिवी के पश्चात् रोम इतिहासकारों में टेसीटस (५५ ई०-११७ ई०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसने अपने ग्रन्थ जर्मेनिया में जर्मन जाति के जीवन की सरलता और कर्मठता का वर्णन करते हुए रोमन जाति की सुख-लोलुपता और विलासिता की निन्दा की है। उसके दूसरे ग्रन्थ 'एनल्स' में रोम-सम्राटों के जीवन-वृत्त हैं जो वैभवशालिता, विलासिता, हिंसा-प्रतिहिंसा, षड्यन्त्र, प्रवंचना आदि गुण-दोषों से परिवेष्ठित हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन ग्रन्थों का विशेष महत्व नहीं है। इनमें न सत्य-असत्य-निरूपण है और न समालोचनात्मक विवरण। पग-पग पर अवसर ढूँढ़कर लेखक उपदेश देने लगता है और विशुद्ध ऐतिहासिकता निष्क्रिय होकर बैठी रहती है। परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से ये ग्रन्थ गद्य-साहित्य की बहुमूल्य कृतियाँ हैं। इनमें कवि ने उपदेशात्मक, व्यंगात्मक और श्लाघात्मक शैलियों का अच्छा विकास किया है। उदाहरण के लिए एक श्रेष्ठ व्यक्ति के युद्ध से रोम की महानता पर व्यंग करते हुये यह कहवाया कि—"They create a wilderness and call it a peace" विचारपूर्ण शब्द-चयन और वाक्य-संगठन ने इन ग्रन्थों के लालित्य को और भी बढ़ा दिया है। अन्य गद्यात्मक रचनाओं में सूटोनिअस की Lives of Caesars, प्लूटार्क की लाइफ (Life) और लूसियन के दार्शनिक सम्वाद तथा निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार पाम्पेयस ट्रोगस जो लिवी का समकालीन था मेसीडोन के फिलिप का इतिहास लिखा। वेरियस फ्लेकस ने भी अनेकों रचनाएँ कीं। पेट्रोनियस, पर्सियस, क्विंटिलियन, अपोलियस, एवं मार्शल आदि की भी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इन सभी में सामाजिक दशाओं का चित्रण एवं उनके सुधार के उपाय बताये गये हैं। कहीं मनोरंजक कहानियों के माध्यम से तो कहीं जवाबपूर्ण उत्तरों, हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण उदाहरणों से। हास्यपूर्ण रचनाओं में जुवेवल सर्वोच्च था जिसने स्टोइक दर्शन के प्रभाव से अनेकों बौद्धिक रचनाएँ कीं।

धर्म—प्रारम्भ में रोम-निवासी अत्यन्त धर्मालु था। प्रायः प्रत्येक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश-निवासी की भाँति वह भी प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों की उपासना करता था। उसका धर्म बहुदेववादी था। बहुदेववाद की इतनी अधिक महत्ता थी कि प्रायः प्रत्येक नगर का एक अपना अधिष्ठाता देवता था। रोम-निवासी ने अपने इन देवो-देवताओं को मन्दिरों में प्रतिष्ठित किया था। रोम में वेस्ता का मन्दिर सर्वप्रमुख था। अपने देवी-देवताओं को सन्तुष्ट करने के निमित्त वह अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करता था। इन अनुष्ठानों की विशिष्ट क्रियायें थीं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति परिचित न था। अतः रोम ने पुजारियों को इनकी शिक्षा देने के निमित्त भिन्न-भिन्न स्थानों में अनेक कालेजों की स्थापना की थी। इनमें धर्म के सिद्धान्तों, क्रिया-कर्मों आदि का रूप निर्धारित किया जाता था तथा अनेक प्रकार के शकुन-अपशकुनों के रहस्यों का उद्घाटन किया जाता था। प्रत्येक कालेज का अध्यक्ष Pontfex Maximus कहलाता था। ये तथा देश के विशेषज्ञ पुजारी जनता की दृष्टि में अत्यधिक सम्मान्य थे। वह अपने समस्त कार्य इन्हीं के बताये हुए शुभ अवसरों पर करती थी। साधारणतः जनता ही क्या, देश के बड़े-बड़े विद्वानों एवं नरेशों को भी शकुनापशकुन में आस्था थी। ये भी पुरोहितों की क्रियाओं एवं भविष्यवाणियों से लाभ प्राप्त करते थे।

आगस्टस के पूर्व की दीर्घकालीन अशान्ति ने मनुष्य के मस्तिष्क के ऊपर भारी दुष्प्रभाव डाला था। समाज के शोषण एवं शासकों की अयोग्यता ने उसे नितान्त निराश कर दिया था। वह निराशावादी और भाग्यवादी बन गया था। धर्म से उसे अरुचि हो गयी थी, क्योंकि वह उसके धन-जन की सुरक्षा न कर सका था, जीवन में शान्ति न दे सका था। अब उसने दर्शन की शरण ली।

आगस्टस स्वयं पुरातन धर्म, रूढ़ियों एवं परम्पराओं का पोषक था। इनकी रक्षा में वह साम्राज्य की भी रक्षा देखता था। अतः उसने पुरातन धर्म का पुनरुद्धार करने का प्रबल प्रयास किया। प्राचीन भग्न मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ, नवीन का निर्माण। साम्राज्य के प्राचीन पुजारी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षण के कालेज फिर से खोल दिये गये। रोम के देवताओं—अपालो, मार्स, जुपिटर, मर्करी और हेराक्लीज आदि—की पुनः प्रतिष्ठा हुई। समाज में फिर से धार्मिक उत्सवों एवं अनुष्ठानों का प्रचलन हुआ। यही नहीं, रोम-निवासी की उदीयमाना धर्मनिष्ठा ने स्वयं आगस्टस को भी अर्धदेव का रूप दे डाला। वह ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक एवं प्रकाश-मूर्ति समझा जाने लगा। सामान्य मनुष्य की कल्पना में रोम की समृद्धि उसी का प्रकाश थी। ऐसी परिस्थिति में आगस्टस की भी उपासना होने लगी। स्थान-स्थान पर उसकी मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई। उसके सम्मान में उत्सवों का प्रादुर्भाव हुआ। आगस्टसमत (Augustan Cult) स्वर्णयुग की एक महत्वपूर्ण देन हैं। इसने सम्राट् के प्रति जनता के हृदय में अन्ध-भक्ति उत्पन्न कर साम्राज्य को स्थैर्य प्रदान किया।

आगस्टस-कालीन रोम-निवासी समष्टिवादी था। उसका विश्वास था कि व्यक्ति राज्य का एक अङ्ग-मात्र हैं। उससे पृथक् व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं। और स्वतः राज्य दैवी-शक्ति से संचालित हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के इस दैवी शक्ति के प्रति कुछ कर्तव्य है। बस, रोम-निवासी का धर्म इन्हीं कर्तव्यों का धर्म था परिणामतः वह अति सरल, सुगम और सुबोध था। उसमें गहन विषयों के लिये कोई स्थान न था रोम में धर्मसम्बन्धी गहन विषयों की विवेचना तो साम्राज्य के अन्यान्य अधीनस्थ देशों की देन है।

साम्राज्य-स्थापना के परिणामस्वरूप रोम-निवासी का बहुदेववाद और विस्तृत हो गया। उसके धर्म में अनेक विदेशी देवताओं की भी प्रतिष्ठा हो गयी। विशेष उल्लेखनीय है फ्रीजिया की मातृदेवी और मिस्र की आइसिस तथा ओरिसिस। परन्तु विदेशीय धर्मों में सबसे अधिक सम्मान्यता मिली फारस के मिथ्-मत को। इस मत की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। यह धर्म रोम की सैनिक प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल था। यही कारण है कि वह साम्राज्य में खूब फैला। अहुर्मज्दा और अहिर्मन का जो द्वन्द्व इस धर्म की आधार-पीठिका है वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तव में सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ के निरन्तर संघर्ष का सांकेतिक रूप है। इसने रोम की सैनिक मनोवृत्ति का रंजन करते हुए उसे सत्य एवं शिव के उन्नयन के निमित्त प्रोत्साहित किया था। मिस्र-मत की आशावादिता और सदाचारिता ने रोम के नैतिक स्तर को ऊँचा करने का प्रयास किया। परन्तु इसकी प्रतिष्ठित रहस्यमयी परम्पराओं ने रोम-निवासी की धार्मिक कल्पना को अधिक रूढ़िवादी और अनुष्ठानमूलक बना दिया। अनेक प्रकार की धार्मिक क्रियाओं ने रोम के धर्म को एक गूढ़ एवं रहस्यमय रूप देना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मिस्र धर्म का प्रभाव आगस्टस के काल में इतना अधिक परिलक्षित नहीं होता जितना उसके पश्चात्। यही बात रोम के दो अन्य विदेशीय धर्मों—यहूदी और ईसाई धर्मों—के विषय में भी कही जा सकती है। यद्यपि रोम में इन दोनों धर्मों का प्रवेश आगस्टस-काल में हो चुका था तथापि इनका प्रसार प्रथम शताब्दी के पश्चात् ही हुआ।

आगस्टसकालीन रोम धर्म के लौकिक पक्ष में विविध अन्ध विश्वासों एवं रहस्यमयी क्रियाओं का समावेश था। स्वयं सम्राट् इनमें आस्था रखता था। उसके द्वारा पुनरुज्जीवित कालेजों के पुजारियों का विशेष कार्य भाँति-भाँति के स्वप्नों, शकुनापशकुनों एवं संकेतों का अर्थ-बोध कराना था। देव-सन्तुष्टि के हेतु अनेक प्रकार के धार्मिक उत्सवों की प्रतिष्ठा की गयी थी। इनमें विविध रूपों में पूजा-उपासना, याज्ञिक क्रियायें एवं नृत्य-संगीतादि समाविष्ट थे। इनमें गूढ़ रहस्यात्मकता समझी जाती थी।

साधारणतया स्वर्ण युग का धार्मिक वातावरण सहिष्णुतापूर्ण था। परन्तु यदि कोई स्वदेशीय अथवा विदेशीय धर्म अथवा धार्मिक कर्म राष्ट्रीयता के हित के प्रतिकूल समझा जाता था तो अवश्य उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। उदाहरणार्थ, रोम में वेकस की पूजा बन्द कर दी गयी, एशिया माइनर की देवी साईबील (Cybele) के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और यहूदियों को रोम से निकाल दिया गया। परन्तु फिर भी कोई विरोधी सम्प्रदायानुयायी व्यक्तिगत रूप में अपने धार्मिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुष्ठानों को करना चाहता था तो उसे नगर के मैजिस्ट्रेट अथवा सीनेट के अनुमति मिल सकती थी। परन्तु ये धार्मिक अनुष्ठान पांच से अधिक व्यक्तियों की समष्टि में नहीं किये जा सकते थे।

विदेशीय धर्म—विदेशीय मतों में ईसाई धर्म ने रोम-साम्राज्य को विशेषतया प्रभावित किया यद्यपि यह प्रभाव स्वर्ण युग के पश्चात् ही परिलक्षित होता है। सुविधा की दृष्टि से यहाँ इस विश्वव्यापी धर्म पर विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है। इस धर्म के संस्थापक ईसा मसीह थे जिनका जन्म आगस्टस-काल में हुआ था। परन्तु उसके उत्तराधिकारी टिबेरियस ने इन्हें प्राणदण्ड दिया। ईसा की मृत्यु के पश्चात् उनका धर्म शनैः शनैः जनता में प्रसारित होता रहा। इसकी आशावादिता एवं विश्व-बन्धुता दीन-हीन जन-समूह के लिये एक विशेष आकर्षण बन रही थी। परन्तु यह धर्म सिद्धान्ततः रोम-सम्राट् को देव-रूप में ग्रहण करने से इनकार करता था। पुनः अहिंसावादी होने के कारण ईसाइयों ने सेना में भरती होना भी छोड़ दिया। अतः अनेक रोम-सम्राट् इस धर्म में देशद्रोहिता एवं अराष्ट्रीयता के बीज देखते थे और इसके अनुयायियों का उत्पीड़न करते थे। ऐसे सम्राटों में सर्वप्रथम नीरो था जिसने बहुसंख्यक ईसाइयों का बध करा डाला था। अन्य विरोधी सम्राटों में डॉमीशियन, ट्राजन और ऑरेलियस थे परन्तु इस धर्म का सबसे दृढ़ विरोध डिओक्लिशियन ने किया। उसने अपनी हिंसात्मक नीति से इस धर्म का सर्वथा मूलोच्छेदन करने का भीषण प्रयास किया। वह सफल न हो सका। दमन-नीति प्रायः प्रायः प्रतिकूल परिणाम उत्पन्न करती है। ईसाई-धर्म उपर्युक्त सम्राटों के बावजूद भी प्रसारित होता रहा। कन्स्टेण्टाइन (३२३-३७ ई०) के समय तक यह धर्म पर्याप्त रूप से सुदृढ़ हो गया था। अतः अपने साम्राज्य को बल देने के हेतु इस सम्राट ने कूटनीतिक दृष्टि से ईसाई धर्म के साथ सन्धि कर ली। Edict of Milan के द्वारा इसके अनुयायियों के प्रति सहिष्णुता एवं उदारता घोषित की गयी। रोम-साम्राज्य में ईसाई धर्म की यह सर्वप्रथम राजकीय मान्यता थी। सम्राट्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जूलियन (३६१—६३) ने पुनः इस धर्म का मूलोच्छेद करना चाहा। परन्तु उसके समय तक इसाई धर्म पर्याप्त रूप से सबल हो गया था। उसका विनाश दुष्कर था। उसे तो विश्व-धर्म होना था।

अन्य विदेशीयधर्म जो रोम-साम्राज्य में प्रसारित हुआ, वह था यहूदी धर्म। फिलिस्तीन के ऊपर रोम की आधिपत्य-स्थापना के पश्चात् बहु-संख्यक यहूदी रोम-साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में जा बसे। कहा जाता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में केवल मिस्र में इनकी संख्या दस लाख और एशिया माइनर में दो लाख थी। ये रोम साम्राज्य में जहाँ कहीं गये वहाँ अपने धार्मिक विचार एवं क्रियाएँ भी लेते गये। इनके प्रभाव में बहु-संख्यक रोम-निवासियों ने यहूदी धर्म स्वीकार कर लिया था। पर रोम साम्राज्य में यहूदो धर्म का प्रसार विशेषतया आगस्टस की मृत्यु के पश्चात् ही हुआ। शीघ्र ही यह धर्म रोम-सम्राटों की दृष्टि में खटकने लगा। उन्होंने इसे राष्ट्रीयता एवं हितों के विरुद्ध समझा। क्योंकि यहूदियों ने भी रोम-सम्राट् को ईश्वर रूप स्वीकार करने, न्यायालयों में शपथ लेने तथा सामाजिक उत्सवों भाग में लेने से इनकार कर दिया था। अतः इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अब यहूदी धर्म-ग्रहण अवैध घोषित कर दिया गया।

दर्शन—रोम-निवासी दार्शनिक न था। उसकी सांसारिक एवं व्यावहारिक बुद्धि ने अनन्त, असीम और अनिश्चित वस्तुओं के अन्वेषण की अपेक्षा अपनी दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओं के विवेचन एवं सृजन में ही अधिक रुचि प्रदर्शित की थी। आत्मा-परमात्मा एवं सृष्टि के गूढ़ विषयों के रहस्योद्घाटन के निमित्त उसके पास समय नहीं था। यही कारण है कि रोम ने किसी भी मौलिक दार्शनिक को उत्पन्न न किया। उसका दर्शन या तो धर्म था या आचार-शास्त्र, या फिर विदेशीय दर्शनों का परिवर्तित, संशोधित, परिवर्धित अथवा संमिश्रित रूप।

रोम में आयी हुई विदेशीय दर्शन-धाराओं में विशेष उल्लेखनीय हैं एपिक्यूरियन और स्टाइक विचार-धारायें। परन्तु रोम की दार्शनिक मनो-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृत्ति स्टाइक विचार-धारा में अधिक रमी है। स्टाइक मत सार्वभौमता और अनुशासनशीलता पर विशेष जोर देता था। अतः यह रोम-निवासी की साम्राज्यवादी, सैनिकवादी एवं कर्तव्यशील प्रवृत्ति के अनुकूल था। इसकी लोकप्रियता के समक्ष एपिक्यूरियन विचार-धारा की प्रगति अवरुद्ध हो गयी।

रोम-निवासी का जीवन समष्टिगत था। उसकी राजनीति, उसका धर्म, साहित्य, सभी समष्टि के क्रोड़ में भ्रमण करते थे। सबका लक्ष्य एक मात्र व्यक्ति की नहीं वरन् समष्टि को अभ्युन्नति करना था। पुनः रोमन क्रियाशील था, कर्मठ था; अपने पुरुषार्थ में विश्वास करता था। ऐसा परिस्थिति में एक मात्र आत्मोद्धार में प्रवृत्त व्यक्तिगत सुखाकांक्षा में आस्था रखने वाले एपिक्यूरियन विचारों में उसकी क्या रुचि हो सकती थी? अतः उसने एपिक्यूरियन मत का परित्याग कर स्टाइक मत का आश्रय लिया और इसी में अपने जोवन की सुख-शान्ति ढूँढ़ी। स्वर्ण-कालीन स्टाइक विचार-धारा पूर्वगामो ज़ेनोसम्प्रदाय की विचार-धारा की अपेक्षा अधिक विस्तृत और विकसित थी। यह धर्मप्रधान होने के कारण ज़ेनो की विचार-धारा से बहुत कुछ भिन्न भी हो गयी थी।

रोमन स्टाइक मत विश्व में सर्वशक्तिमान् ईश्वर के नियन्त्रण पर विश्वास करता था। यद्यपि विश्व में सत् और असत् दोनों हैं तथापि उसके निर्देश से अन्त में प्रतिष्ठा सत् की ही होगो। मनुष्य को विधि-विधान एवं ईश्वरेच्छा की मान्यता स्वीकार कर लेनी चाहिए। परन्तु दैवी-शक्ति का ही अंश होने के कारण मनुष्य निर्बल नहीं है। वह पूर्व-द्वारा निर्धारित विश्व-व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित कर अपना उन्नयन कर सकता है। उसे सम-विषम सभी परिस्थितियों में सदाचारित का पालन करना चाहिए। उसके मत में भी सन्देहात्मक वस्तुओं में अन्तःकरण को प्रमाण माना गया। यह मत आचार- नियमों के इतना अधिक परिपूर्ण है कि अनेक विद्वान् इसे दर्शन अथवा धर्म न मानकर आचार-शास्त्र (Ethics) मानते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम का स्टाइक मत आत्मा के विषय में अनिश्चित है। कभी वह उसे नश्वर कहता है और कभी अनश्वर। कहीं-कहीं उसने प्रवृत्तिमार्ग का प्रतिपादन कर सदाचारिता के साथ जीवन-यापन की शिक्षा दी है, परन्तु कहीं-कहीं पर सांसारिक जीवन को बन्धनमय एवं यातनामय समझते हुए आत्म-हत्या द्वारा उससे मुक्तिप्राप्ति की भी सम्मति दी गयी है। यद्यपि स्टाइक मत मोक्ष को ही परम ध्येय समझता है तथापि इसे प्राप्त करने के हेतु इसने किसी निश्चित मार्ग का, साधन का प्रतिपादन नहीं किया है। इसीलिये एक विद्वान् के शब्दों में 'यह एक निष्फल मत था।'[१] परन्तु यह आलोचना अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होती है। दर्शन के रूप में स्टॉइक मत ने रोम-साम्राज्य की अधिक अभ्युन्नति न की हो, परन्तु सदाचार के उन्नयन में उसका आभार स्वीकार करना ही होगा। इसके सार्वभौमता के सिद्धान्त ने जातीय द्वेष के शमन तथा दासों की दशा-सुधार में योग दिया। विभिन्न देवताओं को परम शक्ति के विभिन्न रूप मान कर इसने एकेश्वरवाद और बहुदेववाद में सामंजस्य स्थापित किया तथा परम शक्ति द्वारा संचालित विधि-विधान के समक्ष मनुष्य को नतमस्तक होने की शिक्षा देकर इसने रोम-निवासी में आज्ञाकारिता और अनुशासनशीलता के गुणों का आरोपण किया। प्रसिद्ध स्टॉइक विद्वान् सेनेका (३ ई० पू०—६३ ई०) की आचारवादिता के अनेकानेक सिद्धान्तवाक्य (यथा 'जैसा हम पाना चाहते हैं वैसा ही हमें दूसरों को देना चाहिए', 'प्रेम में भय नहीं हो सकता') आज भी विश्व में सम्मान्य हैं। इस दार्शनिक के अतिरिक्त एपिक्टेटस (६० ई०—१२० ई०) और सम्राट् आरेलियस (ई० १२१—१८० ई०) विशेष उल्लेखनीय हैं।

ग्नास्टिसिज्म—पूर्वी देशों तथा यूनान के प्रभाव के अन्तर्गत रोम में नये प्रकार के दर्शन का आगमन हुआ। यह दर्शन ग्नास्टिसिज्म के नाम से प्रख्यात है। आगस्टस के शासन-काल में यह बीजरूप में रोम में विद्यमान था। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् से दूसरी शताब्दी तक इसका

[१]. It was a barren gospel.'—Barrow.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेष परिवर्धन हुआ। इसके मतानुसार सत्य तर्क के द्वारा प्राप्य नहीं। उसे ग्नास्टिसिज्म की रहस्यात्मक क्रियाओं के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि इस मत में अनेक प्रकार की क्रियाओं, अनुष्ठानों एवं संस्कारों का सृजन किया गया था। इन्होंने रोम निवासी की विचार-धारा को प्रभावित करके उसमें रहस्यात्मकता के अंश लाने में योग दिया। आगस्टस की मृत्यु के पश्चात् इटली के बहुत से निवासी इस मत के पोषक हो गये।

एपीक्यूरियनिज्म—यह रोमन दर्शन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग था इसके अनुयायी साधारणतया उच्चवर्ग के धनी लोग ही थे। इसका सबसे महान प्रवक्ता ल्यूक्रेटस था जिसने तत्कालीन सामाजिक प्रगति का दर्शन प्रस्तुत किया।

नियो पाइथागोरियनिज्म—इस दर्शन पर पोसीडोनस एवं सिसेरो का प्रभाव पड़ा था। इसके अनुयायी उच्चवर्ग एवं मध्यमवर्ग के सभी लोग थे। वास्तविक रूप में यह अनेकों पूर्वी विचारों का यूनानी विचारों से सम्मिश्रण था। इसके अनुसार विश्व पदार्थ एवं आत्मा में विभाजित है। सभी जीवन संयुक्त है और निरन्तर जन्म तथा मृत्यु क्रिया द्वारा चलता रहता है। ईश्वर एवं मनुष्य सभी अमर हैं दोनों में अन्तर केवल श्रेणी का है। आत्मा दो प्रकार की है—

(१) बुरी आत्मायें जो 'diamon' कहलाती हैं तथा जो जीवों को सताती हैं।

(२) अच्छी आत्माय जो Genii कहलाती हैं तथा ज्ञान प्रदान करने वाली हैं।

इस मत के अनुसार ज्ञान केवल उद्धार का हेतु है जो आत्म-संयम, नियम-पालन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

नियो प्लेटोनिज्म—यह यूनानी दार्शनिक विचारधारा का अंतिम स्वरूप है जिसमें सर्वोच्च ज्ञान तर्क को माना जाता है। विश्व तर्क के द्वारा समझा जा सकता है तथा तर्क से ही अच्छे एवं बुरे विचार उत्पन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो सकते हैं। इस मत का प्रणेता अमोनियस सकास था जो जीवन के प्रारंभिक वर्षों में सिकंदरिया में डाक-कर्मचारी था। परन्तु बाद में अरस्तू एवं प्लेटों की रचनाओं से प्रभावित होकर एनीड्स Enneads नामक पुस्तक लिखी। यह यूनानी एवं पूर्वी दर्शन का संयुक्त रूप है। इसमें ईश्वर के साथ तादात्म्य चार अवस्थाओं में प्राप्त करना बताया गया है। उसका अनुयायी पारफ़िरी था जिसने विश्व-बंधुत्व की कल्पना की। उसके विचार में ईश्वर अवाच्य है। अलेखनीय है उसका ज्ञान केवल आनंद में ही मिल सकता है। आनंद देशभक्ति तथा विचारों का संग्रह है।

विज्ञान—मौलिकता का जो अभाव रोम के दर्शन में दृष्टिगत होता है वही उसके विज्ञान में भी। यह अत्यन्त आश्चर्य एवं खेद का विषय है कि यूनान की अमूल्य वैज्ञानिक निधि के समक्ष होते हुये भी रोम-निवासी ने उसमें कोई अभिरुचि न दिखायी। इस उदासीनता का कारण उसकी मनोवृत्ति एवं परिस्थिति में निहित है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रोम-निवासी स्वभावतः व्यावहारिक-बुद्धि था। विज्ञान अनुसंधान-अन्वेषण की अपेक्षा करता है और अनुसंधान-अन्वेषण उस अन्तर्वेधिनी जिज्ञासा की जो असीम और अनन्त के आवरण को विदीर्ण कर उसके वास्तविक रूप को देखने का चिर-नूतन प्रयास करे। परन्तु रोम-निवासी विद्या एवं जिज्ञासा से विहीन था। उसकी व्यावहारिक बुद्धि क्षितिज के इस पार ही रमी थी। उस पार का अन्वेषण उसकी दृष्टि में मृगमरीचिका-मात्र था। अपने पार्थिव विषयों—राजनीति, कानून, सैनिक-संगठनादि—को छोड़कर वह उस रजतमयी मृगमरीचिका के पीछे न दौड़ना चाहता था। अत्यधिक व्यावहारिकता भी दोषपूर्ण होती है। अस्तु, रोम का इतिहास, स्वर्णकाल का इतिहास भी, मौलिक विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। जो एक-आध रोमन वैज्ञानिक हुए भी, वे आगस्टस के पश्चात्। आगस्टस-काल विज्ञानोदय से स्वर्णिम न हो सका।

विज्ञान के क्षेत्र में न्यूनाधिक मात्रा में गतिवान विद्वान् था सेनेका (३ ई० पू०—६५ ई०) जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह प्रमुखतया आचार-शास्त्री था। यही कारण है कि प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन बहुधा इतने नैतिक दृष्टिकोण से किया है। उसका विश्वास था कि 'समस्त वैज्ञानिक अध्ययन का लक्ष्य प्रकृति के नैतिक रहस्यों का प्रकाशन होना चाहिए।' अतः उनका अन्वेषण-कार्य संकीर्ण एवं सीमित था। उसकी रचित पुस्तक 'क्वेस्चनस नेचुरलस' में प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों—आकाश, पृथ्वी, पातालादि—पर विवेचन किया गया है जिसके परिणामस्वरूप ज्योतिष, भूगोल, भूगर्भविद्या आदि के कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये गये। उद्यपि अधिकांश सिद्धान्तों में मौलिकता अथवा वैज्ञानिकता का अभाव है तथापि आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से कुछ सिद्धान्त अवश्य महत्त्वपूर्ण थे। इनमें प्रमुख है सेनेका का भूकम्प के कारणों पर विचार। भूकम्प-सम्बन्धी विषय पर यह सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण गवेषणा थी। उनके अनुसार विज्ञान का वास्तविक तात्पर्य प्रकृति के विभिन्न गुह्य रूपों का भेदन करके मानव के हित में लाना था। वह लेटिन युग का सर्वोच्च वैज्ञानिक था।[१]

रोम का दूसरा वैज्ञानिक था प्लिनी दि एल्डर (Pliny the Elder) जिसने ७७ ईसवी के लगभग 'नेचुरल हिस्ट्री' नामक अपना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। यह एक महाकाव्य ग्रन्थ है। गिबन के शब्दों में यह 'विशाल पोथा' है। इसके लिखने में लेखक ने लगभग २००० ग्रन्थों की सहायता ली थी। सृष्टि रचना-विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, धातु-विज्ञान, कृषिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, आचार-शास्त्र आदि अनेकानेक विषय इस ग्रंथ में समाविष्ट हैं। परन्तु खेद का विषय यह है कि प्लिनी ने इस विशाल ग्रन्थ की रचना में विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार नहीं किया। स्थान-स्थान पर वास्तविक एवं कपोल-कल्पित विवरणों का सम्मिश्रण हो गया है। सत्य, असत्य और अर्धसत्य की खिचड़ी ने ग्रन्थ-

[१] 'If there was any Latin who could be considered an original scientist, the title would have been given to him."

—R. E. Turner.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलेवर को विकृत कर दिया है। उदाहरणार्थ प्लिनी ने एक ऐसी जाति का वर्णन किया है जिसकी बालिकायें पाँच वर्ष की अवस्था में ही गर्भ धारण कर सकती थीं। अन्य स्थान पर वह एक अन्य जाति का उल्लेख करता है जिसके पैर पीछे की ओर मुड़े हुए थे। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के समस्त कथन इतिहास के क्षेत्र में नहीं वरन् गल्प के क्षेत्र में आते हैं। परन्तु इन विशेषताओं के बावजूद भी प्लिनी वास्तविक तथ्यों एवं गल्पों में भेद स्थापित करने में असफल रहा। वह समय की पुकार के अनुसार अपने कार्यों को नहीं ढाल सका। अतएव उसका विशाल ग्रन्थ केवल आधुनिक रेडियो की समालोचना मात्र ही रह गया।[१]

चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में भी रोम के स्वर्णयुग ने कोई महत्त्वपूर्ण चिकित्सक अथवा चिकित्सा-ग्रन्थ उत्पन्न न किया। सामान्य रोम-निवासी की दृष्टि में रोग प्रायः दैवी अथवा दानवी प्रकोप के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः उनका शमन भी दैवी-दानवी शक्तियों के प्रसाद से ही हो सकता है। परिणामतः सामान्य जनता में रोग-निवारण स्वतन्त्र चिकित्सक का नहीं वरन् पुजारियों और जन्त्र-मन्त्र विशेषज्ञों का कार्य समझा जाता था। अनेक देशों में धर्म आतमा और शरीर दोनों का संरक्षक रहा है।

परन्तु साम्राज्य काल की जनोपकारिता के परिणाम-स्वरूप साम्राज्य में सार्वजनिक चिकित्सालय खुलने लगे। अचिरात् साम्राज्य के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगर में एक चिकित्सालय स्थापित हो गया। प्रायः छोटे नगरों

१ "Judging from its contents Pliney missed his time and calling, for he was undoubtedly the master of those kinds of informatian which lacking relevance to the understanding of any natural phenomnon find their best use modern redio quiz programmes."

—W. N. Wetherd.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पाँच और बड़े नगरों में दस चिकित्सक रहते थे। चिकित्सालय दो कोटियों में विभक्त थे। प्रथम कोटि के चिकित्सालय सामान्य नागरिकों के हेतु थे और द्वितीय कोटि के सैनिकों के हेतु। ये चिकित्सालय राज्य-द्वारा संचालित थे। इस बहुसंख्यक चिकित्सालयों की स्थापना से रोम सरकार की स्वास्थ्य संरक्षाविषयक चेष्टा परिलक्षित होती है। चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में चिकित्सालय-संगठन रोम की विशेष देन है।

परन्तु जहाँ तक चिकित्साशास्त्र का सम्बन्ध है वह अधिक विकसित न था। रोम की परम्परानुरागिता ने चिकित्सा-शास्त्र के विकास को अवरुद्ध कर दिया। वह अपनी प्राचीन प्रणालियों का परित्याग कर नवीन प्रणालियों को स्वीकार करने के हेतु सहसा प्रस्तुत न था। यही कारण है कि स्वयं रोम सम्राटों ने भी शल्य-प्रधान नवउदीयमान चिकित्सा-प्रणाली का विरोध किया था। सिकन्दरिया में इसका प्रयोग निषिद्ध था। यही निषेध साम्राज्य के अनेक अन्य नगरों में भी था।

चिकित्साशास्त्रियों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय है Celsus। इसने सर्वप्रथम चिकित्साशास्त्र की वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना की और तत्परिणामस्वरूप औषधियों एवं चीड़-फाड़ के सम्बन्ध में एक चिकित्सा-ग्रन्थ लिखा। अनेक प्रकार के आपरेशन के साथ-साथ इसमें प्लास्टिक-सरजरी का भी उल्लेख है। यह ग्रन्थ आगस्टस के उत्तराधिकारी टिबेरियस के शासन-काल (ई० १४-३७) में लिखा गया था। Celsus से भी अधित प्रख्यात चिकित्साशास्त्री Calen (१३० ई०-२०० ई०) था। था। इसकी सबसे बड़ी देन है रुधिर-प्रवाह (Circulatoin of blood) के सिद्धान्त का प्रतिपादन जो आधुनिक सिद्धान्त के निकटतम है। इसने रक्त-शिराओं (Arteries) पर अनुसंधान किया और यह घोषित किया कि यदि छोटी से छोटी भी शिरा कट जाय तो शरीर का सम्पूर्ण रक्त आध घण्टे के भीतर बाहर निकल सकता है। इनके साथ-साथ इस चिकित्सा-शास्त्री ने मांसपेशियों और मेरुदण्ड पर भी अनुसन्धान किये। अन्य रोमन चिकित्साशास्त्रियों में सीरेनस और रूफस अधिक प्रसिद्ध हैं। सोरेनस ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Speculum का आविष्कार किया। वह प्राचीन संसार का सबसे बड़ा Gynecologist था। रूफस ने नाड़ी-ज्ञान को अग्रसर किया और जिगर का अध्ययन किया उसका मत था कि अनेक रोगों का कारण जल है। अतः अशुद्ध जल को उबाल कर पीना चाहिए।

विशाल साम्राज्य-स्थापना ने रोम के भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि की। वह अनेक देशों की स्थिति; दूरी और अवस्था से परिलक्षित हो गया। टालमी ने अपने अनुभव से लाभ उठाकर विश्व का एक मानचित्र तैयार किया जिसमें Meredian रेखाओं का भी प्रदर्शन किया गया। स्वयं सम्राट आगस्टस भूगोल विषय में विशेष अभिरुचि रखता था। उसने अपने सेनापति एग्रिप को साम्राज्य-परिभ्रमण के निमित्त भेजा। परिभ्रमण समाप्त करने के पश्चात् एग्रिम ने भी एक मानचित्र बनाया।

कला—स्वर्णकाल अपनी कलाओं के उत्कर्ष के लिये प्रख्यात है। राष्ट्र की धन-धान्यता एवं वैभवशालिता तत्कालीन प्रस्तर-खण्डों पर उत्कीर्ण की गई थी, तूलिका के रंगों में अङ्कित हुई थी। रोम के स्वर्ण-युग ने राजनीति से कलेवरता पाई थी और साहित्य से गति। परन्तु उसकी स्वर्णिमता कला-प्रदीप्ति का सभा प्रतिबिम्ब थी। यह कला साम्राज्य की समस्त अनुभूतियों को वहन करती हुई स्वर्णयुग का कारण भी है और कार्य भी। इसकी कुछ अपनी विशेषतायें हैं :

१. **स्वदेशीयता**—प्रारम्भ में रोम की कला यूनानी कला की प्रतिकृति थी। रोमन विजेता एशिया माइनर और यूनान से बहुसंख्यक कलाकृतियों—मूर्तियों, स्तम्भों, तोरणों, गुल्मों आदि—का अपहरण कर लाये थे। विजित देश की विविध निधियाँ बहुधा अपने संरक्षण के निमित्त विजेता देश का उन्नयन करती हैं। अस्तु, इन्हीं यूनानी कृतियों के अनुकरण पर रोम के कलाकारों ने अपने देश में कला-सृजन किया। पुनः, एशिया माइनर और यूनान से बहुसंख्यक यूनानी कलाकार रोम में आकर बस गये और इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की अभिरुचियों, अभिलाषाओं को पाषाण-खण्डों एवं चित्र-पटों पर साकार करना प्रारम्भ किया। रोमन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला के तीन रूप मिलते हैं। प्रथमतः, रोम की कुछ कला-कृतियों में यूनानी कला-कृतियों की समता (Similarity) ही नहीं है वरन् समीकरण (Identity) भी है। रोम की प्रारम्भिक कृतियाँ सर्वांगतः यूनान की कृतियों की प्रतिकृति हैं। द्वितीयतः, कुछ में विषय रोमन है और प्रणाली यूनानी। इस स्थिति में यूनानी कलाकारों अथवा उनके रोमन अनुयायियों ने दोनो देशों की परम्पराओं को ग्रहण कर उनमें सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। तृतीयतः अन्य में विषय और प्रणाली दोनों ही बहुत कुछ रोमन हो जाते हैं, यद्यपि किसी भी समय रोम की कला से यूनानी प्रभाव पूर्णतया विलुप्त नहीं होने पाता। हाँ, यह प्रभाव स्वल्प अवश्य हो जाता है। आगस्टस-काल में यह अत्यल्प है। इसी से हम कह सकते हैं कि रोम को कला स्वर्णयुग में बहुत-कुछ स्वदेशोय हो गयी है। आगस्टस-काल रोम के राष्ट्रीय गौरव का काल था, जातीय उत्कर्ष का काल था। अतः इस काल के कलाकारों ने यदि अपनी कला में स्वदेशीयता की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की तो नितान्त स्वाभाविक हो था। इतिहासकार वर्ग ने भी इसे रोम की शक्ति एवं महानता का प्रतीक कहा है।[१]

२. **राजकीयता**—स्वर्णकाल के बहुसंख्यक कलाकार राजा के संरक्षण में कार्य करते थे। अतः उनकी कला राजकीय छत्रच्छाया में पनपने के कारण राजविषयक हो गयी थी। राजा की शक्ति, सौन्दर्य, न्यायादि गुणों का प्रदर्शन ही राजसंरक्षिता कला का लक्ष्य बन गया। स्वर्णकाल में उदीयमान आगस्टस-सम्प्रदाय (Augustan Cult) ने भी राजमहिमा को प्रतिष्ठित किया। अतः कला की छेनी और तूलिका दोनों ही राजकीर्ति को प्रसारित करने में लगीं। युग की इस प्रवृत्ति ने जहाँ राजवैभव की ललित अरुणिमा के चल-चित्र खिचवाये हैं वहाँ कला को एकपक्षीय

[१] The Roman art is expressive of national character, monumental designs and symbolises power and grandeur rather freedom of mind or contentment in the life."

—E. Burgh.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी कर दिया है, उसकी यथार्थता को भी नष्ट कर दिया है। कला में न राजा की अपूर्णता का चित्रण है और न प्रजा की सामान्यता का। कला जीवन के समस्त क्षेत्रों को नहीं छूने पायी।

३. उपदेशात्मकता—स्वर्णयुग में कला का प्रयोग चित्रात्मक शिक्षण के हेतु हुआ है।[१] राजा की महत्ता, राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि साम्राज्य की विशालता, धर्म की ईश्वरीयता, रहस्यात्मकता एवं नैतिकता तथा इतिहास की आदर्शवादिता आदि विविध विशेषतायें कला के अन्तर से झलकती हुई रोमन का उन्नयन करना चाहती हैं। कला में रोम-निवासी को आत्मा-गौरव के प्रति संज्ञान एवं सचेत करने भी भावना है, जोवन में पथ-प्रदर्शन करने की अन्तर्वर्तिनी उत्कण्ठा है।[२]

४. उपयोगितात्मकता—रोम-निवासी की व्यावहारिकता ने उसकी कला को भी प्रभावित किया। उसने प्रमुखतया उन्हीं वस्तुओं का निर्माण किया जो उसके जीवन में उपयोगी हों। 'कला के लिये कला' का सिद्धान्त रोमन प्रवृत्ति के प्रतिकूल था। उसने जीवन के लिये कला का उपयोग किया था। उसकी कला में सुन्दरता अभोष्ट थी, परन्तु उससे भी अधिक अभीष्ट थी उपयोगिता यही कारण है कि रोम कलाकारों ने राजप्रासादों, भवनों, स्नानागारों क्रोडास्थलों, नाट्य-शालाओं, पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों के निर्माण में अधिक अभिरुचि प्रदर्शित की है।

५. कला-आर्थिक उन्नति का भव्य प्रतीक—रोमन कला वास्तव में तत्कालीन नागरिक सभ्यता के गुणों एवं सुख-समृद्धि का परिचायक थी। तत्कालीन विशाल शहरों के देखने से यह पता चलता है कि वे कितने विशाल एवं भव्य थे। इस बात की सार्थकता स्वयं आगस्टस के शब्दों से

---

१. "Art became significant means of 'pictorial teaching'."

२. 'It was a new art, cold, stately. majestic with a practical didactive aim to teach the new imperial outlook and glorify the deeds of both rulers and people'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती है कि 'उसने' रोम को ईंटों के शहर से संगमरमर के शहर में परिवर्तित कर दिया।[१]

वास्तु कला—स्वर्णयुग में वास्तुकला की महत्ता अभ्युन्नति हुई हैं। उपयोगिता की विशेषता कला के इसी क्षेत्र में सर्वोपरि परिलक्षित हुई है।[२] कहीं पर वह धर्मोद्धार करती है तो कहीं पर राष्ट्र-प्रकाश, परन्तु उसकी व्यावहारिकता और उपयोगिता सर्वत्र प्रकट है। स्वयं आगस्टस वास्तुकला का प्रख्यात अनुरागी था। एक ओर तो उसने प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्वार कर पुरातन धर्म की प्रतिष्ठा की और दूसरे बहुसंख्यक मन्दिरों, भवनों आदि के निर्माण के द्वारा उसने रोम की विशालता और वैभवशीलता को वास्तु-दर्पण में प्रतिबिम्बित किया। लिवी के शब्दों में आगस्टस रोम के समस्त मन्दिरों का संस्थापक और जीर्णोद्वारक था।[३] स्वयं सम्राट् की गर्वोक्ति है कि 'मैंने रोम को ईंटों का नगर पाया और उसे संगमर्मर के नगर में परिवर्तित कर दिया।' वस्तुकला के क्षेत्र में आगस्टस का कार्य महान् था। उसके संरक्षण और प्रोत्साहन में कलाकारों ने रोम को जो भव्यता प्रदान की वह अभूतपूर्व थी। तत्कालीन प्रमुख वास्तु-ग्रन्थों में मार्कस पोलियो का लिखा हुआ 'On Architecture' मुख्य है जिसकी तुलना फ्रांस के लियोनार्डो डी वेन्सी तथा के माइकेलेन्जे से की जाती है। यह वास्तु-शास्त्र पर एक वृहद कोष है जिसमें सभी वास्तु-संबंधी नियमों का वर्णन है।

रोम की बहुसंख्यक वास्तु-कृतियाँ अपनी विशालता, सुडौलता और

१. "In fact the roman art is the best understanding as a form of urban grandeur and prosperity, exculisively, to be seen in the magnificent cities."

—R. E. Turner.

२. 'Roman architecture was devoted primarily to utilitarian purposes.'

३. 'Founder and restorer of all the temples of Rome.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दरता के हेतु जगत्प्रसिद्ध हैं। सर्कस मैक्सिमस में लगभग २ लाख २५ हजार और कालोसियम थियेटर में लगभग ६५००० दर्शकों के बैठने का स्थान था। रोम का पेन्थिअन मन्दिर अपनी भव्यता के लिये प्रख्यात था। इसके गुम्बद का व्यास १४२ फुट था। आगस्टस का राजप्रासाद सुन्दर था। ओविड उसे देवता के योग्य (Worthy of God) समझता है। आगस्टस ने जिन मन्दिरों का निर्माण किया उनमें अपालो, मार्स और जुपिटर के मंदिर विशेष उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यूनानी मन्दिरों की अपेक्षा ये हीन हैं तथापि अपनी विशालता, वैभवशीलता, तोरण और गुम्बद के लिये सर्वत्र प्रशंसनीय है।

कलाकार की प्रतिभा देवालयों में इतनी अधिक संलग्न नहीं हुई है जितनी सार्वजनिक-निमाण-कार्यों में। रोम में सड़कों, पुलों, नहरों स्नानागारों, चिकित्सालयों, पुस्तकालयों एवं नाट्य-शालाओं का अतिसंख्यक निर्माण कला की असाम्प्रदाय प्रवृत्ति का द्योतक है। समस्त वास्तु-प्रदर्शन श्वेत एवं रंगीन संगमरमर, पत्थर, (Travertine tufa stucco) और ईंट आदि पर हुआ है। समस्त भवनों एवं मन्दिरों में गोलाकार तोरण, मेहराव, और स्तम्भ विशेष आकर्षक थे। साम्राज्य-काल वैभव-काल था। अतः रोमन प्रदर्शनकारिता तथा अलंकारिता में अभिरुचि रखता था। यही कारण है कि स्वर्णयुग में अलंकरण-प्रधान कोरिन्थअन स्तम्भ का प्रयोग अधिक है। आगस्टस काल के पश्चात् की वास्तु-कृतियों के सेन्ट सोफ़िया और सेन्ट पाल के गिरजाघर विशेष प्रसिद्ध हैं। सिद्ध विज्ञान टर्नर ने उन्हें आधुनिक यूरोप के लगभग सभी वास्तु इमारतों पर प्रभाव डालते हुये बताया है।[१]

---

१. "The remains of Roman acquaducts, causeways, roads and walls-which today dot Europe from Brtiain to Iraq, testify to the power that once made stone and mortar, the embodiment not only of grandeur but also cf peace and comfort." —R. E. Turner.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापत्य—रोमन कला की पूर्व-कथित विशेषतायें स्वर्णकालीन स्थापत्य में भी दृष्टि-गत होती हैं। स्थापत्य में हेलेनिस्टिक और इटैलिक कला-परम्पराओं का सम्मिश्रण है, परन्तु उद्देश्य सदैव रोमन है। मूर्तियों के माध्यम से कलाकार ने अपने सम्राट् की महत्ता और देवों की उत्कृष्टता को अमरत्व देने का सुप्रयास किया है। प्रायः प्रत्येक कृति राष्ट्रीय गौरव का वहन करती हुई स्वर्णकालीन जीवन को आत्मविश्वास से परिपूरित करती है। प्रत्येक मूर्ति में सम्राट्, देवी-देवता अथवा व्यक्ति विशेष का प्रभावकारी व्यक्तित्व अतीव स्वाभाविकता के साथ उत्कीर्ण किया गया है। स्वर्णकालीन स्थापत्य की विशेषतायें व्यक्तित्व और स्वाभाविकता का अंकन है।[१] वह सदैव सप्रयोजन है। अतः उसमें 'कला के लिये काल' के सिद्धान्त के निमित्त स्थान नहीं हैं। रोमन अन्तश्चेतना में सर्वोत्कृष्ट सुन्दरता उद्देश्यपूर्णता में निहित थी। परन्तु वास्तु की भाँति रोमन स्थापत्य भी राजकीय एवं अभिजातवर्गीय होने के कारण सर्व-साधारण की जीवनानुभूतियों का वहन नहीं कर पाया।

स्वर्णकालीन स्थापत्य के सुन्दर उदाहरणों में आगस्टस की एक प्रतिमा है जो वेटिकन में संरक्षित है। इसमें सम्राट् सैनिक वेश-भूषा में प्रदर्शित किया गया है। उसके वक्षस्थल पर कवच है। सम्पूर्ण मूर्ति सुन्दरता, सुडौलता और राजकीय वैभव की प्रतीक है। दूसरी मूर्ति एक रोमन की है जो अपनी स्वाभाविकता के कारण सचेतन-सी प्रतीत होती है। इन मूर्तियों के साथ-साथ रोमन कलाकार ने बहुसंख्यक तोरणों, स्तम्भों और वेदियों आदि का भी निर्माण किया। स्वतन्त्र मूर्तियों की भाँति रिलीफ़-मूर्तियाँ भी कम नहीं मिलतीं। ये सब वास्तुकला के अलंकरण के रूप में निर्मित हुए थे। स्वर्णकाल के अधिकांश प्रासाद, भवन तथा देवालय भाँति-भाँति की स्थापत्य-कृतियों में अलंकृत हैं। स्थापत्यकला वास्तुकला की प्रसाधनकारिणी परिचारिका भी है। इतिहासकर टर्नर के अनुसार

---

१. 'Its distinguishing characteristics were individuality and naturalism.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन रिलीफ चित्रों के अवशेष आज भी यूरोप एवं अमरीका में देखे जा सकते हैं ।[१]

रिलीफ़-स्थापत्य के उदाहरणों में सर्वोत्कृष्ट Ara Paris Augustae (आगस्टस की शान्ति-वेदी) है । वेदी के चतुर्दिक संगमरमर का एक वर्गाकार प्राचीर है जो भाँति-भाँति के फूलों-पत्रों से अलंकृत है । इसमें सम्राट् अपने पुरोहित और कुटुम्ब के साथ चलता हुआ प्रदर्शित किया गया है । उसके पीछे सीनेटर, मजिस्ट्रेट और पदाधिकारी हैं । सम्पूर्ण प्रदर्शन अपनी वैभवशालिता और सजीवता के कारण संसार के उत्कृष्ट रिलीफ़-प्रदर्शनों में रखा जाता है[२] । रिलीफ़-कृति का द्वितीय सुन्दर उदाहरण पूर्वोल्लिखित आगस्टस-मूर्ति के चतुर्दिक मिलता है । यह दक्ष कलाकारिता का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन है[३] ।

स्वर्णकाल की कला-परम्परा आगस्टस के पश्चात् भी जीवित रही । वेस्पेसियन (ई० ७०-७६ ई०) ने अनेक भवनों (इनमें कालोसिअम का थियेटर सर्वप्रमुख था) का निर्माण कराया और उन्हें सुन्दर तोरणों, मेहराबों, स्तम्भों और रिलीफ़-मूर्तियों से अलंकृत किया । उसका पुत्र टीटस (७६-८१ ई०) भी कला-प्रेमी था । उसने अपने पिता द्वारा निर्मित कालोसिअम को पूर्ण कराया । उसकी एक मेहराब पर एक जलूस उत्कीर्ण किया गया है जो अति स्वाभाविकता के कारण गतिशील-सा दृष्टिगत होता है । अन्य सम्राट् ट्राजन (६८ ई०-११७ ई०) भी एक प्रसिद्ध निर्माता था । उसने रोम को अन्य अनेक भव्य भवनों और कला-कृतियों

---

१. "It was characterised by deep cutting and rounded forms greater details to national character and to the expression of psychological modes--still to be seen in Europe and America."

—R. E. Turner.

२. The alter is another Res Gestae in art.

३. Masterpiece of skilled workmanship.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से सुशोभित किया। एक स्तम्भ के चतुर्दिक रिलीफ़ में इस सम्राट् के दो आक्रमण-प्रदर्शित किये गये हैं। आक्रमण की भयंकरता और परिस्थिति की गम्भीरता स्पष्टतया पाषाण पर उभड़ आयी है। उसका उत्तराधिकारी हेड्रियन (११७-१३८ ई०) भी कलाप्रेमी था। उसने भी रोम में अनेक भवनों का निर्माण किया और उन्हें स्थापत्य-कृतियों से अलंकृत किया। सम्राट् मार्कस आरेलिअस (१६१-१८० ई०) एक दार्शनिक ही न था वरन् वह कलानुरागी भी था। शासन-काल अशान्तिमय होने के बावजूद भी उसने कला को प्रोत्साहन दिया। इस सम्राट् की एक प्रतिमा उपलब्ध हुई है जो अपनी स्वाभाविकता और सुन्दरता के लिये प्रख्यात है।

चित्रकला—आगस्टस-काल की कलानुरागिता ने चित्रकला की भी अभ्युन्नति की होगी, परन्तु अपनी वर्ण-नश्वरता के कारण उसके प्रायः समस्त उदाहरण नष्ट हो गये हैं, हाँ, पाम्पी के ध्वंसावशेषों में जो थोड़े-बहुत चित्र मिले हैं उनसे चित्रकला की तत्कालीन उन्नत अवस्था का ज्ञान होता है। रोमन चित्रकार ने अपनी विशेष रुचि प्रकृति-चित्रण में प्रदर्शित की है। उत्तुङ्ग शिखरों, सुरम्य सरिताओं, हरीतिमाच्छादित क्षेत्रों, अरुणोदय, दिवसावसान आदि के चित्रण में उसकी मनोवृत्ति विशेषरूप से रमी है। जहाँ तक उसके ऐतिहासिक एवं धार्मिक चित्रों का प्रश्न है उन पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है।

आगस्टसयुगीन सभी उन्नतियों में कानून पूर्णतया मौलिक था तथा साथ ही साथ रोम की एक अमूल्य देन भी है। कुछ इतिहासकारों के अनुमान में रोम का सिविल कानून इटली, स्पेन, फ्रान्स, जर्मनी एवं इंगलैन्ड के विधानों का जन्मदाता है।[१] कुछ अन्य विद्वानों ने इसे मानव

१. "The most destinctive and lasting contribution of Rome to European civilization was its law. The corpus jus cinile, compiled under justinian has supplied the foundations to the equal systems of Italy, Spain, France, Germanty. Even the comman law of England which has been adopted by U. S. A. owes its principles to it."

—S. R. Sharma.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति के इतिहास की एक महानतम बौद्धिक देन कहा है।[१]

यद्यपि रोमन कानून का इतिहास उसके प्रारंभिक वर्षों से मिलता है जबकि 'ट्वेल्व टेबुल्स' की रचना हुई थी परन्तु इसे सर्वप्रथम लिखित एवं विभाजित स्वरूप आगस्टस काल में ही हुआ—

रोम का कानून—रोम की सांस्कृतिक देन में कानून अपना विशेष स्थान रखता है। रोम के कानून के विकास में भी स्वर्णयुग के अधिष्ठाता आगस्टस का योग कम नहीं है। न्यायप्रिय होने के कारण अभियोग के गूढ़ तत्वों का निरूपण करने के हेतु आगस्टस बड़े-बड़े जूरिस्टों को आमन्त्रित करता था। इन जूरिस्टों में गेयस, पैपिनियन अलिपअन और पालस विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके विद्वत्तापूर्ण निर्णयों तथा विवेचनों ने रोमन लॉ के कलेवर को निर्धारित किया। रोमन कानून के विकास का एक अन्य कारण भी था। रोम ने साम्राज्य-विस्तार किया। इस साम्राज्य में विभिन्न जातियों, धर्मों और आचार-विचारों के मनुष्य रहते थे। इनके बीच पारस्परिक तथा इनके और राज्य के बीच पारस्परिक सम्बन्ध को निर्धारित करने के निमित किसी सम और सुनिश्चित व्यवस्था की आवश्यकता थी। इसी व्यवस्था की आवश्यकता ने रोम के कानून को जन्म दिया।

प्रमुखतया रोम ने तीन प्रकार के कानून का विकास किया—(१) नागरिक कानून (Civil Law) (२) सार्वजनिक कानून (Law of the people) और (३) प्राकृतिक कानून (Natural Law)। नागरिक कानून एक मात्र रोम के नागरिकों के हेतु था। इसमें राष्ट्रीय परम्परायें, सामाजिक प्रथायें तथा शासन-समितियों एवं राजकीय पदाधिकारियों द्वारा व्यवस्थित अधिनियम समाविष्ट थे। सार्वजनिक कानून साम्राज्य की

१. "The language of Rome as well as law has enreached the intellectual life of mankind."

—Webster.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समस्त जनता के निमित्त था। जातीय, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विभेद के बिना यह कानून समस्त मनुष्यों के साथ एक समान आधार पर व्यवहार करता था। सबके लिये क्रय-विक्रय, ठेका, साझा आदि के अधिनियम एक से थे। इसके अन्तर्गत दास-प्रथा एवं व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थन किया गया था। प्राकृतिक कानून स्टाइक विचार-धारा का प्रतिफल था। इसके अनुसार प्रकृत्या सब मनुष्य बराबर थे और उनके कुछ आधार-भूत प्राकृतिक अधिकार थे। ये अधिकार राज्य के अधिनियमों के ऊपर थे। इस कानून का प्रमुख नेता सिसरो था जिसके अनुसार वास्तविक कानून उचित तर्क पर निर्धारित किया जा सकता है, उसके विरुद्ध नियम बनाना मानव जाति के वास्तविक अधिकारों पर हस्तक्षेप होगा। इसकी उत्पत्ति राज्य से पूर्व थी।[१] इतिहासकार बर्न्स के अनुसार यह गूढ़ नियम रोमन कानून का श्रेष्ठतम विकास प्रस्तुत करता है।[२]

इनके अतिरिक्त अन्य कई विद्वानों ने अपनी व्यक्तिगत रचनाओं द्वारा मनुष्य के वास्तविक अधिकारों की रक्षा की। इनमें स्केवोला की 'Institute' सेल्वियस जूलियस का 'Digest of Law' पेपीनियन एवं पालस तथा उल्पियन की मर्मभरी उक्तियाँ हैं जिन्होंने तत्कालीन नागरिकों

---

१. "True law is right rason consonant with nature, diffused among all men constent and eternal. To make enactments or to infringe it is beyond man's power. It is prior to state and one who defies it, becomes a tyrant."

—Cicero.

२. "This development of the concept of abstract justice as a legal principle was one of the noblest achievements of Roman civilization."

—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया ।[१]

शिक्षा-प्रणाली—यूनानी प्रभाव के अन्तर्गत रोम ने शिक्षा के हेतु सुव्यवस्थित एवं सुविस्तृत पाठ्य-क्रम तैयार किया था जिसके अनुसार मनुष्य को समन्तात् बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास के हेतु अवसर मिलता था । सिसरो शिक्षा को मानवी विकास का माध्यम समझता था । यही धारणा समाज के विद्वद्वर्ग की थी । बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा बहुधा घर पर ही दी जाती थी । यह शिक्षा प्रायः यूनानी अध्यापकों के निरीक्षण में होती थी । सार्वजनिक शिक्षा के निमित्त पाठशालायें भी थीं । प्रारम्भिक स्थिति में बालकों को यूनानी एवं लैटिन भाषाओं का सामान्य ज्ञान, व्याकरण, काव्य, तर्क आदि की शिक्षा दी जाती थी । पुस्तकें हस्तलिखित होती थीं । लेखक पेपिरस अथवा पशु-चर्म पर लिखते थे और उन्हें लकड़ी के डंडों पर लपेट कर रखते थे । यही उनकी पुस्तकें थीं । अधिकांशतः ये पुस्तकें लैटिन में थीं । परन्तु शिष्ट समाज में यूनानी भाषा का भी व्यवहार कम न था । अनेक रोमन विद्वानों ने तो अपनी ग्रन्थ-रचना यूनानी भाषा में ही की थी । सम्राट् मार्कस आरेलियस ने 'मेडीटेशन्श' नामक अपना ग्रन्थ यूनानी भाषा में ही लिखा था ।

उच्च शिक्षा के हेतु साम्राज्य में विश्वविद्यालय थे । यहाँ उच्च साहित्य, काव्य, दर्शन, इतिहास, कानून, गणित एवं चिकित्साशास्त्र की

१. "No one may change his purpose for the violence of another's right."

—Papinian.

"Ignorence of the law does not excuse, though the ignorance of the fact does."

—Palus.

"The judgement of the court is accepted as truth."

—Ulpian.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा दी जाती थी। रोम, एथेन्स और सिकन्दरिया उच्च-शिक्षा के केन्द्र थे जो अपने विद्वानों एवं दार्शनिकों की विदग्धता के लिये प्रख्यात थे। विश्व की समस्त विद्याओं के विशाल ग्रन्थ इन नगरों के पुस्तकालयों में संग्रहीत थे।

रोम-निवासी प्रभावशालिनी वाक्-शक्ति को मनुष्य का एक महत्व-पूर्ण गुण समझता था। अतः उच्च शिक्षा के पाठ्य-क्रम में इसे भी स्थान दिया गया था। ललित-कलाओं के प्रति भी रोमन निरपेक्ष न था। विद्यार्थियों को वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला को भी शिक्षा मिलती थी। व्यावहारिक शिक्षा के हेतु देश-परिभ्रमण भी आवश्यक समझा जाता था। परन्तु रोमन पाठ्य-क्रम में संगीत, नृत्य, शरीरशास्त्र, व्यायाम एवं व्यावसायिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध न था।

आगस्टस-काल के पश्चात् भी अनेक परवर्ती सम्राट् शिक्षा के प्रसार में सचेष्ट रहे। वेस्पेसियन (७० ई०—७९ ई० अपने युग का प्रसिद्ध विद्यानुरागी था। उसके प्रोत्साहन तथा संरक्षण ने साहित्य की विशेष उन्नति की। हेड्रियन (११७ ई०—१३८ ई०) एक मात्र कला-प्रेमी ही न था वरन् विद्या-प्रेमी भी। उसने एथेनियम नामक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना की जहाँ ललित-कलाओं का अध्यापन होता था। सम्राट् मार्कस आरेलियस (१६१ ई०—१८० ई०) अपनी विदग्धता के लिये प्रख्यात है। उसने साम्राज्य में दर्शन और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन को विशेष प्रोत्साहन दिया।

आर्थिक अवस्था—कृषि स्वर्णकाल का एक महत्त्वपूर्ण उद्यम था। प्रारम्भ में वह छोटे-छोटे खेतों में होती थी। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है युद्ध-काल में ग्रामों की बहुसंख्यक जनता कृषि-कर्म से विरत हो गयी। वह बड़े-भूमिपतियों के हाथों अपने लघु खेतों को बेच कर नगरों में जा बसी। भूमि के क्रय-विक्रय का वह क्रम दीर्घकाल तक चलता रहा। स्वर्णकाल तक आते-आते हम देखते हैं कि साम्राज्य में कृषि कर्म विशाल स्तर पर होने लगा। अधिकांश भूमि बड़े-बड़े धनिक भूमि-पतियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अधिकार में आ गयी। ये अपने विशाल खेतों में बहुसंख्यक श्रमजीवियों और दासों की सहायता से कृषि कराने लगे। अपने विपुल धन की सहायता से इन्होंने उत्तरोत्तर कृषि-भूमि का विस्तार किया। उत्तरी अफ्रीका के विशाल मरुस्थलीय प्रदेश नहरों की सहायता से उर्वर भूमि में परिवर्तित कर दिये गये। साम्राज्य के विभिन्न देशों—गाल, ब्रिटेन, राइनलैण्ड आदि—के अनेक प्रदेश वन काट-काट कर कृषि-कर्म के अनुकूल बना दिये गये। सस्ते श्रम के उपयोग से साम्राज्य के दलदली प्रदेश सुखाये गये और उनमें भी खेती होने लगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वर्णकाल में अपने विपुल धन-जन की सहायता से रोम ने कृषि-कर्म के निमित्त अभूतपूर्व भूमि-विस्तार किया।

अपने विशाल खेतों में उत्पादन को बढ़ाने के हेतु भूमिपतियों ने अनेक साधन खोज निकाले। खाद और चूना के प्रयोग से भूमि की उर्वरता बढ़ाने का ज्ञान सामान्य हो गया। बारी-बारी से फसल के परिवर्तन (Rotation of Crops) के द्वारा भी भूमि की उर्वरता को स्थिर रखने का सफल प्रयोग किया गया। इन प्रणालियों से उत्पादन पहले से कहीं अधिक बढ़ गया। उत्पादित सामग्री में गेहूँ, जौ, मटर, बाजारा, दालें, चुकन्दर, बीन और लहसुन विशेष उल्लेखनीय हैं। जिन प्रदेशों में कृषि-कर्म न होता था उनमें फलोत्पादन किया गया। स्वर्णकालीन फलोद्यान अपनी खाद्योपयोगिता और मनोहारिता दोनों के लिये प्रख्यात थे। फलों में सेव, अंगूर, जैतून और अंजीर का उत्पादन प्रभूत था। इस प्रकार स्वर्णयुग ने अन्नोत्पादन (Agricultural Products) और फलोत्पादन (Horticultural Products) के क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। परन्तु कृषि-कर्म के उपकरणों में परिवर्तन न हो सका—वही पुरातन हल, वही अन्न ढोने की पुरानी गाड़ियाँ और वही हल चलाने के पशु, बैल, घोड़े और गदहे।

परन्तु यह विशालस्तरीय कृषि-कर्म अनेक दोषों से परिपूर्ण था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रामीण जनता के हाथ से भूमि निकल गयी। अतः वह निरुद्यमी होकर नगरों में या तो साधारण जीविका-प्राप्ति के हेतु भटकने लगी या राजकीय अन्न-वितरण के सहारे काल-यापन करने लगी। बहुसंख्यक स्वतन्त्र कृषकों को श्रमवृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। स्वर्णकालीन ग्राम्य-जीवन आर्थिक दृष्टि-कोण से कान्तिहीन है। पुनः विशाल खेतों की समृद्धिशालिता दास वर्ग के ऊपर निर्भर थी। जब तक बहुसंख्यक दास मिलते रहे तब तक तो कृषि-कर्म सुगमतापर्वक चलता रहा। परन्तु दास-संस्था के ह्रास के साथ कृषि-समृद्धि का भी ह्रास होने लगा।

स्वर्णकालीन समृद्धि बहुसंख्यक उद्योग-धन्धों एवं व्यवसायों में भी प्रतिफलित हुई। दैनिक प्रयोग की सामान्य वस्तुओं से लेकर विलासिता के बहुमूल्य उपकरणों तक बहुसंख्यक सामग्रियाँ उद्योगियों एवं व्यव-सायियों द्वारा निर्मित होती थीं। इनके अपने संघ और संगठन थे। रोम-साम्राज्य की प्रसिद्ध दूकानें सोने-चाँदी के आभूषणों, धातु-प्रतिमाओं धातु-पात्रों, मृण्भाण्डों, शीशे की सामग्रियों, सूती, ऊनी और चर्मनिर्मित वस्त्रों तथा काष्ठ-उपकरणों से परिपूर्ण रहती थीं।

परन्तु स्वर्णयुग विशेषतया अपने व्यापारिक प्रसार के हेतु प्रसिद्ध है। साम्राज्य में दूरस्थ प्रदेश बड़े-बड़े स्थलमार्गों द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध थे। इनकी संरक्षा के निमित्त स्थान-स्थान पर पुलिस चौकियाँ निर्मित की गयी थीं। इन पर विश्राम स्थल और चुङ्गीगृह स्थापित किये गये थे। उधर सामुद्रिक मार्गों की रक्षा के हेतु जहाजी बेड़ा गश्त करता था। पहले भूमध्य सागर सामुद्रिक लूट-पाट (Piracy) का क्षेत्र था। परन्तु स्वर्णयुग में वह सुरक्षित व्यापार-क्षेत्र बन गया था। साम्राज्य में नये बन्दरगाहों की स्थापना की गयी। राजकीय मुद्रा-प्रयोग ने व्यापार-व्यवसाय को सुगमता प्रदान की। चतुर्दिक व्याप्त शान्ति और समृद्धि ने व्यापारिक प्रगति को सहस्रगुणित कर दिया। सारांशतः स्वर्णयुग व्यापारिक प्रसार का काल है। रोम विदेशों में स्वदेशीय मछली, मदिरा, जैतून का तेल, शीशा, धातुयें और मृण्भाण्ड भेजता था और इनके बदले भारतवर्ष के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुमूल्य सूती और मलमल के वस्त्र, हाथीदाँत की वस्तुयें, प्रसाधन-सामग्री और विविध मसाले, चीन के रेशमी वस्त्र, बैबिलोनिया की कालीनें तथा अन्य देशों की अनेकानेक विलासिता की सामग्री आयात करता था। परन्तु रोम का व्यापार किसी सुव्यवस्थित नीति-द्वारा संचालित न था। देश में संगठित बैङ्कों का अभाव था। राजकीय मुद्राओं के होते हुये भी उनका प्रयोग कम था। अधिकांश व्यापार वस्तु-विनिमय अथवा अमुद्रित धातु के माध्यम द्वारा ही होता था। समाज का विलासी अभिजात वर्ग स्वयं व्यापार के प्रति निरपेक्ष था। वह स्वयं व्यापार-व्यवसाय करना निन्दास्पद समझता था। देश में उद्योगियों और व्यवसायियों की हित-रक्षा के साधन न थे। उनके संघ और संघटन अवश्य थे, परन्तु उनके कार्य व्यावसायिक न होकर सामाजिक और धार्मिक ही थे। राजा बहुधा अधिक धनी होने पर व्यापारियों और व्यावसायियों का धनापहरण कर लेता था। अतः उनका व्यापार उत्साह कुंठित हो जाता था। रोम का आयात-निर्यात सन्तुलन-हीन था। जितने धन का माल देश से निर्यात होता था उससे कई गुना देश में आयात होता था। परिणामतः देश को प्रतिवर्ष विपुल आर्थिक क्षति होती रहती थी।

सामाजिक अवस्था—रोम साम्राज्य की सामाजिक अवस्था निन्द्य थी। उसमें नैतिकता का अभाव था। अति समृद्धि ने रोमन को भौतिक, धन-लोलुप, सुखाकांक्षी और विलासी बना दिया था। जीवन निरादर्श और निरुद्देश्य हो गया था[१]। और यदि कोई आदर्श अथवा उद्देश्य था तो वह था असीम कामना और वासना की उद्दाम तृप्ति। एक पात्र पर अंकित ये शब्द कि मृत्यु-पर्यन्त जीवन का भोग करो क्योंकि कल अनिश्चित हैं,[२] तत्कालीन सामाजिक धारणा की ओर संकेत करते हैं। स्वर्ण-कालीन

---

१. 'Life is trivial, ephemeral, self-centred and devoid of meaning'.

२. 'Enjoy life while you live, for tomorow is uncertain.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोमन अपने पूर्वजों से नितान्त पृथक् था जिन्होंने अपनी सरलता और कर्मठता से रोम-साम्राज्य का शिलान्यास किया था। विलासिता की चकाचौंध ने उसके जीवन के उदात्त मूल्यों को धुँधला कर दिया था। धनाढ्यों की कामुकता और निर्धनों की विवशता ने सामाजिक नैतिकता को जर्जरित कर दिया था। अधर्म्य-सम्बन्ध, अधर्म्य सन्तान और भ्रूणहत्या रोमन जीवन को सामान्य घटनायें बन गयी थीं। गृह की शान्ति और पवित्रता नष्ट हो चुकी थी। प्रवञ्चना, विश्वासघात और अधर्म्य प्रेम ने दाम्पत्य-जीवन को विषादमय बना दिया था। सर्वत्र-विच्छेद, विवाहहीनता, सन्तानहीनता और व्यभिचार का राज्य था। स्वयं सम्राट् आगस्टस का 'देवत्व' भी अनैतिकता और कामुकता से कलुषित था। उसकी पुत्री जूलिया को दुश्चरित्रता के अपराध में देश-निर्वास का दण्ड मिला था। यही हाल राज-राजकवि ओविड का हुआ था। यह थी रोम के उन उच्च-वर्गीय व्यक्तियों की नैतिकता जिन्होंने स्वर्णयुग की स्थापना में अमूल्य योग दिया था। सारांशतः स्वर्णयुग नैतिकता ह्रास का काल है[1]।

स्वर्णयुग अभिजात वर्ग और उच्च वर्ग का युग था। इसमें सामान्य मनुष्यों, श्रमजीवियों एवं दासों की अवस्था असन्तोषजनक थी। असम धन-वितरण ने धनिकों को और अधिक धनी और निर्धनों को और अधिक निर्धन कर दिया था जब कि धनी-वर्ग निस्सीम विलासिता में आकण्ठ आलिप्त था। दासों की अवस्था तो अत्यन्त शोचनीय थी। वे अपने स्वामियों की सामग्री थे। उनका जीवन-मरण स्वामियों की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर था। उनके कोई अधिकार न थे। वे अपने स्वामियों के निमित्त दिन भर काम करते और रात्रि में लौह-शृंखला से बाँधकर एक स्थान पर डाल दिये जाते थे, क्योंकि स्वामियों को उनके भाग जाने का भय रहता था। सम्राट्, पदाधिकारियों एवं रोम के स्वतन्त्र नागरिकों के मनोविनोद के हेतु बहुधा उन्हें कालोसिअम में हिंसक पशुओं के साथ द्वन्द्व-युद्ध

१. 'The period of the Principate was apparently an age of moral decay.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना पड़ता था। उनके आर्तनाद पर दर्शक-गण तुमुल हर्षध्वनि करते। मृत्यु के पश्चात् उनके शव उल्लास-विस्फारित दर्शक-नेत्रों के समक्ष प्रदर्शित किये जाते। हिंसात्मक द्वन्द्व-युद्ध स्वर्णकाल के कलंक हैं। परन्तु रंगमंच की अल्पता में यही जनता के आकर्षण के केन्द्र-बिन्दु थे। इन्हें देखने के लिये वह सहस्रों की संख्या में क्रीड़ास्थल पर उपस्थित होती थी। द्वन्द्व-युद्धों में मानव-द्वन्द्व-युद्ध, मानव-पशु-द्वन्द्व-युद्ध और पशु-द्वन्द्व-युद्ध विशेष लोकप्रिय थे। इनमें भाग लेने के लिये सहस्रों दास नियोजित किये जाते थे। सिंह, बाघ और भालू जैसे हिंसक पशु विदेशों से लाये जाते थे। मानव को दानवी प्रवृत्ति पर-पीड़न में विशेष रमती है।

स्वर्ण युग की हीनता—रोम का स्वर्ण युग यूनान, भारत और इंग्लैण्ड के स्वर्णयुगों की अपेक्षा अति हीन है। पूर्वगामी युगों की तिमिराच्छन्नता और परगामी युगों की गोधूलिता में ही आगस्टस-काल स्वर्णिम लगता है। उसकी प्रदीप्ति उस दीप-शिखा के सदृश है जो निविड़ तम में शत-शत भास्करों से भी अधिक प्रकाशकर प्रतीत होती है। रोम-इतिहास में आगस्टस-काल की महत्ता आपेक्षिक है।

यदि निष्पक्षभाव से देखा जाय तो इस स्वर्ण-युग में बहुसंख्यक धूमिल अङ्क दृष्टिगत होंगे इसका समाज निम्न स्तरीय है। इसमें न व्यक्ति की विशुद्धि है और न समष्टि की सन्तुष्टि। ग्रामों की पुरातन पवित्र सरलता के ध्वंसावशेषों पर नागरीय जीवन की जटिल वैभवशालिता खड़ी की गयी थी जिसने अपने बाह्य प्रकाश से मानव के अन्तर को धूमिल कर दिया था। जीवन के उदात्त मूल्यों के स्थान पर भौतिकवाद के छिछले सिद्धान्तों का संरोपण किया गया था। समृद्धि-विस्तार के नाम पर जन-शोषण निर्दोष समझा गया था। विलासिता का प्रचण्ड उद्वेलन देश की नैतिकता और सदाचारिता को रसातल में बहा ले गया था। उन्मुक्त प्रणय की वेदी पर दाम्पत्य-जीवन की सुख-शान्ति को तिलांजलि दी गयी थी। माता और भार्या के उच्च आदर्शों से विहीन नारी अपना सर्वस्व खो बैठी। वह एकमात्र रमणी के रूप में अवशिष्ट रही। सारांशतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्णकाल में न ग्रामों की अभावविहीन सन्तोषमयी अल्पता हैं और न नगरों की सर्ववर्गीय सम्पन्नता। न उसमें व्यक्ति को उदारता है और न समष्टि की परोपकारिता। आर्थिक जीवन असम और असन्तुलित हैं; पारिवारिक जीवन कलुषित और गर्हित।

आगस्टस-काल के साहित्य, कला, धर्म और दर्शन में भी वह स्फूर्ति नहीं है जो उच्चकोटि के स्वर्ण युगों को अनुप्राणित करती है। साहित्य बीहड़ पांडित्य-प्रदर्शन के उन्माद में अपनी मौलिकता और सृजनात्मकता खो बैठा है। अभिजात वर्ग के एकान्त प्रासादों में परिपालित वह सामान्य जीवन से अति दूर हो गया है। उसमें ज्वर है, शीतलता नहीं। यही न्यूनता रोमन कला में भी परिलक्षित होती है। उसकी अधिकांश कृतियाँ यूनान की विकृत अन्धानुकृतियाँ हैं[१] जिनमें न यूनानी कलाकारों का उन्मुक्त उच्छ्वास है और न उनका उच्च आदर्श। वे सत्य, शिव और सुन्दर के पावन समन्वय से रिक्त हैं। आगस्टस काल के परम्परा-बोझिल अनुष्ठान-समन्वित तथा अन्धविश्वासमूलक धर्म में वह सन्देश नहीं जो समाज में सबल आत्मविश्वास का संचार करता हुआ उसका उन्नयन कर सके, जो पतनोन्मुख मानव में बलवती आशा का संचार करता हुआ उसे संबल दे सके, दर्शन के क्षेत्र में आगस्टस-काल जनक्षमता-विहीन था। वह किसी भी मौलिक दार्शनिक को जन्म न दे सका। जिसे हम स्वर्णकालीन दर्शन कहते हैं वह या तो धर्म है, या आचार-शास्त्र है या फिर विदेशीय दर्शनों का सम्मिश्रण। अतः आगस्टस काल को निम्नकोटि का स्वर्णयुग ही कहा जा सकता है।[२]

उत्तर-आगस्टस रोम—आगस्टस की मृत्यु के पश्चात् १४ ई० से १८० ई० तक का इतिहास रोम का "महान युग" कहा जाता है जिसका

---

१. 'In things cultured the Roman mind was always imitative rather than creative.'

२. 'The Augustan Age is after all only a poorly refurbished substitute.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेतृत्व उसके उत्तराधिकारियों ने किया। इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) जूलियोक्लाडियन काल—इस काल का संस्थापक आगस्टस स्वयं का दत्तक पुत्र टिबेरियस था जिसमें एक कुशल शासक को सभी उत्कृष्ट गुण विद्यमान थे। उसने अपनी उग्रनीति द्वारा सीमान्त प्रदेशों में सुरक्षा स्थापित की। परन्तु वह स्वयं अपने सेनानायकों का शिकार हुआ उसके दो असहाय पुत्रों की कमजोरी का लाभ उठाकर गेयस सीजर कैलीगुला के नाम से राज्य-सत्ता पर सिंहासनारूढ़ हुआ। वह एक उदार शासक था। परन्तु अन्तिम वर्षों में उसने भी अनौपचारिक कर बढ़ाये, लोगों को निरपराध दण्ड दिया। अन्ततः अपने पूर्वज की भाँति वह क्लाडियस के षड्यंत्र का शिकार बना।

क्लाडियस ने अपने को थोड़े समय में ही कुशल शासक सिद्ध किया। उसने व्यापारिक उन्नति के लिए बन्दरगाहों एवं जहाजों की व्यवस्था की तथा विदेशों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये। उसके बाद नीरो महान का शासन आता है जिसे रोम का ही नहीं वरन् विश्व का क्रूरतम निर्दयी शासक कहा गया है। उसकी यही नीति रोम के विनाश में सहायक हुई। राज्य-सत्ता वैस्पेशियन के हाथ में आई जिसने एक नवीन वंश का नाम दिया।

(२) फ्लेवियन काल—इस काल के प्रमुख शासकों में वेस्पेशियन, टिटस एवं डोमीशियन के नाम प्रमुख हैं इन्होंने अपनी लोकप्रिय सेनाओं द्वारा रोम का पुनरुद्धार किया तथा प्रगति की दिशा फिर से बढ़ाई।

(३) एन्टोनाइन काल—यह युग उत्तरकालीन रोम का सबसे समृद्धशाली युग था। इसके प्रमुख शासकों में नर्वा, ट्रेजन, हेड्रियन, ऐंटोनिनस तथा मार्कस आरेलियस विशेष प्रसिद्ध हैं। अनेकों बाह्य एवं आन्तरिक बाधाओं के बावजूद भी इन शासकों ने उन्नति का कार्य-क्रम अवरुद्ध न होने दिया तथा रोम को शान्तिपूर्ण बनाने में पूर्णतया सफल भी रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्कस ग्रारेलियस के पश्चात् रोम का इतिहास पुनः सैनिक बर्बरता के पंजे में ग्राता है जिसे 'सैनिक शासन काल' कहा जाता है। इसकी ग्रवधि १८० ई० से २८५ ई० तक थी। इस काल के प्रमुख शासकों में कमोडियस, सेप्टिमस, कैरेकल्ला, ग्रलेक्जेन्डर सेबेरस इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इस युग की सर्वप्रसिद्ध विशेषता विभिन्न राजनैतिक गुटों का उदय एवं षड्यंत्र थे जिन्होंने ग्रागे चलकर रोम के विनाश को बढ़ावा दिया।

पूर्ण रूप से ग्रागस्टस के बाद की रोमन सभ्यता प्रगतिशील नहीं वरन् विनाशोन्मुख थी। उसके वास्तविक तथ्यों का ह्रास शीघ्रता से हो रहा था तथा उसका स्थान भौतिक एवं क्रान्तिकारी तथ्य ले रहे थे। सम्राट एक उदारपूर्ण शासक नहीं वरन् स्वेच्छाचारी था। उसमें सीजर एवं ईसा मसीह के सभी ग्रधिकार केन्द्रीभूत थे। सहायक पदाधिकारी राजा की ग्राड़ में ग्रनेकों शिकार खेलते थे। ग्रार्थिक शासन व्यवस्था भी खोखली थी। प्रजा पर ग्रनौपचारिक कर लादे गये जिनका लाभ निम्न वर्ग के ग्रधिकारियों ने खूब उठाया। परिणामतः सभ्यता के ग्रन्तरंग में विद्रोह की ग्राग सुलगने लगी।

सामाजिक जीवन में ग्रशान्ति एवं ग्रसन्तोष था। समाज पर वास्तविक नियंत्रण ग्रभिजात वर्ग एवं व्यापारियों का था जो साधारण वर्गों पर मनमाने ग्रत्यचार करते थे। जीवन विलासप्रिय था। लोग ग्राचरण की पवित्रता को भूल चुके थे। उनका एकमात्र ग्रादर्श राज्य एवं राजा को प्रतिष्ठित करना रह गया था। यही भावना तत्कालीन कला एवं साहित्य में भी मिलती है। कला के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई केवल कुछ नाट्यशालाग्रों एवं स्नान-गृहों का निर्माण हुग्रा परन्तु इनकी विशेषता नवीन शैली का प्रयोग था। साहित्य में भी सेनेका, पर्सियस, टेसीटस एवं स्यूटोनियस की कृतियाँ कोई विशेष छाप जनता पर न डाल सकीं। केवल हास्य एवं व्यंग्य का चित्रण करना ही साहित्यकार का प्रमुख ध्येय था। ठीक यही ग्रवस्था शिक्षा केन्द्रों एवं दार्शनिक केन्द्रों की भी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम के अन्तिम शासक—इनमें डिग्रोक्लेशियन एवं कांस्टेन्टाइन महान के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके कार्यों से पुनः रोम का एक बार पुनरुद्धार हुआ इनका युग रोम का 'साम्राज्य काल' कहा जाता है।

डिग्रोक्लेशियन एक कुशल शासक एवं अध्यवसायी व्यक्ति था। अपने अथक परिश्रमों से उसने आगस्टस की भाँति रोम के विधान का पुनर्गठन किया। साम्राज्य पर कठोर नियंत्रण स्थापित करने के लिये चार भागों में विभाजित किया तथा प्रत्येक भाग में उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति की। उसके कुशल शासकों में मैक्सीमियन एवं गैलीरियस के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। सैनिक क्षेत्र में भी उसने सेना की संख्या बढ़ाई। प्रत्येक प्रान्त में दो टुकड़ियों की व्यवस्था की। बाह्य आक्रमण से बचने के लिए सीमान्त-प्रदेशों में विशेष सेनायें भी नियुक्त किया। आर्थिक जीवन में भी उसके कार्य सराहनीय थे, जैसे मुद्रा का प्रचार, क्रय-विक्रय का मूल्य निर्धारण, श्रमिकों को निश्चित वेतन, राजकीय आय में वृद्धि के लिये करों को बढ़ाना इत्यादि। परन्तु वह एक आत्म-श्लाघी व्यक्ति था। राजा के पद को सुशोभित करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को हर पाँचवे वर्ष एक विशेष भेंट चढ़ाने की व्यवस्था की।

डिग्रोक्लेशियन के पश्चात् कास्टैन्टाइन महान् ३०५ ई० में राज्या-रोहण पर बैठा। वह इतिहास में एक युगान्तरकारी शासकों में गण्य है। वह एक दृढ़ संकल्प एवं महान् शक्तियों वाला व्यक्ति था। उसने अपने पूर्वज द्वारा प्रचलित निरंकुश नीति से विदाई लेकर अपनी उदारपूर्ण नीति का प्रसार किया जिसके फलस्वरूप "बाइज़ेन्टियम" नामक एक नवीन शासन की उत्पत्ति हुई। राजनैतिक क्षेत्र में उसने क्वेस्टर के अधिकारों में वृद्धि की, सैनिक क्षेत्र में शासन को सुदृढ़ किया। सेना का विभाजन पूर्ववत् ही रहा परन्तु एक नवीन भाग 'केन्द्रीय सेना' का बनाया जिसका संरक्षक वह स्वयं था। मुद्रानीति में भी नवीन मुद्रायें प्रचलित कीं जैसे सोलिडियस स्वर्णमुद्रा एवं सिलिका रजत मुद्रा। नागरिकों की स्वातंत्र्य भावना को समाप्त कर कृषकों पर अनेकों कर लगाये जिससे वे भूमि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतियों के दास बन गये ।

परन्तु उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य धार्मिक क्षेत्र में था जहाँ उसने सर्वप्रथम ईसाई धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया । यहाँ तक कि अपने राज्य एवं स्वयं को वर्जिन मेरी को समर्पित किया । देवताओं के आदर में प्रतिमाय बनवाईं तथा पूजा संबंधी अनेकों अनुष्ठानों की व्यवस्था की । गिरजाघर शिक्षा के केन्द्र बने । सन्त पाल एवं पीटर की स्मृति में अनेकों चर्च बने । साथ ही ईसाई धर्म के प्रचार के लिये पूर्वी देशों में दूतावासों की भी स्थापना की ।

उसका अन्तिम महत्वपूर्ण कार्य कांस्टैन्टीनोपुल की स्थापना थी जो आज भी कुस्तुनतुनिया के नाम से प्रसिद्ध है । यह नगर अपनी सुदृढ़ भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त वर्षों से सभ्यता एवं धर्म का केन्द्र रहा है तथा पूर्व एवं पश्चिम के जोड़ने की एक कड़ी था । इसे सुन्दर बनाने के लिये कांस्टैन्टाइन में अनेकों संगमरमर के महलों का निर्माण किया । ट्रैवर के विचार में विश्व के कम ही नगर मानव सभ्यता के इतिहास में इतना अधिक महत्व रखते हैं ।

कांस्टैन्टाइन के बाद से लेकर ४७६ ई० तक अनेकों छोटे शासकों ने राज्य किया परन्तु वे केवल इतिहास में नाम मात्र थे । रोम के इतिहास का अन्तिम अध्याय इन्हीं के काले कारनामों से विभूषित था ।

रोम-साम्राज्य का पतन

रोम-साम्राज्य का पतन न आकस्मिक था और न किसी एक कारण से उद्भूत । दीर्घकाल से अनेक कारण सामाज्य के विभिन्न आधारों को खोखला कर रहे थे । दिवसानुदिवस वह अधिकाधिक अशक्त होता जा रहा था । अतः यदि बर्बर जातियों के आक्रमण न भी हुए होते तब भी वह अधिक दिनों तक अक्षय न रहता । 'एक विशाल राज्य के खण्ड-खण्ड होकर विच्छृंखल होने के इस भयंकर नाटक के अन्य अदृश्य प्रधान अभिनेता थे आन्तरिक कारण; आक्रमणकारी बर्बर केवल वहीं प्रविष्ट हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सके थे जहाँ दुर्बलताओं ने द्वार-शृंखला हटा दी थी और जहाँ शारीरिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक नीति ने रंगमंच को अव्यवस्था, निराशा तथा विनाश के हेतु छोड़ दिया था।' शक्तिहीन का पतन अवश्यम्भावी है। परन्तु 'जितने दिन रोम के पतन में लगे उतने दिनों तक कतिपय राष्ट्र जीवित भी न रह सके।'

भ्रान्तिपूर्ण कारण—रोम-साम्राज्य के पतन के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। पतन के उत्तरदायी कारणों में अनेक ऐसे कारण प्रस्तुत किये जाते हैं जो या तो असत्य हैं या केवक आंशिक रूप से सत्य। पहले हम इन्हीं के ऊपर विचार करेंगे।

नैतिक कारण—कुछ विद्वानों ने नैतिकता के ह्रास को रोम-पतन का प्रमुख कारण माना है। इसमें संदेह नहीं कि समृद्धिशालिता ने रोम-निवासी को नितान्त विलासप्रिय, सुखाकांक्षी, धन-लोलुप और अकर्मण्य बना दिया था। एच० जी० वेल्स के शब्दों में 'सम्पत्ति ने रोमनों के पैर पृथ्वी से खिसका दिये थे।' जो रोमन किसी समय 'अतिशय परिश्रम, दारिद्र्य, निर्वास, वियोग, जीवन-क्षति और अवयय-क्षति' को सहज रूप में ही वहन कर लेते थे वही अब अतिशय विलासिता में आलिप्त अबला-सुलभ सौकुमार्य का विकास करते हुए देखे गये। उत्तरोत्तर रोम का समाज भ्रष्टाचार, व्यभिचार, विश्वासघात, प्रणयघात, हिंसा और असंयमादि दोषों के कारण विष हो गया। इन कथनों के सत्य को स्वीकार करते हुए भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि नैतिक पतन ही रोम-साम्राज्य के पतन का एकमात्र कारण नहीं हो सका। अनैतिकता जितनी आगस्टस-काल में दृष्टिगत होती है उतनी परवर्ती काल में नहीं। परन्तु फिर भी अनैतिकता-प्रधान आगस्टस-काल स्वर्णकाल हो सका।

राजनीतिक कारण—अन्य विद्वानों ने रोम-साम्राज्य में जन-तन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के ह्रास को ही रोम साम्राज्य के पतन का सर्वप्रधान कारण माना है। उनका मत है कि सीनेट के अधिकारों के क्रमिक ह्रास के परिणाम स्वरूप शासन-सत्ता शनैः-शनैः जनता के हाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से निकल कर अन्त में एकतन्त्रवादी व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो गयी जो जनता के उत्पीड़न के द्वारा अपने हितों की रक्षा करना चाहते थे। अधिकारहीन जनता धनहीन और प्रभुत्वहीन भी हो गयी। अतः शासन के प्रति उसकी कोई सहानुभूति न रही। शोषक वर्ग द्वारा संचालित पतनोन्मुख साम्राज्य की संरक्षा के हेतु उसने कोई भी सहयोग प्रदान न किया। ये कथन भी आंशिक रूप से ही सत्य हो सकते हैं, क्योंकि अन्य विनाशकारी कारणों के विद्यमान होते हुए अच्छी से अच्छी जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली भी राष्ट्र के संरक्षण की गारण्टी नहीं दे सकती है।

आर्थिक कारण—भूमि-अनुर्वरता—आर्थिक कारणों में भूमि-अनुर्वरता ने रोम-साम्राज्य को विशेषरूप से जर्जर कर दिया था। इस कथन के पोषकों का विश्वास है कि साम्राज्य-काल तक आते-आते रोम की कृषि-भूमि को समस्त उर्वरता समाप्त हो चुकी थी। अतः उससे जनता की आवश्यकता के अनुकूल पर्याप्त परिमाण में अन्नोत्पादन न हो पाता था। इस अन्नाभाव ने साम्राज्य को विदेशीय आयात पर निर्भर रहने के लिये विवश किया। अतः उसकी स्थिति उत्तरोत्तर विषम होती गयी। इस भूमि-अनुर्वरता के मत में कोई तथ्य नहीं है। प्रथमतः, इस बात का कोई साक्ष्य नहीं कि साम्राज्य-काल में भूमि की उर्वरता समाप्त हो गयी थी। द्वितीयतः, यदि इसे हम सत्य भी मान लें तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आखिर उर्वरता का ह्रास हुआ कैसे? उस परिस्थिति में हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उर्वरता का ह्रास उन्हीं कारणों से हुआ जिनसे साम्राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में ह्रास हुआ। अतः भूमि-अनुर्वरता रोम-साम्राज्य के पतन का कारण न होकर उस पतन का प्रतिफल ठहरती है।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारण मलेरिया—कुछ विद्वान मलेरिया-प्रसार को रोम-साम्राज्य के पतन का कारण बताते हैं। उनका कथन है कि इस प्रसार ने अतिसंख्यक रोम-निवासियों के प्राण ले लिये और उनसे भी कहीं अधिक अतिसंख्यक निवासियों के स्वास्थ्य को क्षति पहुँचायी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु मलेरिया-प्रसार को भी रोम-साम्राज्य के पतन के कारण के रूप में नहीं वरन् प्रतिफल के रूप में ग्रहण करना चाहिये। अवनति-काल में नालियों का व्यवस्था बिगड़ गयी, मनुष्य स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों के प्रति उदासीन हो गये। फलतः रोम में मलेरिया का प्रकोप बढ़ा और उसने पहले के ही अस्वस्थ राष्ट्र के स्वास्थ्य को और भी अधिक आघात पहुँचाया।

जातीय कारण—अन्य विद्वानों की ऐसी धारणा है कि साम्राज्य में उत्तरोत्तर दास-संख्या बढ़ती गयी। रोमन जाति के साथ इनके सम्मिश्रण ने बहुसंख्यक वर्णसंकर उत्पन्न किये जो रोम के जातीय गुणों की दृष्टि से अति हीन देश का उत्कर्ष असम्भव था। प्रथमता थे, निम्न थे। इनसे यही असत्य है कि रोम-साम्राज्य में वर्णसंकरों की संख्या किसी भी समय इतनी अधिक हो गयी थी कि उसने रोमन जाति के विलुप्त हो जाने का भय होता। द्वितीयतः जातियों की सहज हीनता अथवा उच्चता सिद्ध नहीं की जा सकती। अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनमें दास अपने स्वामियों की अपेक्षा बुद्धि-बल में उच्चतर थे।

धार्मिक कारण—गिबन और नीत्से ने ईसाई धर्म के प्रचार को रोम-साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बताया है। उनका मत है कि इस धर्म ने शूरता के स्थान पर अहिंसा, और कर्मठ जीवन के स्थान पर दार्शनिक जीवन का प्रतिपादन कर साम्राज्य को अशक्त किया। पुनः ब्रह्मचर्य के प्रचार के द्वारा इसने साम्राज्य को जातीय हत्या की ओर प्रेरित किया। परन्तु यहाँ पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ईसाई धर्म के पूर्व ही रोमन को शूरता, कर्मठता और अनिवार्य वैवाहिकता समाप्त हो चुकी थी। पुनः ईसाई धर्म ने तो साम्राज्य के दीन-हीन और निराश वर्गों को विश्वबन्धुत्व, शान्ति और सहिष्णुता का उपदेश देकर परोक्षरूप से सदैव उन्हें राज्य के विरुद्ध हिंसात्मक एवं उग्र रूप धारण करने से विरत किया।

प्राकृतिक कारण—इसका प्रतिपादन स्पैंगलर महोदय करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके मतानुसार प्रत्येक मनुष्य और संस्था का जन्म, विकास और विनाश अवश्यम्भावी है, पूर्व-निर्धारित है। यह मत एकमात्र हठवाद है। जन्म, विकास और विनाश आवश्यम्भावी होते हुए भी किसी न किसी कारण से अद्भूत होते हैं। इतिहास उन्हीं कारणों के ऊपर विचार करता है, वे कारण चाहे प्राकृतिक हों अथवा मानवो।

वास्तविक कारण—अब हम रोम-साम्राज्य के पतन के उन कारणों पर विचार करेंगे जो अधिक तथ्यपूर्ण और प्रबल प्रतीत होते हैं। यह सम्भव है कि उपर्युक्त कारणों में से किसी एक अथवा अनेक ने इन प्रमुख कारणों को योग प्रदान किया हो और साम्राज्य के विनाश-क्रम को अधिक सत्वर कर दिया हो।

राजनीतिक कारण—रोम ने साम्राज्य-स्थापना तो की, परन्तु उसके शासन के हेतु किसी उचित व्यवस्था का निर्माण न किया। रोम-निवासी के पास साम्राज्य-स्थापना के लिये शक्ति थी, परन्तु उसके शासन-संचालन के हेतु प्रतिभा नहीं। अन्य कोई उपाय न देखकर उसने एकतन्त्र का सहारा लिया। यह रोम की बौद्धिक असफलता का स्वीकार-लक्षण है। आगस्टस के पश्चात् एकतन्त्र का एकमात्र आधार सेना थी। परन्तु कालान्तर में यह राज्य के लिये घातक सिद्ध हुई। राज्य ने सेना का संगठन तो किया, परन्तु उसे नियन्त्रित न रख सका। वह बहुधा गृह-युद्धों में भाग लेने लगी।

विशाल रोम-साम्राज्य का आधार रोम का नगर-राज्य था। सदियों पूर्व लघु नगर-राज्य के शासन के निमित्त जो व्यवस्था बनाई गयी थी वही विशाल साम्राज्य के शासन-संचालन के निमित्त प्रयुक्त की गयी। राज्य का विस्तार हुआ, परन्तु शासन-व्यवस्था मूलरूप में पूर्ववत् रही। परिणामतः साम्राज्य का शासन प्रायः रोम निवासियों द्वारा ही संचालित होता था। इसमें विभिन्न देशों की जनता का सहयोग न था। पुनः, सीनेट के सदस्यों की स्वार्थपरता, धनलोलुपता और विचार-संकीर्णता तथा प्रान्तीय शासकों की शोषण-नीति ने जनता की सहानुभूति को और भी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक खो दिया । रोमन सम्राटों ने कारण-निवारण के स्थान पर लक्षण-दमन किया । जैसे-जैसे अव्यवस्था बढ़ती गयी वैसे ही वैसे एकतंत्रात्मक शासन की कठोरता और निरंकुशता बढ़ती गयी । आगस्टस के पश्चात् एकतन्त्र अपने नग्न रूप में प्रतिष्ठत हुआ । इन समस्त कारणों के परिणाम-स्वरूप राज्य की उस संरक्षणकारिणी क्षमता का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया जो जन-बल से शक्ति ग्रहण करती है ।

सामाजिक कारण—रोम-साम्राज्म में सदैव दो वर्ग रहे—अभिजात वर्ग जो प्रभु-समुदाय था और जिसके हाथ में समस्त अधिकार थे तथा सामान्य जन-वर्ग जो अधिकारहीन, धनहीन और प्रभुत्वहीन था । इनमें सदैव अन्तर्वर्गीय संघर्ष चलता रहा जिसने सरकार को कभी भी सर्वलोकप्रिय न बनने दिया । पारस्परिक संघर्ष ने समाज में सदैव द्वेष और कटुता को भावना को जीवित रखा । तीसरी शताब्दी में सम्राटों ने अभिजातवर्ग को भंग कर दिया और उनके साम्पत्तिक विशेषाधिकारों का अपहरण कर लिया । इस प्रकार धनी और निर्धन, शिक्षित और अशिक्षित, संस्कृत और असंस्कृत सभी मनुष्य एक में घुल-मिल गये । इस सम्मिश्रम का एक भारी दुष्प्रभाव हुआ जो राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संगठन अभिजात, उच्च एवं सुसंस्कृत वर्ग के चतुर्दिक विकसित हुआ था, वह उसके विच्छृंखल होते ही स्वयं भी विच्छृंखल हो गया । इससे देश में अव्यवस्था का और भी अधिक प्रसार हुआ ।

रोम में उत्तरोत्तर दासों और विदेशीयों की संख्या में वृद्धि होती गयी । ये दास और विदेशीय सदैव निम्न जाति के न होकर निम्न संस्कृति के मनुष्य थे । ये राज्य और समाज के विविध क्षेत्रों में प्रविष्ट हो गये । शनैः-शनैः रोम का विदेशीकरण होने लगा । श्रेयस्कर होता, रोमन यदि विदेशीयों को स्वयं आत्मसात् करता । परन्तु वह स्वयं आत्मसात् हो गया ।

साम्राज्य अपने साथ समृद्धि लाया और समृद्धि लायी अपने साथ विलासिता । अतिधन ने रोम की नैतिकता और सदाचार का विनाश कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया। मनोविनोद के निमित्त होने वाले क्रूर मानव-पशु द्वन्द्वों की संख्या अत्याधिक बढ़ती गयी। इनके लिये विदेशों में बहुसंख्यक पशुओं और दासों का रोम में आयात होने लगा। आगस्टस के समय इन प्रदर्शनों के हेतु सार्वजनिक छुट्टियों की संख्या ६३ थी, परन्तु चौथी शताब्दी तक वह १७५ हो गयी। भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अधर्म्य प्रणय, सम्बन्ध विच्छेद, विश्वासघात, हिंसा आदि के प्रचण्ड झंझावात ने रोम-निवासी के उत्ताल मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया। विवाह-विहीनता सम्मान्य समझी जाने लगी। पेट्रोनिअस का उल्लेख है कि 'कोई भी शिशुओं को स्वीकार नहीं करता; क्योंकि जिस मनुष्य के उत्तराधिकारी रहते हैं वह किसी भी सार्वजनिक उत्सव में आमन्त्रित नहीं होता, किन्तु समाज के अति निम्नांश के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये छोड़ दिया जाता है। इसके विरुद्ध सन्तानहीन मनुष्य सम्मानित होता है और सर्वगुण-सम्पन्नता का आदर्श समझा जाता है।' परिणामतः विवाहविहीनता के विरुद्ध अनेक प्रकार की राजव्यवस्था के होते हुए भी वह (विवाह-विहीनता) अव्याहत रूप से प्रतिष्ठित रही। रोमन इतिहासकार टेसिटस के कथनासुसार 'सन्तान के अभाव से उत्पन्न लाभ राजाज्ञोपलंघन के दण्ड से कहीं अधिक थे।' फलस्वरूप रोमन जाति की संख्या शनैः शनैः कम होने लगी। पारिवारिक जीवन की शुभ्रता नष्ट होने लगी। मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य धनार्जन और एकमात्र सन्तोष वासनापूर्ति हो गया। ऐसे अनैतिक साम्राज्य का अधिक दिनों तक जीवित रहना असम्भव था। परिवार और सन्तान के विषय में रोम का यह दृष्टिकोण चीनी दृष्टि-कोण से नितान्त प्रतिकूल था। चीन पारिवारिक जीवन को अति आवश्यक समझता था। परन्तु रोम उसकी उपेक्षा करता था। अतः रोम तो नष्ट हो गया, परन्तु चीन जीवित है।[१] नैतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक

१. 'Rome and China are at opposite poles in their attitude to the family and to the claims of the future upon the present. Therefore Rome perished, but China endures.'
—Hoyland.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूल्यों के उत्सर्ग ने रोम-साम्राज्य के आधार को हिला दिया था। उसमें एकमात्र बाह्य प्रदर्शन ही रह गया था। उसका आंतरिक सौन्दर्य विलुप्त हो चुका था। उसमें सभ्यता थी, संस्कृति नहीं।[१]

आर्थिक कारण—साम्राज्य-स्थापना ने रोम के आर्थिक संगठन को दुर्वह कर दिया। सस्ते विदेशी अन्न के आयात ने स्वदेशी उत्पादन पर भारी आघात किया। पुनः विशाल परिमाण पर आयोजित धनाढ्य भूपतियों का कृषि-कर्म छोटे-छोटे कृषकों के कृषि-कर्म के हेतु घातक सिद्ध हुआ। परिणाम स्वरूप छोटे-छोटे कृषक अपने पैत्रिक खेतों को बेचकर अन्य वृत्तियों की खोज में नगरों में आकर भटकने लगे। बहुसंख्यक दासों के आगमन से स्वतंत्र श्रमजीवियों की आर्थिक दशा भी दयनीय हो गयी। वे भी झुण्ड के झुण्ड जीविकोपार्जन अथवा निश्शुल्क अन्न-वितरण की प्राप्ति के हेतु नगरों में आ गये। फलतः ग्रामों का जीवन विघटित और नगरों का जीवन शांतिहीन हो गया। नगर के निर्धन ग्रामीणों को विवशता का लाभ उठाकर धनीवर्ग उनसे मतों का क्रय करने लगे। इसने देश की राजनीतिक अवस्था को और भी अधिक दोषपूर्ण कर दिया।

देश के उद्योग-धंधों के प्रति प्रभुवर्ग निरपेक्ष था। वह ऐसे कार्यों को निम्नवर्गीय समझता था। अतः उनके विकास में उसने कोई अभिरुचि न दिखायी। देश में उत्पान-कार्य पर्याप्त रूप से होते हुए न देखकर सम्राटों ने आज्ञा दी कि प्रत्येक मनुष्य अपने पैतृक व्यवसाय का ही अनुसरण करे। इससे व्यक्ति की व्यावसायिक स्वतंत्रता भी जाती रही। व्यवसायी की अभिरुचिहीनता के कारण उत्पादन और गिर गया। पुनः रोम का आयात-निर्यात अति सन्तुलनहीन था। निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होने के कारण रोम की आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर हीन होती गयी।

१. 'The Roman Empire became at last a hideous picture of culture without civilisation—Culture that was outwardly a barren show of splendour and luxury, but within was selfish and currupt beyond belief'.—Hoyland.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालान्तर में सामुद्रिक एवं स्थलीय मार्ग भी अरक्षित हो गये। राजकीय मुद्रा में धातु-सम्मिश्रण होने लगा। अतः उसमें जनता का विश्वास जाता रहा। असम धन-वितरण के कारण निर्धनता बढ़ी; निर्धनता के कारण जनता की विक्रय-क्षमता भी कम होती गयी। रोम ने Monetary Enonomy के स्थान पर Natural Economy का आश्रय लिया। धन के माध्यम का परित्याग कर लोग अन्न के माध्यम से क्रय-विक्रय करने लगे, यहाँ तक कि सैनिकों का वेतन भी अन्नरूप में दिया जाने लगा। इन सब बातों का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि देश का आर्थिक जीवन नितान्त विच्छृंखल हो गया। भारी करों का भार विशेषतया मध्यम वर्ग के ऊपर पड़ता था। अतः वह भी उत्तरोत्तर निर्धन होता गया। समाज में या तो अत्यधिक धनी या अत्यधिक निर्धन वर्ग रहे।

सैनिक कारण—रोम साम्राज्य की सीमाय अत्यधिक विशाल होने के कारण सैनिक दृष्टिकोण से दुर्रक्षणीय हो गयी थीं। पुनः रोम के ठीक उत्तर में जर्मनी का देश था जिसकी बर्बर जातियों का कभी भी सम्यक् रूप से दमन न हो सका था। वे प्रत्यवसर पर विद्रोह एवं आक्रमण के निमित्त कटिबद्ध रहती थीं। सड़कें बनवाने के अतिरिक्त रोमनों ने अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा के हेतु कोई स्थायी प्रबन्ध न किया था। निर्बल सम्राटों के शासनकाल में उनके स्थलीय एवं सामुद्रिक प्रयाण-मार्ग अत्यन्त अरक्षित हो गये। शक्तिशाली एवं सुसंगठित युद्ध-पोतों के अभाव में स्वयं विशाल साम्राज्य का आधार भूमध्य सागर भी अरक्षित हो गया था। पुनः रोमनों ने अपनी सेनाओं में बहुसंख्यक बर्बर जातीय मनुष्यों को भरती किया। इन्होंने समय-समय पर अपनी सैनिक शिक्षा का प्रयोग रोम-साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह एवं षड्यन्त्र करने में किया।[४]

१. 'With almost incredible folly the Romans took the Barbarians into their legions, taught them the arts of war, marched them about the Empire, and returned them with their lesson well learnt to their own people. Thus the Empire prepared, the way for its own overthrow'.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साम्राज्य-भक्ति का अभाव—रोम की अधीन जनता में साम्राज्य-भक्ति का सर्वथा अभाव था। उसे साम्राज्य की रक्षा-अरक्षा की कोई चिन्ता न थी। अधिकांश जनता नागरिकता के अधिकारों से वंचित होने के कारण रोमन साम्राज्य को एक विदेशीय सैनिक शासन से अधिक और कुछ न समझती थी। साम्राज्य के अन्तिम काल में स्वतन्त्र यात्रा पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण लग गये थे। सरकार को भय था कि लोग करों से बचने के लिये ही विदेश-यात्रा अथवा गृह-परिवर्तन करते हैं। अतः इनके ऊपर अनेक प्रकार के निरोध लाद दिये थे। परिणामतः जनता का ज्ञान प्रधानतः स्थानीय विषयों तक ही सीमित रहता था। उसे साम्राज्य के गम्भीर विषयों के ऊपर विचार करने अथवा उनमें भाग लेने का न तो अवसर था और न उसकी इच्छा ही। अतः रोम-निवासियों के अतिरिक्त सामान्य जनता साम्राज्य-भक्ति-विहीन थी।

धर्म, साहित्य और कला की विफलता—धर्म, साहित्य और कला बहुधा पतनोन्मुख राष्ट्र को सम्बल देते हुए देखे गये हैं। उन्होंने बहुधा हताश जाति के अन्तर में आशा-दीप जलाये हैं, विपथ जाति का पथ-प्रदर्शन किया है और मृतप्राय जाति के क्षीण प्राणों को शतधा स्पन्दित किया है। धर्म मानव का आशा-दीप है, साहित्य उसका गुण है और कला है उसकी स्नेहमयी प्रेरणा। जब तक ये तीनों अक्षय रहते हैं तब तक कोई भी राष्ट्र पतित नहीं हो सकता।

रोम-साम्राज्य के अभाग्य से उसके धर्म, साहित्य और कला में भी वह शक्ति न रही थी जो राष्ट्र का उज्जीवन कर सके, उसका उन्नयन कर सके। सर्वप्रथम रोम में शंकावाद आया। उसने रोम-निवासी को नितान्त शंकावादी और निराशावादी बना दिया। आगस्टस ने प्राचीन धर्म का पुनरुत्थान कर राष्ट्र को संबल दिया। परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त पुनः अन्य धर्मों की प्रतिष्ठा बढ़ी। स्टाइक विचार-धारा रोम की विचार-धारा बन गयी। यहाँ तक गनीमत थी। परन्तु कालान्तर में रोम में निओ-प्लेटोनिज्म (Neo Platonisin) का प्रवेश हुआ। इसके प्रसार ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोम-निवासी को निराशावादी, निष्क्रिय और पलायनवादी बना दिया। समन्तात् अशान्ति और अरक्षा में रोम-निवासी इस संसार से थक गया था, इसमें उसे अरुचि हो गयी थी। वह मृत्यु के द्वारा जीवन से मुक्ति चाहता था। जीवन-क्षेत्र में उसे शान्ति न मिली थी, शायद मृत्यु के खण्डहरों में मिल सके। इसी से वह अपने प्राण-प्रदीप बुझाने के लिये नित आकुल रहता था।

यही विफलता साहित्य में थी। उसका बाह्य परिष्कार बढ़ता गया, परन्तु अन्तर रिक्त होता गया। विचारों की दरिद्रता से साहित्य-कलेवर निर्जीव हो गया था, वह सुन्दर परिधान परिवेष्ठित कंकालवत् था। उसमें प्रदर्शन-मात्र रह गया था, उद्देश्य जाता रहा था। इस साहित्य में भविष्य का निर्माण न था, अतीत का गौरवगान मात्र था। अतीतवादी साहित्य सृजनात्मक के अभाव में स्वप्न की भाँति सुन्दर हो सकता है, परन्तु उसमें सत्य की ओजस्विता नहीं रहती। रोम के परवर्ती साहित्य में पहले से भी अधिक बौद्धिक श्रान्ति है, पलायनवाद है, निराशा है। ऐसा साहित्य पतनोन्मुख राष्ट्र के उज्जीवन के निमित्त सर्वथा अनुपयुक्त था।

कतिपय अन्तरालों को छोड़ कर आगस्टस के पश्चात् सम्पूर्ण परवर्ती साम्राज्य-काल कला का पतन-काल है। यह काल सामूहिक अरक्षा का काल था। अतः इस समय के निर्मित भवनों में सौन्दर्य की अपेक्षा सुदृढ़ता ही अधिक है। अधिकांश राजभवन एकमात्र दुर्ग सदृश हैं। उनमें प्रस्तरों की कठोरता है, कला की कोमलता नहीं। यही हीनता स्थापत्य के क्षेत्र में भी दृष्टिगत होती है। सम्पूर्ण मूर्तियाँ, एकमात्र पाषाण-खण्ड हैं। उनमें न भाव है, न गति, न सौन्दर्य है और न आदर्श। इसी प्रकार चित्रकला और मृणकला भी निरादर्श और निम्नस्तरीय है। इस समय के कलाकारों में वह उत्साह नहीं, वह क्षमता नहीं, वह आकुलता नहीं जो युग-निर्माण का कार्य कर सके। उनकी छेनी कुण्ठित और उनकी तूलिका निस्पन्द हो चुकी थी। फिर वे राष्ट्र का उन्नयन कैसे करतीं ?

अयोग्य उत्तराधिकारी—आगस्टस के पश्चात् रोम-साम्राज्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी बहुधा अयोग्य, स्वार्थी और प्रजा-पराङ्मुख थे। अधिकांशतः न तो ये प्रान्तीय शासकों की स्वतन्त्रतोन्मुखी प्रवृत्ति का दमन कर सके और न देश में सुख-शान्ति की स्थापना कर जनता का विश्वास प्राप्त कर सके। इनके शासन-काल में राजसभा में अनेक प्रकार के षड्यन्त्र होते रहते थे। इनमें कभी-कभी सेना भी भाग लेती थी। कभी प्रान्तीय विद्रोह होते तो कभी बाह्य आक्रमण। कभी विधर्मियों पर अत्याचार होता तो कभी स्वधर्मियों का शोषण। विशाल साम्राज्य सामान्य योग्यता के परवर्त्ती नरेशों के लिये दुर्वह हो गया। इसकी संरक्षा के निमित्त उनके सीमित साधनों का व्यय होता रहता और फिर भी वह संरक्षित न रहता। ऐसी परिस्थिति में रोम-साम्राज्य भीतर से खोखला हो गया था। उसका पतन काल की प्रतीक्षा कर रहा था।

इधर आगस्टस की आँखें बन्द हुईं और उधर उसके उत्तराधिकारी टिबेरियस के विरुद्ध राजसामन्तों ने षड्यन्त्र करना आरम्भ किया। अतः आत्म-रक्षा के निमित्त उसने Law of Majesty नामक अधिनियम बनाया। इसके अनुसार राजा के विरुद्ध किसी प्रकार की भी आलोचना दण्डनीय थी। उसने देश में बहुसंख्यक गुप्तचरों की नियुक्ति की तथा लोक-प्रतिनिधि असेम्बली का अधिवेशन बन्द कर दिया। इन सबका सामूहिक दुष्प्रभाव यह हुआ कि उसके साम्राज्य में नग्नरूप में निरंकुशवाद की स्थापना हुई। सम्राट् के ऊपर किसी प्रकार का निरोध न रहा। वह स्वेच्छाचारी हो गया।

टिबेरियस के पश्चात् कैलीगुला ने अपनी क्रूर नीति से रोम के सामन्तों और जनतन्त्रवादी नेताओं को क्षुब्ध कर दिया। अतः उन्होंने षड्यन्त्र करके उसकी हत्या कर डाली।

रोम-सम्राट् नीरो तो अपनी नृशंसता के लिये विश्व-कुख्यात है। उसने अपनी पत्नी आक्टेविया से सम्बन्ध-विच्छेद कर पोपोइया सैबिना नामक एक अति भ्रष्टचरित्र स्त्री के साथ विवाह किया और कालान्तर में गर्भावस्था में लात मार कर एक दिन उसके भी प्राण ले लिये। उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय में रोम में भयंकर आग लगी जिसके परिणाम-स्वरूप रोम की बहुसंख्यक कला-कृतियाँ भस्मीभूत हो गयीं। कहते हैं, यह आग स्वयं नीरो ने लगवाई थी। परन्तु दोषारोपण से बचने के लिये उसने इस अग्नि-काण्ड के लिये ईसाइयों को उत्तरदायी ठहराया और उनका विनाश करना प्रारम्भ किया। रोम के पुनर्निर्माण के हेतु उसने निर्धन जतना से भारी कर लिये। परिणामतः देश में और भी अशान्ति फैली। अन्त में इस षड्यन्त्र से क्षुब्ध होकर उसने सन्देह में, युग के महान् दार्शनिक सेनेका और राजकवि लूकन को प्राणदण्ड दिया। इस प्रकार उसका शासन पूर्णरूपेण नृशंसता का इतिहास है अन्त में समन्तात् व्याप्त अशान्ति से घबड़ाकर उसने आत्म-हत्या कर ली।

नीरो की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक उत्तराधिकार के हेतु युद्ध चलते रहे जिनमें सेनाओं ने अप्रच्छन्न रूप से भाग लिया। सैनिक सहायता से एक व्यक्ति सम्राट् होता परन्तु कुछ समय में उसकी हत्या कर दी जाती और दूसरा व्यक्ति सम्राट् घोषित किया जाता। इस गृह-अशान्ति ने सम्राट्-पद को और भी असम्मान्य कर दिया।

कुछ काल के लिए फ्लेवियन-वंश के कुछ राजाओं ने और उनके उत्तराधिकारी 'सदाचारी राजाओं' ने देश में शान्ति स्थापित करने की चेष्टा की। परन्तु उनके पश्चात् १९२ ई० से लेकर २८४ ई० तक का काल भयंकर गृहयुद्धों, षड्यन्त्रों और निरंकुशवादिता का काल है। इस समय राजकीय विषयों में सेना का हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया। उसी की कृपा से व्यक्ति सम्राट्-पद को प्राप्त करते और उसी के कोप से पद-च्युत होते थे। ऐसी परिस्थिति में राज्य की अवस्था दयनीय हो गयी।

कान्स्टेन्टाइन और जूलियन ने राजसत्ता के पुनर्गौरव की प्रतिष्ठा करने की प्रशंसनीय चेष्टा की। परन्तु जूलियन की मृत्यु के पश्चात् फिर साम्राज्य में विच्छृंखलता व्याप्त हो गयी। यह दो भागों में विभाजित कर दिया गया। इन दोनों के पारस्परिक द्वेष ने रोम-साम्राज्य की और भी अधोगति कर दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्तीय विद्रोह—अयोग्य सम्राटों के शासन-काल में साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेश निरंकुश हो गये। वे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के हेतु विद्रोह करने लगे। टिरेबियस के समय पनोनिग्रा और जर्मनी ने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किये और नृशंस नीरो के समय में स्पेन और ब्रिटेन ने। कुल काल के लिये जर्मनी को सेनाओं ने अपने सेनापति विटेलिअस को सम्राट् बनाया और सीरिया की सेनाओं ने अपना सेनापति वेस्पेसियन को। वेस्पेसियन के समय पार्थिया का विद्रोह हुआ। हेड्रियन के शासन-काल में आर्मीनिया और पार्थिया स्वतन्त्र हो गये। एण्टोनिनस की शान्तिप्रियता से लाभ उठाकर डेन्यूब प्रदेश और अफ्रीका में विद्रोह हुए। मार्कस आरेलियस को आजीवन जर्मन आक्रमणकारी और सीथियन जातियों से युद्ध करना पड़ा। एलेग्ज़ेण्डर सिवेरस के समय पारसीक राज्य का उदय हुआ। पारसीक सत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अन्त में पारसीक नरेश सापुर ने रोमन सम्राट् वलेरियन को पराजित किया और बन्दी बना लिया। कहते हैं कि यह पारसीक नरेश अश्वारोहण के समय वलेरियन की पीठ को पाद-पीठिका के रूप में प्रयोग करता था। भाग्य-चक्र ने रोम-साम्राज्य के अधिपति को इस दशा तक पहुँचा दिया था। पतन पूर्णप्राय हो चुका था। सम्राट् डायोक्लीशियन ने प्रान्तीय संरक्षा के निमित्त सम्पूर्ण साम्राज्य को चार भागों में विभाजित कर दिया। इस विभाजन ने कालान्तर में गृह-युद्ध को जन्म दिया। प्रत्येक भाग सर्वसत्ताधारी होने की चेष्टा करने लगा। पुनः एकमात्र राजकीय केन्द्र न रहने के कारण रोम को प्राचीन प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इस नरेश के समय में ब्रिटेन, गाल और मिस्र में विद्रोह हुए। इस प्रकार बहुसंख्यक विद्रोहों ने केन्द्रीय सत्ता को अति निर्बल कर दिया। विद्रोहों के दमन में साम्राज्य के धन-जन की विपुल हानि हुई। अनवरत युद्धों के कारण अधिकांश सम्राटों को अवकाश हा न था कि वे लोकोपकारी कार्य कर सकें। अतः साम्राज्य के मन्दिरों, संग्रहालयों, पुस्तकालयों नाट्यशालाओं, स्नानागारों, बन्दरगाहों, व्यापारिक मार्गों आदि की अवस्था दयनीय होती गयी। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रगति सदैव के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिये अवरुद्ध हो गयी। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थायें जर्जरित हो गयीं। उनके जीर्णोद्वार के हेतु न किसी में उत्साह था, न साधन और न अवकाश। सम्पूर्ण साम्राज्य अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था।

अन्य कारण—उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ छोटे-बड़े अन्य कारण भी थे जिन्होंने रोम-साम्राज्य के पतन में योग दिया। अनवरत युद्धों के परिणाम-स्वरूप देश के जन-धन की अपार हानि हुई। उसके बहुसंख्यक शूरकर्मा निवासी मारे गये। संक्रामक रोगों, विवाहहीनता, गर्भनिरोध तथा जनन-शक्ति के ह्रास ने जन-संख्या को और भी कम कर दिया। जो अवशिष्ट रहे उनमें अधिकांशतः न शौर्य था और न साहस जो संकटग्रस्त राष्ट्र का संरक्षण कर सकें। रोमन सम्राट् विदेशीय धर्मों के प्रति अनुदार थे। उन्होंने साम्राज्य-रक्षा में उनका योग न लिया। यह भारी भूल थी। यहूदी एक उन्नत राष्ट्र थे। ईसाइयों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। यदि इनके साथ सद्व्यवहार किया जाता तो प्रतिफल में ये रोम-साम्राज्य को विशेष योग देते। केन्द्रीय शासन की निर्बलता ने प्रान्तीय शासकों की निरंकुशता को बल दिया। अब वे स्वेच्छाचारी शासकों के रूप में निर्विरोध प्रजा का शोषण करने लगे। उनके उत्पीड़न ने सम्राट् के प्रति प्रजा की भक्ति-भावना को क्लेदित कर दिया। इसी समय पूर्व में भारत, अरब और असीरिया के राष्ट्रों ने समस्त रोमन व्यापार को शनैः-शनैः अपने हाथ में लेना प्रारम्भ कर दिया। इससे रोम की समृद्धि को भारी धक्का पहुँचा। पुनः रोम की संस्कृति उच्च एवं अभिजात वर्ग की संस्कृति थी। रोस्टोजेफ के मतानुसार उसकी समृद्धि एकमात्र एक वर्ग पर आधारित थी। जब वह वर्ग विपथ हो गया, स्वार्थी एवं निष्क्रिय हो गया तो उस पर अवलम्बित सम्पूर्ण संस्कृति भी जर्जरित हो गयी। सम्पूर्ण जनता के सहयोग के अभाव में उसका संरक्षण न हो सका।

वाह्य आक्रमण—जिस समय रोम-साम्राज्य अपने पैरों पर लड़-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खड़ा रहा था उसी समय उस पर बाह्य आक्रमण हुए। इनके घात-प्रतिघातों ने उसे सदैव के लिये धराशायी कर दिया। ये आक्रमणकारी थे फ्रैंक, गोथ, वैण्डल और हूण। फ्रैंक जर्मनी की बर्बर जातियों का सामूहिक नाम है। इन्होंने अलेग्जैण्डर सिवेरस के समय से रोम-साम्राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। परन्तु इनसे कही अधिक शक्तिशाली थे गोथ जाति के आक्रमणकारी। ये बाल्टिक सागर से लेकर काला सागर तक के बीच समस्त मध्य योरप में रहने वाला खानाबदोश जाति के थे। ३७४ ई० के लगभग हूणों ने इनके देश पर आक्रमण किया। अतः गोथ जाति को अपनी पैतृक भूमि छोड़कर आगे बढ़ना पड़ा। अपने प्रयाण-मार्ग में इन्होंने पूर्वी रोम-साम्राज्य के नरेश वेलेन्स पर आक्रमण किया। कुछ समय के पश्चात् इनके नेता एलेरिक ने इटली पर अक्रमण करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में तो उसे सफलता न मिली परन्तु ४०८ ई० में वह सफल हुआ। छः दिनों तक रोम में लूट-मार मची रही। इसके परिणाम-स्वरूप यह भव्य नगर विरूप हो गया। एलेरिक की मृत्यु के पश्चात् वेण्ढाल जाति के नेता गेन्सेरिक ने अफ्रीका और भू-मध्य सागर के अनेक रोमन प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। थोड़े ही दिनों में हूणों के नेता एटिका ने रोम पर आक्रमण किया, परन्तु पोप की अभ्यर्थना पर उसे नष्ट-भ्रष्ट न किया। प्रचुर धन लेकर वह वापस चला गया। ४६६ ई० में जर्मनी की बर्बर जाति के नेता Odoacer ने पश्चिमी रोम साम्राज्य के नरेश रोमुलस आगस्टुलस को पराजित करके पदच्युत कर दिया। इस प्रकार पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। एकमात्र पूर्वी साम्राज्य अवशिष्ट रहा जो १४५३ के तुर्क-आक्रमण तक जीवित रहा।

रोम-संस्कृति की देन

अपने समस्त गुण-दोषों को लिये-दिये रोम-संस्कृति ने समस्त विश्व के ऊपर अपना चिरस्थायी प्रभाव डाला है। रोम-निवासी का सर्वप्रमुख कार्य था एक विशाल साम्राज्य की स्थापना जिसकी छत्रच्छाया में विभिन्न

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशों, जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों के मनुष्य दीर्घकाल तक 'पैक्स रोमाना' (रोमन-शान्ति) का अनुभव करते रहे। इसके पूर्व किसी भी देश ने इतने विशाल एवं सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना न की थी। पूर्वगामी पारसीक साम्राज्य विशालता एवं सुसम्बद्धता में इससे हीन था। इस रोम-साम्राज्य ने विश्व-राज्य की कल्पना प्रस्तुत की जो परिवर्तित रूप में आज भी मानव का परम आदर्श है। रोम-साम्राज्य से प्रभावित होकर शार्लमेन, ओटो आदि विजेताओं ने लघुरूप में उसकी अनुकृति की स्थापना करने की चेष्टा की। यही रोम-साम्राज्य राजनीतिक क्षेत्र में 'पवित्र रोमन साम्राज्य' (Holy Roman Empire) और धार्मिक क्षेत्र में 'पवित्र रोमन चर्च' (Holy Roman Church) की स्थापना का प्रेरक था।

रोम-साम्राज्य ने संकीर्ण राष्ट्रीयता तथा स्वदेशीयता की भावना को हतोत्साह कर सार्वभौमता और अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों को प्रतिफलित किया। अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य, नागरिकता, धर्म, दर्शन, साहित्य, भाषा, संस्कृति और व्यापार की सम्भावना को परिपुष्ट करके इस साम्राज्य ने वर्तमान युग का पथप्रदर्शन किया।

रोम के एकतन्त्र और जनतन्त्र संसार के लिये प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए। सीज़र का आदर्श विश्व के अनेक सैनिकवादी एकतन्त्रात्मक शासनों के समक्ष प्रतिष्ठित रहा। सीज़र की भाँति ही केसर और ज़ार की उपाधियाँ धारण की गयीं। अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम और फ्राँस की राज्य-क्रांन्ति की अन्तश्चेतना में रोम की जनतन्त्रात्मक शासन-पद्धति विद्यमान थी, वह संघर्ष काल में अमेरिका और फ्रांस के निवासियों को प्रेरणा दे रही थी। अमेरिकन संविधान ने रोम की शासन-पद्धति के अनेक अंगों—एम्परेटर (प्रेसीडेण्ट के रूप में), सीनेट और असेम्बली (लोक-सभा) को समाविष्ट कर रोमनों की वैधानिक बुद्धि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कार्यकारिणी और धारा सभा को एक दूसरे से स्वतन्त्र रखने की आवश्यकता, बहुमत-द्वारा निर्णय तथा नगरपालिकाओं द्वारा संचालित स्थानीय स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त हमें प्रमुखतया रोम से ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनतन्त्रवाद का सफल प्रयोग रोम के पूर्व यूनान में किया गया था। परन्तु इसके अनेक सिद्धान्तों का विश्व में प्रसार रोम-साम्राज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सका। रोम-संविधान का एम्परेटर कालान्तर में एम्परेटर बना और पाण्टिफ पोप। 'राज्य कोई गलती नहीं कर सकता' (The State can do no wrong) का सिद्धान्त रोमन सीनेट की सर्वसत्ताधारी शक्ति का ही प्रतिफल है।

रोमन कानून तो समस्त आधुनिक विश्व की अमूल्य निधि है।[१] आज कोई भी ऐसा विश्वविद्यालय नहीं जिसके कानून के पाठ्-क्रम में रोमन कानून का अध्ययन समाविष्ट न हो। जस्टीनियन, गेयस, पैपिनियन, अल्पिअन और पालस रोम के ही नहीं वरन् समस्त संसार के कानून-विशारद समझे जाते हैं। इनके कथन आज भी बहुधा सिद्धान्त-वाक्यों के रूप में उद्धृत किये जाते हैं। रोमन कानून के त्रिविध वर्गीकरण—नागरिक, सर्वसाधारण और प्राकृतिक—ने वर्तमान देशों की कानूनी व्यवस्थाओं को विकसित होने में बड़ा योग दिया है।[२] नागरिक कानूनों के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का निर्माण सर्वप्रथम रोम में ही हुआ।

भाषा और साहित्य के क्षेत्रों में भी योरप रोम का कम आभारी नहीं है। रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत लैटिन भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गयी थी। लैटिन भाषा का साहित्य रोम का साहित्य नहीं वरन् समस्त

१. The Romans always had a deep veneration for rules and forms, and in consequence they discovered, preserved, developed, and consolidated, with adm rable exactitude, the best methods of securing justice between, man and man.'

२. 'Today it forms the basis of law in all the chief European states except England.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योरप का साहित्य रहा है। आज अधिकांश योरोपीय भाषाओं का लैटिन भाषा के साथ वही सम्बन्ध है जो विविध भारतीय भाषाओं का संस्कृत के साथ। भाषा-प्रभाव के कारण आज भी फ्रांस, इटली, रूमानिया, स्पेन और पुर्तगाल लैटिन देश कहे जाते हैं। मध्ययुग का समस्त साहित्य लैटिन भाषा में ही लिखित है। लैटिन भाषा के अनेकानेक परिभाषिक शब्द (Technical words) आज भी समस्त देशों में व्यवहृत होते हैं। योरप की पुनर्जागृति (Renaissance) प्रमुखतया उसी विस्तृत लैटिन भाषा के पुनरुध्ययन का परिणाम हैं। ट्रेवर महोदय के कथनानुसार यूनानी साहित्य रोमन साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट था तथापि विश्व-साहित्य के ऊपर अधिक प्रभाव रोम-साहित्य का ही पड़ा। इसके दो विशेष कारण हैं—१ रोम-साम्राज्य की जिसके परिणाम-स्वरूप रोम साहित्य अन्यान्य देशों में भी जा सका और २ रोमनों की हमारे काल से सन्निकटता जिसके परिणामस्वरूप रोम-साहित्य संसार में सुगमता से ग्रहीत और अधीत हो सका। मिल्टन, शैलो, कीट्स, टेनीसन आदि अंग्रेजी कवियों पर रोमन कवि वर्जिल का प्रचुर प्रभाव पड़ा। कीट्स तो वर्जिलकृत 'एनीड' से इतना प्रभावित हुआ था कि उसने इस ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर डाला। स्वयं उसकी कृतियों 'लेमिया' और 'हाइपेरियन' पर वर्जिल की आत्मा मँडरा रही है। इनके अनेक अंश ठीक रोमन काव्य के अनुकृतांश है। इसी प्रकार पश्चात्य आचार शास्त्रों तथा नाटकों पर सेनेका, व्याख्यान-कला एवं गद्यात्मक लेखन-शैली पर सिसरो, इतिहास ग्रन्थ-रचना पर लिवी और टेसीटस तथा शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थों पर क्विण्टिलियन के प्रभाव स्पष्ट हैं।

रोम-साम्राज्य अपने बहुसंख्यक सार्वजनिक निर्माण-कार्यों के लिये प्रसिद्ध है। भिन्न-भिन्न भागों में निर्मित मार्ग, पुल, पुस्तकालय, संग्रहालय, स्नानागार, नाट्यशालायें, मन्दिर, भवनादि जहाँ एक ओर रोम को प्रचुर-निर्माण-क्षमता को परिलक्षित करते हैं वहाँ दूसरी ओर उसको लोकोपकारिता को भी। इन निर्माणों ने संसार के एक विशाल भूखण्ड को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुखो, समृद्धि और सुसंस्कृत करने में योग दिया। इनके अनेक उदाहरण आज भी अनेक देशों में पाये जाते हैं। सीरिया के कतिपय सूर्य-मन्दिर, फ्रांस का एक पुल, ब्रिटेन के कतिपय स्नानागार और अनेक यूरोपीय मार्ग रोम के प्राचीन वैभव का स्मारक हैं। रोमन वास्तुकला के आकार-प्रकार का प्रभाव मध्ययुगीन धार्मिक भवनों तथा वर्तमान सरकारी भवनों पर दृष्टिगत होता है[१]। 'दिल्ली के नवीन सरकारी भवनों, लन्दन की नवीनतम इमारतों यथा केन्द्रीय काउन्सिल हाल और पोर्ट आफ़ लण्डन आफ़िस (और हम कह सकते हैं कि अमेरिका के नवीनतम भवन भी) सबने समान रूप से रोमन वास्तुकला के आदर्शों को ग्रहण किया है[२]।' आधुनिक योरप और अमेरिका के तोरणों, स्तम्भों और वीरपुरुषों तथा कुशल राजनीतिज्ञों की पाषाण-मूर्तियों पर रोमन स्थापत्य का प्रभाव दृष्टिगत होता है। रोमन इंजीनियर ने अनेक बन्दरगाहों, पुलों और सड़कों आदि का निर्माण कर जिस परम्परा का संरोपण किया उसे बीजरूप में ग्रहण कर आधुनिक संसार ने उसका संवर्धन किया।

विज्ञान के क्षेत्र में सेनेकाकृत 'क्वेस्चनस नेचुरलस' और प्लिनी दि एल्डर कृत 'नेचुरल हिस्ट्री' नामक ग्रन्थों ने वर्तमान विश्व के ज्ञान को संवर्धित किया। परन्तु रोमन के प्रति विश्व का सबसे अधिक आभार चिकित्सालयों की सुसंगठित व्यवस्था में है। रोमन चिकित्सकों में Clesus, गेलेन, सोरेनस और रूफ़स के अनुसन्धान विश्व की अक्षय निधि हैं।

रोम-साम्राज्य के लिये यह अति गौरव की बात थी कि ईसाई धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा ईसा मसीह का जन्म उसी के अन्तर्गत फिलिस्तीन में

१. The form, if not the spirit, of Roman architecture was preserved in the ecclectical architecture of the Middle Ages and survives to this day in the design of most of our government buildings.

२. The Legacy of Rome.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ था। यद्यपि अधिकांश रोमन सम्राटों ने इस धर्म को उच्छेद करने का प्रयास किया तथापि हुतात्माओं के रुधिर से सिंचित यह धम उत्तरोत्तर फलता-फूलता रहा। कान्स्टेन्टाइन के समय में यह राज-धर्म बनाया गया। 'जब बर्बर जातियों के आक्रमणों ने मानव जाति की बाह्य एकता छिन्न-भिन्न कर दी तब पश्चिमीय ईसाई धर्म की आध्यात्मिक एकता उसके पश्चात् भी ११ शताब्दियों तक चलती रही। यह काल बर्बर योरप को सभ्यता के पुनरुद्धार की शिक्षा देने के लिये पर्याप्त था।'[१] इस विश्व-व्यापी धर्म के ऊपर रोमन प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगत होता है। ईसाई धर्म का चर्च-संगठन रोमन-साम्राज्य के राजनीतिक संगठन से प्रेरित हुआ था।[२] उसके सर्वोच्च अध्यक्ष पोप की पदवी भी रोमन सम्राट् की 'पाण्टिफ' की पदवी की अनुकृति थी। रोमन साम्राज्य की भाषा लैटिन-ईसाई चर्च की धर्म-भाषा बनी। ईसाई धर्म में लैटिन की वही प्रतिष्ठा है जो हिन्दू धर्म में संस्कृत की। रोमन धर्म के धार्मिक उत्सवों एवं पर्वों की परम्परा ने ईसाइयों को भी प्रभावित किया। उन्होंने भी अपने धर्म में इनकी व्यवस्था की। यही नहीं, रोमन देवी-देवता भी ईसाई-धर्म में समादृत हुए।

विश्व-सभ्यता के ऊपर रोमन-जाति का प्रभूत प्रभाव स्वीकार करते हुए भी हमें उस मिथ्या धारणा से विमुक्त रहना चाहिए जो संसार की प्रत्येक वस्तु को रोमन संस्कृति से ही उद्भूत सिद्ध करने का दुराग्रह करती है। विश्व-सभ्यता के अनेकानेक अंग ऐसे हैं जिनका रोमन सभ्यता अथवा विचार-धारा में अस्तित्व भी न था। उदाहरणार्थ, आज संसार के प्रायः

---

१. When the Barbarian inroads shattered the outward unity of mankind, the spiritual unity of western Christianity endured for eleven centuries longer—long enough to train Barbarian Europe for the revival of civilization.

२. '...the universal Empire had been the nursery of the universal church.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक धर्म में अन्तःशुचिता एवं सदाचारिता का विशेष महत्व है। परन्तु यूनानी प्रभाव के अन्तर्गत रोमन धर्म अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी ही अधिक था। वह कतिपय उपासनाओं, पूजाविधियों और अनुष्ठानों का समूह-मात्र था। दूसरे शब्दों में वह आध्यात्मिक न होकर यान्त्रिक था। इसी प्रकार दर्शन के क्षेत्र में भी रोमनों की कोई देन नहीं है। संसार अपने दर्शन-विकास के हेतु यूनानियों का ही अधिक आभारी है। राजनीतिक क्षेत्र में रोम साम्राज्यरूप में ही गणतन्त्रात्मक था, भावना में नहीं। गणतन्त्र के वेश में कभी वह उच्चजनतन्त्र था और कभी एकतन्त्र। यही कारण है कि गणतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का पूर्ण विकास रोम साम्राज्य में न हो सका। इसी प्रकार इस विशाल साम्राज्य ने राष्ट्रीयता का भी विकास नहीं किया। साम्राज्य के विभिन्न देश अथवा प्रान्त शासन की सुविधा के हेतु इकाई-मात्र थे, राष्ट्र न थे। राष्ट्रीयता की भावना वर्तमान काल की देन है। व्यापारिक क्षेत्र में रोम ने अपने उद्योग-धन्धों को वह मान्यता कभी भी न दी जो आधुनिक काल में उन्हें प्राप्त है। समाज का उच्च एवं अभिजात वर्ग व्यवसायानुसरण को निन्द्य कर्म समझता था। अतः रोम में व्यवसाय-व्यापार की जो कुछ भी उन्नति हुई वह अधिकांशतः सामान्य वर्ग के कारण। पुनः व्यापारियों एवं व्यवसायियों के संघ आधुनिक काल के संगठन हैं। रोम में कहीं-कहीं पर ये संघ थे अवश्य, परन्तु आधुनिक संघों की भाँति उनका कार्य अपने व्यवसायी-सदस्यों के आर्थिक राजनीतिक अथवा सामाजिक हितों की रक्षा करना न था। उनका एकमात्र कार्य कतिपय धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों और पर्वों को आयोजित कराना था।

पुनः, अनेक क्षेत्रों में जिसे हम रोमन प्रभाव समझते हैं वह वास्तव में यूनानी प्रभाव है जो साम्राज्य के माध्यम के द्वारा अन्यान्य देशों में पहुँचा है। यूनानी-साम्राज्य से प्रयाण करते हुए यह यूनानी प्रभाव रोमन परम्पराओं से भी प्रभावित हुआ। रोम-निवासियों ने यूनानी संस्कृति को ग्रहण किया और काल तथा अभिरुचि के अनुकूल उसे अपनी परम्पराओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साँचों में ढाला। दोनों की सम्मिश्रित संस्कृतियाँ ही आज साधारणतया समस्त संसार, विशेषतया योरप की थाती हैं। उदाहरणार्थ, जनतन्त्रवाद, औपनिवेशीकरण, सामुद्रिक व्यापार, क्रीड़ा-प्रतियोगिता आदि की मान्यता यूनान से आई। साहित्य और कला को अनेक परम्परायें रोम में यूनान से आयीं और कालान्तर में परिवर्धित होती रहीं। उनमें कुछ अंश यूनानी रहे और कुछ रोमन। दोनों के सम्मिश्रित रूप ने भिन्न-भिन्न देशों के साहित्यों और कलाओं को प्रभावित किया। अतः ट्रेवर महोदय का यह कथन कि योरपीय साहित्य पर वर्जिल का प्रभाव है, होमर, थिऑक्रिटस, अथवा हिसिअड का नहीं, व्याख्यान-कला पर सिसरो का प्रभाव है, टेमास्थिनीज़ का नहीं, साहित्य समालोचना-शास्त्र और अलंकार-शास्त्र पर क्यिण्टिलियन और सिसरो का प्रभाव है, अरस्तू और इज़ोक्रेटीज का नहीं, सुखान्त नाटकों पर प्लाटस और टेरेन्स का प्रभाव है, एरिस्टोफ़ेनीज का नहीं, दुःखान्त नाटकों पर सेनेका का प्रभाव है, साफोक्लीज़ और यूरोपिडीज़ का नहीं, इतिहास पर लिवी और टेसीटस का प्रभाव है, थ्यूसीडाइडीज और पालीविअस का नहीं, इत्यादि, अतिरंजित है। ट्रेवर महोदय द्वारा उल्लिखित यूनानी विद्वानों ने परवर्ती रोमन विद्वानों की कृतियों को अपनी विचार धारा से प्रभावित किया था। यह कहना कि ये समस्त रोमन कृतियाँ मौलिक हैं, यूनानी प्रभाव से शून्य हैं, सर्वथा असत्य है। रोमन लेखक अपनी अन्तश्चेतना में यूनानी साहित्य की परम्परा के अनेक अंग लेकर लिखने बैठे थे। अतः उनकी कृतियों को ग्रीको-रोमन प्रभाव के अन्तर्गत निर्मित ही मानना चाहिए। अनेक अंशों में योरपीय साहित्य पर पड़ा प्रभाव भी ग्रीको-रोमन प्रभाव है, एकमात्र रोमन प्रभाव नहीं, जैसा कि ट्रेवर महोदय विश्वास करते हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय

ईसाई धर्म : जन्म और विकास

मानव सभ्यता के इतिहास में ईसाई धर्म का जन्म और उत्थान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं युगान्तरकारी घटना है। पाश्चात्य संसार की प्राचीन स्थूल तथा भौतिक सभ्यता और सामाजिक नियमों को एक नया मोड़ देने का श्रेय ईसाई धर्म को ही है। इसी धर्म के नियमों एवं आदर्शों ने पाश्चात्य जगत के जन-जीवन को अंशतः आधिदैविक महत्व प्रदान किया और जीवन में नैतिकता को सर्वोपरि महत्व दे मानव-चरित्र को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। इस धर्म के प्रभाव से 'बर्बर आक्रमणकारियों' ने अपने आचार-विचार एवं व्यवहार में मधुर एवं कोमल भावनाओं को स्थान दिया। इसके पूर्व यूनान में स्थानीय महत्व एवं प्रेम (Local Patriotism) तथा रोम में साम्राज्य-भावना के गौरव को अत्यधिक महत्व दिया जाता था और उसी महत्व के पाश में जीवन को समेटने का क्रम चलता रहा। इन्हीं भावनाओं ने यूनान और रोम के मनुष्यों को बहुत दिनों तक एकता के सूत्र में आबद्ध रखा था। अब उसके बाद ईसाई धर्म की उदात्त भावना एवं करुणा-प्रधान भ्रातृत्व के आदर्श ने स्थान लिया और शनैः शनैः विश्व के एक बहुत बड़े भाग के निवासियों में विश्वास एवं दैवी करुणा को अनिवार्य मंगल भावना का साम्राज्य स्थापित किया। आज उसी धर्म के दायरे में रूस, योरप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों की जनता अपना लोक-परलोक बनाने का उपक्रम करती है और उसी धर्म के पादरी-पुजारी एक दिन विश्व के समस्त मानव को अपने विश्वास के अनुरूप दैवलोक में स्थान सुरक्षित कर परम पिता परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त कराने की आशा लगाये हुए हैं। इस महत्वपूर्ण ईसाई धर्म के प्रणेता एवं प्रवर्तक प्रभु ईसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मसीह थे। इस धर्म पर अपने जन्मदाता के प्रभावशाली व्यक्तित्व का समग्र प्रभाव है और यह धर्म ईसा मसीह के हृदयग्राही आदर्शों से ओतप्रोत है। इसकी सफलता का अधिकांश श्रेय भी उसी महान व्यक्तित्व को है जिसकी स्मृति में उसके बाद आने वाले प्रचारकों को जीवन-संजीवनी प्राप्त होती रहती है। अत: ईसाई धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त करने के पूर्व महात्मा ईसा के जीवन तथा उनकी उपलब्धियों से अवगत होना आवश्यक है।

ईसाई धर्म की उत्पत्ति—इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। मुख्य तीन विचारधाराएँ निम्नलिखित हैं—

(१) इतिहासकार वर्ग के अनुसार ईसाई धर्म की उत्पत्ति कोई अचानक घटना नहीं वरन् एक ऐतिहासिक क्रम का द्योतक है जिसके बीज जूडिया की धरती में बोये गये तथा जो यूनानी एवं रोमन शासकों द्वारा सिंचित एवं परिवर्द्धित किये गये थे। यीशु मसीह स्वयं एक यहूदी के परिवार में उत्पन्न होने के नाते यह घोषणा किया कि वह इस पृथ्वी पर पूर्ववत् सभी धर्मों का खण्डन करने नहीं वरन् उन्हीं के उद्देश्य की पूर्ति करने आये हैं। उनका सर्वप्रमुख उद्देश्य विश्व के प्रत्येक मानव को मुक्त करना था। अपनी अमृतमयी वाणी एवं सहज प्रेम द्वारा उन्होंने लोगों को मुग्ध कर लिया।[१]

(२) इतिहासकार टर्नर के मत में ईसाई धर्म का विकास हेलेनिस्टिक सभ्यता के यूनानी एवं रोमन सभ्यताओं परिवर्तित होने तथा तत्कालीन राजनैतिक अशांति के फलस्वरूप हुआ। जैसा कि शहीदों का रक्त इतिहास की वृद्धि में सहायक होता है उसी प्रकार यीशु एवं उनके अनुयायियों के बलिदानों ने क्षुब्ध जनता को एक नया मार्ग प्रदर्शन किया जिस पर

१. "In Christ Jesus neither circumcision availeth nor uncircumcision but faith working through love."

—E Burgh.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलकर उन्हें पुनः आत्म-विश्वास एवं सच्चाई की प्राप्ति हुई ।[१]

(३) इतिहासकार बीच के अनुसार ईसाई धर्म की उत्पत्ति प्राचीन इतिहास भी एक अपूर्व घटना है। इसके पीछे विभिन्न शक्तियों का हाथ था जिनमें तत्कालीन राजनैतिक अशांति, धार्मिक अविश्वास एवं आत्म-विश्वास का अभाव प्रमुख हैं। इनकी सहायता के लिए यीशु स्वयं का प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व चुम्बक की तरह था। फलस्वरूप ईसवी की प्रथम तीन शताब्दियों में यीशु न केवल इजरायल एवं यूनान के वरन् सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत के अभिनेता बन गये ।[२]

ईसा का जीवन वृत्त—आश्चर्य है कि ईसाई धर्म के जन्मदाता ईसा मसीह के जीवन के सम्बन्ध में हमें सन्तोषजनक ऐतिहासिक तथ्यों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्ध में हमें सबसे अधिक कठिनाई उन लेखकों की कमजोरियों के कारण होती है जिन्होंने भावावेश में आकर ईसा के जीवन को रहस्यमयी कथाओं से परिवेष्ठित कर दिया है। एच० जी० वेल्स ने ठीक ही लिखा है कि ईसा के जीवन क्रम के विषय में हम पूर्ण अंधकार में हैं और अधिकांश ईसाई लोग उन्हें ईश्वर का

---

१. "It is a rise of asceticism, of mysticism, in a sense of pessimism, a loss of self-confidence of hope in this life, and of faith in normal human effort, a despair of patient enquiry, acry for infaliable revealation, a conversion of soul to the God."

—R. E. Turner.

२. "The foundation of Christianity was the magnetic personality of Jesus. The spirit of his life passed into the lines of his immediate followers and through them into the world around transforming man's hearts and minds with a suddenness and swiftness without a parellel in history."

—W. N. Weech.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवतार मानते हैं अतः इस सम्बन्ध में धार्मिक विश्वास और इतिहास को बिलकुल पृथक रखना बहुत दुष्कर है। पर यह तो सच है कि ईसा का जन्म महात्मा बुद्ध जैसे सम्पन्न एवं सुविधाओं से पूर्ण परिवार तथा वातावरण में नहीं हुआ था। ईसा जुडिया (Judea) के एक छोटे गाँव में पैदा हुए थे। उन दिनों वह स्थान रोम-साम्राज्य में शामिल था और रोम में आगस्टस (Augustus) राज्य करता था। अनुमान है कि ईसा का जन्म २५ दिसम्बर को, ४ ई० पू० में हुआ था। यद्यपि परम्परानुसार उनकी जन्म-तिथि से ईसवी सन् की गणना की जाती है। उनके माता-पिता—मरियम और यूसुफ—साधारण स्थिति के यहूदी बढ़ई थे और कहा जाता है कि ईसा का जन्म एक अश्वशाला (stable) में हुआ था।[१] लगभग तीस वर्ष की आयु तक ईसा का जीवन अति साधारण रहा और उनके विषय में इतिहासकारों को बहुत कम ज्ञान है। कहा जाता है उन दिनों उन्हें भी अपने सगे-सम्बन्धियों और जुडिया के अधिकांश निवासियों की तरह कष्ट का जीवन व्यतीत करना पड़ा था। यों तो जुडिया में हेराड (Herod) नामक एक शासक था, पर वह स्थान रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत था और वहाँ का वास्तविक प्रशासन रोम के एक गवर्नर के हाथ में था जो रोम के सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था। शासन का कार्य मनमाने ढंग से होता था और वहाँ के निवासी जो यहूदी थे, गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए थे।

---

१. "Jesus was born in a stable at Bethlehem, in Judea, but grew up and spent most of his life at Nazareth in Galilee; so he is usually called Jesus of Nazareth. Judea was a small hill countiy on the eastern rim of the Medierranean sea and was a part of ancient Palestine, the home of the Hebrew people and of the Jewish religion.

—Hayes.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह संकेत किया जा चुका है कि ईसा के बचपन के विषय में हमें बहुत कम मालूम है। "इस सम्बन्ध में अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित हैं (जिनका ऐतिहासिक आधार नहीं है); किन्तु युवावस्था के पदार्पण तक उनके जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई। ईसा के जन्म के समय उनके माँ-बाप को जन-गणना करने के लिए राज्य की ओर से बेथेलहम (Bethletrm) भेजा गया था; किन्तु तत्कालीन यहूदी राजा हेराड के भय से उन्होंने अपने बच्चे को लेकर वहाँ से शीघ्र कूच कर दिया। वहाँ से भाग कर वे नजारेथ नगर (Nazareth in Galilee) पहुँचे जहाँ वे बढ़ई का काम करते थे और सम्भवतः ईसा भी अपनी किशोरावस्था तक वहीं अपने पैतृक पेशे में लगे रहे।"

उन दिनों जुडिया और आस-पास के व्यक्तियों का जीवन राजनीतिक पराधीनता, आर्थिक शोषण एवं धार्मिक अन्धविश्वास और परम्पराओं की जड़ता का जीवन था। उसी विषम परिस्थिति में जान दो बैप्टिस्ट नामक एक सुधारक ने घूम-घूम कर लोगों को आत्मशुद्धि एवं प्रायश्चित करने का उपदेश दिया और उस यहूदी सन्त ने अपने भाइयों को यह अश्वासन दिया कि निकट भविष्य में संसार को श्रेष्ठ बनाने और मानव को कल्याण-पथ पर लाने के लिए एक महान पुरुष का अवतार होगा। जान दी बैप्टिस्ट ने अपने साधु-विचार से तत्कालीन यहूदी शासक हेराड को अप्रसन्न कर दिया और अन्त में उसको प्राणदण्ड दिया गया। ईसा शान्त एवं गम्भीर भाव से इस अत्याचार को देख रहे थे और मन-ही-मन अपने पड़ोसियों की दीन-हीन दशा पर क्षुब्ध हो रहे थे। सम्भवतः जान की मृत्यु के बाद उनकी प्रतिभा एवं उनका साहस मुखरित हो उठा और वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मानव-त्राण का कठोर कार्य स्वयं अपने हाथों में ले लिया।

ईसा ने अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में स्थान-स्थान पर भ्रमण कर उपदेश देना प्रारम्भ किया। उनमें उस समय अपूर्व आशा एवं आत्म-विश्वास था। वे असीम त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धन-सम्पत्ति की लालच उन्हें छू तक न सकी, यश और सम्मान के प्रलोभन से वे दूर रहे और संघर्ष से निर्विकार होकर उन्होंने जुडिया में एक नयी आशा, दृढ़ स्फूर्ति एवं अमिट उत्साह का वातावरण पैदा कर दिया। उनके व्यक्तित्व में एक अजीब जादू एवं आकर्षण था। वेल्स के शब्दों में 'ईसा एक ऐसे प्रवक्ता थे जिनके पास एक कौड़ी न थी किन्तु वे जूडिया के धूलिभरे सूर्योज्ज्वल प्रदेश में भ्रमण करते फिरते थे और कभी-कभी जो कुछ लोग खाने को दे देते, उसी पर अपना जीवन व्यतीत करते थे'।[१] ईसा के उपदेशों को लोगों ने अमृत के समान अपनाया और उस क्षेत्र में आशा और आनन्द की एक लहर दौड़ गयी। पर शासकों और उनके एजेन्टों को ईसा की यह सर्व-प्रियता खटकने लगी। जब उनकी वक्तृता-शक्ति और उनके मृदु स्नेहमय व्यवहार से सब प्रभावित होने लगे, उनके शिष्यों एवं अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और उन्हें 'मसीहा' कहा जाने लगा, तो वहाँ का शासक वर्ग और पुरातनवादी पण्डे-पुजारी तथा धनिक वर्ग ने उन्हें एक खतरनाक व्यक्ति घोषित किया और उन पर वहाँ के नवयुवकों को बिगाड़ने तथा पथ-भ्रष्ट करने का दोषारोपण किया गया। जब उन्होंने यहूदियों के धर्म-गुरुओं का छिद्रान्वेषण किया तो उन पर ईश्वर के पुत्र होने का दावा करने का दोषारोपण किया गया। अन्त में उन पर यहूदियों के नेता होने और उन्हें शासक-वर्ग के विरुद्ध भड़काने का दोषी ठहराया गया और तब जुडिया के रोमन शासक पौन्टियस पाइलेट (Pilate) के सम्मुख अपराधी के रूप में कैद कर ईसा को उपस्थित किया गया। अन्य अपराधों के साथ-साथ ईसा पर यह भी अभियोग लगाया गया कि ईसा ने रोमन सम्राट आगस्टस द्वारा चलाई हुई सम्राट की पूजा-प्रणाली को निरर्थक घोषित किया है और इस प्रकार वह राजद्रोही हैं। सन् २९ ई०

[१] Jesus was a penniless teacher, who wandered about the dusty sunlit country of Judea, living upon casual gifts of food."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लगभग ३३ वर्ष की अवस्था में ईसा को निर्दयतापूर्वक सूली पर चढ़ा दिया गया। ईसा मर कर अमर हो गये। "मानव जाति के उद्धारक और सच्चे हितैषी महात्मा ईसा की यह मृत्यु इतिहास की अत्यन्त कारुणिक घटनाओं में से एक अति प्रभावोत्पादक घटना है जिसने इतिहास की धारा को परिवर्तित कर दिया।" यह दुखद घटना रोम के सम्राट टिबेरियस (Tiberins) के शासन काल में घटी थी।

ईसा को सूली पर लटकाना—कहा जाता है कि ईसा ने अन्तिम समय अभूतपूर्व शान्ति, धैर्य और अटूट विश्वास के साथ मृत्यु का आलिंगन किया था। उनके मुख-मण्डल पर अक्लान्त तेज चमक रहा था। मरते समय उन्होंने कहा था कि "हे प्रभु, लोग नहीं समझते हैं कि क्या किया जा रहा है, इन्हें क्षमा कर दें।" उस दिन शुक्रवार था और आज भी ईसाइयों के यहाँ प्रति वर्ष 'गुड फ्राइडे' की स्मृति में ईसा के बलिदान को स्मरण किया जाता है। इतिहास ने पुनः अपनी पुनरावृत्ति की, इसके पूर्व इसी प्रकार झूठा दोषारोपण कर यूनानियों ने अपने प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात को विष-पान कराया था।

ईसा को सूली पर चढ़ाना ईसाई धर्म के इतिहास की एक अजीब घटना है। मृत्यु के कुछ दिनों बाद तक ईसा के अनुयायियों में किंचित निराशा की घटा छायी रही। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद काले बादल साफ हो गये और साम्राज्य के अधिकांश भागों में यह बात फैल गयी कि ईसा मसीह मरे नहीं हैं, बल्कि जीवित हैं और कुछ शिष्यों को उनका दर्शन हुआ है। देखते-देखते यह धारणा दृढ़ हो गयी कि उनका मसीहा मृत्यु-कक्ष से बाहर निकल चुका है और वह सचमुच एक देवता एवं असाधारण मसीहा है। इस विश्वास ने पुनः उनमें असीम साहस का संचार किया और उन्होंने पुनः संगठित हो अपने देव की वाणी एवं उपदेश को प्रसारित करने का संकल्प किया। इस प्रकार एक बार असाधारण धक्का सहन कर पुनः ईसाई धर्म को नवीन जीवन-दान मिला और कुछ ही दिनों में यह संसार का सबसे प्रधान एवं अजेय धर्म बन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया और आगे आने वाली सदी में उसने तत्कालीन विश्व के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य की नींव हिला दी। ईसा का नश्वर शरीर इस संसार से उठ गया, पर उनके उपदेश और जीवनादर्श अमर हो गये। उनके अनुयायियों ने अपनी श्रद्धा से उन्हें ईश्वर-पुत्र का पद प्रदान किया और उनके उपदेश ईसाई धर्म के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनके शिष्यों को पक्का विश्वास हो गया कि वह ईश्वर-पुत्र मानव के उद्धार के लिए ही इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ था और मनुष्य मात्र के पापों के प्रायश्चित करने के लिए ही उसने अपने प्राण दिये थे। उन दिनों यह विश्वास प्रचारित किया गया कि तीन दिनों तक कब्र में रहने के पश्चात् ईसा स्वर्ग चले गये और वह एक दिन पुनः इस पृथ्वी पर मानव-कल्याण एवं उद्धार के लिए आयेंगे।

ईसा के उपदेश—ईसा के उपदेशों के विषय में उनके अनुयायियों में मतैक्य नहीं है। पर उनके उपदेशों का मान्य संग्रह Four Gospels जो उनकी मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही लिपिबद्ध किया गया, के नाम से प्रसिद्ध है। ईसा के पुराने शिष्यों का कहना है कि Gospels में संकलित उपदेश ईसा के ही मुख से निकले थे जो ईश्वर-पुत्र थे और जो परमपिता परमेश्वर की इच्छानुसार इस पृथ्वी पर मानव जाति के पापों के लिए कष्ट उठाने और प्राणोत्सर्ग करने को पैदा हुए थे। उन Gospels के अनुसार ईसा के प्रमुख उपदेश और शिक्षाएँ इस प्रकार हैं :

(१) ईश्वर ही इस सृष्टि का सृजन करने वाला है। वही इसका पिता है। (२) संसार के सब मनुष्य भाई-भाई हैं। (३) सृष्टि का सुनहरा नियम (The Golden Rule) ही सब को अपनाना चाहिए। वह नियम इस प्रकार है : 'दूसरों के साथ भी वही व्यवहार करो जो तुम दूसरों द्वारा अपने प्रति किया जाना पसन्द करोगे'।[१] इसी में मानव का वास्तविक कल्याण निहित है। (४) मनुष्य को अपने शत्रु के प्रति भी

---

[१] "Do unto others as you would have them do unto you."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम तथा क्षमा का भाव रखना चाहिए। मानव आचरण का आधार प्रेम एवं क्षमा ही होना चाहिए। (५) बुराई का बदला भलाई ही है। (६) आत्म-संयम एवं असंग्रह मानव के लिए कल्याण-प्रद है। (७) समाज में प्रचलित लोभ एवं पाखण्ड का विरोध प्रत्येक व्यक्ति को निर्भयतापूर्वक करना चाहिए। (८) धर्म के नाम पर होने वाला पाखण्ड एवं अनावश्यक कर्मकाण्ड धर्म का विरोध ही है। ऐसे सब कार्य व्यर्थ एवं सार-हीन हैं। (९) मनुष्य के जीवन का मूल सार त्याग में ही निहित है। (१०) एक दिन इस विश्व का अन्त होना निश्चित है। उस समय सब मृतक प्राणियों का पुनर्जीवन (resurrection) होगा अर्थात् वे कब्र से बाहर निकलेंगे और तब सर्वत्र स्वर्ग के राज्य (Kingdom of Heaven) की स्थापना होगी।

ईसा के उपदेश अमृत-तुल्य थे। अपने समय के क्रूर और पाखण्ड-पूर्ण समाज को ईसा ने प्रेम, करुणा और सादगी के दिव्य उपदेश दिये। उनके सर्वोत्तम उपदेश 'सर्मन आन दि माउण्ट' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसमें उन्होंने कहा था कि 'तुम जो अकिंचन हो वही अच्छा है क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारा है। तुममें रुदन करने वाले ही भले हैं क्योंकि तुम्हीं हँसोगे'।[१] इस उपदेश में ईसा ने बार-बार 'ईश्वर का राज्य या स्वर्ग का राज्य' शब्द का प्रयोग किया है। इससे उनका अभिप्राय उस स्थिति से है जहाँ ईश्वर की सर्ववत्सलता का राज्य होगा। चूंकि सब उस महान् परमपिता ईश्वर की सन्तान हैं, अतः सभी व्यक्ति चाहे पापी हों या पुण्यात्मा हों, धनी हों या निर्धन, दुर्बल हों या सबल, आपस में भाई-भाई हैं और ईसा तथा परमेश्वर की दृष्टि में मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं होगा। 'स्वर्ग का राज्य' उद्दात्त मानवीय

---

१. Blessed are you who are poor for the Kingdom of God is yours ! Blessed are you who weep, fo: you will laugh.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावनाओं एवं नैतिक आचार-विचार पर आधारित हैं ।[१] वह ऐसी स्थिति या ऐसे संसार की कल्पना करता है जहाँ के नियम, करुणा, प्रेम, संयम, विश्वास, त्याग एवं सेवा ही होंगे । ईसा सदा ईश्वर को पिता कह कर सम्बोधित करते थे । उन्होंने यह भी घोषणा की कि वह स्वयं वे मसीहा (Savior) हैं जिसे यहूदियों के लिए प्राचीन द्रष्टाओं ने आश्वासन दिया था । पर यहूदियों को उस समय यह उक्ति निरर्थक प्रतीत हुई क्योंकि वह अपने महीसा को धन, सम्पदा एवं शक्ति से सम्पन्न देखना चाहते थे और उन्हें आशा थी कि उनका वह मसीहा उन्हें रोम के साम्राज्य के मुक्त करेगा । पर ईसा ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनका विश्वास 'स्वर्ग के राज्य' में है न कि इस संसार के राज्य में । उन्होंने यह भी घोषित किया क्रि वह 'स्वर्ग का राज्य' उन मनुष्यों के हृदय में है जो अपने पापों का प्रायश्चित करते हैं और ईश्वर की इच्छानुसार आचरण करते हैं ।

ईसा लोभ, संचय और आचार-हीनता की कड़े शब्दों में भर्त्सना करते थे । उन्होने बार-बार यह घोषित किया कि धन-सम्पत्ति ईश्वर-प्राप्ति में बाधक है । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि धनवान व्यक्ति के लिए स्वर्ग के राज्य में प्रवेश पाना उतना ही असम्भव है जितना सूई के छेद से ऊँट का निकलना[२] । एक बार एक अति धनवान व्यक्ति उनके पास दौड़ता हुआ आया और उसने अमर जीवन प्राप्त करने का मार्ग

---

[२]. 'This was a personal message shaped in the jewish tradition and vitalized by profound emotional reaction to the sufferings of the poor and illitrate countrymen."

—E. Burgh.

[१] 'It is easier for a camel to go through the eyes of a n edle than for a rich man to enter into the Kingdom of God."

Mark X, 25.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानना चाहा। ईसा ने तत्काल उत्तर दिया कि "तू जा और तत्काल उस सब सम्पत्ति को गरीबों में बाँट दे जो तुम्हारे पास है, और तुझे अपना खजाना स्वर्ग में सुरक्षित मिलेगा।" ईसा ने तत्कालीन प्रचलित कर्मकाण्ड को धर्म के विपरीत समझा और उन्होंने कहा कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए एक ही कर्मकाण्ड आवश्यक है, और वह है निस्वार्थ सेवा। उनके लिए सेवा ही ईश्वर की सर्वोत्तम आराधना थी।

सन्तपाल—ईसा मसीह के बाद उनके उपदेशों को अधिक व्यवस्थित ढंग से व्यापक धर्म का रूप देने का श्रेय उनके कुछ प्रमुख शिष्यों को है। उन शिष्यों में मुख्य पाल (Apostle Paul) का नाम है। पाल यहूदी थे, उनका जन्म दक्षिण-पूर्वी एशिया माइनर के टार्सस (Torsus) नामक नगर में हुआ था। उनका सम्पर्क पहले से कुछ धार्मिक एवं दार्शनिक व्यक्तियों एवं संस्थाओं से था। कुछ दिनों बाद पाल ने ईसाई धर्म स्वीकार किया और तत्पश्चात् उन्होंने अथक परिश्रम एवं असीम उत्साह के साथ इस धर्म का प्रचार किया। उन्होंने घोषित किया कि ईसा केवल यहूदियों के त्राण के लिये नहीं अवतरित हुए थे, बल्कि उनका आगमन विश्व के मानवमात्र के कल्याण के निमित्त हुआ था। उन्हीं के प्रयास से ईसाई धर्म केवल यहूदियों का ही धर्म नहीं रहा, बल्कि वह एक सार्वभौम धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। पाल ने इस बात पर जोर दिया कि ईसा देव-पुत्र थे और वे सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस विश्व में रहते आये हैं। उन्होंने मनुष्य मात्र के पापों को धोने के लिए ही स्वयं मृत्यु का आलिंगन किया था। पाल ने प्राचीन यहूदी धर्म के कर्मकाण्ड को अनावश्यक एवं निरर्थक घोषित किया और उन्हें मुक्ति के लिए असहाय कहा। पाल ने यह भी कहा कि मनुष्य पाप-कर्मा है और उसका उद्धार केवल ईश्वरेच्छा पर निर्भर है। पाल के मतानुसार मनुष्य का भाग्य ईश्वरेच्छा पर ही निर्भर है और वही उसका बनाने बिगाड़नेवाला है क्योंकि क्या कुंभकार को मिट्टी के ऊपर अधिकार नहीं है ? (है) तभी तो वह उसी लोंदे से एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पात्र बनाता है जिसे सम्मान मिलता है और दूसरे को असम्मान।[१]

पाल ने जोर देकर कहा कि ईश्वर का सन्देश इस पृथ्वी पर ईसा के उपदेशों के रूप में आया है और उन्हीं उपदेशों के आधार पर मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। पाल के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए इतिहास लेखक स्वेन ने लिखा है कि पाल ने साम्राज्य के प्रमुख नगरों में गिर्जे स्थापित किये, इस धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए पत्र लिखे और ख्रीष्ट्रीय धर्म की सार्वभौमिकता का उपदेश दिया। खीष्ट धर्म की पाल ने जो व्याख्या की उसने उसे एक प्राणशक्ति प्रदान की। उसका विश्वास था कि देह आत्मा के मार्ग में बाधक है और उसे पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है। समाधान के लिए उसने मानव प्रकृति की द्वैत धारणा को आगे रखा : आत्मा और मांस........पाल ख्रीष्टीय मत को उद्धारक धर्म के रूप में और ईसा को उद्धारकर्ता एवं मुक्तिदाता के रूप में मानता था।[२]

---

[१] "Has not the potter power over the clay, of the same lump to make one vessel unto honour and another unto dishonour ?"

[२] "Paul established churches in the most important cities of the Empire, wrote letters explaining the doctrines of this religion and preached the universiality of Christianity. Paul's interpretation of Christianity gave it a dynamic force. He believed that flesh warred against the spirit and prevented it from achieving perfection. For a solution, he proposed a dualistic conception of human nature : the spirit and the flesh...........Paul regarded christianity as a religion of redemption and Jesus as the saviour and the Redeemer."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाल के प्रभावशाली व्यक्तित्व से ईसाई धर्म का प्रचार दूर-दूर तक हो गया। उसने अमीर-गरीब, उच्चवर्ग एवं साधारण वर्ग के बीच अपने गुरु के उपदेशों का प्रचार किया और ईसा का सन्देश पहुँचाया। "उसका भाषण सुनने के लिए चारों ओर से जन-समुदाय टूट पड़ता था। वे हजारों की संख्या में ईसा के अनुयायी बनने लगे। कुलीन-वर्ग पर भी जादू-सा उसका प्रभाव होता था। इस तरह रोम-सामाज्य के विभिन्न भागों में वह कई वर्षों तक अपने गुरु के धर्म का प्रचार करता रहा। अन्त में ६२ ई० में उस पर साम्राज्य के शासकों की कुदृष्टि पड़ी और रोम नगर में वह फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया।" इसमें भी उसने गुरु के चरणों का अनुसरण किया और उसकी विचारधारा अबाध गति से प्रवाहित होती रही। पाल भी मर कर अमर हुआ और ईसाई धर्म को अधिक सबल बना कर विचारों की अमरता का सिद्धान्त सिद्ध कर दिखाया। ईसाई जगत में ईसा के बाद पाल का ही सम्मानित स्थान है।

ईसा के मुख्य शिष्यों में बारह शिष्य अधिक प्रमुख थे। वे Apostles कहलाते थे। प्रारम्भ में उन्हें बहुत ही प्रतिकूल स्थिति में काम करना पड़ा था। कुछ ही दिनों बाद उन्हें पाल के रूप में एक नया नेता मिला जिसने उनके समक्ष पुनः शक्तिशाली प्रकाश पुंज का दर्शन कराया। उस समय तक सीरिया (Syria) ईसा के अनुयायियों का प्रमुख केन्द्र हो गया था और सन् ४२ ई० में पाल के नेतृत्व में सीरिया के प्रमुख नगर अन्तियोक (Antioch) में ईसा के अनुयायियों को सर्व-प्रथम Christians का नाम दिया गया। तत्पश्चात् पाल अन्य अनुयायियों के साथ ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए और आगे चले और अगले २० वर्षों तक उसने उस धर्म के प्रकाश के दायरे को विस्तृत किया। पाल के अपूर्व साहस की कथा The Book of Acts में अंकित है। पाल और उनके साथियों को हर प्रकार के विरोध एवं कष्टों का सामना करना पड़ा, उन्हें मारा पीटा गया, जेल की यातना भोगनी पड़ी, पर उन्होंने दूर-दूर के प्रदेशों में ईसाई धर्म के माननेवालों की संख्या बढ़ायी और लोगों को दीक्षित किया। पाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही की बुद्धि एवं लगन का फल था कि ईसाई धर्म को यहूदियों के दायरे के बाहर निकाला और उसे विश्व-धर्म के मार्ग पर अग्रसर किया। उन्हीं के प्रभाव से क्रिश्चियन चर्च के पुराने पुजारी ईसा के उपदेशों के प्रभाव में आये और उसी ने चर्चों का संगठन दृढ़ किया। उन्हीं के लेख व पत्र (जो Epistles कहलाते हैं) New Testament के प्रमुख अंग हैं।

पीटर—ईसा के दूसरे प्रमुख शिष्यों में **पीटर** (Peter) का स्थान भी बहुत उच्च है। जिस समय ईसा के अनुयायियों की संख्या थोड़ी थी, उस समय पीटर ने उन थोड़े से अनुयायियों एवं शिष्यों को लेकर एक संघ के रूप में उन्हें संगठित किया और उन्हें एक संस्कार द्वारा एक सूत्र में आबद्ध करने का सफल प्रयास किया। उस संस्कार को Baptism कहते हैं जिससे ईसा की अनुयायिता की दृढ़ता प्राप्त हुई। इसी समय यह प्रथा भी चलायी गयी कि प्रत्येक संध्या को कुछ चुने हुए सदस्य भोजन की एक विशेष पद्धति अपनायेंगे जिसके द्वारा वे ईसा Saviour के साथ तादात्म्य स्थापित करेंगे। संगठन की दृष्टि से पीटर द्वारा संचालित इन संस्कारों का बहुत महत्व है क्योंकि इनके आधार पर अनुयायियों को नित्य दृढ़ संकल्प में आबद्ध होने का अवसर प्राप्त हुआ करता था।

ईसाई धर्म तथा रोम का साम्राज्य

ईसा ने अपने धर्म का प्रचार उस समय किया था जब रोम का साम्राज्य अपने चरम विकास पर था और सम्राट आगस्टस तथा उसके वंशजों के आधीन रोम साम्राज्य का स्वर्णयुग चल रहा था। उसी समय ईसाई धर्म का प्रारम्भ एक छोटे पहाड़ी प्रदेश में बढ़इयों, चरवाहों और मछुओं के बीच हुआ। ईसा के बलिदान के कुछ दिनों बाद तक ईसाई धर्म के ऊपर काली घटाएँ छा गयीं और उनके अधिकांश शिष्य निराश हो गये। पर पाल और पीटर के रंगमंच पर आते ही ईसाई धर्म में पुनः जीवन-रस संचारित होने लगा और बड़ी तेजी से इन व्यक्तियों के आकर्षण एवं प्रभाव द्वारा ईसा के मत का प्रसार दूर-दूर के प्रदेशों में होने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा। प्रारम्भ में यहूदी पुरातनवादियों से ईसा के शिष्यों को डट कर लोहा लेना पड़ा। तत्पश्चात् अविश्वासी तथा विधर्मी लोगों द्वारा इस धर्म का विरोध हुआ और अन्त में रोम के सम्राटों ने ईसाई धर्म को कुचलने का बीड़ा अपने ऊपर लिया। ईसाई धर्म के विरुद्ध रोम के सम्राटों में क्रोधाग्नि प्रज्वलित होने के कई कारण थे।

प्रारम्भ से ही रोम-निवासी और शासक ईसाई धर्म के प्रति उपेक्षा एवं शंका की दृष्टि रखते थे। वे ईसाई धर्म के माननेवालों को निम्न श्रेणी का मनुष्य समझते थे, अतः वहाँ के धनी एवं तथाकथित सुसंस्कृत व्यक्ति ईसाइयों को असभ्य एवं गँवार समझते थे। साथ ही उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि ईसाई धर्म केवल यहूदियों का धर्म है और अधिकांश रोम-निवासी यहूदी जाति से घृणा करते थे। उन्होंने यह भी देखा कि वे व्यक्ति जिन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण किया था, रोम-निवासी के क्रूर एवं हिंसा-युक्त खेल-कूद एवं मनोरंजन के आयोजनों (Chariot races and gladiatorial shows) में भाग नहीं लेते थे और ईसाई लोग अपने को इनसे पृथक रखते थे। ऐसी दशा में ईसाइयों और दूसरे व्यक्तियों में सम्पर्क की सम्भावना ही नहीं थी और उन्हें एक दूसरे को समझने का अवसर ही बहुत कम मिलता था। ईसाई अन्य लोगों से न केवल अपने को अलग रखते थे, बल्कि वे विधर्मियों की रीतियों, प्रथाओं एवं अन्य सामाजिक कार्यों की कटु आलोचना भी करते थे। इन सब बातों की शिकायतें रोम के सम्राटों तक नित्य पहुँचा करती थीं। प्रारम्भ में शासकों एवं सम्राटों ने ईसाइयों की उपेक्षा की, किन्तु उनकी उत्तरोत्तर प्रगति एवं लोकप्रियता के साथ-साथ सम्राटों को भी उनसे शंका होने लगी। उन्हीं दिनों रोम के सम्राटों ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए सम्राट-पूजा की प्रथा का प्रचार किया। उन्होंने अपने को देवता घोषित किया और अपनी पूजा पर अधिक जोर दिया। ईसाइयों ने इस प्रथा (Divine Theory) का विरोध किया और घोषित किया कि वे इस बात के लिए बिल्कुल राजी थे कि जो कुछ वस्तुतः सीज़र का था वह उसे दे दें किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह ईश्वर नहीं था और वे उसकी उपासना करने को तैयार नहीं थे।[१]

इस प्रकार ईसाइयों और शासकों में मतभेद बढ़ता रहा। सम्राटों द्वारा सम्राट पूजा की प्रथा का ईसाइयों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ और इस सम्बन्ध में रोम के सम्राटों का प्रचार अरण्यरोदन सिद्ध हुआ। यहूदी पहले से ही इसके विरुद्ध थे, अब ईसाइयों ने भी उन्हीं के पद-चिह्नों का अनुसरण किया। आपस की मानसिक भिन्नता बढ़ती गयी।

सन् ४० ई० के लगभग ईसाई धर्म के प्रचारक रोम नगर में पहुँच गये थे। पाल के प्रभाव से वहाँ ईसाइयों का प्रभाव दृढ़तर होने लगा। अन्य व्यक्तियों की तरह रोम के सम्राट भी ईसाइयों को शंका की दृष्टि से देखते थे। यदि साम्राज्य में कभी कोई दैवी प्रकोप या दुर्घटना होती थी, तो उसका दोष ईसाइयों को ही दिया जाता था। एक ओर तो ईसाई धर्म की "आशावादिता एवं विश्व-बन्धुता दीन-हीन जन-समूह के लिए विशेष आकर्षण बन रही थी और दूसरी ओर यह धर्म सिद्धान्ततः रोम-सम्राट को देव-रूप में ग्रहण करने से इनकार करता था।" धीरे-धीरे ईसाइयों ने सेना में भर्ती होना भी त्याग दिया क्योंकि वे अहिंसा के पक्षपाती थे। इससे उन पर देश-द्रोही और राष्ट्र के शत्रु होने का भी दोष लगाया गया।

ईसाई धर्म के प्रति रोम के सम्राटों में विरोधी भावना उत्तेजिन करने में ये कारण मुख्य रूप से सहायक थे :

(१) रोम के सम्राट अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते थे। उन्होंने साम्राज्य में अपनी पूजा की प्रथा चलायी थी। ईसाइयों को वे दोनों बातें मान्य नहीं थीं।

(२) रोम साम्राज्य में युद्ध को अति प्रधानता दी जाती थी। इस युद्ध-प्रधान मनोवृत्ति के विरोधी ईसाई थे। वे इसके स्थान पर अहिंसा,

---

[१] "They were quite willing to render unto Caesar the things that properly belonged to him, but he was not God and they would not worship him."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम, त्याग के जीवन को अधिक महत्व देते थे।

(३) ईसाई रोम-साम्राज्य में प्रचलित राष्ट्रीय त्योहारों, समारोहों और धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित नहीं होते थे।

(४) ईसाई राजकीय एवं सार्वजनिक पदों को स्वीकार नहीं करते थे।

(५) ईसाई रोम की परम्परागत सामाजिक मान्यताओं जिनका सम्बन्ध विवाह, मूर्ति-पूजा, प्रवृत्तिमूलक जीवन, भौतिक ऐश्वर्य आदि से था, मान्यता प्रदान नहीं करते थे।

(६) ईसाई पादरी नित्य गुप्त सभाएँ किया करते थे अतः रोम के सम्राट सदा उन्हें शंका की दृष्टि से देखते थे और उनका दमन करने की चिन्ता में थे।

ईसाई धर्म का प्रसार इस स्थिति में भी बढ़ता जा रहा था। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए साम्राज्य के प्रमुख नगरों (जैसे अन्टियोक, कोरीन्थ, एथेन्स आदि) में ईसाई चर्चों की स्थापना हुई। गुलामों और दीन-हीन व्यक्तियों को इस धर्म ने आकर्षित किया और इससे सम्राटों के सिर चकराने लगे। जब सम्राट नीरों के शासन-काल में अचानक आग लग जाने से रोम नगर का वर्णनातीत क्षति हुई, तो इस दैवी-प्रकोप का कारण ईसाइयों को ही वताया गया और उन्हें बड़ी संख्या में तरह-तरह की अमानुषिक यातनाओं का शिकार बनाया गया और तलवार के घाट उतार दिया गया। मार्कस आरेलियस (Marcus Aurelius) जैसा उदार और अच्छा सम्राट भी ईसाइयों को सार्वजनिक कल्याण के लिए खतरनाक समझता था और उसने उन्हें दबाने के लिए कानून बनाया।

शहादत (Martyrdom)—सम्राटों ने ईसाई-धर्म के प्रति कड़ा रुख लिया और ईसाई धर्म के प्रचारक सन्तों ने भी उतनी ही अधिक दृढ़ता और धर्म-प्रेम का परिचय दिया। शासन की क्रूरता और धर्म की निष्ठा में होड़ लग गयी। रोम नगर में ही पाल और पीटर को फाँसी दी गयी, पर उनकी शहादत का फल धर्म के लिए श्रेयस्कर हुआ। हेज (Hayes) के शब्दों में द्वादश शिष्यों में से अधिकांश तथा और भी वहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से ईसाई साम्राज्य के विभिन्न स्थानों में शहीद हो गये। कुछ सूली पर चढ़ा दिये गये। कुछ का सिर काट लिया गया, कुछ जला दिये गये तथा अन्य हुई क्रीड़ांगनों में शेरों के सामने फेंक दिये गये। फिर भी शहीदों का अस्तित्व शेष रहा; जो मर गये उनका स्थान लेनेवाले दूसरे लोग आ गये। ख़ीष्टीय धर्म तूफानों में से जीवित निकला।[१]

तीसरी सदी तक साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग ईसाइयों पर प्रहार होते रहे। पर वे सदा लुक-छिप कर प्रार्थना-पूजा के लिए मिलते-जुलते रहे और अपने शहीदों की कब्रों के पास ही धार्मिक कृत्य सम्पन्न कर लिया करते थे। सम्राट ट्राजन ने एक कानून बनाया कि जो व्यक्ति सम्राट की पूजा का विरोध करेगा, वह प्राण-दण्ड की सजा के लिए अपराधी समझा जायेगा। सम्राट मार्कस आरेलियस ने भी ईसाइयों को राष्ट्र-द्रोही समझा और इसी दृष्टि से उनके लिए कठोर कानून बनाकर उनका दमन किया।

सम्राट डिआक्लिशियन (Diocleian) के शासन-काल में ईसाइयों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। सन् २४८ ई० में ईसाइयों ने रोम की स्थापना के वार्षिकोत्सव में भाग लेने से इनकार कर दिया था क्योंकि इसमें रोम के देवताओं की पूजा करनी पड़ती थी। उस समय भी हजारों की संख्या में ईसाई भून डाले गये। उसके बाद भी ये अत्याचार होते रहे। "ईसाई धर्म के अनुयायियों की जायदादें जब्त कर ली गयीं। बाइबिल तथा अन्य धार्मिक पुस्तकें जला दी गयीं। ईसाइयों के लिए

"[१] Most of the twelve Apostles, and many other Chritians, were martyrs at different places in the Empire. Some were crucified, some were beheaded, some were burnt and some were thrown to the lions in the Coloseum and other amphitheatres. Yet the martyrs endured; others came to take the places of those who died. Christianity weathered the storms."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्यायालयों के द्वार बन्द कर दिये गये और बहुत लोगों को शनैः-शनैः मृत्यु दण्ड दिया गया।" पर ईसाई धर्म का उन्मूलन नहीं हो सका। प्रथम सदी में ही साम्राज्य के प्रमुख नगरों में ईसाई धर्मावलम्बी दीख पड़ने लगे थे। दूसरी सदी तक साम्राज्य की पाँच प्रतिशत जनता ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था और तीसरी सदी तक साम्राज्य में ईसाइयों का महत्वपूर्ण स्थान स्वीकृत हो गया। शहीदों के रक्त ने ईसाई चर्च के बीज को उपयुक्त खाद दिया और अब बहुत से उच्च वर्ग के व्यक्ति भी ईसाई बनने लगे। रोम का चर्च ही ईसाई गिरजाघरों में सर्व प्रधान हो गया और वहाँ का विशप (Bsshop) अन्य सब पादरियों का श्रेष्ठ नेता बना। पाल तथा अन्य धर्म-दूतों (Apostles) के उपदेश विधिवत लिपिबद्ध किये गये और इस प्रकार दमन तथा विकास का दौर साथ-साथ चलता रहा। राजसत्ता के संचालकों को इतिहास का यह सत्य प्रायः भूल जाता है कि "दमन नीति प्रायः प्रतिकूल परिणाम उत्पन्न करती है।"

धर्म की विजय—तीसरी सदी के अन्त तक ईसाई धर्म की जीत निश्चित हो गयी। धीरे-धीरे सम्राटों की दृष्टि भी बदलने लगी। ३११ ई० में सम्राट् गैलेरियस (Galerius) ने ईसाइयों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनायी और उनको सुविधाएँ देने के निमित्त राजकीय नियम बनाया। सर्वप्रथम रोम में ईसाई धर्म वैध घोषित हुआ। उसके बाद कान्स्टैन्टाइन के शासन-काल में सन् ३२५ ई० में एशिया माइनर के एक नगर नीसा (Nicaea) में ईसाई चर्च के पादरियों की एक कौंसिल (The Council of Nicaea) बुलायी गयी थी। ईसाई पादरियों की यह अपने तरह की प्रथम कौंसिल थी। इसमें लगभग ३०० विशप पादरियों ने भाग लिया और ईसाई धर्म के नियमों एवं चर्च के संगठन की विधि के सम्बन्ध में निर्णय हुआ। रोम के विशप ने भी इस कौंसिल में अपने दो विशिष्ट प्रतिनिधियों को भेजा था। कौंसिल के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या एरियन मत (Arianism) द्वारा प्रचारित कैथोलिक चर्च और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसाई धर्म की विरोधी बातों के विषय में निर्णय करना था। यह मत मिस्र के एक एरियस (Arius) नामक व्यक्ति द्वारा चलाया गया था। इसने ईसा को देवता मानने और एकेश्वरवाद को स्वीकार करने से इनकार किया था। नीसा की कौंसिल ने इस सम्बन्ध में अपना अधिकारी मत प्रकाशित किया और एरियन मत की भर्त्सना की। कुछ दिनों तक विरोधी मत का कुछ प्रभाव बना रहा और कुछ सम्राटों द्वारा इसे समर्थन भी प्राप्त हुआ था इसी प्रभाव में आकर एक सम्राट् जूलियन (सन् ३६१ से ३६३ ई० तक) पुनः ईसाई धर्म का मूलोच्छेद करना चाहता था। परन्तु उसके समय तक ईसाई धर्म पर्याप्त रूप से सबल हो चुका था और अब उसका विनाश सम्भव नहीं था। उसे तो विश्व-धर्म होना था। सन् ३१२ ई० में सम्राट् कान्स्टैन्टाइन (Constantine) का शासन-काल शुरू हुआ और उसी के शासन काल का प्रथम बार ईसाई धर्म को राजधर्म होने का गौरव मिला। जनश्रुति है कि सन् ३१२ ई० में जब कान्स्टैन्टाइन अपने विपक्षियों से राजगद्दी के लिए लोहा ले रहा था और जीवन-मृत्यु के युद्ध में फँसा था, तब एक रात उसने और उसके सैनिकों ने आकाश में क्रास (cross) के विजय-चिह्न का देखा और उसे स्वप्न हुआ कि ईसा (Christ) उसे इस चिह्न को अपने राष्ट्रीय ध्वज से स्थान देने का आदेश दे रहे हैं। तत्काल उसने राज्य के झण्डे पर गिद्ध (eagle) के बदले क्रास को स्थान दिया और स्वयं ईसाई धर्म स्वीकार कर उसे राज्य धर्म बनाने की घोषणा की। सन् ३१३ ई० में सम्राट् ने मिलन के कानून (The Edict of Milan) का निर्माण किया। उसी दिन से ईसाई धर्म का सितारा चमक उठा और वह धर्म विश्व का सबसे व्यापक एवं प्रमुख धर्म होने के निश्चित मार्ग पर प्रतिष्ठित हो चला। ईसाइयों को पूजा की पूर्ण स्वतंत्रता दी गयी, ईसाइयों के विरुद्ध सभी कानूनी असुविधाएँ हटा दी गयीं और उनकी सम्पत्ति लौटा दी गयी। साम्राज्य की राजधानी होने से रोम ईसाई धर्म का प्रधान केन्द्र हो गया और जब रोम की राजनीतिक शक्ति का सितारा अस्त हुआ, तब भी रोम के चर्च का प्रभुत्व समस्त

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूरोप में बना रहा। रोम का चर्च रोमन कैथोलिक चर्च की राजधानी हुई और वहाँ का पादरी जो पोप (pope) कहलाता है, कैथोलिक संसार का धर्म गुरु बना। सन् ३८० से सन् ३९५ ई० तक सम्राट थ्योडोसियस (Theodosius) के प्रभाव से रोम का साम्राज्य ईसाई साम्राज्य (Christian Empire) बन गया। उसी के शासन काल में सन् ३८१ ई० में कुस्तुनतुनिया (Constantinopole) नगर में एक महान् धर्म-सम्मेलन का आयोजन हुआ और साम्राज्य की सीमा में अन्य विरोधी मतों का प्रचार बन्द कर दिया गया। इसी काल में चर्च को राजकीय करों से मुक्त कर दिया गया, पादरियों को अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त किया गया और उन्हें (Bishops) मुल्की कानुनों के आधीन कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की गयीं। राजकीय ईसाई धर्म के आलोचकों एवं विरोधियों को कड़े दण्ड दिये गये। चौथी सदी के अन्त तक ईसाई धर्म ही अन्य मतों के विरुद्ध असहिष्णु हो उठा और विरोधियों के प्रति वही कड़ी नीति अपनायी गयी जो पहले रोम के सम्राटों ने ईसाई धर्म के विरुद्ध अपनायी थी। ईसाई धर्म अब राजधर्म हो गया था और उसमें राजधर्म होने की बुराइयाँ प्रविष्ठ होने लगीं। हेज (Hayes) के शब्दों में "It was a sad price which Christianty paid for becoming a state religion."

ईसाई धर्म की सफलता के कारण

ईसा ने अति विषम परिस्थितियों में उपदेश देने का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके अनुयायियों ने उनसे भी अधिक उग्र विरोधात्मक वातावरण में अपना कार्य किया। पर ईसा द्वारा प्रचारित धर्म दिन-दिन अधिक व्यापक एवं शक्तिशाली होता गया। रोम के सम्राटों जैसे क्रूर एवं सशक्त विरोधियों के बावजूद भी यह धर्म विजयी हुआ। इसकी सफलता विश्व-इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना है। इस अपूर्व गौरवपूर्ण सफलता के अनेक कारण थे—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) इस धर्म की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण उस धर्म की व्यापक ग्रहणशीलता (Composite character) थी। ईसाई धर्म में तत्कालीन अन्य अनेक धर्मों एवं मतों का समावेश उदारतापूर्वक किया गया था। ईसा स्वयं यहूदी धर्म से प्रभावित थे। यहूदी धर्म से सम्बन्धित अनेक प्रथाओं, जनश्रुतियों एवं भविष्यवाणियों को ईसा ने ज्यों का ज्यों अपना लिया था। इस सम्बन्ध में बर्न्स ने उचित ही लिखा है कि यह एक ऐसा धर्म था जिसमें अन्ततोगत्वा अनेक स्रोतों से आये हुए तत्वों का समावेश हुआ। बहुत सी बातें यहूदी धर्म से ले ली गई—जैसे देवनाम, ब्रह्माण्ड की उत्पति, विश्व-इतिहास, दशादेश, पाप-मूल तथा प्रभु का वैभव। इसके अलावा कई नैतिक सिद्धान्त यहूदियों से लिये गये। यद्यपि इनमें से अनेक तत्वों को ईसा तथा उनके अनुयायिओं ने संशोधित कर दिया किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ख्रीष्टीय धर्म को यहूदियों की देन महती है।[१] इसके अतिरिक्त जोरोथुस्त्र धर्म से स्वर्ग की कल्पना और सत् एवं असत् के बीच द्वन्द्व का सिद्धान्त; ग्नास्टिसिज्म (Gnosticism) तथा मिथ्रेइज्म (Mithraism) से क्रमशः अवतारवाद और धार्मिक कर्मकाण्ड (Baptism, use of holy water, celebration of Sunday and twenty fifth of December as sacred days) आदि बातें ईसाई

१. Here was a religion which ultimately came to embody elements from a vide variety of sources. A large numbre of them were taken from Judaism ; the name of the diety, the cosmogony, the world history, the Ten Commandments, and such doctrines as origin of sin and providence of God. In addition several of the ethical doctrines were really Jewish origin. Although many of these elements were modified by the Jesus and his followers there can be no doubt that the Hebrew contributions to Christianity were of great importance."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म में तनिक परिवर्तन के साथ आ गयीं। स्टोइक दर्शन के विश्वबन्धुत्व और मानवीय भाईचारा के सिद्धान्तों का प्रभाव ईसा पर अवश्य पड़ा था। बालगंगाधर तिलक के मतानुसार बौद्ध धर्म के अहिंसा का प्रभाव ईसाई धर्म पर अवश्य पड़ा था। इस प्रकार ईसा और उनके अनुयायियों ने प्रारम्भिक स्थिति में अपने विचार-संगठन एवं धर्म के निरूपण में अपने समय की दुनियाँ को आँख खोल कर देखा और जहाँ जो कुछ भी उन्हें अच्छा दीख पड़ा, वहाँ से उन्होंने अनुकूल बातों, रीति-रिवाजों एवं विचारों को आत्मसात् कर लिया। यही कारण था कि धीरे धीरे ईसा के उपदेशों का प्रभाव अति व्यापक हुआ। एक इतिहासकार ने सत्य ही लिखा है कि "प्रारम्भिक चर्च में ऐसी जैविक शक्ति थी जो सम्पूर्ण व्रात्य-जगत् से पोषण ग्रहण करती थी—उसकी अपनी प्रकृति से जो धारणाएँ एवं रीतियाँ अनमेल नहीं थी उनको उन्होंने चुना और अपने में ले लिया। इसलिए ईसाई धर्म को प्रेरणा अन्य प्राचीन धर्मों से अधिक सार्वभौम थी"।[१]

(२) ईसा के उपदेशों में तत्कालीन समाज के दलित एवं शोषित वर्ग के व्यक्तियों के लिए आशा एवं शरण देने की स्पष्ट छाप थी। अतः ऐसे व्यक्ति जिनकी संख्या समाज में कम नहीं थी, बड़ी तेजी से ईसा की ओर आकृष्ट हुए। ईसाई मत की विजय का एक कारण तो यह तथ्य है कि उसने दीन-दुखियों एवं पीड़ितों को अन्य रहस्यमय धर्मों से अधिक आकर्षित किया।[२] यदि कोई प्रभावशाली व्यक्ति इस प्रकार के उपदेश

---

१. "The early church was an organism that fed upon the whole pagan world, selecting and incorporating a wide variety of ideas and practices which were not inconsistent with its own nature. The appeal of Christianity was therefore more nearly universal than that of any other of the ancient religions."

१. The triumph of Christianity is partly explained by the fact it made a stronger appeal to the poor and appressed than did any of the other mystry religions."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देता जैसा ईसा ने दिया था, तो निश्चित रूप से वह अपनी ओर लोगों को खींच सकता था। ईसा ने गरीबों और दुखियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"तुम गरीब धन्य हो, क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारा है। अभी जो तुम भूखे हो सो धन्य हो क्योंकि तुम सन्तुष्ट होगे। तुम रोने वाले धन्य हो, जो हँसोगे।"

धनी व्यक्तियों की भर्त्सना करते हुए ईसा ने कहा था—

"अफसोस उनके लिए जिनके पास खाने को अधिक है; क्योंकि वे भूखे रहेंगे। शोचनीय वे हैं जो धनी हैं क्योंकि उनके सुख का समय बीत गया और शोचनीय वे हैं जो अभी हँसते हैं, क्योंकि उन्हें रोना पड़ेगा। धन-सम्पत्ति में विश्वास रखने वाले पुरुषों का ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना बड़ा कठिन है। एक ऊँट का सुई के छिद्र में प्रवेश होना, धनिकों के ईश्वर-राज्य में प्रवेश पाने से कहीं अधिक सुगम है।"

इस प्रकार के उपदेशों का गरीबों पर जादू-सा असर हुआ और वे ईसा की ओर आकर्षित हुए।

(३) ईसा के उपदेशों में उद्दात्त सिद्धान्त और शुभ आदर्श और मानवतावाद का ऐसा पुट था कि उसका गहरा प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता था। उन्होंने ईश्वर को परम पिता कहा और मानवमात्र को उसका पुत्र माना। अतः ईसा कहते थे कि संसार के सब मनुष्य भाई-भाई हैं। उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है और उसका एकमात्र साधन मनुष्य की सच्ची सेवा है। ईश्वर का निवास तो पवित्र मानव हृदय (Living temple of God) ही है। इस प्रकार के उपदेश से मनुष्य-मनुष्य के बीच एक अति पवित्र सम्बन्ध का स्रोत बहने लगा और उससे वर्ग-विभेद की खाई सँकरी हो गयी। उनकी भाषा भी बुद्ध की तरह सरल एवं सुबोध थी। यही कारण था कि सर्वसाधारण भी उनकी ओर आकर्षित हुआ। इस धर्म ने एक नयी एवं लोकतांत्रिक नैतिकता का प्रचार किया जिसमें विनम्रता, आत्म-त्याग एवं अपने शत्रु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रति भी प्यार की बातें प्रमुख थीं। ये उपदेश ऐसे थे जिन्हें संसार के निराश्रित, भूखे-नंगे, दलित व्यक्तियों ने उनकी आशाओं पर तुषारापात हो चुका था, बड़े चाव से अपनाया।

(४) ईसा ने क्षमा-शीलता पर बहुत जोर दिया। उन्होंने कहा—

"अपने शत्रुओं को प्यार करो। जो तुमसे घृणा करते हैं, उनसे तुम नम्रता का बर्ताव करो। जो तुम्हें अभिशाप देते हैं, उन्हें वरदान (आशीर्वाद) दो। जो तुम्हें गाली देते हैं उनके लिए तुम दुआएँ करो। जो मनुष्य तुम्हारे एक गाल पर मारे उसके सामने दूसरा गाल भी पसार दो........जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हें तुम प्यार करते हो, तो इसमें खूबी क्या है ? नास्तिक व्यक्ति भी अपने प्यार करने वाले को प्यार करता है, इसीलिए तुम अपने शत्रुओं को प्यार करो और उन्हें सहायता दो.... कभी निराश मत हो, तुम्हें इसका पूरा पुरस्कार मिलेगा।"

इन उपदेशों का प्रभाव बहुत सटीक हुआ। ईसा ने सदा इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति का परम पिता ईश्वर से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। दया, करुणा, क्षमा एवं सेवा के लिए विशेष कर्मकाण्ड और पुरोहितों की आवश्यकता नहीं है। क्या ऐसे उपदेश हृदय रखने वाले मानव को अपनी ओर खींचने में समर्थ नहीं हैं ?

(५) ईसाई धर्म ने स्त्रियों को पूर्ण धार्मिक सुविधाएँ और अधिकार दिये। इसका मुख्य विरोधी धर्म (Mithraism) था जिसमें स्त्रियों का किसी प्रकार के धार्मिक अधिकार नहीं दिये गये थे। अतः ईसाई धर्म की ओर स्त्रियाँ इन समानाधिकार के कारण अधिक आकर्षित हुईं।

(६) लगभग एक शताब्दी तक ईसा, उनके शिष्यों और ईसाई धर्म पर निरन्तर क्रूर प्रहार होता रहा। "सम्राटों की दमनकारी नीति ने अग्नि में घी का काम किया। दमन की वृद्धि के साथ-साथ ईसाइयों की नैतिक शक्ति बढ़ती गयी। उनमें बलिदान की भावना जागृत होती गयी और ईसाई धर्म का तीव्रगति से प्रसार होता गया। व्यक्तियों को कुच-लने से विचार की गति को नहीं रोका जा सकता है। यही बात यहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी हुई क्योंकि शहीदों के खून से संस्था और अधिक फूलने-फलने लगती है। दमन द्वारा जो शक्ति इस धर्म में प्रवाहित हुई, उसी भावना में दमनकारी बह गये और अन्त में सम्राटों की क्रूरता ने भी अपना घुटना टेक दिया। राज्य-शक्ति को धर्म शक्ति के सामने झुकना पड़ा और अन्त में राज्य-शक्ति इस धर्म-शक्ति की चेरी हो गयी। कान्स्टैन्टाइन तक आते-आते ईसाई धर्म रोम के सम्राटों पर हावी हो गया और उसे राज्य-धर्म के पद पर प्रतिष्ठित होने का गौरव मिला।

(७) रोम का साम्राज्य उन दिनों अति विस्तृत था। साम्राज्य में सैनिक शक्ति के प्रभाव से पूर्ण शान्ति थी। अतः ईसाई प्रचारकों को पूरे साम्राज्य में भ्रमण करने की अच्छी सुविधा मिली और वे अपने धर्म का सन्देश दूर-दूर के प्रदेशों में पहुँचाने में सफल हुए।

(८) रोम-साम्राज्य के तत्कालीन अन्य धर्मों में सरलता का अपेक्षाकृत अभाव था। अतः उनके प्रति जनता में गहरी श्रद्धा-भक्ति का अभाव था। ईसाई धर्म के सरल उपदेशों के प्रति जन-साधारण का आकर्षण स्वाभाविक था।

(९) ईसाई धर्म में जटिल रहस्यात्मक बातों तथा कर्मकाण्ड का अभाव था। ईसा ने सही मुक्ति के लिए या स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति के लिए अनावश्यक तप या कर्मकाण्ड का उल्लेख नहीं किया है। साथ ही ईसाई धर्म के संचालक एवं प्रचारक ऐसे साधारण कोटि के मनुष्य थे जिन्हें उस युग के व्यक्ति देखते एवं समझते थे। उनकी सच्चाई, सेवा-वृत्ति, आदर्श चरित्र एवं त्यागमय जीवन को उस युग के मनुष्य में देखते थे और उनके बलिदान से वे प्रभावित होते थे। ऐसे सच्चे उदाहरणों से जनता का प्रभावित होना अनिवार्य था। ईसाई धर्म के प्रचारक काल्पनिक, पौराणिक या रहस्यात्मक व्यक्ति न होकर जीवन के बीच काम करने वाले वास्तविक पुरुष थे।

(१०) रोम के सम्राटों ने जब इस धर्म को अपना लिया तो यह धर्म शीघ्र ही राजधर्म के रूप में रोम-साम्राज्य के सुदूर प्रान्तों तक फैल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया।

(११) ईसाई धर्म की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण इसकी सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना थी। यह किसी एक वर्ग-विशेष का प्रवक्ता नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति का शुभ-चिन्तक था। अतएव सब ने इसे गले लगाया।

(१२) अन्तिम महत्त्वपूर्ण कारण यीशु मसीह स्वयं का एक ऐतिहासिक व्यक्ति होना था। जहाँ अन्य सभी धर्मों के स्रोत कोई अलौकिक व्यक्ति होते थे। जिनकी सांसारिकता में विश्वास करना कठिन था परन्तु यीशु सर्वसाधारण मनुष्यों में से ही एक थे। अतएव सभी को उनके नेतृत्व में विश्वास था।

इन्हीं कारणों से ईसाई धर्म को सफलता मिली और यह धर्म इतिहास में एक नयी धारा प्रवाहित करने ने सफल रहा "जिस प्रकार यूनान के जादू अथवा रोम के गौरव ने मनुष्यों को बहुत दिनों तक एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा था, उसी प्रकार ईसाई धर्म ने विश्वास के एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करके मानव समाज को बहुत दिनों तक एकता के सूत्र में पिरो रखा है।"

ईसाई धर्म का स्वरूप सिद्धान्त और संगठन

ईसा ने अपने जीवन काल में जिस धर्म का प्रचार किया था, उसमें कहीं स्पष्ट रूप से किसी प्रकार के विशिष्ट कर्मकाण्ड, संस्कार या पूजा-स्थान आदि का उल्लेख नहीं था। पर उसके बाद इस सम्बन्ध में निश्चित धारणाएँ और परिपाटियाँ बनने लगीं और कालान्तर में ईसाई धर्म के कुछ संस्कारों एवं सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हुआ।

इसमें से कुछ मुख्य संस्कार इस प्रकार थे—

Baptism (नामकरण), Confirmation (प्रमाणीकरण), The Holy Eucharist, Penance (तप) Extreme Unction (अतिशय अभिषेक), Ordination, और Matrimony (विवाह)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये संस्कार किसी व्यक्ति को विशुद्ध ईसाई बनने में सहायक समझे गये। नामकरण या Baptism द्वारा पूर्व पापों का क्षय होता था। Confirmation संस्कार द्वारा १२ वर्ष की आयु के बच्चे का नाम सार्वजनिक रूप से घोषित किया जाता था और उसे प्रमाणित किया जाता था। Holy Euchariat संस्कार कष्ट में सहन-शक्ति प्रदान करने का विधान था। तप द्वारा मनुष्य के पाप कटते थे क्योंकि तप प्रायश्चित का एक निश्चित मार्ग था। अतिशय अभिषेक संस्कार मरणासन्न व्यक्ति के लिए था जिसमें उसे पवित्र जल से स्नान कराया जाता था, ताकि संसार की अशुद्धियाँ धुल जायँ और वह पवित्र होकर स्वर्ग में प्रवेश करे। Ordination संस्कार दैवी कृपा अर्जित करने का ढंग था। विवाह संस्कार में वैवाहिक जीवन की पवित्रता को उद्घोषित किया जाता था और सन्तान-प्राप्ति का कानूनी अधिकार प्रदान किया जाता था।

इन संस्कारों के अतिरिक्त ईसाई धर्म में निम्नांकित बातें धर्म के रूप में मान्य हुईं :

१. **त्रिमूर्ति का सिद्धान्त** (The concept of Trinity)—इसमें प्रत्येक ईसाई ईश्वर के तीन स्वरूप पिता, पुत्र और Holy Ghost में विश्वास रखता है।

२. **अवतार**—इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर (पिता) ईसा के मनुष्य रूप में अवतरित हुए थे।

३. **पतन**—मरणशील मनुष्य आदम के पतन के बाद से ईश्वर के साहचर्य से वंचित हो गया है।

४. **कन्या जननी**—ईसा का जन्म एक कुमारी से हुआ था क्योंकि यह जन्म एक रहस्यात्मक प्रक्रिया था।

५. **द्विविध रूप**—ईसा पूर्ण मनुष्य भी थे और पूर्ण ईश्वर भी थे।

६. **प्रायश्चित**—ईसा जो ईश्वर के स्वरूप में आये थे, मानव के पापों के प्रायश्चित के लिए सूली पर लटके ताकि मानव मात्र का उद्धार हो सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. कृपा—ईश्वर कृपा-सिन्धु है। वह मनुष्य को पापों से मुक्ति पाने के लिए आध्यात्मिक सहायता प्रदान करता है।

८. पुनर्जन्म – ईसा तीन दिनों तक अपनी कब्र में थे। तत्पश्चात् वे वहाँ से उठकर बाहर आये और इससे उन्होंने अपने अनुयायियों को अमरत्व का विश्वास दिलाया।

९. चर्च का दैवी आधार—चर्च ईश्वर और मनुष्य के बीच दैवी सम्बन्ध स्थापित करने की आधार-शिला है।

१०. पुनरागमन—मृत पुरुषों के भाग्य-निर्माण के लिए ईसा पुनः एक बार इस पृथ्वी पर आयेंगे।

ईसाई धर्म के ये संस्कार और सिद्धान्त ईसा के समय से लेकर छठीं सदी तक निश्चित होते रहे। प्रत्येक कट्टर ईसाई इनमें विश्वास रखता है और यथासाध्य इनके अनुरूप बनने का प्रयास करता है। ईसा की मृत्यु के कुछ दिनों बाद इन संस्कार और सिद्धान्तों को लेकर ईसाइयों में गहरे मतभेद हो गये जिससे उनमें आपस में भी कटुता पैदा हो जाती थी।

विभिन्न मत—ईसा और उनके प्रमुख शिष्यों की मृत्यु के बाद ईसाई धर्म के अनुयायियों में आपस में कुछ मतभेद पैदा होने लगा और आगे चलकर इन मतभेदों के कारण उनमें कुछ प्रतिस्पर्धी संगठन बन गये। इन प्रतिस्पर्धी दलों के संगठन का एक कारण यह भी था कि ईसाई धर्म में अनेक विभिन्न मतों एवं धर्मों के तत्वों का समावेश किया गया था। जब प्रारम्भ में ईसाई धर्म के प्रचारकों ने उन विरोधी तत्वों को अपनाकर अपनी उदारता का परिचय दिया था, तब उसी के फलस्वरूप ईसाई धर्म में दृढ़ता और व्यापकता आयी थी। पर भविष्य में वे ही विरोधी तत्व ईसाई धर्म में विभिन्न दलों को पैदा करने के कारण बने। इस प्रकार विभिन्न दलों और विचार-धाराओं के पैदा होने का एक कारण यह भी था कि ईसाई धर्म के माननेवालों में बुद्धिवादी और भक्ति या भावना की धारा में बहने वाले व्यक्ति थे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और दोनों धाराओं का सामंजस्य दुष्कर सिद्ध हुआ। इनमें से बुद्धिवादी व्यक्तियों के दो मत प्रचारित हुए—The Arians और The Nestorians के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये दोनों पुरातनवादी त्रिमूर्ति (The Trinity) विचार को नहीं मानते थे। वे ईसा को ईश्वर के समान स्थान देना नहीं चाहते थे। एरियन मत वालों का कहना था कि पुत्र (The son) को पिता (The Father) ने पैदा किया है अतः पुत्र (ईसा) पिता (Father) के बराबर कैसे हो सकता है ? एरियन मत का प्रणेता एरियस (Arius) नामक व्यक्ति था जिसका प्रभाव सबसे अधिक मिस्र (Egypt) में था। ईसाइयों की नीसा-कौंसिल (The Council of Nicaea) ने एरियन मत के विरोध में ही अपनी बैठक की थी। लेकिन इस कौंसिल को व्याख्या के बाद भी एरियन मत का प्रचार होता रहा। इसी प्रकार दूसरा बुद्धिवादी विरोधी मत Nestorians का था जो यह कहता था कि मेरी (Mary) ईसा को माता हो सकती है, पर उसे ईश्वर की माता नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार वे ईसा को ईश्वर के बराबर मानने को तैयार नहीं थे।

भावात्मक (Emotional) पक्ष पर जोर देने वाले भी दो मत के थे—Gnostics और Manicheans ये दोनों ही मत वाले तत्र और रहस्यवाद में विश्वास रखते थे। इनका कहना था कि वास्तविक धर्म ईश्वर द्वारा प्रकट (Revelation) किया गया है, अतः इसे बुद्धि के आधार पर अधिक तर्कसंगत नहीं बनाया जा सकता। वे प्रवृत्ति-मार्ग के भी विरोधी थे और कहते थे कि पादरियों का जीवन वैराग्य-प्रधान होना चाहिये। उनका झुकाव आध्यात्मवाद की ओर अधिक था और भौतिकवाद को बुरा मानते थे। परम्परावादी ईसाई ईसा और उनके प्रधान शिष्यों के धर्म को ही मान्यता प्रदान करते थे और इन ऊपर लिखे दोनों विरोधी मतों को शंका की दृष्टि से देखते थे।

ईसाई चर्च का संगठन—ईसाई धर्म के जन्म, विकास और संगठन में चर्च का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। चर्च की संस्था ने ईसाई-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज के संगठन एवं कार्य-प्रणाली को भी अति व्यापक रूप से प्रभावित किया। जब पश्चिमी रोमन साम्राज्य की जड़ें कमजोर हो गयीं तो ईसाई-चर्च ने ही समाज को अराजकता से बचाने का कठिन दायित्व अपने उपर लिया। बर्न्स ने ठीक ही लिखा है कि 'चर्च ने बर्बरों को सभ्य बनाने, सामाजिक न्याय के आदर्शों को बढ़ाने तथा पुरातन ज्ञान की रक्षा करने तथा उसका प्रसार करने में सहायता की'।[१] इस चर्च के संगठन की प्रक्रिया शनैः शनैः विकसित हुई थी।

प्रारम्भ में ईसाई चर्च का संगठन बहुत साधारण और सीधा था। ईसाई धर्म के मानने वाले प्रारम्भ में किसी एक धार्मिक ईसाई के मकान में एकत्रित हुआ करते थे और वहाँ पादरी और गृहस्थ-ईसाई साथ-साथ बैठकर धार्मिक चर्चा करते थे। जो ईसाई अधिक पवित्र और योग्य समझा जाता था, वह अपने अन्य साथियों का पथ-प्रदर्शन करता था, सभाओं में अध्यक्ष का काम करता था, अनुशासन रखता था और दान आदि का वितरण करता था। सामान्यतया वह विशप कहलाता था। उनमें आपस में किसी प्रकार का अन्तर नहीं था। यही प्रारम्भिक चर्च था। धीरे-धीरे धार्मिक चर्चा एवं प्रार्थना के लिये विशिष्ट पूजा-गृह निर्मित होने लगे जो चर्च कहलाये। प्रथम चर्च जेरुसलम (Jerusalem) में स्थापित हुआ और तत्पश्चात् अन्य नगरों और स्थानों में चर्च निर्मित हुए। चर्च का मूल अर्थ है पादरियों का समुदाय (Congregation) जहाँ धार्मिक चर्चा हो। बाद में ईसाई-धर्म के प्रार्थना-स्थान को चर्च कहा गया क्योंकि उसी स्थान पर धार्मिक चर्चा और प्रार्थना के लिये ईसाई धर्म के मानने वाले एकत्रित होते थे। सम्राट् क्लाडियस (Claudius) के शासन-काल (सन् ४१—५४ ई०) में रोम में प्रथम चर्च की स्थापना हुई। वहीं पाल ने अपनी कुछ

१. "The church aided in civilizing the barbarians, in promoting ideals of social justice and preserving and transmitting the antique learning."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध धार्मिक चर्चाएँ की थीं। इन चर्चों को प्रारम्भ में कैथोलिक चर्च (Catholic church) कहा जाता था। कैथोलिक शब्द का मूल अर्थ सार्वजनिक (for all or of all) है, अतः ईसाई चर्च के पूर्व कैथोलिक शब्द जोड़ दिया जाता था क्योंकि ईसाई चर्च सब के लिए खुला था जहाँ किसी राज्य का कोई व्यक्ति प्रवेश पाता था।

प्रारम्भ में चर्च में होने वाली धार्मिक सभाओं में अध्यक्ष का काम करने के लिए जो व्यक्ति नियुक्त होता था, वह विशप (Bishop) या एल्डर (elder) कहलाता था। ये विशप देवदूतों (Apostles) के उत्तराधिकारी समझे जाते थे। वह विशप ईसाई पादरियों (clergy) में प्रमुख माना जाता था। कालान्तर में ईसाई धर्म में विविध प्रकार के संस्कार और कर्मकाण्ड का जोर बढ़ा और तब वहाँ भी ऐसे पादरियों एवं विशप की आवश्यकता पड़ी जो वहीं रह कर इसी काम में अपना पूरा समय लगा सकें और अपने विशिष्ट जीवन-प्रणाली, उन संस्कारों एवं कर्मकाण्डों के विशेषज्ञ बन सकें। इस प्रकार ईसाई चर्च के संगठन में अधिकारियों की विभिन्न श्रेणियों की सृष्टि हुई। एक स्थान या नगर में एक चर्च प्रमुख माना गया और उसके विशप की प्रतिष्ठा अधिक उच्च समझी गयी। दूसरी सदी तक प्रत्येक विशप के अधिकार का दायरा एक civitas या परगना हो गया जो रोम-साम्राज्य की एक छोटी प्रशासकीय इकाई थी। धीरे-धीरे बड़े नगरों के विशप को विशेष मान्यता मिली उन्हें Metropolitan कहा जाने लगा। प्रत्येक Metropolitan का अधिकार-क्षेत्र एक प्रान्त बना और उस प्रान्त के पादरी उसी के अधीन माने गये। सन् ४०० ई० तक रोम, कुस्तुनतुनिया, सिकन्दरिया और अन्टिओक जैसे बड़े नगरों के विशप या Metropolitan का पद और अधिक उच्च एवं सम्मानित हो गया और उनके अधिकार-क्षेत्र भी व्यापक हो गये। उस पैट्रियार्क (Patriarch) कहते थे। इस प्रकार चर्च के अधिकारियों में भिन्न-भिन्न श्रेणियों का निर्माण हुआ जो क्रम से एक-दूसरे के ऊपर रखे गये। इस प्रकार ४०० ई० तक ईसाई पौरोहित्य की सीमा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में धर्माध्यक्ष, मेट्रोपालिटन, विशप तथा पुरोहित सब आ गये। इन सब प्रगतियों का उच्चतम बिन्दु यह था कि रोम के विशप के धर्मशासन का विकास होता गया और वह रोम पोप रूप में परिवर्तित हो गया।[१]

रोम का चर्च और पोप—ईसाई संसार में रोम के चर्च और वहाँ के पोप का स्थान सर्वोपरि है। रोम में ही पाल और पीटर को मृत्यु-दण्ड दिया गया था और उनकी कब्रों की पवित्रता को अधिक महत्व प्राप्त होने के कारण रोम का भी महत्व अधिक हो गया। रोम के चर्च के विशप को पाल और पीटर जैसे सन्तों का उत्तराधिकारी माना गया, अतः ईसाई-संसार में रोम के चर्च और वहाँ के विशप को सबसे अधिक प्रधानता मिली। रोम के चर्च के विशप को कालान्तर में पोप (Pope) कहा गया।[२] पोप की प्रतिष्ठा को बढ़ाने में अनेक अनुश्रुतियों ने योग दिया। कहा जाता है कि पीटर ने स्वयं वहाँ के चर्च की स्थापना की थी और वहाँ विशप की नियुक्ति की थी। अतः वहाँ के विशप उस सन्त के उत्तराधिकारी माने गये। यह भी कहा जाता है कि ईसा ने पीटर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था और उसे स्वर्ग की कुन्जी भी दी थी। पीटर को इस पृथ्वी के मनुष्यों के पाप क्षमा करने या उन्हें दण्ड देने का भी अधिकार ईसा द्वारा प्राप्त हुआ था। इस प्रकार पीटर के

१. "Thus the Christian clergy by 400 A. D. had come to embrace a definite hierarchy of patriarch, metropolitans, bishops and priests. The climax of all this development was the growth of the primacy of the bishop of Rome as the pope of Rome."

२. In the early centuries of the Christian era, the word pope (meaning "father") was a title applied to any bishop. Gradually, however, it came to be applied almost exclusively to that bishop who claimed to be the chief of all Christian bishops—the bishop of Rome.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी के रूप में रोम के विशप (पोप) का स्थान ईसाई धर्म में अद्वितीय हो गया और समस्त ईसाई संसार का धर्माध्यक्ष समझा जाने लगा।

मठ प्रथा का प्रारम्भ—अनेक कारणों से ईसाई धर्म में सन्यास-प्रवृत्ति का उदय हुआ और धीरे-धीरे उसका विकास बढ़ा। ऐसे व्यक्ति एकान्त-प्रिय थे और मठों (Monastery) में रह कर साधना-मय जीवन व्यतीत करना पसन्द करते थे। अतः मठों की नींव पड़ी। इस सन्यासी प्रवृत्ति एवं मठ प्रथा के विकास के निम्नलिखित मुख्य कारण थे :

(१) ईसाई धर्म जैसे-जैसे फैलता गया वैसे ही वैसे अनेक निवृत्तिमूलक मतों—सन्देहवाद, Neo-Platonism, Gnosticism और Manicheism ने इसे प्रभावित किया और इस पर विरक्ति, काया क्लेश और रहस्यवाद के सिद्धान्तों को आरोपित करना प्रारम्भ किया।

(२) समय व्यतीत होता गया और ईसाई-समाज में सांसारिकता बढ़ती गई। इसके विरोध में कुछ-ईसाई-नेताओं ने वैराग्य का आदर्श रखा।

(३) ईसाइयों का एक वर्ग काया-क्लेश को स्वर्ग-प्राप्ति में सहायक मानता था।

(४) बहुत से ईसाई कठोर साधनामय जीवन व्यतीत कर सामान्य जनों के समक्ष अपनी विशेषता और महत्ता स्थापित करना चाहते थे।

इन प्रवृत्तियों का परिणाम यह हुआ कि ईसाइयों ने यत्र-तत्र अपने मठ (विहार) स्थापित करने प्रारम्भ कर दिए। विद्वानों का मत है कि सर्वप्रथम ईसाई मठ की स्थापना मिस्र-निवासी पेचोमिस्रस ने की थी। इसके पश्चात् दूसरा मठ-संस्थापक कप्पाडोसिआ निवासी सन्त बेसील था। यह व्यक्ति आत्यन्तिक काया-क्लेश के सिद्धान्त में विश्वास न करता था। उसके स्थान पर इसने मनन, अल्प भाण्डता, श्रम और अनुशासन पर जोर दिया। पूर्वी योरोपीय देशों में इस प्रकार के मठ-जीवन का काफी प्रचार हुआ। परन्तु छठीं शताब्दी के पूर्व तक पश्चात्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योरप में मठ-स्थापना न हो सकी ।

जो ईसाई मठों में रहकर जीवन व्यतीत करते थे वे Regular clergy कहलाये और जो मठों के बाहर थे वे Secular Clergy कहलाये ।

ईसाई धर्म का प्रभाव

ईसाई धर्म का जन्म और विकास विश्व-इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना थी । इस धर्म ने तत्कालीन और भावी समाज, राजनीति तथा जीवनादर्शों को अत्यधिक प्रभावित किया । चूंकि ईसाई धर्म विशाल रोमन साम्राज्य का राजधर्म हो गया, अतः इस धर्म के रीति-रिवाज, प्रथाएँ और क्रियाएँ साम्राज्य की सीमा में सर्वत्र व्याप्त हो गयीं और उन्होंने बड़ी तेजी से जनजीवन में अपना स्थान बना लिया । रविवार तथा ईसाई धर्म से सम्बन्धित अन्य त्यौहार-दिवस साम्राज्य में सर्वत्र राजकीय त्यौहार और छुट्टियों के दिन बन गये । शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु संस्कार में ईसाई रीतियों का प्रमुख स्थान हो गया ।

ईसाई धर्म का विवाह और परिवार जैसी संस्थाओं के विषय में बहुत स्वस्थ दृष्टिकोण था । यह धर्म इन संस्थाओं को धार्मिक एवं नैतिक जीवन का आधार मानता है । अतः समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण बदल गया और उन्हें एक सम्मानित पद मिला । अब उन्हें उपेक्षा के स्थान पर परिवार तथा समाज में आदर का स्थान मिला और विवाह को एक पवित्र संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया । इस दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ और विवाह एक पवित्र बन्धन समझा जाने लगा ।

इसके साथ गुलामों की दशा में भी ईसाई धर्म के प्रचार से बहुत सुधार हुआ । ईसाई चर्च ने मनुष्य के गौरव को बढ़ाया और अब तक के अमीरों तथा गरीबों के बीच की खाई इस दृष्टिकोण से बहुत कुछ पट गयी । ईसाई धर्म के भाई-चारा के सिद्धान्त ने दास-प्रथा को समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में बहुत योग दिया । ईसा ने स्वयं अपने हाथ से मजदूरी की थी । इससे शारीरिक श्रम का महत्व बढ़ गया और धीरे-धीरे लोगों में यह धारणा फैलने लगी कि मनुष्य धन या कुल से ही बड़ा नहीं होता, बल्कि मनुष्य के बड़प्पन का मापदण्ड उसका गुण है । शनैः शनैः समाज में ईमानदारी, सच्चे श्रम, सादगी, मितव्ययिता और संयम का महत्व बढ़ा और उच्च श्रेणी तथा निम्न श्रेणी के लोगों के बीच आपसी व्यवहार में माधुर्य्य बढ़ने लगा । इस प्रकार ईसाई धर्म के प्रभाव से धनी निर्धन के बीच खाई भरने लगी और शरीर-श्रम की महत्ता स्थापित हुई ।

तत्कालीन समाज अनेक प्रकार की कुरीतियों का शिकार हो रहा था । रोमन आमोद-प्रमोद के साधन बड़े क्रूर एवं अमानुषिक थे । उच्च वर्ग के सदस्य अपने मनोरंजन के लिए निम्न वर्ग के सदस्यों पर अनेक अत्याचार करते थे । अखाड़ों में हिंसक जानवरों के समक्ष दीन-हीन गरीब दासों को छोड़ दिया जाता था और रोम के नागरिक उनकी क्रूर हत्याएँ देख मन बहलाव करते थे । ईसाई धर्म के प्रकार के साथ-साथ ऐसी अनेक बुराइयों का अन्त हो गया । और मनुष्य में कोमल सामाजिक भावनाओं का प्रस्फुटन हुआ जिसने जन-जीवन अधिक शान्त एवं उल्लासमय बना । सेवा की भावना को प्रोत्साहन मिला, स्थान स्थान पर दीन-दुखियों के लिए अनाथालय, अस्पताल एवं सेवा-श्रम स्थापित किये गये ।[१]

कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी ईसाई धर्म का प्रभाव महत्त्वपूर्ण रहा । इस धर्म ने कला और साहित्य में एक नयी सृष्टि की । रोम की

---

१. "With the triumph of Christianity gladiatorial combats graduaiiy came to on end, and all kinds of cruelty and vice were lessened. Hospitals were establihed in greater numbers, and the poor, the sick, the blind and other unfortunates received more care."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैली के आधार पर अनेक भव्य एवं विशाल गिरजाघरों एवं अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। साथ ही चित्रकला को भी प्रोत्साहन मिला और ईसा तथा अन्य ईसाई सन्तों के जीवन से सम्बन्धित अनेक मार्मिक घटनाओं के चित्र बनाये गये। इसी युग में अद्‌भुत मोजेक (Mosaic) कला में अनेक भव्य एवं शानदार चित्रों का सृजन हुआ। शिक्षा और साहित्य की भी अभिनव उन्नति हुई। ग्रीक और लैटिन भाषा में उच्च कोटि के धार्मिक ग्रन्थ लिखे गये। यूसेबियस (Eusebius) नामक एक विद्वान पादरी ने ग्रीक भाषा में Church History, Life of Constentine and Chronicle नामक प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी। एम्ब्रोज़ (Ambrose) ने जो मिलन का बिशप (Bishop of Milan) था, लैटिन में अनेक मधुर प्रार्थना-पद लिखे। लैटिन भाषा में आगस्टाइन (Bishup of Hippo in Northern Africa) द्वारा लिखित City of God नामक पुस्तक भी अपने ढंग की अद्‌भुत पुस्तक है जिसमें लेखक ने अपने प्रारम्भिक जीवन के संस्मरण अंकित किये हैं। इसी युग का एक अन्य विद्वान लेखक जेरोम (सन् ३४०—४२० ई०) था। जेरोम (Jerome) ने बाइबिल का अनुवाद हिब्रू और ग्रीक से लैटिन में किया। उसके अनुवाद का नाम Vulgate था और यही अनूदित बाइबिल उन दिनों ईसाई चर्च की एक मात्र मान्य धार्मिक पुस्तक (official version of the Holy sciiptures for the Catholic Church) स्वीकृत हुई।

ईसाई धर्म ने राजनीति के क्षेत्र में भी अपना प्रभाव डाला। कुछ दिनों तक रोम साम्राज्य के क्रूर सम्राटों का क्रोध ईसाइयों के विरुद्ध रहा और ईसाई धर्म की शिक्षाएँ सम्राटों के मनोनुकूल न होने के कारण उन्होंने ईसाइयों पर विविध प्रकार के अत्याचार किये। शासकों ने उनकी सम्पत्ति छीन ली, उनके मकान और गिरजे जला दिये गये और उनकी हत्याएँ की गयीं। पर जब रोम में ईसाई धर्म राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, तो समय ने पलटा खाया और कुछ दिनों बाद ईसाई धर्मावलम्बी शासकों ने अन्य धर्म वालों को दबाना शुरू किया। मध्य युग तक आते-आते ईसाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म और यूरोप की राजनीति में गहरा सम्बन्ध हो गया और तत्कालीन सम्पूर्ण राजनीति धर्म के चंगुल में फंस गयी। अगली शताब्दियों में ईसाई धर्म का प्रभाव यूरोप की राजनीति पर इतना गहरा और व्यापक हो गया कि उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन करना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

चीन की सभ्यता

[ई० पू० ३२३ से सन् १००० ई० तक]

चीन का प्रारम्भिक राजनीतिक इतिहास

चीन के इतिहास का प्रारम्भ अति प्राचीन काल में ही हुआ। पूर्व-ऐतिहासिक युग के मानव के अवशेष चिह्न भी चीन में पाये गये हैं। पेकिंग मानव के जो अवशेष-चिह्न चीन में पाये गये हैं, वे अनुमानतः आदि-मानव के अवशेष हैं और उनकी तिथि लगभग ई० पू० ५० हजार वर्ष आँकी गयी है। वास्तव में चीन की दो प्रसिद्ध नदियों यांगत्सी तथा ह्वांगहो की घाटियाँ अति प्राचीन युग में मानव सभ्यता का क्रीड़ा-स्थल थीं।

चीन का पौराणिक इतिहास भी अनुश्रुतियों के अनुसार लगभग ईसा से २० लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है। चीनी कथाओं के अनुसार 'पानकू' उनका प्रथम सम्राट तथा जिसकी आयु १८ हजार वर्ष की कही जाती है। चीनी इतिहास का दूसरा पौराणिक राजा 'फुसी' था जिसने ई० पू० २८५२ से ई० पू० २७३८ तक शासन किया। उसी ने विवाह के नियम बनाये, चीन की चित्रात्मक लिपि का सूत्रपात किया और चीनी पंचाङ्ग और वाद्य-यंत्रों का आविष्कार किया। उसका पुत्र शेतनुङ्ग था जिसका शासनकाल ई० पू० २७३५ से ई० पू० २७०५ तक था। वह चीन में कृषि, व्यापार और चिकित्सा-विज्ञान का जन्म-दाता कहा जाता है। चीन का पीत सम्राट ह्वांगटी (ई० पू० २६९७—ई० पू० २५१८) था जिसके समय कुतुबनुमा और रेशम का आविष्कार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ।

ऐतिहासिक युग का प्रथम चीनी राजवंश सिया (Hsia) कहा जाता है जिसका प्रथम सम्राट यू था और इस वंश का शासनकाल ई० पू० २२०५ से ई० पू० १७६६ माना जाता था। चीनी भाषा में सिया (Hsia) का अर्थ 'सभ्यता' है। इस वंश में कुल १७ सम्राट हुए और उनका शासन काल ४३९ वर्षों तक था। इसके बाद ई० पू० १७६६ में शैंग वंश का प्रारम्भ हुआ जो ई० पू० ११२५ तक रहा और इस वंश में कुल २८ सम्राट हुए। इन सब राजाओं ने ६४१ वर्षों तक शासन किया। इस वंश के समय चीन में लिखने की कला का प्रारम्भ हुआ।

ई० पू० ११२५ में वू वांग नामक सम्राट ने चीन के एक नये राजवंश (चाऊ) की नींव डाली। इस वंश के कुल ३७ सम्राटों ने ८९७ वर्षों तक (ई० पू० ११३५ से ई० पू० २२५) राज्य किया। यह काल चीनी इतिहास का स्वर्णयुग कहलाता है। इसी समय चीन में एक सुव्यवस्थित केन्द्रीय शासन की स्थापना हुई और साम्राज्य में मंचूरिया, मंगोलिया तथा तिब्बत के अतिरिक्त वर्तमान चीन का समस्त भाग शामिल था। चाऊ वंश के शासनकाल में ही प्रसिद्ध सुधारक कन्फ्यूसियस और लाओत्से का आविर्भाव हुआ।

चिन वंश का शासन

शीह्वांग टी-'प्रथम सम्राट'—चाऊ वंश के शासन के उत्तरार्द्ध में चीन की राजनीतिक स्थिति बहुत अस्त-व्यस्त हो गयी थी। देश में सैकड़ों छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे यह काल चीन में राजनीतिक अराजकता का युग था। अन्त में ई० पू० २४९ में एक क्षेत्रीय राज्य चिन (Ch'in) के शासक चेन चाऊ वंश के अन्तिम सम्राट को अपदस्थ कर स्वयं सम्राट बन गया और चिन नामक एक नये राजवंश की स्थापना की। चीन का वर्तमान नाम सम्भवतः इस वंश की देन है। चेन ने अपनी निरन्तर विजयों द्वारा चीन की समस्त छोटी-बड़ी रिया-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सतों (हान्, चाऊ, वी, चू, थेन, ची आदि) को अति शीघ्र अपने अधीन किया और प्राय: समस्त चीन का सम्राट बना । वह भारतीय सम्राट अशोक का समकालीन था । उसने ई० पू० २२१ में शो ह्वांगटी (Shih Huang-Ti) का नाम धारण किया और अपने को,समस्त चीन का सम्राट घोषित किया । वह चीन का 'बिस्मार्क' कहा जाता है । उसके साम्राज्य में जपान के पड़ोसी क्षेत्रों से लेकर दक्षिण में अनाम तक के भाग शामिल थे । ही-ह्वांग-टी का अर्थ है 'प्रथम सम्राट' । वह सच-मुच ऐतिहासिक युग के चीन का प्रथम सम्राट था । उसने ई० पू० २१० तक राज्य किया ।

शी-ह्वांग-टी के सुधार—चीन के इतिहास में यह सर्वप्रथम एकछत्र राज्य था जिसे शी-ह्वांग टी ने एक अमर संविधान प्रदान किया ।[१] चीनी इतिहास में उसे भयानक शरीर वाला एवं भेड़िये तथा चीते का हृदय वाला कहा गया है परन्तु इन विशेषताओं के बावजूद भी वह जर्मनी के बिस्मार्क की भाँति एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जिसने अपनी लौह-नीति से चीन की महत्ता को सदैव के लिए प्रतिष्ठित किया ।[२] सामन्तवादी युग की अराजकता, अशान्ति और पारस्परिक ईर्ष्या का अन्त शी-ह्वांग-टी ने किया । इस काम में उसके प्रधान मंत्री ली शू

१. "For the first time in many centuries perhaps for the first time in history, China was under one rule."

—Fitzerald.

२. "A man with a prominent nose with large eyes, with the chest of a bird of prey, with the voice of a jeckal, with the heart of a tiger or a wolf...........he was a robust and obstinate soul, recognizing no God but himself and pledged like some Nietzrchean Bismarck, to unify his country by blood and iron.',

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(Li Ssu) ने उसकी सहायता की। जब सम्पूर्ण चीन अधिकृत हो गया तब चेंग एवं ली-शू की शक्तियाँ विजित प्रदेश को एक शासकीय एवं सांस्कृतिक समग्रता की ओर गठित करने, सीमाओं का गैर चीनी भूखण्डों तक विस्तार करने और सीमान्तों की रक्षा करने में अग्रसर हुईं।[१]

शी ह्वांग टी के शासन-सुधार के कार्य बहुत ही अद्भुत और रोचक थे। उनसे उसके मेधावी गुणों का दर्शन होता है। उसने जर्मनी के बिस्मार्क की तरह अपने बाहु-बल से सामन्तवादी सभी राज्यों का अन्त किया। ये सामन्त चाऊ वंश के शासनकाल में अपनी विचित्रता के साथ-साथ अराजकता के भी कारण थे। उसने अपनी उग्र नीति से सभी सामन्तों का दमन किया। पर इसने दमन से अधिक महत्वपूर्ण कार्य अपने नव-विजित साम्राज्य का पुनः संगठन करके किया। इसके लिए उसने एक संगठित, प्रशिक्षित एवं चुस्त नौकरशाही का संगठन किया। इस कार्य में उसकी सबसे महत्वपूर्ण योजना प्राचीन स्थानीय स्वतंत्रता को समाप्त करना और उसके स्थान पर केन्द्रीय सरकार की व्यापक मान्यता की प्रतिष्ठा स्थापित करनी थी। सारा साम्राज्य विभिन्न प्रशासकीय प्रदेशों और उप-प्रदेशों में विभाजित किया गया और प्रत्येक भाग में भिन्न-भिन्न कार्यों एवं अधिकारों से युक्त बहुसंख्यक राजकीय कर्मचारी और अधिकारी रखे गये। "Elaborate bureaucracy was

---

१. "When all China had been subdued the energies of Cheng (Shih-Huang Ti) and Li Ssu were directed toward consolidating the conquest into an administrative and cultural whole, toward extending the boundaries into non-Chinese territory and toward safeguarding the frontiers."

—Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

created with diversified functions and with carefully graded honorific Titles." राजधानी में प्रशासन के विभिन्न विभागों का संगठन हुआ और विभिन्न विभागों में बहुसंख्यक अफसर और कर्मचारी नियुक्त किये गये। उन विभागों और विभागीय अधिकारियों में मुख्य सैनिक मामलों के अध्यक्ष, प्रमुख प्रान्तीय अधिकारियों के सुपरिण्टेण्डेण्ट, बाणविद्या के प्रधान, राजप्रासादों के अधिकारियों के एक सुपरिण्टेण्डेण्ट, सामाजिक साधन-सामग्री के कमाण्डेण्ट, एक प्रधान विचारपति, चीन के आगे कन्धा डालने वाले बर्बरों के निरीक्षक, राजधानी की पुलिस के एक प्रधान, साम्राजिक कारखाने के प्रधान थे।[१] साम्राज्य को ४० प्रान्तों (chun) में और प्रत्येक प्रान्त को कई जिलों (hsien) में विभाजित किया गया। प्रत्येक जिला और प्रत्येक प्रान्त में अनेक पदाधिकारियों को नियुक्तियाँ हुईं।

साम्राज्य के प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी स्वयं सम्राट था। इसी शान-शौकत को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए चेंग (Cheng) ने शी ह्वांग टी का नाम धारण किया जिसका अर्थ होता 'प्रथम सम्राट'। इस परिवर्तन द्वारा उसने अपने राजपद को नवीन गौरव प्रदान करने का प्रयास किया।

शी ह्वांग टी ने अपनी शक्ति दृढ़तर करने के लिए सेना की शक्ति दृढ़ करने का प्रयास किया। उसने सैनिकों को मजबूत हथियार देने का प्रबन्ध किया और इसके लिए उसने बड़ी-बड़ी धातु-मूर्तियों और मन्दिरों के घंटों को गलवा दिया। प्राचीन युग में साम्राज्य-संगठन एवं रक्षा के

---

१. "A head of the military affairs, a superintendent of the chief provinicial officials, a chief of archery, a superintendent of the palace officials, a commandant of the imperial equipages, a Chief Justice, a supervisor of the barbarians who had submitted to the Ch'in, a chief of the police of the capital and a head of imperial works."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए सेना का अत्यधिक महत्व था। राज्य के प्रत्येक व्यक्ति को सैनिक सेवा के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था। सेना के उच्च अधिकारियों का विशेष सम्मान होता था। उसने अपने साम्राज्य के दूर-दूर भागों में रहने वाले धनी और प्रभावशाली सामन्तों को अपनी राजधानी Hsien yang के पास आकर आवास बनाने और रहने का आदेश दिया। उसने उन सामन्तों पर नजर रखने और अपनी स्थिति दृढ़ करने के उद्देश्य से ऐसा किया था। इससे सम्राट-पद की शान-शौकत में भी वृद्धि हुई होगी और ऐसे सामन्तों की उपस्थिति से राजधानी में भी नया जीवन और चहल-पहल आ गयी होगी। सम्राट ने राजधानी (Hsien yang) के मुख्य भाग से कुछ दूर Wei नदी के दक्षिणी किनारे पर अपने और अपने परिवार के लिए एक विशाल राजप्रासाद निर्मित कराया जिसमें हजारों व्यक्तियों से बेगार लिया गया।

साम्राज्य की एकता और समृद्धि बढ़ाने के लिए शी ह्वांग टी ने पूरे साम्राज्य में एक समान बाँट-तौल की व्यवस्था की पर अधिक क्रान्तिकारी सुधार भूमि-व्यवस्था के सम्बन्ध में किये गये। उसने सामन्तों से भूमि छीन-छीन कर किसानों को वितरित की और भूमि-व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व की पद्धति सर्वत्र चलायी। सम्राट इन सुधारों-द्वारा कृषि की उन्नति करना चाहता था, पर कुछ किसानों की निष्क्रियता से वह अपने उद्देश्य में पूरा सफल नहीं हो सका।

साम्राज्य को अधिक व्यवस्थित करने के लिए शी ह्वांग टी ने देश में सड़कों का एक जाल-सा बिछा दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार फिटजेराल्ड ने लिखा है कि "सड़कों का यह सुविशाल जाल देश की एकता की रक्षा के लिए एक कवच के समान था।" विभिन्न नदियों से नहरें निकाल कर देश में सिंचाई की सुविधा के साथ-साथ उसने यातायात की समस्या को भी सुलझाने का प्रयास किया। कहा जाता है कि उसी के शासनकाल में Li ping नामक एक अधिकारी की देख-रेख में मीन (Min) नदी के जल को एक पहाड़ी मार्ग से जो उसी समय निर्मित हुआ था, बाहर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकाल कर विभिन्न नवनिर्मित नहरों द्वारा यत्र-तत्र सिंचाई के लिए पहुँचाने की व्यवस्था की गयी। उसी समय सम्राट ने अपनी शक्ति बढ़ाने और साम्राज्य की सुरक्षा के लिए राजधानी (Hsien yang) को अनेक सड़कों द्वारा साम्राज्य के दूरस्थ भागों से मिला दिया और दूर-दूर के सामन्तों के व्यक्तिगत क़िलों एवं गढ़ों को गिरा कर उनकी शक्ति कम की।

"चीन की उत्तरी सीमा बर्बर जातियों के आक्रमणों के कारण सदैव अरक्षित रहती थी। अतः शी ने उत्तरी सीमा पर एक महान दीवार का निर्माण कराया जो संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। यह लगभग १६०० मील लम्बी और २० फीट चौड़ी है। वोल्तेयर ने लिखा है कि इस दीवार के सामने मिस्र के पिरेमिड बिलकुल बच्चों की कृतियाँ और निरर्थक ढेर मालूम होते हैं। इस दीवार के निर्माण में दस वर्ष लगे थे और असंख्य लोगों के परिश्रम से यह निर्मित हुई थी।" निश्चय ही यद्यपि यह चीन के एक वंश का विनाश प्रस्तुत करती है परन्तु परोक्ष रूप से यह चीन को सदैव के लिए बाह्य आक्रमणों से मुक्ति का प्रतीक है।[१] इस दीवार ने चीन को हूणों के आक्रमण से बचा लिया और कुछ विद्वानों के कथनानुसार इसी दीवार के कारण रोम का पतन हुआ क्योंकि हूण चीन में प्रवेश पाने से निराश होकर पश्चिमी एशिया और यूरोप की ओर टूट पड़े और तत्कालीन रोम के विशाल साम्राज्य की नींव हिला दी। इसीलिए कहा जाता है कि "Rome fell because China built a wall." चीन के इतिहास में यह दीवार शी की अमर कृति है और उसे महान बनाने में सहायक हुई है। शी ने हूणों के विरुद्ध अपनी सैन्य शक्ति का सफल प्रयोग किया था और उन्हें परास्त किया था। पर इस दीवार के

१ "The Pyramids of Egypt are only puerile and useless masses. It was the ruin of one generation but the salvation of many."

—Voltaire.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण से उसने चीन की रक्षा की व्यवस्था आगामी हजार वर्षों तक कर दी।

शी ह्वाँग टी ने साम्राज्य की दृढ़ता के निमित्त यह आवश्यक समझा कि उसकी प्रजा के हृदय में सम्राट के प्रति अपूर्व एवं असीम भक्ति एवं श्रद्धा हो जाय। वह समझता था कि कुछ प्राचीन स्मृतियाँ इस उद्देश्य में बाधक हैं, अतः उसने चीन के सुधारक, कनफूशियस की अनेक पुस्तकों को जलवा दिया और उस क्षेत्र के कुछ विद्वानों को मृत्यु-दण्ड दिया और और कुछ को निर्वासित करा दिया। कहा जाता है कि उसने अपने शासनकाल में लगभग ५०० विद्वानों को जलवा दिया। इतना होने पर भी कनफ्यूशियस साहित्य को नष्ट करने में शी को सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि उन दिनों बहुत व्यक्तियों ने उस साहित्य को कण्ठाग्र कर रखा था और कुछ लोगों ने अपने प्राणों की बाजी लगा कर बहुत-सी पुस्तकों की रक्षा की। शी का यह कृत्य कटु आलोचना का विषय बन गया। यह ठीक है कि शी नये चीन का निर्माण करना चाहता था और वह पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का घोर विरोधी था, पर नवीनता के निर्माण के जोश ने प्रमाद का रूप धारण कर लिया और "सम्राट ने चीन के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों, काव्य ग्रन्थों तथा धार्मिक ग्रन्थों को विनष्ट करने का आदेश दिया क्योंकि वह समझता था कि उन ग्रन्थों से प्राचीनता के प्रति प्रेम और सम्राट की शक्ति एवं अधिकार के विरुद्ध पाठकों से हृदय में भावना जागृत होगी।"

साम्राज्य की एकता को दृढ़ करने के लिए शी के मन्त्री Li Ssu ने एक प्रकार की नवीन लिपि का प्रचार किया जो "Lesser Seal" के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का कहना है कि उसी समय एक नवीन लेखनी (brush pen) का भी आविष्कार हुआ और बाँस के छिलके के स्थान पर रेशम का व्यवहार लिखने के लिए प्रचलित हुआ।

साम्राज्य की एकता को साकार करने के लिए शी ने अपने राज्य में दूर-दूर तक भ्रमण किया। इस व्यवस्था के अनुसार शी अपने गवर्नरों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और राजकीय कर्मचारियों पर कड़ी नजर भी रखना चाहता था और देश को देखना भी चाहता था। इस प्रकार के भ्रमणों से राज्य में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने में भी सहायता मिलती थी। पर इस नव-निर्माण में सम्राट को अत्यधिक धन व्यय करना पड़ा था और इसीलिए उसने अपने शासन-काल में नये-नये और अधिक कर लगाये। इससे भी शी जनता में प्रिय न हो सका। शीह-ह्वांग-टी का शक्तिशाली सामन्तों का दमन एवं मनुष्यों की स्वतंत्रता का अपहरण करना उसके एवं उसके शासन के लिए घातक सिद्ध हुआ। अन्तिम वर्षों में उस पर हत्या के अनेक षड्यंत्र रचे गये। सिकन्दर महान की भाँति उसने भी अपने वंश को ईश्वर से सम्बन्धित करने के लिए स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित किया परन्तु यहाँ भी वह अपने पूर्वज की भाँति असफल रहा।[१] उसने यह घोषणा की कि उसके उत्तराधिकारी हजार वर्षों तक अपने को प्रथम सम्राट 'First Emperor' के उपाधि से विभूषित करें परन्तु इतिहास उसके प्रति इतना निर्दयी सिद्ध हुआ कि स्वयं उसके पुत्र के साथ ही यह घोषणा भी सदैव के लिए कब्रस्तान में गाड़ दी गई और फलतः उसकी महत्वाकांचा अधूरी रही।

चीन का विस्तार—शी ह्वांग टी ने शासन-सुधार के साथ-साथ चीन की सीमा का बहुत विस्तार किया। उसका प्रभाव हिन्द-चीन (Indo-China) तक हो गया और वहाँ के अर्द्धसभ्य निवासियों को सभ्य बनाने का क्रम चलता रहा। कहा जाता है कि शी ने बेगार लोगों द्वारा क्वैंगटुंग (Kwang tung) को आबाद कराया। इसी प्रकार क्वांगसी (Kwangsi) और टोकिङ्ग (Tongking) में भी शासन-सुधार

---

१. "Like Alexander the great, he sought to strengthen his dynasty by spreeding the nation that he was god, but as the comparison limped, he, like Alexander, failed."

—W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्धी कानून लागू किये गये। मध्य चीन के हूनान (Hunan), क्वीचाऊ (Kweichow) और चेच्वान (Szechwan) आदि भाग भी आबाद तथा सुशासित किये गये। उत्तर पश्चिम में शिउङ्ग नू (Hsiung Nu) नामक एक जाति को परास्त कर चीन की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी। सम्भवतः वह हूण जाति की ही एक प्रमुख शाखा थी। उत्तर में कोरिया को भी शी ने अपने प्रभाव-क्षेत्र में कर लिया। इस प्रकार शी के शासन काल में वर्तमान चीन की क्षेत्रीय रूपरेखा तैयार हुई।

शी की मृत्यु—ई० पू० २१० में शी अपने राज्य को एक भ्रमण-यात्रा पर था और उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। शी की मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिए षड्यंत्र शुरू हो गये और प्रधान मंत्री ली शू को भी मृत्यु-दण्ड को सजा भोगनी पड़ी। जनता ने स्थान-स्थान पर विद्रोह किया, सेना अधिकारियों का अपहरण हुआ और शी ह्वांग टी जैसे शक्तिशाली एवं प्रतापी सम्राट की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद ही ई० पू० २०६ में चीन वंश का अन्त हो गया। लातूरे ने ठीक ही लिखा है कि विजेता द्वारा प्रवर्तित परिवर्तन इतने क्रान्तिकारी थे, उसके कानून इतने कठोर थे तथा उसके सार्वजनिक कार्यों का बोझा इतना भारी था कि एक बार उसके शक्तिमान हाथ हटे नहीं कि उथल-पुथल अनिवार्य थी।[१]

शी अपनी क्रान्तिकारी योजनाओं के कारण प्रशंसा और आलोचना दोनों का विषय बना। उसने सामन्तवादी चीन के स्थान पर एक केन्द्रित शासन वाले विस्तृत चीन का निर्माण किया। चीन को एकता देने के साथ-साथ उसने सुरक्षा का साधन भी दिया। उसने सामन्तवादी स्थान पर चीन में समान न्याय-विधान, नाप-तौल के समान पैमाने और समान

१. "The changes introduced by the conqueror had been so drastic, his laws so severe and the burden of his public works so heavy, that once his strong hand was removed an upheaval was almost inevitable.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमि-व्यवस्था की प्रथा चलाई। चीन का नाम भी उसी के चिन वंश से हुआ और यह भी सच है कि वर्तमान चीन का नकशा उसी के राज्य की सीमा पर आधारित है। इसीलिए फिटजेराल्ड ने लिखा है कि चीन में दो महान् क्रान्तियाँ हुई—प्रथम २२१ ई० पू० अर्थात् शी ह्वांग टी के शासन में जिसमें सामन्तवादी प्रथा का अन्त हुआ और द्वितीय १९११ ई० में जब नये युग के चीन के निर्माण कार्य के लिए क्रान्ति प्रारम्भ हुई।

हान (Han) वंश

ल्यू पैंग—चिन वंश के बाद देश की अराजकता और विद्रोह का लाभ उठाकर ल्यू पैंग (Liu Pang) नामक एक शक्तिशाली पर उदार व्यक्ति ने ई० पू० २०६ में एक नये वंश की नींव डाली जो चीन के इतिहास में हान वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस नये वंश के संस्थापक ल्यू पैंग का पूर्व जीवन बहुत ही साहस-पूर्ण है। ल्यू पैंग का दूसरा नाम Kay Tsu भी था। वह एक साहसी, योग्य एवं विजयी शासक था। उसकी राजधानी Wei नदी के विस्तृत मैदान में चैंगम (Ch'angam) नामक नगर में थी। ल्यू पैंग समझता था कि शी ह्वांग-टी के समय का लौह-शासन अब जन-प्रिय नहीं हो सकता है, अतः उसने उदार नीति अपनायी और शासन के दबाव को ढीला करना चाहा। उसने कनफ़्यूशियस धर्म एवं परिपाटियों को अपनाया। उसने व्यवहार में इस कनफ्यूशियन सिद्धान्त को स्वीकृति प्रदान की कि सरकार को सरकार के लाभ के लिए होना चाहिए; इसे न केवल उदाहरण द्वारा बल्कि बलपूर्वक भी किया जाना चाहिए। उसके निकट कुछ कनफ्यूशियन विद्वान थे। इनमें उसका एक मंत्री लू शी भी था।[१]

---

१. "He recognised in practice the Confucian theory that government must be for the benefit of the government and as much by example as by force. He had some Confucian scholars around him, notably one of his ministers, Lu Chia."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ल्यू पैंग ने उन्हीं विद्वानों के परामर्श से दरबार के लिए उचित नियम निश्चित किये और उन नियमों के अनुसार यह प्रयास किया गया कि राज-दरबार में ठाट-बाट और साज-सज्जा के साथ-साथ उदारता को भी स्थान मिले। ल्यू पैंग ने प्रत्येक प्रान्त में Wang पदवोधिकारी गवर्नर नियुक्त किया और प्रत्येक Wang को परामर्श देने के लिए सम्राट-द्वारा नियुक्त एक परामर्शदात्री समिति बनाई गयी। लातूरे ने उसके प्रशासन के विषय में लिखा है कि उसने साम्राज्य को उपराज्यों या सामन्ती क्षेत्रों में विभाजित कर दिया और उनका नियन्त्रण अपने कटुम्ब के सदस्यों तथा ऐसे सैनिक कमाण्डरों के हाथ में दे दिया जिन्होंने उसकी विशेष सेवा की थी। इनमें जो प्रधान था उसको परम्परागत 'वैंग' की उपाधि प्राप्त थी। इन सुरक्षितताओं के रहते हुए भी, साम्राज्य के विघटन के तत्व बार-बार प्रखर हो उठते थे और किञ्चित् बदले रूप में सामन्तवाद ने एक बार पुनः अपना सिर उठाया।[१]

ल्यू पैंग का स्वर्गवास ई० पू० १९५ में हुआ। उसके बाद लगभग १५ वर्षों तक उसकी स्त्री के संरक्षण में राजकाज चलता रहा। कुछ दिनों बाद इस वंश का सबसे योग्य सम्राट वू ती गद्दी पर बैठा।

वू ती (Wu Ti)—वू ती ई० पू० १४० में गद्दी पर बैठा। उसका

---

१. "He divided the realm into prinicipalities, placing over them members of his family and military commanders who had done him marked service The chief of these had the time honoured title of Wang........Inspite of safeguards for it repeatedly threatened the renewed disintegration of the Empire, feudalism, in a modified form once more raised its head."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन ई० पू० ८६ तक चलता रहा। १४० वर्ष ई० पू० १६ वर्ष की आयु में वू ती गद्दी पर बैठा और उसने ८७ वर्ष ई० पू० यानी पचास भी अधिक वर्षों तक शासन किया। इस वंश में उसका राज्यकाल सबसे लम्बा था। वह चीन के इतिहास के सबसे प्रसिद्ध नरेशों ने से एक हुआ है। उसे एक ऐसा राज्य विरासत में मिला था जो चिन के पूर्व और बाद को शिथिलता से उठा ही था और जो न तो समृद्ध था, न प्रसार एवं नवीन कार्रवाइयों के लिए तैयार ही था। यह अर्द्धशती विस्तृत वैदेशिक विजयों तथा संघटन एवं संस्कृति-सम्बन्धी आन्तरिक विकास दोनों के लिए विख्यात है।[१]

वू ती के शासन-काल में चीन की सीमा का अति विस्तार हुआ। उसने अपने साम्राज्य की सीमाएँ कोरिया से लेकर हिन्द-चीन तक और समुद्री तट से लेकर मध्य एशिया तक विस्तृत की। उसने उत्तर-पश्चिम की ओर मध्य एशिया की एक खूँखार जाति को (Hsiung Nu), जो हूणों की एक शाखा थी, परास्त किया। इस अभियान में वू ती ने अपनी सैनिक शक्ति, उपनिवेशवाद और कूटनीति से काम किया और इस प्रकार चीन की सीमा कांसू (Kansu) तक फैल गयी। उसी ने चीन की दीवार

---

१. "Coming to the throne in B. C. 140 at the age of sixteen, Wu Ti ruled the Empire until B. C. 87 or over fifty years. His was by far the longest reign of the dynasty, and one of the most famous in the history of China. He inherited a realm which recovered from the exhaustion that preceded and followed the Chin and which was not prosperous aad ready for expansion and fresh activity. The half-centu'y is noted both for extensive foreign conq-uests and for marked internal development in organization and culture."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पश्चिम की ओर और बढ़ाया। मध्य एशिया की इस जाति को परास्त करने में वू ती को अपने एक योग्य राजदूत Chang Chien से बहुत मदद मिली थी। इसी राजदूत के परिश्रम एवं बुद्धि से चीन का सम्बन्ध उन दिनों कैस्पियन सागर तक के प्रदेशों से स्थापित हुआ। कहा जाता है कि यही व्यक्ति चीन में सर्वप्रथम पश्चिमी देशों से अंगूर और एक प्रकार की उपयोगी घास (alfalfa) लाने में समर्थ हुआ था। उत्तर में कोरिया और मंचूरिया में चीन का अधिकार हो गया और उन प्रदेशों में स्थान-स्थान पर चीनी लोग बसाये गये। सम्भवतः वहीं से चीनी सभ्यता जपान तक पहुँच सकी। दक्षिण में अन्नाम तो वू ती के राज्य में था ही, पर उसके बाद हुआई (Huai) नदी पर चीनी लोग आबाद होने लगे। फूकिन (Fukien) प्रान्त पर भी सम्राट का अधिकार हुआ और वहाँ चीनियों की आबादी बढ़ने लगी। अधिकांश व्यक्ति यांग्स्टी नदी के मैदानों से आकर यहाँ बसे थे। धीरे-धीरे चीन का प्रसार वर्तमान कैण्टन (Canton) नगर तक हो गया और तत्पश्चात् क्वांग्सी, क्वैंगटुंग और हिन्द-चीन तक वू ती का अधिकार हो गया। तत्पश्चात् यून्नान (Yunnan) को अपने अधिकार में कर चीनी सम्राट भारत और ब्रह्मा से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करना चाहता था। इस प्रकार लगभग एक सदी पूर्व साम्राज्य-विस्तार का जो कार्य ह्वी ह्वांग टी ने प्रारम्भ किया था, उसे वू ती ने पूरा किया। अब चीन कोरिया से लेकर अन्नाम तक और चीनी तुर्कीस्तान से जपान के समुद्र तक विस्तृत हो गया। वू ती की यह सफलता चीन के इतिहास में अपूर्व थी। इस विजय का रहस्य वू ती के द्वारा अपनी सेना के संगठन और हथियारों के प्रयोग की खूबी में थी। उसने द्रुतगामी घुड़सवारों की सेना और चुस्त पैदल सैनिकों का संगठन किया था।

लातूरे (Latourette) ने लिखा है कि रोमन प्रजातन्त्र उस समय भूमध्य सागरीय जगत् में जिस साम्राज्य का निर्माण कर रहा था हान साम्राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकार में उससे अधिक छोटा नहीं था।[१] वूती ने अपने साम्राज्य को तेरह प्रान्तों में विभाजित किया था और प्रत्येक प्रान्त का शासन करने के लिए एक-एक गवर्नर नियुक्त किया। गवर्नर सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते थे। वू ती सामन्तवादी प्रथा का विरोधी था और उसने यह प्रयास किया कि प्रान्तीय शासकों (wangs) की शक्ति बढ़ने न पाये। सामन्तों की शक्ति क्षीण करने के लिए सम्राट ने यह कानून बनाया कि सामन्त की सम्पत्ति और भूमि उसकी मृत्यु के बाद उसके सब पुत्रों में विभक्त कर दी जायगी और पहले को तरह अब केवल बड़ा पुत्र ही उसका एकमात्र उत्तराधिकारी न हो सकेगा। अब यह व्यवस्था हुई कि किसी सरकारी पद पर जन्म और वंश के कारण ही किसी की नियुक्ति नहीं होगी, बल्कि सरकारी पदों पर नियुक्ति का आधार योग्यता ही होगा। इस दृष्टि से सरकारो नियुक्तियों के लिए प्रतियोगिता-परीक्षा को प्रथा प्रारम्भ की गयी। वू ती ने इस प्रयोग द्वारा प्रशासन की कार्यक्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ सम्राट-पद की मर्यादा और शक्ति को भी गौरव प्रदान करना चाहा। इस दिशा में उसने एक ऐसी प्रणाली का विकास किया जिसके तत्त्व होनहार मनुष्यों का अन्वेषण एवं चुनाव करने के लिए पहिले से ही वर्तमान थे। कम से कम एक अवसर पर उसने उस आदमी को पुरस्कार प्रदान किया जो शासन-कला के सम्बन्ध में सर्वोत्तम सलाह दे। उसने स्थानीय अधिकारियों को आदेश दिया कि उनके क्षेत्र में जो श्रेष्ठ एवं पुण्यात्मा जन हों उनकी सिफारिश करें। उसने अपनी प्रज्ञा के लिए विख्यात लोगों से अपने को घिरा रखा। पदों के लिए योग्य आदमियों की प्रतियोगिता परीक्षाओं का आरम्भ इसी के राज्यकाल में हुआ। उसी ने राजधानी में भावी अधिकारियों के प्रशि-

[१] "The Han Empire was now not far from the size of that which the Roman Republic had recently been Building in the Mediterranean world."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षण के लिए एक महाविद्यालय खोला और प्रान्तों एवं जिलों में भी स्कूलों के निर्माण-कार्य में उत्साह प्रदान किया।[१] इस प्रकार योग्य और कार्य-कुशल अधिकारियों की नियुक्ति-प्रणाली से विस्तृत चीनी साम्राज्य का संगठन और शासन सम्भव हो सका।

धर्म के क्षेत्र के सम्राट का झुकाव कनफ्यूशियस की ओर अधिक था। उसने कनफ्यूशियस के एक वंशज को शिक्षा-संचालक नियुक्त किया और सम्राट के संकेत से प्राचीन साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया गया। प्राचीन साहित्य के विशेषज्ञों में से कुछ प्रमुख व्यक्ति राजकीय अधिकारी नियुक्त हुए। इस प्रकार कनफ्यूशियस साहित्य के प्रचार से राज-दरबार के नियमों में कुछ जटिलता और बनावट भी आने लगी और नवीन शासकीय वर्गों को जीवन के संस्कारों की ओर तथा अतीत की संस्कृति की आंशिक निरन्तरता कायम रखने के लिए उत्साहित किया गया।[२]

---

[१] "To this end, he developed a system whose rudiment seem to have existed before his time for discovering and choosing men of promise. On atleast one occasion he awarded a prize to him who gave the best advice on the art of government. He commanded local officials to recommend those in the r juridictions who were the most virtuous and surrounded himself with men renowned for their wisdom. The beginnings of the competitive examination for the choice of the worthy for office seem to date from his reign.........Wu Ti instituted a higher school at the capital for the training of future officials, and schools were encouraged in the local provinces and districts."

[२] "The new ruling classes were hereby encouraged to a certain refinement of life and the maintenace of a partial continuity with the culture of the past."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वू ती का शासन-काल आर्थिक एव व्यापारिक विकास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। इस शासन में व्यापार में अच्छी वृद्धि हुई क्योंकि साम्राज्य में शान्ति थी, केन्द्रीय शासन-व्यवस्था थी, सामन्तों का विशेषाधिकार कम था और प्रशासकीय व्यवस्था चुस्त थी। दक्षिण और पश्चिम की ओर साम्राज्य का विस्तार होने से भी व्यापार की वृद्धि में सुविधा हुई। वू ती के प्रसिद्ध दूत चैंग चीन (Chang Chien) के प्रयास से वैदेशिक व्यापार को भी उन्नति हुई। सम्राट ने कुछ प्राकृतिक चीज़ों एवं साधनों का राष्ट्रीयकरण किया और उन चीजों में नमक और लोहा तथा कुछ औषधियाँ प्रमुख थीं। इसके पूर्व ऐसी चीजों पर सामन्तों का अधिकार होता था और वे इनसे बहुत धन अर्जित करते थे। अब वह आय राज्य के कोष में एकत्रित होने लगी। उसने यातायात तथा विनिमय की भी एक राष्ट्रीय प्रणाली का सूत्रपात किया और देश के व्यापार को अच्छी तरह नियंत्रित करने का सफल प्रयास किया। इससे बाजार की वस्तुओं की कीमत में स्थिरता आ गयी और मूल्य में अति शीघ्र परिवर्तन होना रुका। सामान और माल एकत्रित कर सरकारी गोदामों में रखा जाता और कीमत अधिक होने पर उन्हें बेचने का प्रबन्ध होता था। इस प्रथा से सरकार को बहुत पैसे मिलते थे। राज्य में समान कर-व्यवस्था को लागू करने की कोशिश की गयी और सार्वजनिक कार्यों को बढ़ाया गया ताकि अधिक लोगों को काम मिल सके। सिक्के नये ढंग से ढाले गये और चाँदी तथा टीन के नये सिक्कों से व्यापार को सुकर बनाने का प्रयास किया गया। उत्तर में वेई (wei) और दक्षिण में हान (Han) नदियों पर नये-नये पुल और नयी-नयी नहरों का निर्माण हुआ जिसका उद्देश्य यातायात और सिंचाई की सुविधा बढ़ाना था। संचार-साधनों को सुलभ बनाने, आर्थिक समृद्धि तथा राजनीतिक ऐक्य की वृद्धि करने के उद्देश्य से दक्षिण-पश्चिम में एक बड़ी सड़क का निर्माण किया गया। उत्तर में जब एक भयानक दुष्काल पड़ा तो हज़ारों की संख्या में पीड़ित लोगों को दूसरे क्षेत्रों में पहुँचाया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरु क्षेत्रों में नहरें बनायी गयीं; पीतनद की एक भयानक बाढ़ नियन्त्रित की गयी तथा कृषि के लिए विस्तृत क्षेत्रों का उद्धार किया गया।[१]

वू ती को साम्राज्य-विस्तार के लिए अनेक विकट युद्ध करने पड़े थे अतः उसके राज्य का व्यय अधिक हो गया। इस प्रकार के आर्थिक संकट के निवारणार्थ सम्राट को अधिक कर उगाहने पड़े। आयात और निर्यात सम्बन्धी नये टैक्स लगे। आय की वृद्धि के लिए विशिष्ट नवीन उपायों का सहारा लिया गया और सेना-सम्बन्धी कुछ पदवियाँ राज्य की ओर से बेची गयीं। अपराधों के लिए अर्थ-दण्ड की परिपाटी अपनायी गयो। मद्य पर विशेष कर लगाया गया, सिक्कों का अवमूल्यन किया गया। सिक्कों के ढालने के कार्य पर राजकीय एकाधिकार हो गया। जो व्यक्ति सार्वजनिक कार्य के लिए शारोरिक परिश्रम करने को तैयार थे, उन्हें करों से मुक्त कर दिया जाता था।

सम्राट वू ती विद्यानुरागी था। उसके शासनकाल में इतिहास का प्रसिद्ध ग्रन्थ (Shih chi or Historical Records) लिखा गया जिसका लेखक Ssu-ma Chien था। इस प्रसिद्ध लेखक का जन्म ई० पू० १४५ में हुआ। शुमा चिन का प्राचीन साहित्य पर अच्छा अधिकार था और इसीलिए उसके इतिहास में प्राचीन सामग्रो का अच्छा उपयोग हुआ। उसने चीन का भ्रमण किया। उसकी ऐतिहासिक पुस्तक के विषय में लातूरे ने लिखा है कि यह अपनी पूर्ववर्ती कृतियों तथा दस्तावेजों, जिन्हें

---

[१]......for the purpose of facilitating communication and promoting economic prosperity as well as political union, a great road was constructed to the South and the South-west. During a devastiatng famine in the North, scores of thousands of the sufferers were moved into other territory. Great irrigation works were constructed in arid regions a dangerous flood of the Yellow River was curbed and large territories were reclaimrd for cultivation."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किञ्चित् परिवर्त्तनों के साथ उसने अपने में शामिल कर लिया है, के ऊपर मुख्यतः आधारित है और आरम्भ युग से लेकर शु-मा-चिन के अपने समय तक चीन का इतिहास इसमें वर्णित है। इसमें न केवल राजनीतिक घटनाओं की कथाएँ हैं बल्कि प्रमुख व्यक्तियों के जीवन चरित्र भी हैं। इनके अलावा हान के स्पर्श से प्रभावित विदेशियों के कतिपय प्रमुख सामन्ती राज्यों के विवरण, काल-सारणियाँ तथा संस्कृति को कतिपय अवस्थाओं जैसे परम्पराएँ, संगीत, दैवीकरण, पंचांग तथा अर्थविद्या भी हैं। चीन के अतीत का उससे कहीं विशद तथा विश्वसनीय विवरण जितना किसी भी जाति के पास मिल सकता है—फिर इतने लम्बे काल का[१]। वूती के विद्यानुराग का प्रमाण यह भी था कि "उसके पुस्तकालय में प्राचीन शास्त्रों की ३१२३ पुस्तकें, दर्शन की २००५ पुस्तकें, कविता की १३१८ पुस्तकें, गणित की २५२६ पुस्तकें, चिकित्साशास्त्र की ८६८ पुस्तकें, और युद्ध विद्या से सम्बन्धित ७९० पुस्तकें थीं।" विलड्यूरेण्ट के

---

[१]"Based largely upon earlier works and documents which it often incorporates with but slight changes, it covers the history of China from the beginning to Ssu-ma Chien's own day, included not only the narrative of Political events but biographies of prominent men, accounts of some of the chief feudal states of the foreign peoples touched by the Han, chronological tables, and treatises on such phases of culture as the rites, music, divination, the calender and economics.........an authotitative record of China's past much more extensive and reliable than that possessed—by any other people over so long a period."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार चीन की ऐसी उन्नति इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी।[१]

साम्राज्य की दृढ़ता के लिए वूती ने अंशतः धर्म के सुधार का काम भी किया। उसने सम्राट की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए दो अति जटिल एवं शानदाद राजकीय यज्ञों का विधान किया। एक यज्ञ (feng) द्वारा सम्राट एक विशिष्ट पर्वत (Tai Shan) की चोटी से ईश्वर की सन्तुष्टि के लिए प्रार्थना करता था और दूसरे यज्ञ (shan) में पृथ्वी माता के प्रति प्रार्थना का विधान था। इन दोनों यज्ञों की विधियों द्वारा सम्राट अपने लिए आशीष प्राप्त करने एवं दीर्घायु होने की प्रार्थना करता था। सम्भवतः इन यज्ञों द्वारा सम्राट अपनी प्रजा पर यह विश्वास जमाना चाहता था कि उसका सम्पर्क देवताओं से है और वह स्वयं देवता का ही उत्तराधिकारी है। वू ती ने यह विश्वास प्रचारित किया था कि स्वर्ग में देवताओं के राज्य में क्रम से पाँच अधिकारी हैं और उन सब का एकराट् सर्वोच्च ईश्वर (Jai I or the Great One) है। सम्भवतः उसी प्रकार इस पृथ्वी पर वह अपना स्थान सर्वोच्च मानता था और यही भावना अपनी प्रजा में दृढ़ करना चाहता था। पर इस प्रयास में उसके राज्य में विविध प्रकार के अन्धविश्वासों को भी बल मिला और उन दिनों विकृत ताओवाद को संरक्षण मिला।

सम्राट वू ती के बाद लगभग १०० वर्षों तक इस वंश में कोई उल्लेखनीय राजा नहीं हुआ जो सम्राज्य का शासन दृढ़ रख सके और एक सूत्र में बाँध कर संगठित रखने में समर्थ हो सके। अतः वू ती की आँख बन्द होते ही साम्राज़्य में विद्रोह होने लगे और दूरस्थ कुछ प्रदेश स्वतंत्र होने की चेष्टा करने लगे। इस अस्थिर स्थिति में वैंग (Wang) कुल के एक साहसी युवक ने राज्य अपने अधिकार में कर लिया और इस प्रकार हान वंश का शासन कुछ दिनों के लिए समाप्त हो गया।

---

१. China had never prospered so before."

W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैंग मैंग (Wang Mang)
(सन् ८—२३ ई०)

वैंग मैंग ने सन् ८ ई० में अपने को सम्राट घोषित किया। उसने Hsin Huang Ti की उपाधि धारण की जिसका अर्थ है "नवीन सम्राट"। कुछ कनफ्यूशियस विद्वानों के परामर्श से वैंग मैंग ने अनेक नवीन सुधारों के प्रयोग किये। उसने अपने राजवंश का नाम शिन (Hsin) घोषित किया।

वैंग मैंग ने अपने १४ वर्ष के शासन-काल में अनेक क्रान्तिकारी सुधार किये। प्रथम वर्ष में ही उसने साम्राज्य में खेतों का पुनः संगठन करते हुए सारी भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया और दास-प्रथा समाप्त कर दी। जमीन की खरीद-बिक्री बन्द कर दी गयी और सामन्तों से छीनी हुई भूमि किसानों में वितरित कर दी गयी। उसने नमक, लोहा और मुद्रा पर राज्य का एकाधिकार जारी रखा और खान तथा शराब पर भी राज्य का अधिकार कर लिया। कई प्रकार के छोटे-बड़े सिक्के चालू किये और बाजार-भाव पर नियंत्रण रखा गया ताकि किसानों का अहित न हो। उसने राजकीय ऋण की प्रथा चलायी और यज्ञ तथा मृतक संस्कार के लिए ली जानेवाली ऋण की रकम को सूद से मुक्त कर दिया गया।

वैंग मैंग के समय में प्राचीन साहित्य के अध्ययन पर अधिक जोर दिया गया। इसी समय लीयू शीन (Liu Hsin) नामक एक प्रसिद्ध विद्वान हुआ जिसने प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन किया और प्राचीन ग्रन्थों का एक विवरण दिया। अपने चुने कार्य के विषय में अपनी लगन तथा स्वयंनिर्मित प्राचीन कृतियों की सूची के कारण उसे कभी-कभी चीन का प्रथम ग्रन्थ-सूचीकार कहा गया है। समस्त परवर्त्ती चीनी विद्वत्ता उसके प्रति असीम रूप से ऋणी है। वैंग मैंग ने कनफ्यूशियस-साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और अनेक स्कूल स्थापित किये गये। सम्राट् ने कनफ्यूशियन मन्दिरों की मरम्मत करायी और उन्हें विविध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार से सम्मानित किया। इसीलिए उसे पुरातन परिपाटी के विद्वानों का समर्थन भी प्राप्त हुआ।[१] विल ड्यूरेन्ट के विचार से यद्यपि वह एक धनी व्यक्ति था परन्तु स्वच्छन्द जीवन का अनुयायी नहीं था। यद्यपि वह आर्थिक एवं राजनैतिक कठिनाइयों में व्यस्त था परन्तु फिर भी स्वयं साहित्यानुरागी एवं लेखक था।[२]

वैंग मैंग का विरोध इन सुधारों के कारण धनी वर्ग ने किया। इस विरोध के कारण उसे अपने कतिपय नियम वापस लेने पड़े। चूंकि चीन में तत्कालीन परिस्थिति और प्राचीन रीति-रिवाजों में सामंजस्य नहीं स्थापित हो सका, अतः देश में विद्रोह की स्थिति पैदा हो गयी और सन् २३ ई० में राजधानी (Ch'angan) में हान वंश के एक व्यक्ति (Lius) ने सम्राट् की हत्या कर दी। इस प्रकार वैंग मैंग की मृत्यु के बाद चीन में पुनः हान वंश का शासन स्थापित हो गया जो इतिहास में उत्तर हान वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उत्तर (Easter or Later Han) हान वंश
(सन् २३—२२० ई०)

हान वंश के एक राजकुमार ने वैंग मैंग को मार कर वर्तमान होन्ना

---

१ "Because of his zeal in his chosen task and a famous catalogue of ancient work prepared by him, he is sometimes denominated China's first bibliographer. All later Chinese scholarship owes him an incalculable debt."

२. "Though rich, he lived temperately, even frugally and scattered his income among his friends and poor. Absorbed in the vital strgugle to reorganize the economic and political life of his country, he found time nevertheless not only to patronize literature and scholarship but to become an accomplished scholar himself." —W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्त के लोयांग (Loyang) को राजधानी बनाया और एक नये वंश की स्थापना की जो उत्तर हान वंश के नाम से विख्यात हुआ। उक्त घटना २५ ई० में घटित हुई। नये राजकुमार कुआँग वू (Kuang wu Ti) ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। कुआँग वू कनफ्यूशियस के सिद्धान्तों को मानने वाला था। अपनी श्रेणी के कतिपय अन्य लोगों की भाँति क्वांग-ऊ-नी न केवल वीर नायक था वह कनफ्यूशियन साहित्य का संरक्षक भी था। स्वयं शिक्षा प्राप्त होने के कारण, विद्वत्मण्डली से घिरा रहने में वह आनन्द का अनुभव करता था। उसने अपनी राजधानी में एक महा विद्यालय की स्थापना की थी। जो साम्राज्य उसने अपने उत्तराधिकारी मिंग-ती को दिया वह एक ऊर्जस्वित साम्राज्य था।[२]

इनके समय में शिक्षा की उन्नति हुई और चीन के प्रथम विश्व-विद्यालय का निर्माण हुआ। इनके साम्राज्य में विद्वानों का मेला-सा लगा रहता। उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते थे। ये उत्सव कनफ्यूशियस के सिद्धान्तों पर ही आधारित थे। पाठशालाओं में केवल पुस्तकीय विषय ही नहीं पढ़ाये जाते थे अपितु चारित्रिक जीवन-यापन का भी ज्ञान कराया जाता था। पूर्व हान वंश से कही अधिक कार्य उत्तर हान वंश द्वारा किये गये थे। राजाओं के महल बड़े सुन्दर बने थे। उनमें हीरा, जवाहिरात की बनी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सम्राट की विलासप्रिय सामग्रियों से ढक कर रखा गया था। हान वंश के समय व्यापारी धनवान बने। परन्तु कृषि का कार-बार ढीला पड़ता गया। विश्व के अन्य देशों से यातायात हुआ करता

---

२. "Like several others of his line, moreover, Kuang Wu Ti was not only a warrior, but a potron of confucian culture. A man of education, he enjoyed surrounding himself with scholars and founded a higher school at his capital. It was a revivified Empire which he passed on to his successor, Ming Ti."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। सड़कों का निर्माण हुआ। सरायें बनवाई गयीं। यात्रियों की सुविधा के लिए गर्मी और सर्दी के दिनों में विशेष प्रबन्ध किये गये थे।

पोस्ट आफिसों का संगठन किया गया। क्यांगवांग के पश्चात् इस वंश का नाश होने लगा और सम्राट दुर्बल होने लगे। जो विद्वान हान वंश के राज्य की शोभा थे उन पर अब प्रतिघात होने लगे और वे समाज में अपना व्यक्तित्व खो बैठे। उत्तर हान वंश की अभ्युन्नति अवरुद्ध हो गयी और पतन के काले बादल मँडराने लगे। जन-संगठन का ह्रास हुआ, राज्य में वैमनस्य के कारण फूट हो गयी। लगभग सौ विद्वानों को मार डाला गया और ७०० के लगभग बन्दी बनाये गये। ६९ ई० में सामान्य जनता में सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई और वह हान वंश के विरुद्ध आवाज उठाने लगी। तुंग नाम जनरल ने सम्राट् का अपहरण कर राजधानी को लूटा। इस जनरल ने एक नये वंश की स्थापना की पर वह वंश अधिक टिकाऊ न रह सका और थोड़े ही दिन के पश्चात् इस जनरल को मार डाला गया। इसकी मृत्यु के पश्चात् हान वंश का पतन हो गया। हान वंश के पतन से चीन की सभ्यता को एक भारी धक्का लगा। इस वंश के पतन का एक भारी कारण पीली पगड़ी वालों का विद्रोह भी था। यह समुदाय कनफ्यूशियस के विरुद्ध संगठित हुआ था।

हान वंश के शासन-काल में वैदेशिक व्यापार

हान सम्राटों का शासन चीन में ई० पू० २०६ से लेकर सन् २२० ई० तक था। लगभग चार सदियों का यह चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र में संगठित हुआ जिसकी सीमा वर्तमान यारकन्द, खोतन, तुर्फान तक फैल गयी थी और दक्षिण में हिन्दचीन से लेकर उत्तर में कोरिया तक के प्रदेश चीनी साम्राज्य में शामिल कर लिये गये थे। इस काल में चीन अपने विदेशी व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ क्योंकि हान-शासनकाल में चीन के व्यापारियों ने अपने विस्तृत राज्य की सीमाओं को पार कर दूर-दूर के देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया। हान द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन को न केवल समृद्धि तथा चैत्रिक विस्तार प्राप्त हुआ वरं शक्तिमान राज्यों द्वारा व्यापार की सहायता भी प्राप्त हुई।[१] उन दिनों भारत के उत्तर-पश्चिम की सीमा तक यू ची जाति पहुँच चुकी थी, कुषाण वंश का शासन स्थापित हो चुका था। फारस और उसके उत्तरी भाग पर पार्थिया राजाओं का अधिकार था और उन प्रदेशों में अब भी यूनानियों द्वारा बसाये नगरों में यूनानी व्यापारी रहते थे। फारस के पश्चिम में रोम का विस्तृत साम्राज्य था जो भूमध्य सागर के चारों ओर फैला था। काला सागर के उत्तरी किनारे पर प्राचीन यूनानी नगर अब भी थे। इन सब देशों के साथ चीन का व्यापार इस युग में होता था। व्यापारी मध्य एशिया को पार कर ऐसे मार्गों से चीन में प्रविष्ट हुए जो तारिम नदी क्षेत्र के उत्तरी तथा दक्षिण ढलान से घूमकर जाते थे। हान साम्राज्य में वे उन मार्गों से भी आये जो दक्षिण की ओर से आते हैं—उन नदियों के क्षेत्रों से जो आज वर्मा में हैं। वे पहाड़ों को पारकर वर्तमान यूनान की ओर से आये। वे लम्बे सामुद्रिक मार्गों से दक्षिण तट पर आये। कुछ समय तक तो दक्षिण का सबसे प्रसिद्ध बन्दर भावी तांग-किंग में बन गया जो उस समय हान लोगों के अधीन था। आगे कई सदियों बाद यह कैण्टन द्वारा पराभूत हुआ।[२]

---

१. "Not only had the Han brought prosperity and territorial expansion to China, but elsewhere powerful states were an assistance to trade."

२. "Merchants passed across Central Asia into China by routes which skirted the northern and the southern slopes of the Tarim River basin. They also came to the Han Empire by the way of South—up the rivers of which is now in Burma aad across the hills into the present Yunnan, and by the longer sea route, to the south coast. For a time the main port in the south was in the future Tongking, then under the control of the Han. It was not until later centuries that it was supplanted by Canton."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हान युग के व्यापारियों का सम्बन्ध यू ची और पार्थिया के लोगों से था। वे यह जानते थे कि आगे पश्चिम दिशा में रोम का साम्राज्य है। भारत और लंका के व्यापारी दक्षिण-पूर्व के समुद्री मार्ग से चीन तक पहुँचते थे। इस समुद्री मार्ग को बाद में रोम साम्राज्य के व्यापारियों ने भी अपनाया। सन् १६० ई० के लगभग कुछ जादूगर रोम के सम्राटों के राजदूतों के साथ दक्षिण चीन के समुद्री किनारे के नगरों में पहुँचे थे। वे कुछ दिनों तक लोयांग (Loyang) नगर में रहे। सन् १६६ ई० में कुछ व्यापारी रोम-साम्राज्य से लोयंग नगर आये और वे अपने को सम्राट ओरेलियस ऐन्टोनियस के दूत कहते थे। चीनी साहित्य में कुछ ऐसे प्रकरण हैं जिनमें वर्णन है कि चीन के कुछ व्यापारियों ने रोम-साम्राज्य को आँखों देखा था। चीन में उन दिनों रोम-साम्राज्य को Ta Ch'in कहा जाता था। उत्तर हान काल में पान चाऊ (Pan Ch'ao) नामक एक राजदूत चीन से रोम सम्राट के दरबार में दौत्य-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भेजा गया था। पान चाऊ का समय सन् २३ से १०२ ई० तक था। वह सम्राट पान कू (Pan Ku) का भाई था। वास्तव में वह अपने प्रयास के बाद भी फारस की खाड़ी तक ही पहुँच सका। यह तो निश्चित है कि हान-युग में मध्य एशिया और भारत के साथ चीन का व्यापार अधिक होता था। व्यापार में हल्की पर कीमती चीजें ही अधिक चलती थीं।

चीन से बाहर जाने वाली चीज़ों में रेशम का प्रथम स्थान था। रेशम कच्चा, तागा और कपड़ा दोनों ही रूप में निर्यात होता था। रेशम के व्यापार के कुछ अवशेष-चिह्न आज भी मध्य एशिया की शुष्क भूमि के नीचे गड़े पाये गये हैं जिन्हें पुरातत्व के विद्वानों ने बड़े परिश्रम के साथ खोज निकाला है। इसी व्यापारिक मार्ग की सुरक्षा के लिए हान सम्राटों ने चीन की बड़ी दीवार को लम्बा किया था। निर्यात की अन्य वस्तुओं में चमड़ा, ऊन (fur), rhubarb (एक प्रकार का पौदा)' दालचीनी मुख्य थीं जो चीन से भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों को पहुँचती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं। उन प्रदेशों में इन वस्तुओं की बड़ी माँग थी। इन वस्तुओं के बदले विदेशों से चीन में शीशा, घोड़े, कीमती पत्थर (हीरे, जवाहर आदि) हाथीदाँत, कछुए के चमड़े और कुछ विशेष धातुएँ तथा कुछ सूती और ऊनी वस्त्र आयात के रूप में आते थे। कुछ यूनानी औषधियाँ भी चीन में मँगायी जाती थीं।

हानकालीन राजनैतिक प्रगति—इतिहासकार के० वॉश के अनुसार हानकालीन राज्य-सत्ता प्राचीन फारस एवं भारत की भाँति राजतंत्रात्मक थी। परन्तु फिर भी शासन के वरिष्ठ अधिकार एक सैनिक वर्ग में सन्निहित थे। इनका प्रमुख अभिनेता लिन-पांग था जिसने सम्पूर्ण देश को तीन भागों में विभाजित किया—

(१) प्राविंश या प्रान्त

(२) प्रिफेक्चर

(३) डिस्ट्रिक्ट्स या जिला

शो-ह्वांग-टी के समय में ३६ एवं वू-टी के समय में १३ प्रान्त थे जिनका शासन गवर्नरों के अधीन था जो फारस के क्षत्रपों की भाँति सर्वाधिकार से पूर्ण थे।

न्याय-व्यवस्था के क्षेत्र में भी लिनपोग ने एक नवीन विचारधारा प्रस्तुत की। यद्यपि वह परम्परागत नियमों का विरोधी था परन्तु फिर भी उसने अन्य कई नवीन कानून बनाये। सभी व्यक्तिगत अधिकारों को खत्म कर दिया। अपराधों को पाँच भागों में विभाजित करके लगभग ६० नियमों की व्याख्या की।

आर्थिक विकास के क्षेत्र में भी श्रेणी-सम्प्रदाय की व्यवस्था की। सभी वर्ग के व्यक्ति किसी श्रेणी विशेष के सदस्य अवश्य होते थे जिसका कार्य वस्तुओं का सामान्य वितरण एवं उचित मूल्य निर्धारण करना था। यही श्रेणी-वर्ग स्थानीय मामलों की भी जाँच करता था। नगरों में जल-वितरण के लिए शासकों ने ६ योजनाएँ चलाईं जिनमें जेचवान बेसिन एवं चियांग नदी घाटी योजनाएँ प्रमुख हैं। इससे जेचवान का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेसिन राजकीय अन्नागार में परिवर्तित हो गया। यहाँ १।३ भाग में कृषि एवं ३।१० भाग में जनसंख्या रहती थी। इसी प्रकार वू-टी ने भी लगभग ४६ योजनाएँ हवांग हान एवं ह्वाई घाटियों में चलाईं जिनसे कृषि एवं उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला।

"हानकालीन प्रमुख उद्योगों में काष्ठनिर्माण, भाण्ड-निर्माण, बर्तन एवं धातु-उद्योग, सूतीवस्त्रों के कारखाने एवं कागज के लघु-उद्योग विशेष प्रसिद्ध थे। इनके द्वारा बनाया माल यूरोप, भूमध्य सागरीय देश, भारत, मलाया इत्यादि देशों को निर्यात किया जाता था। तत्कालीन प्रसिद्ध आर्थिक केन्द्रों में चंगान, लि-पोग, लो-यांग एवं कैण्टन प्रमुख हैं।

हानकालीन बौद्धिक प्रगति—हानकालीन शासक उदात्त बुद्धि एवं साहित्यानुरागी प्रकृति के थे जिसके फलस्वरूप अपूर्व बौद्धिक प्रतिभा का निदर्शन इस काल में हुआ। सभी प्राचीन पुस्तकों को पुनः प्रकाशित किया गया। वू-टी ने उन्हें सुरक्षित रखने के लिए राजकीय-पुस्तकालय खोला जिसमें प्रत्येक विषय से सम्बन्धित १००पुस्तकें रखी गईं। इसी प्रकार उसने साहित्यिक, कलात्मक एवं संगीत प्रशिक्षण केन्द्रों की भी स्थापना की। अपने आदर्शों को प्रसिद्ध बनाने के लिए "The Rites of Chou" नामक पुस्तक लिखी जिसका सम्पादक लियू-हूसू था। शिक्षा पद्धति में सुधार करने के लिए राजकीय प्रशिक्षण व्यवस्था बनाई जिसमें योग्य एवं सुशिक्षित व्यक्ति परामर्शदाता थे। उसका उद्देश्य योग्य एवं कर्मठ व्यक्तियों को पदोन्नत करना था "To employ the able and promote the worthy."

तत्कालीन साहित्यिक पुस्तकों में तेरह धार्मिक सूत्र-संग्रह विशिष्ट हैं जिन्हें तीन श्रेणियों में रखा गया है—

प्रथम श्रेणी—

(१) दी बुक आफ चेंजेस
(२) दी बुक आफ हिस्ट्री
(३) दी बुक आफ पोयट्री

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) रिकार्ड ग्राफ राइट्स

(५) स्प्रिग ऐण्ट ग्राटम एनाल्स

द्वितीय श्रेणी—

(१) एनालिसिस ग्राफ कनफ्यूसियस

(२) दी ग्रेट लर्निङ्ग

(३) डाक्ट्रिन ग्राफ दी मीन

(४) बुक ग्राफ मेनसियस

तृतीय श्रेणी—

(१) यही

(२) सिग्राग्रो-चिंग

(३) ई-ली

(४) चाऊ-ली

इनके अतिरिक्त कुछ आलोचनात्मक कृतियाँ भी विशेष उल्लेखनीय हैं जैसे लियू-सियांग एवं लियू-स्यू। ऐतिहासिक ग्रन्थों में सु-मा-चीन की प्रसिद्ध पुस्तक "हिस्टारिकल मेम्वायर्स" मुख्य है। काव्य-ग्रन्थों में 'दी बुक ग्राफ पोयट्री' एवं चू-यान का 'इनकाउण्टरिंग-सारोज़' विशेष उल्लेखनीय है।

हानकालीन वैज्ञानिक प्रगति—हानकाल में नागरिक जीवन के विस्तार के साथ तथा कागज एवं कलात्मक वस्तुओं की प्रगति के साथ चीन की वैज्ञानिक प्रतिभा का भी विकास हुआ। परन्तु यह प्रगति पश्चिमी वैज्ञानिक प्रगति की अपेक्षा केवल उपयोगवाद तक ही सीमित रही। इसका कोई सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो सका जिसका प्रमुख कारण हान शासकों की दकियानूसी विचारधारा है। हानकालीन सर्वप्रसिद्ध विज्ञान गणित था जिसमें दो प्रमुख ग्रन्थ हैं :—

(१) 'दी सेक्रेड बुक ग्रान एरिथमेटिक',

(२) 'एरिथमेटिकल रूल्स इन नाइन सेक्सन्स'

इन ग्रन्थों से अंकगणित के क्रमिक विकास एवं विस्तार का पता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलता है जैसे भिन्नों का जोड़-घटाना, सीधे एवं ठोस पदार्थों का वजन, क्यूब एवं स्क्वायर की खोज करना, पाइथागोरस के साध्यों का दुहराना एवं पाई या त्रिज्या π का मूल्य ३ संख्या के बराबर मानना इत्यादि। परन्तु गणित का चरमोत्कर्ष सुन-सु की कृतियों में मिलता है जहाँ सर्वप्रथम दशमलव प्रणाली, शून्य का महत्व एवं संख्याओं का क्रम मिलता है जैसे—

१ = —	६ = ⊤ या ⊥
२ = ||	७ = π या ⊥⊥
३ = ||| या ≡	८ = π| या ⊥||
४ = ||||	९ = π||

दूसरा वैज्ञानिक क्षेत्र नक्षत्र-विद्या एवं भौतिक शास्त्र का था जिसमें आकाश की दशा के आधार पर मौसम का हाल ज्ञात करना, चक्रवात एवं वर्षा का आगमन, तथा निश्चित पंचांग की व्याख्या प्रमुख है। इस पंचांग का प्रभाव इतना था कि राजा के भाग्य का निर्णय इसी के द्वारा होता था। तत्कालीन ज्योतिषशास्त्रियों ने ५ प्रकार के बादल एवं १२ प्रकार की हवाओं का विभाजन किया था। सर्वप्रथम ग्रहण का उल्लेख ७६५ ई० पू० एवं पुच्छलतारा का आगमन ६१३ ई० पू० में हुआ। चेन्ग हेंग के अनुसार आकाश में ३२० विशाल तारे, ११५२० तारिकायें हैं।

रसायनशास्त्र में पाँच विशिष्ट तत्वों की कल्पना हान वैज्ञानिकों की देन है। सृष्टि का निर्माण रचनात्मक एवं संहारात्मक के शक्तियों से हुआ। जीव की सर्वप्रथम उत्पत्ति जल में हुई। मृत्यु के बाद शरीर पुनः पाँच तत्त्वों में मिल जाता है।

चिकित्साशास्त्र में नी-चिन्ग की प्रसिद्ध पुस्तक 'Canon of medicine' प्रसिद्ध है जिसमें अनेक भौतिक व्याधियों का चित्रण है। मनुष्य का हृदय राजा है, लिवर उसका सेनापति, फेफड़े उसके मन्त्री तथा किडनी उसके कार्य-कर्त्ता हैं। कुछ बीमारियों का कारण ठंडक लगना है। उसके समकालीन चार डाक्टर थे जिनमें पीयन-चाओ, चुन-युई एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंग-चुंग-चिग मुख्य हैं।

इसी प्रकार उनका भौगोलिक ज्ञान भी काफी विस्तृत था। वे मध्य एशिया की घाटियों, तारिम बेसिन, बैक्ट्रिया, भूमध्यसागर भारत एवं अन्य पश्चिमी द्वीपों से पूर्णतया परिचित थे।

इस प्रकार हान-कालीन सभ्यता प्राचीन अविकसित एवं बौद्धिक सभी तथ्यों का एक अपूर्व सम्मिश्रण प्रस्तुत करती है।[१]

हान युग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान

हान सम्राटों की विजय और चीनियों के समृद्ध व्यापार से इस युग में सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान को अच्छा अवसर मिला ("There was an interchang in art and commerce over a vast area reaching from north of the Black sea into China.") मंगोलिया में उर्गा (Urga) से कुछ उत्तर हाल ही खुदाई से प्राप्त कुछ चीजों से इस सांस्कृतिक विनिमय एवं सम्पर्क पर कुछ ठोस प्रकाश पड़ा है। उन शवागारों से जो बर्तन, वस्त्र और पत्थर तथा धातु की अन्य वस्तुएँ मिली हैं, उनके निरीक्षण से इस युग के सांस्कृतिक सम्पर्क का अच्छा आभास मिलता है। "The artistic designs were derived from Greek, Chinese, Sarmatian, Scytho-Siberian (Yueh Chih) Persian, Babylonian and Assyrian sources............Recent discoveries in the Tarim basin reveal the presence of various cultural influences in the Han times. Excavations by Japanese in late years in Southern Korea in tombs (possibly of a post-Han date) have disclosed fragments

१. "Chinese culture embodied an almost complete union of superstition, intellectual refinement and social acquiescence."

—R. E. Turner.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

of Roman glass goblets." इसी युग में चीन से रेशम, कुछ फल (peach and apricot) तथा अन्य चीजें रोम-साम्राज्य में पहुँची और दूसरी ओर टांगकिंग, कोरिया तथा जपान के साथ भी चीन का सम्पर्क गहरा हुआ। कला के क्षेत्र में भी चीन रोम से प्रभावित हुआ। चीनी मूर्तिकला, शव-मंजिका के निर्माण में विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है। "Glasses may possibly now have been employed for the first time by the Chinese. Glass itself is said to have been first manufactured in China under the Han. चीन में इसी युग में अंगूर और अल्फाल्फा नाम की घास का प्रचार प्रथम बार हुआ। सम्भवतः यूनानियों के संगीत, गणित और ज्योतिष से भी चीनियों ने बहुत कुछ अपनाया। चीनी जनता का भौगोलिक ज्ञान निश्चय ही अति विस्तृत हुआ। ("Certainly Chinese ideas of geography and of the extent of the world were enlarged.")

चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश

हान-वंश के शासन-काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश पाना है। इस नवीन धर्म से चीनी जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस धर्म का प्रचार ई० पू० छठीं सदी में भारत में गौतम बुद्ध ने किया था। पर बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त एवं आदर्श का मेल चीनी जीवन से नहीं बैठता था। बौद्ध धर्म में जीवन कष्टमय माना गया है और उससे मुक्ति पाना ही इस धर्म का मुख्य अंग है। लेकिन चीन के धार्मिक सुधारकों ने जीवन को आनन्दमय माना है। चीनी धर्म और विश्वास में मृत्यु के बाद के जीवन के विषय में चिन्ता का स्थान नहीं था। चीन के अधिकांश दार्शनिकों ने इस सांसारिक जीवन को अधिक आनन्दमय बनाने का प्रयास किया। इस दृष्टि से चीन और भारत के बौद्ध धर्म के आदर्शों में साम्य नहीं था। पर चीन के कुछ दार्शनिकों ने विश्व के सार्वभौम नियम, उनके उल्लंघन को पाप और उसके प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर विचार किया था और उसमें विश्वास प्रकट किया था। इस प्रकार का एक विचारक Hsun Tsu था। यह सिद्धान्त भारतीय 'कर्मवाद' से कुछ-कुछ मिलता था। बौद्ध धर्म में भी कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रमुख स्थान था। ताओवाद के कुछ सिद्धान्तों का मेल बौद्ध-धर्म से बैठता था क्योंकि इस धर्म में इस भौतिक संसार को माया या झूठ माना गया है। पर दोनों देशों के जीवनादर्श और दर्शन में समानता की मात्रा कम थी। फिर भी बौद्ध धर्म को चीन में आश्चर्यजनक सफलता मिली और जब कि बौद्ध धर्म अपने मूल देश से लुप्त हो गया, इस नवीन देश में आज भी इसके मानने वाले लाखों की संख्या में हैं। "जब भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण कर बौद्ध धर्म ने चीन में प्रवेश किया तो वहाँ अचिरात् वह चीनी जनता का लोकप्रिय धर्म बन गया। जहाँ के कन्फ्यूशियस ने जटिल आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, लाओत्से तथा मोत्सू ने दार्शनिक सम्प्रदायों की नींव डाली, वहाँ बुद्ध के उदात्त व्यक्तित्व एवं सरल शिक्षाओं ने ऐसा प्रभाव जमाया कि पूर्वोक्त विचारकों के नैतिक तथा जटिल आध्यात्मिक सिद्धान्त निष्प्रभ हो गये। बौद्ध धर्म केवल चारित्रिक अभिरुचियों पर ही अवलम्बित नहीं था। वरन् उसमें मनुष्य की जटिल समस्याओं के समाधान का सुन्दर मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है। जैसा कि टूची ने लिखा है—"It centered round the problem of human sufferings." और यह नवीन धर्म मानव के समस्त कष्टों का मूल कारण ही हटाना चाहता था ; बुद्ध ने कहा कि "मानव जीवन के समस्त कष्टों का मूल्य कारण आकांक्षा (desire) है। इस आकांक्षा का दमन करना चाहिए। इच्छारहित होकर कार्य करो, तभी निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त होगा। इस प्रकार के विचारों का चीन में अच्छा स्वागत हुआ।"

बौद्ध धर्म का अन्य देशों में प्रचार अशोक के समय में शुरू हुआ। ई० पू० दूसरी सदी में सिकन्दर के एक प्रदेश का उत्तराधिकारी मिनाण्डर था जिसका राज्य बैक्ट्रिया में था। उस प्रदेश में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार हुआ। ईसा की दूसरी सदी में कनिष्क के राज्य में बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म खूब फला-फूला और राजधर्म के रूप में मध्य एशिया तक पहुँचा। व्यापारियों द्वारा यहीं से इस नवीन धर्म का प्रकाश चीन में पहुँचा होगा।

चीन में बौद्ध धर्म के प्रवेश के विषय में एक जनश्रुति है। कहते हैं कि सन् ६५ ई० में उत्तर हान वंश के द्वितीय सम्राट मिंग टी ने एक रात स्वप्न में एक स्वर्णकाय मनुष्य की आकृति देखी। उस मनुष्य के शरीर से एक प्रकार की अपूर्व आभा निःसृत हो रही थी और वह आभा सम्राट के महल में प्रवेश कर रही थी। प्रातःकाल सम्राट ने अपने मंत्रियों से उस स्वप्न के विषय में पूछा। मंत्रियों ने कहा कि आपने भगवान बुद्ध का दर्शन किया है। इस उत्तर को सुनकर सम्राट ने कई व्यक्तियों को बौद्ध धर्म के ग्रन्थों को लाने के लिए भेजा। निस्सन्देह यह एक काल्पनिक बात है क्योंकि चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश इसके पूर्व हो चुका था। इस कथा से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि सम्राट मिंग टी ने बौद्ध धर्म में विशेष अभिरुचि दिखायी।

चीन में इस धर्म का प्रवेश किधर से हुआ, यह विवाद का विषय है। पहिले बौद्ध धर्म भारत से तीन व्यापार-मार्गों में से किसी एक से आया होगा—यूनान से, दक्षिण तट से या तारिम नदी क्षेत्र के भू-मार्ग द्वारा। सम्भवतः वह उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण दोनों ही रास्ते से आया होगा।[१] प्रथम सदी के प्रारम्भ में ही यू ची जाति के राजाओं द्वारा चीनी राजदूत ने इस धर्म के विषय में सम्वाद पाया और उसके कुछ दिनों बाद ही बौद्ध भिक्षु बड़ी संख्या में चीन पहुँच गये। सम्राट ने उन भिक्षुओं को संरक्षण दिया। सन् १९० ई० में अनहुई (Anhui) प्रदेश में बौद्ध विहारों का निर्माण हो चुका था। ईसा की दूसरी सदी में लोयांग

१. "Buddhism may have come first by any of the three trade routes from India—by Yuunan, by the south coast or overland through the Tarim basin. Possibly it arrived both by the way of the North West and the South."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(Loyang) नगर में बौद्ध धर्मावलम्बियों के रहने की बात सप्रमाण पुष्ट होती है। चीन में बौद्ध धर्म के प्रचारकों में पार्थिया के एक राजकुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि पार्थिया के एक राजकुमार ने (An-Shih-Koa), जिसने भिक्षु जीवन अपनाया था, कुछ चीनी विद्वानों की सहायता से बौद्ध धर्म के कतिपय ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और अपने अनुयायियों के साथ उस धर्म का प्रचार चीन में किया। इन प्रारम्भिक बौद्ध भिक्षुओं का स्वागत ताओधर्म के कुछ विद्वानों ने किया था, अतः चीन में इस नवीन धर्म के प्रचार-कार्य में सुविधा भी हुई। पर हान-शासन-काल में सम्राटों का झुकाव कन्फ्यूशियस धर्म की ओर अधिक रहा और सम्भवतः इस समय तक बौद्ध धर्म का इस देश में प्रवेश तो हुआ, पर उसकी नींव गहरी नहीं हो सकी। यह सच है कि हान-युग तक चीन में कुछ बौद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ और कुछ स्थानों पर बुद्ध-प्रतिमाएँ स्थापित हुईं। लातूरे का भी मत है कि हान शासन में गौतम का धर्म केवल अपने पाँव जमा रहा था और बहुत प्रबल नहीं हो पाया था। कारण शायद यह रहा हो कि जिन कन्फ्यूशी विद्वानों को उत्तरकालीन हानों ने विशेष अनुग्रह-दान किया वे एक नूतन धर्म को रोकने में समर्थ रहे होंगे।[१] बौद्ध धर्म को चीन में अधिक लोकप्रिय और दृढ़ होने के लिए अभी कुछ दिनों तक और प्रतीक्षा करनी थी और वह अवसर हान युग के बाद ही आया।

हान युग की अन्य सांस्कृतिक धाराएँ

हान युग चीन में विदेशी प्रभाव प्रवेश पाने की दृष्टि से जितना,

---

१. "Under the Han the faith of Goutama was only gaining a foothold and was not yet specially strong. It may be that the Confucian scholars, who were shown more favors by the Later Hans, were strong enough to act as a check on the new religion."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण काल है, उतना ही यह अपनी स्वदेशी संस्कृति के विकास के लिए भी उल्लेखनीय है। इसीलिए लातूरे ने लिखा है कि "हान वंश न केवल विजातीय सभ्यताओं के आदान के कारण बल्कि इसलिए भी प्रसिद्ध था कि उसने स्वदेशी संस्कृति का भी विकास किया।"[१]

हान युग के सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में साहित्य और दर्शन का अभ्युदय महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन युग में चीन के प्राचीन चाऊ-काल के विद्वानों का समादर हुआ और उनकी कृतियों को सुरक्षित रखने का प्रयास भी हुआ। इस युग में कन्फ्यूशियस और ताओवाद को अधिक संरक्षण मिला, पर लिगैलिस्ट (Legalists) विचार-धारा के समर्थक भी अपनी सत्ता समादृत बनाये रखने में सफल हुए। इसी उदारता के कारण मो ती (Mo Ti) के अनुयायियों ने भी इस काल में अपना पृथक अस्तित्व और ई० पू० प्रथम सदी तक अपने विचारों का प्रचार किया।

राजदरबार में ताओवाद अधिक प्रिय रहा। इसी युग में ताओवाद का एक प्रबल समर्थक और अथक प्रचारक Huai-nan Tzu या (Liu An) हुआ जिसने अनन्त जीवन का आदर्श जनता के सम्मुख प्रतिपादित किया। लियू एन (Liu An) के विचारों में चीन की पूर्वगामी सभी विचार-धाराओं का सम्मिश्रण था। जनश्रुति है कि उसने अमरत्व प्राप्त किया। सन् १६३ ई० में हान सम्राट ने ताओ धर्म के प्रवर्त्तक लाओ जू (Liu Tzu) के जन्मस्थान पर जाकर प्रार्थना की, पूजा की और तत्पश्चात् राजधानी में उसके सम्मानार्थ एक मन्दिर का निर्माण कराया तथा राजकीय यज्ञों में उसकी विधियों को स्थान दिया गया। ताओ धर्म के एक प्रमुख मत—Five-Bushdel-Rice-Taoism—का प्रादुर्भाव इसी काल में हुआ। इस नाम का अभिप्राय यह है कि इसके प्रत्येक मानने

---

[१]"The Han dynasty was notable not only for importations from alien civilizations but for marked developments in the native culture."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले को पाँच बुशल चावल धर्म-दक्षिणा में अनिवार्य रूप से देना पड़ता था।

यद्यपि ताओवाद में इस समय अन्धविश्वास और जादू-टोना की बातें शामिल हो गयी थीं, पर इस समय भी ताओवाद के कुछ विचारक गम्भीर चिन्तन में रत थे और उन्होंने कुछ मौलिक समस्याओं पर गम्भीरता के साथ विचार किया। कुछ ताओवादी चरित्र को सब से अधिक महत्व देते थे और अथक परिश्रम एवं साधना के पक्ष में प्रचार करते थे। चूंकि ताओवादी सरलता के पक्ष में थे, अतः वे यज्ञादि के पक्ष में नहीं थे। कुछ ताओवादियों ने मानव की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया और राज्य के कठोर नियंत्रण और कानून की भर्त्सना की। इससे अप्रसन्न होकर कुछ ताओवादी व्यक्तियों को प्रशासन के क्रोध का शिकार होना पड़ा और प्राण गँवाने पड़े।

राज्य का सब से अधिक संरक्षण कनफ्यूशियन धर्म को मिला। हान-काल के उत्तरार्द्ध के सम्राटों ने इस धर्म की ओर अधिक रुचि दिखायी। इस धर्म के ग्रन्थों को पाठ्य विषय में अनिवार्य स्थान दिया गया और राजकीय पदों पर नियुक्त होने वालों के लिए उनका अध्ययन और परीक्षा में सफलता पाना अनिवार्य किया गया था। वैंग मैंग और हाऊ हान (Hou Han) के समय कनफ्यूशियस साहित्य और धर्म को सब से अधिक प्रश्रय मिला। कनफ्यूशियस के सम्मानार्थ बलि अनिवार्य बना दी गयी और इस धर्म से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन राजाश्रय में हुआ। सन् १७५ ई० में कनफ्यूशियस साहित्य को पाषाण-खण्डों पर उत्कीर्ण कराया गया और राजधानी के राजकीय विद्यालय में उन्हें संग्रह किया गया। इस समय तक कनफ्यूशी विद्वज्जन राज्य में बहुत शक्तिमान हो गये थे। बहुतेरे शिष्य उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये थे और उनके नेताओं ने एक प्रभावशाली वर्ग बना लिया था और परस्पर अपनी सन्तानों को वैवाहिक सम्बन्धों में बाँधकर वे अपनी शक्ति को स्थायी बना लेने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिन्ता में थे ।[१] पर इसके कुछ वर्षों बाद दरबार में उनके इस बढ़ते प्रभाव के विरुद्ध भावना दृढ़ होने लगी और कनफ्यूशियस विद्वान राजदरबार से निष्कासित किये गये । कुछ शासकों का झुकाव बौद्ध और ताओ धर्म की ओर भी हो चला था । अतः इस धर्म के विरुद्ध कुछ वातावरण बन गया और इसका ह्रास भी हुआ ।

हान युग मे स्वतन्त्र चिन्तन की गति कुछ फीकी पड़ गयी । इसका एक कारण यह था कि इस युग के अधिकांश सम्राट साम्राज्य की प्रतिष्ठा को अधिक महत्व देते थे और इसके लिए उन्होंने साम्राज्य को कठोर नियमों से बोझिल कर दिया । इसीलिए कनफ्यूशियस धर्म को राजकीय रूढ़िवादी धर्म बना दिया गया और पठन-पाठन को उसी धर्म के दायरे में सीमित कर दिया गया था । इससे चिन्तन की उन्मुक्त प्रणाली प्रायः मर-सी गयी । सम्राटों ने राजनीतिक एकता के लिए देश में सांस्कृतिक एकता का मार्ग पकड़ा और इससे मौलिक चिन्तन की धारा कुछ कुंठित-सी हो चली । इस युग में चीन के प्राचीन युग-पुरुषों की पूजा की प्रथा चल पड़ी और राज्य की ओर से इस प्रथा को प्रोत्साहन भी मिला ।

साहित्य के क्षेत्र में हान-काल में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । कुछ ऐतिहासिक पुस्तकों के चयन, सम्पादन और प्रकाशन की ओर इस युग में विशेष ध्यान गया । चाऊ वंश के समय की बची पुस्तकों का संकलन हुआ और उनमें से कुछ सम्पादित हुईं । इस युग का एक प्रसिद्ध लेखक Liu Hsiang था जिसकी गद्य-शैली सुसंस्कृत थी । इसी काल में १३ प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तकें लिखी गयीं और एक प्रसिद्ध कोश भी सम्पादित हुआ । हान-काल में बाँस और लकड़ी की तख्ती के स्थान पर रेशम और कागज पर लिखने का काम शुरू हुआ । जनश्रुति के अनुसार चीन में

[१] "By this time the Confucian scholars were very powerful in the state. They attracted many disciples and their leaders formed a kind of ruling group which ought to perpetuate by marriage among their childern."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कागज के आविष्कार की तिथि सन् १०२ या १०५ ई० मानी जाती है। कागज पेड़ के छिलके, कपड़े के चीथड़े आदि से तैयार किया जाता था। एक प्रकार की नयी कलम से चीन में नवीन अक्षरों का सूत्रपात हुआ। चीन में एक लिपि इसी काल में सम्पूर्ण देश में अनिवार्य की गयी और इसी नवीन लिपि में प्राचीन साहित्य पुनः लिखा गया।

चीन का प्रथम पूर्ण इतिहास इसी युग की देन है। Pan Chao ने पूर्व-हान वंश का एक इतिहास तैयार किया जिसका नाम Chien Han Shu पूर्व-हान ग्रन्थ है। पान चाऊ (Pan Chao) केवल इतिहास-लेखिका ही नहीं थीं, बल्कि वह एक कवियित्री, उपन्यासकार और गद्य-लेखिका भी थी। उत्तर हान-काल में Shuo wen नामक कोश तैयार किया गया। प्राचीन साहित्य के ग्रन्थों पर कतिपय भाष्य-ग्रन्थ लिखे गये और एक नवीन गद्य-शैली का भी विकास इस काल में हुआ।

हान-युग में काव्य-ग्रन्थ भी लिखे गये, पर वे ग्रन्थ बहुत उच्च कोटि के नहीं हो सके। कविता के क्षेत्र में चाऊ वंश की परम्परा ही चलती रही और नवीनता को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला।

हान-काल की चित्र-कला चाऊ-युग की कला का अनुकरण करती रही। पर राजनीतिक युद्धों और उथल-पुथल के कारण इस काल की चित्रकला के अधिकांश नमूने नष्ट हो गये और आज उनमें से बहुत कम उपलब्ध हैं। हान युग का सब से प्रसिद्ध कलाकार Wang Chung था जो ज्योतिष, गणित और काव्य के क्षेत्र में अच्छी गति रखता था। हान-काल में कला के क्षेत्र में एक विशेषता यह थी कि इस युग में कला धर्म के क्रोड़ से बाहर निकल कर विविध-विषया हो रही थी। इस युग का रिलीफ-स्थापत्य उत्तम कोटि का था। इस समय के एक ऐसे स्थापत्य में हूणों के विरुद्ध प्रदर्शित किया गया है; दूसरे में एक राजकीय जलूस का दृश्य उत्कीर्ण है और तीसरे में ही ह्वाँग टी की हत्या का दृश्य अंकित है। जेड पाषाण की सहायता से इस युग में निर्मित एक घोड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का सिर मिला है जो शक्ति और सजीवता के अंकन की दृष्टि से अति-उत्तम है। अनुमान है कि पत्थर पर इतने सुन्दर एवं सजीव चित्र एवं मूर्तियों के निर्माण की कला चीन में सम्भवतः यूनानी प्रभाव से विकसित हुई होगी। इस युग में धातुओं (लोहा, काँसा आदि) के टुकड़ों पर पशुओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण करने की सुन्दर कला का भी विकास चीन में हुआ। इस प्रकार की उत्कीर्ण आकृतियों में घोड़े, ड्रैगन तथा कुछ पौराणिक पक्षियों की आकृतियाँ अधिक लोक-प्रिय हुई थीं।

ऊपर के विवेचन से मालूम होता है कि हान वंश का काल चीनी इतिहास में विशेष महत्व का युग है। इस युग में चीन की राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता साकार हो उठी और देश की शासन-क्षमता सफल रही। इसीलिए हान वंश चीन का 'मौर्य-वंश' कहलाता है। चीन की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में इस वंश का अपूर्व योग रहा। इस सम्बन्ध में लातूरे ने लिखा है कि इस काल के विचारक, साहित्य तथा रीति-रिवाज बाद की पीढ़ियों में बार-बार स्फुरित होते रहे। आज भी चीनी गर्वपूर्वक अपने को हान-जन कहते हैं। उसके बहुत ज्यादा भिन्न किसी राजनीतिक प्रणाली पर बीसवी शती तक परीक्षण किया ही नहीं गया। अगले दो सहस्र वर्षों का चीन जन्म ले चुका था।[१]

---

[१] "To the ideas, the literature and the institutions of the period; later generations recurred again and again. Even today the Chinese proudly call themselves Han Jen, "the men of Han." No radically different political system was seriously tried until the twentieth century. The China of the next two millenniums had been born."

—Latourettee : The Chinese, Their History and Culture, Page 138.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन की सांस्कृतिक प्रगति

[सन् २२०—५८६ ई०]

राजनीतिक स्थिति—हान वंश का पतन सन् २२० ई० में हुआ। उसके बाद लगभग चार सदियों तक चीन गृह-युद्ध, आन्तरिक विभाजन एवं कलह तथा राजनीतिक कमजोरी का शिकार रहा। उत्तर-पश्चिम से विदेशियों ने चीन पर आक्रमण किये और नदी-घाटी की उर्वर भूमि में अपना अधिकार जमाया। इस युग में "चिन और हान ने जो शासकीय ढाँचा बनाया था वह सम्पूर्ण देश में न जारी रखा जा सका और जहाँ सुरक्षित रखा भी जा सका वहाँ प्रायः बड़ा ही दुर्बल हो गया। उस समय जो सांस्कृतिक एकता पैदा हुई थी वह भी जर्जर हो गयी।"[१] हान वंश के ह्रास के बाद चीन तीन राज्यों (Three Kingdoms) में विभाजित रहा। उत्तर में वेई (Wei) वंश, दक्षिण में वू (Wu) वंश और पश्चिम में शू वंश (Minor or Shu Han) के राजाओं ने अपने-अपने राज्य स्थापित किये।

सन् २६५ ई० में उपर्युक्त तीन राज्यों के स्थान पर Ssu-mayen नामक एक व्यक्ति ने चीन में एक नवीन राजवंश की नींव डाली जो चीनी इतिहास में पाश्चात्य चिन-या-त्सिन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस संस्थापक ने चिन-ऊ-ती नाम धारण किया और २६० ई० तक उसने शासन किया। सन् ३१६ ई० में इसके वंश का अन्त हो गया और चीन पर उत्तर-पश्चिम से बर्बर जाति के लोगों के आक्रमण से चीन की एकता पुनः खण्डित हो गई। चीन में पुनः अनेक छोटे-छोटे स्थानीय राज्य स्थापित हो गये और सन् ५८६ ई० तक चीन विभिन्न राज्यों में विभाजित रहा।

---

[१]"The administrative structure erected by the Chin and the Han could not be operated for the entire country and where preserved was often much weakened. The cultural unity achieved then was also threatened."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार लगभग साढ़े तीन सदियों तक चीन की यही स्थिति रही, पर आश्चर्य है कि इस काल में भी चीन की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की गति अवरुद्ध नहीं हुई और साहित्य, विदेशी व्यापार, बौद्ध धर्म के प्रसार आदि जैसे कार्य अप्रत्याशित ढंग से अग्रसर होते रहे।

सांस्कृतिक विकास—राजनीतिक अव्यवस्था के होते हुए भी चीन का भौगोलिक विस्तार इस युग में हुआ। व्यापार की प्रगति जिसका सूत्रपात हान काल में हुआ था, आगे बढ़ी। बहुत सी बर्बर जातियाँ चीनी समाज में आक्रमणकारी रूप में आकर अन्त में घुल-मिल गयीं। उनके समन्वय से चीनी संस्कृति को शक्ति मिली।

जब चीन के उत्तरी भाग पर उत्तर-पश्चिम से विदेशियों ने आक्रमण किया तो चीन की जनता अधिक संख्या में दक्षिण की ओर खिसक गयी और राजकीय अधिकारियों तथा धनी व्यक्तियों के साथ साधारण जनता भी दक्षिणी भागों में जा बसी। इस स्थानान्तरण से यांग्टीसी नदी के मैदान का भूभाग चीन का विशिष्ट भाग बन गया और तत्पश्चात् यही चीनी संस्कृति का मुख्य केन्द्र हुआ। इस नयी भूमि और नये वातावरण में चीनी संस्कृति ने कतिपय नवीन रूप ग्रहण किये, विशेषतः साहित्य तथा कला के क्षेत्र में।[१] इसी काल में दक्षिण से चीन में चाय पीने की प्रथा आयी और तीसरी सदी के अन्तिम चरण से आगे बढ़ कर आठवीं सदी तक उत्तर चीन में इसका प्रचार सर्व-साधारण में हुआ।

उत्तरी चीन पर विदेशी आक्रमणकारियों का दबाव अधिक था, उस क्षेत्र में भी चीनी संस्कृति का समूल नाश सम्भव नहीं हो सका। विदेशी आक्रमणकारी चीनी समाज और संस्कृति में परिष्कृत कर लिये गये। उनमें आपस में विवाह-सम्बन्ध स्थापित हुए, इस मिलन से उनकी नस्ल और भाषा में भी परिवर्तन हुए। इसी युग में चीन में बौद्ध धर्म का भी प्रचार अधिक प्रभावशाली हुआ और उससे भी वहाँ का जन-जीवन प्रभा-

---

१. "Chinese culture took on some fresh forms, especially in literature and art."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वित हुआ। कुछ उच्च वर्ग के लोगों ने इस पारस्परिक मेल-जोल और वैवाहिक सम्बन्ध का विरोध किया और अपने को इससे बचाने का प्रयास किया। पर वे इस प्रयास में पूर्णतया सफल नहीं हो सके।

साहित्य और कला के क्षेत्र में राजनीतिक अस्थिरता के बाद भी अतीत का क्रम चलता रहा और कुछ प्राचीन संस्थाएँ और कला की धारा ज्यों की त्यों बनी रही। कनफ्यूशियस-परम्परा के साहित्य को इस काल में भी संरक्षण मिला और वेई (Wei) राजवंश ने अपनी राजधानी में इस प्राचीन साहित्य के कतिपय ग्रन्थों को पाषाण-खण्डों पर उत्कीर्ण कराया और सुरक्षित रखा। हान-सम्राटों ने भी ऐसा किया था और वही परम्परा इस काल में भी जीवित रखी गयी। इस विचार-धारा के प्रचार एवं पठन-पाठन के लिए स्थान-स्थान पर विद्यालय स्थापित किये गये और ५०५ ई० में एक बड़े कनफ्यूशियस मन्दिर का निर्माण कर उसमें उसकी मूर्ति स्थापित की गयी। कुछ सम्राटों ने ताओ धर्म और कुछ सम्राटों ने बौद्ध धर्म का अधिक संरक्षण किया।

इस युग के जिन प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम आज तक आदर के साथ लिये जाते हैं, उनमें से एक वैंग-पी था जिसका जन्म तीसरी सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। उसने चाऊ काल के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चिंग' और 'ताव-ते-चिंग' पर भाष्य लिखा। इस युग में सात सन्तों (Seven Sages of the Bambo Grove) का एक दल अधिक प्रसिद्ध हुआ जिसने ताओ दर्शन और परम्परा को आधार बना कर अपने को एकान्त में रखकर साधारण जीवन का प्रचार किया। इन सन्तों ने एक नवीन गद्य-शैली का भी विकास किया जिसने प्राचीन सूत्रमय संगीतात्मक शैली त्याग कर कृत्रिम, शब्द-जाल से पूर्ण शैली अपनायी। इसी युग का एक कवि ताव शान (सन् ३६५—४२७ ई०) था जो कुछ दिनों तक राजाश्रय में रहा, पर जो सदा एकान्त एवं शान्त जीवन के लिए लालायित था। बाद को उसका परिचय हुई-युआन नामक बौद्ध धर्म के समर्थक व्यक्ति से हुआ।

इस युग का एक प्रसिद्ध सुलेखक वैंग-पी-शीह था जिसका जीवन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल सन् ३२१ से ३७९ ई० तक था। वह ताम्रोवादी था। चीन के प्रसिद्ध इतिहासकार शूमा-शीन (Ssu-ma Chien) के ढंग पर इस युग में कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये और वनस्पति विज्ञान पर ग्रन्थ लिखने का काम प्रारम्भ हुआ। इस काल में मानचित्र निर्माण (Cartography) के काम में भी अच्छी प्रगति हुई।

लेखन-कला की एक नवीन शैली (pien-ti or parallel style) का विकास इस काल की एक विशेषता थी। इस शैली में वाक्यों को इस प्रकार क्रम से रखा जाता था जिससे शब्दों के अर्थ और उच्चारण में एक प्रकार का सन्तुलन हो जाये।

इस काल में पनचक्की और पहियादार गाड़ी का प्रचलन हुआ। इसी काल में सर्वप्रथम पत्थर के कोयले का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। पालकी या डोली और द्यूत-क्रीड़ा का नाम भी इसी काल में सर्व प्रथम प्रयोग में आया।

विदेशों के साथ व्यापार

हान काल के समय में चीन की व्यापारिक प्रगति का जो क्रम शुरू हुआ था, वह इस काल में भी चलता रहा, यद्यपि आन्तरिक युद्धों एवं आक्रमणों के कारण स्थलीय व्यापार में व्यवधान भी पड़ा। स्थल मार्ग से सबसे अधिक व्यापार रेशम का होता था। समुद्री किनारे पर टांगकिंग (Tongking) और कैन्टन (Canton) दो प्रमुख बन्दरगाह थे जो समुद्री [illegible] व्यापार के केन्द्र थे। विदेशों के साथ व्यापार में चीनी व्यापारियों का हाथ कम था और अन्य देशों के व्यापारी इस काम में [illegible] आगे थे क्योंकि उन्हें चीन के साथ व्यापार का लाभ ज्ञात हो चुका था। सन् २२६ ई० में वू (Wu) राज्य की राजधानी में टांगकिंग बन्दरगाह से होकर रोम का एक व्यापारी आया था। पश्चिमी [illegible] एशिया से अनेक व्यापारियों के चीन में आने के प्रमाण उपलब्ध हैं। [illegible] वू वंश के प्रथम सम्राट् (Sun Chuan) ने अपने एक अधिकारी को रोम [illegible] के एक व्यापारी के साथ रोम के सम्राट्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के यहाँ भेजा, पर वह अधिकारी मार्ग में ही मर गया। उसी सम्राट् ने दक्षिण के देशों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अपने कुछ प्रतिनिधियों को भेजा था। सन् ४३३ में जावा या मलाया से एक राजदूत चीनी दरबार में आया था। तीसरी सदी में चम्पा के राजा ने चीन में अपने अनेक दूत भेजे। लियू सुंग (Liu Sung) के दरबार में भारत और सिंघल से भी बौद्ध धर्म के संरक्षण के लिए शुभ कामनाएँ प्रकट करने कुछ व्यक्ति आये थे। उन दिनों चीन में बौद्ध भिक्षुओं की संख्या अधिक थी, इससे अनुमान लगाया जाता है कि समुद्री मार्ग से भारत की ओर से अधिक यातायात था। सम्भवतः चौथी सदी में तिब्बत की ओर से उत्तर-पश्चिम चीन में अखरोट और तीसरी सदी में ईरान से अनार का प्रवेश हुआ। इसी युग में भारत या ईरान से शीशा बनाने की कला का ज्ञान भी चीनियों को प्राप्त हुआ। कीमखाब (Brocades) की कला फारस से चीन में आयी। रेशमी कीड़ों के पालने की विधि चीन से खोतन होते हुए अन्य देशों को पहुँची। सिंकियांग प्रदेश से जो उन दिनों कूच नाम से विख्यात था, वादन और गायन-संगीत की एक विशेष पद्धति का प्रवेश चीन में हुआ।

इस व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्पर्क एवं सम्बन्ध की तुलना आधुनिक युग के व्यापार से नहीं की जा सकती है, पर तत्कालीन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उन दिनों चीन का व्यापार अच्छी दशा में था। लातूरे ने इसी दृष्टि से लिखा है कि "यह नहीं सोचना चाहिए कि वर्तमानकालीन अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य की तुलना में यह व्यापार बहुत बड़ा था।............सम्भवतः उसके बाद की पहली पीढ़ी ताँग के वैदेशिक व्यापार की तुलना में भी वह कम था............, किन्तु वह अनुल्लेखनीय भी नहीं था............विशेषतः जब हम उन आपदाओं के प्रकाश में उसका विचार करते हैं जो भूमध्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सागरीय जगत को पाँचवीं-छठवीं शतियों में आवृत किये हुए थीं।[१]

इसी काल में चीन और जपान में सम्पर्क बढ़ा। यों तो हान काल में ही कोरिया और मंचूरिया तक चीन का प्रभाव प्रसारित हो चुका था, पर वह प्रभाव इस काल में और दृढ़ और व्यापक हो गया। इस प्रभाव के व्यापक होने में बौद्ध धर्म के प्रचार का बहुत हाथ था। इन्हीं बातों से चीन और जपान के बीच सम्पर्क बढ़ा और चीन से ही जापानियों ने कपड़ा बुनने की कला सीखी। कुछ चीनी जपान में जाकर बस गये और वहाँ बौद्ध-विहारों का निर्माण किया। इसीलिए एक विद्वान ने लिखा है कि "Japan was being brought into the Chinese cultural area during this period.' अर्थात् "इस काल में चीनी सांस्कृतिक क्षेत्र में जपान लाया जा रहा था।"

बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार

तीसरी सदी से छठीं सदी तक का समय चीन में बौद्ध-धर्म के प्रचार का युग कहा जा सकता है। इस काल में और इसके पूर्व भी चीन में बौद्ध धर्म के प्रचारक और बौद्ध धर्म का प्रभाव कम्बोडिया, सिंघल, भारत, अफगानिस्तान, मध्य एशिया के पार्थिया राज्य से आये। इसका प्रवेश दक्षिण के समुद्री और उत्तर-पश्चिम के स्थल मार्ग से हुआ। इस युग के प्रचारकों में धर्मरक्षा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे मध्य

१. "It must not be thought that compared with present-day international commerce the bulk of this trade was very large...................Possibly it was small even when contrasted with the foreign commerce of the T'ang the great dynasty which followed.............., but it was not insignificant, especially when we recall the disasters which were overtaking the Mediterrean world during the fifth and sixth centuries."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशिया के तुनह्वांग (Tunhuang) प्रदेश के निवासी थे। यह स्थान विभिन्न व्यापारिक मार्गों के संगम पर स्थित था, अतः यहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की धाराएँ मिलती थीं। कहा जाता है कि वे छत्तीस भाषाओं के ज्ञाता थे। सन् २६६ ई० में वे चीन की राजधानी लोयांग (Loyang) पहुँचे जहाँ उन्होंने अथक परिश्रम कर १७५ बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस सिलसिले में दूसरा प्रमुख नाम कुमारजीव (सन् ३४४—५१३ ई०) का है जिसके पिता एक भारतीय और माता कूची (मध्य एशिया का एक राज्य) की राजकुमारी थी। पिता का नाम कुमारायन और माता का नाम जीवा था। कुमारजीव की शिक्षा कश्मीर में हुई थी। कुमारजीव महायान पंथ के मानने वाले विद्वान थे। उन्होंने कश्मीर के बाद काशगर, यारकन्द का भी भ्रमण किया था। उन्हीं दिनों कूची पर चीनियों ने आक्रमण किया और कुमारजीव बन्दी के रूप में चैंगन (Changan) पहुँच गये। कुमारजीव की विद्या की ख्याति चीन में फैल गयी और तब चीन की राजधानी में उनका अद्भुत स्वागत हुआ। कुमारजीव संस्कृत और चीनी भाषा के अनुपम विद्वान थे। शास्त्रों में उनकी गति अप्रतिहत थी। दस वर्षों में उन्होंने १०६ संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। कहा जाता है कि चीन में महायान सम्प्रदाय के प्रबल प्रचारक कुमारजीव ही थे। उनसे प्रशिक्षित हो चीनी विद्वानों ने बौद्ध धर्म का प्रचार अपने देश में अति उल्लास के साथ किया। कुमारजीव ने अपनी सहायता के लिए भारत से भी कतिपय विद्वानों को आमंत्रित किया था। उन आमंत्रित विद्वानों में "पुष्यभात, बुद्धयश, गौतम, संघदेव, धर्मयश, गुणवर्मन, गुणभद्र और बुद्धवर्मन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।" चीनी जनश्रुति के अनुसार बोधिधर्म नामक बुद्ध के एक वंशज भी धर्म-प्रचारार्थ भारत से चीन गये थे। चीन के सम्राट लियांग-ऊ-ती ने नानकिंग (Nanking) नामक स्थान पर उनका उचित स्वागत किया और उन्हें सम्मान के साथ अपनी राजधानी लोयांग (Loyang) ले गया। बोधि धर्म छठीं सदी के पूर्वार्द्ध में चीन गया था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोधिधर्म के विषय में चीन में विविध प्रकार की अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं जो विश्वसनीय नहीं हैं। सन् ४३५ ई० में आचार्य गुणभद्र नामक विद्वान भारत से चीन गये। कुल अठहत्तर बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद उन्होंने किया जिनमें से अट्ठाइस ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। पचहत्तर वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु भी चीन ही में हुई। गुणभद्र के बाद धर्मगत और छठीं सदी में धर्मरुचि, बोधिरुचि, गौतम प्रज्ञारुचि आदि कतिपय विद्वान भारत से मध्य देश गये और चीनी भाषा में अनुवाद के साथ-साथ धर्म-प्रचार भी किया। गुप्त काल में चीन से भी कतिपय बौद्ध धर्म में रुचि रखने वाले व्यक्ति भारत आये थे। उनमें फाह्यान अधिक उल्लेखनीय है। यह चीनी बौद्ध यात्री सन् ३९९ ई० में चीन से चला था, मध्य एशिया से होकर भारत में प्रवेश किया और पन्द्रह वर्ष के बाद भारत का भ्रमण कर अनेक बौद्ध ग्रन्थों को साथ ले चीन वापस लौटा। सन् ५१८ ई० में सुंग युन (Sung Yunn) नामक एक दूसरा चीनी यात्री भी भारत आया था। इन विद्वानों के आने-जाने से भारत में इस काल में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार हुआ और स्थान-स्थान पर अनेक बिहार निर्मित हुए। एक अनुश्रुति के अनुसार छठीं सदी के प्रारम्भ में चीन में भारतीय भिक्षुओं की संख्या तीन हजार के लगभग थी। वहाँ के सम्राट लियाँग वू ती ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और उसी के आदेशानुसार सन् ५३९ ई० में एक चीनी मण्डल भारत आया था और यहाँ से अनेक बौद्ध ग्रन्थ अपने साथ ले गया। अनूदित ग्रन्थों के साथ-साथ इस काल में चीनी विद्वानों ने कुछ मूल ग्रन्थ भी लिखे जिनमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। सम्राट लियांग वू ती ने त्रिपिटिकों का संस्करण तैयार कराया था तथा जीव-बलिदान को रोकने के लिए राजाज्ञा निकाली। वह स्वयं शाकाहारी था और तीन बार बौद्ध भिक्षु बना।

इस काल में बौद्ध धर्म के प्रचार में चीन में कुछ कठिनाइयाँ भी उपस्थित हुईं क्योंकि कुछ सम्राटों ने बौद्ध धर्म को विदेशी धर्म कह कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे अवैध घोषित किया था। "बौद्ध धर्म को भी सदा सरल पथ नहीं प्राप्त हुआ। ३३५ से पूर्व राज्य ने चीनियों को भिक्षु बनने की अनुमति नहीं दी, यद्यपि इसके पूर्व भी कुछ लोग भिक्षु बन गये थे। कनफ्यूशी या ताव आस्था वाले सम्राटों ने कई अवसरों पर उनको दण्डित किया, मठों को नष्ट कर दिया तथा उन भिक्षुओं को पुनः गृहस्थ धर्म में लौटने के आदेश दिये। प्राचीन प्रणाली इतनी म्रियमाण नहीं हो गयी थी कि वह कोई प्रतिरोध ही न करती।"[१] वे वंश का 'ताई वू' नामक सम्राट ताओ धर्म का संरक्षक था और ताओवादियों के प्रभाव में पड़कर एक आदेश निकाला कि विदेशी धर्म से सम्बन्धित सब देवताओं को हटाओ और जो कोई उनकी प्रतिमा स्थापित करेगा या पूजा करेगा, उसे सपरिवार मृत्यु-दण्ड मिलेगा। कहा जाता है कि इस राज्यादेश के बाद बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ ध्वस्त कर दी गयीं पर यह प्रतिक्रिया अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। पुनः बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा चीन में बढ़ गयी और कुछ ही दिनों में चीन में एक साक्ष्य के अनुसार तीस हजार बौद्ध मठ और विहार निर्मित हुए। एक पक्ष का कहना है कि इस समय तक उत्तर-पश्चिम चीन के कुछ भागों में पूरी जन-संख्या का ९।१० भाग बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया। इस कथन में कुछ अत्युक्ति हो सकती है पर सब मिलाकर देखें तो हान एवं सुई बौद्ध मत के बीच की सदियाँ निश्चित रूप से लोकप्रिय होती गयीं। सुई के आगमन तक तो यह चीनी जीवन का एक अभिन्न एवं महत्वपूर्ण भाग

---

१. "Budhism did not always have smooth sailing. Not until 335 did the state permit Chinese to become monks—although many had previously done so and-on several occasions monarchs of Confucian or Taoist convictions instituted persecution, Cestroying monastries and ordering monks back into secular life. The old order was not so moribund that it could offer no resistance."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन गयीं।"[१] चीन में महायान सम्प्रदाय का प्रचार ही अधिक हुआ था।

चीन में बौद्ध धर्म के इस व्यापक प्रभाव से चीनी जीवन, धर्म, साहित्य एवं कला आदि पर इस नवीन धर्म का प्रभाव पड़ा। धर्म एवं नैतिकता के क्षेत्र में चीनी जीवन में सदाचार, नैतिकता और करुणा का प्रसार हुआ। बौद्ध दर्शन और संस्कार-विधियों ने ताओ धर्म को अधिक प्रभावित किया। और कुछ दिनों बाद ताओवादियों ने यह दावा किया कि बौद्ध धर्म उन्हीं के धर्म का एक रूपान्तर मात्र है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ चीनी भाषा के उच्चारण की पद्धति में भी परिवर्तन हुआ। चीनी भवन एवं मूर्ति-निर्माण शैली पर भी गान्धार-शैली का प्रभाव पड़ा। आज भी लोयांग (Loyang) के पास पहाड़ियों पर स्थापत्य एवं वास्तु कला में गांधार शैली का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। तत्कालीन चित्रों और भित्ति-चित्रों (Painting and Frescoes) में भी भारतीय प्रभाव पड़ा। उस काल के चित्रकारों को बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं ने अधिक आकर्षित किया। ऐसा ही एक प्रसिद्ध चित्रकार कियांगसू (Kiangsu) प्रदेश का निवासी कू काई शीह (Ku Kai Chih) था जो पाँचवी सदी में पैदा हुआ था।

चीन में बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय—चीन में प्रवेश करने के बाद बौद्ध धर्म ने जिस अंश में चीनी जीवन एवं दर्शन को प्रभावित किया, उसी मात्रा में बौद्ध धर्म स्वयं भी इस नये देश में प्रभावित हुआ और नया रूप धारण किया। चीनी बौद्ध माओ ने ताओ धर्म की अनेक शब्दावलियों को अपनाया, और ताओ धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ ताओ ती चिंग (Tao Te Ching) पर भाष्य लिखा। तत्पश्चात चीन के बौद्ध धर्म में यहाँ के स्थानीय प्रभाव से तीन मुख्य सम्प्रदाय बने। इस प्रकार चीनी

---

[१] "Taking as whole the centuries between the Han and the Sui Buddhism undoubtedly grew in popularity. By the advent of the Sui it had become an integral and powerful part of Chinese life."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म का एक नया सम्प्रदाय चैन(Chan) या जेन (Zen) पैदा हुआ जिसने आन्तरिक साधना एवं ज्ञान को ही निर्माण का एक मात्र साधन कहा। ऐसा ज्ञान अचानक प्राप्त होता है जैसा बुद्ध को हुआ था और इसके लिए तप, सत् कार्य या औपचारिक संस्कार व्यर्थ है। इस सम्प्रदाय के अनुसार "यथार्थ से सम्बन्ध स्थापित करने और उसे समझने के लिए आदमी को अपने अन्दर देखना होगा। दूसरे शब्दों में ज्ञान पूर्णतः आत्म-निष्ठ है।"[१] इस मत का प्रवर्तक बोधि धर्म को कहा जाता है। इस मत का मूल बौद्ध धर्म और ताओवाद के सम्मिश्रण में था। बौद्ध धर्म के चीनी संस्करण का एक दूसरा रूप तिन ताई (T'ien Tai) था। इस मत के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति ध्यान, अध्ययन, पूजा-पाठ, नैतिक संयम और अन्तः-दर्शन के मेल से हो सकती है। इस मत के अनुसार सत्य परोपकार की क्रिया में निहित है, न कि स्वचिन्तन में जैसा जेन या चैन मत का कहना है। इस मत का नाम T'ien T'ai नामक की पहाड़ी से लिया गया जिसे इसके प्रवर्तक Chich I ने अपनी साधना का प्रधान-केन्द्र बनाया था। चीन में बौद्ध धर्म का तीसरा प्रमुख सम्प्रदाय Pure Land (Lotus School या Ching T'u) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके संस्थापक शान्सी (Shansi) प्रान्त के Hui Yuan (सन् ३३३-४१६ ई०) थे। इस सम्प्रदाय ने बुद्ध के अमिताभ स्वरूप को अधिक महत्व दिया और घोषित किया कि अमिताभ नाम के जप से ही मनुष्य का स्वर्ग में प्रवेश हो सकता है। यह मत गृहस्थों में बहुत प्रचलित हुआ क्योंकि "पवित्र स्वर्ग या जीवन का भावी आनन्द थोड़े लोगों को और वह भी लम्बी साधना की कीमत पर नहीं बल्कि अधिक लोगों को और उससे कहीं सरल श्रद्धा-

---

१ "To make contact with reality and to understand it one must look within. Knowledge in other words was purely subjective."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्ग से मिलने की व्यवस्था हो गयी।"[१] यह मत चीन के ताओवाद से अधिक मिलता जुलता था और इनमें अधिक समता थी।

बौद्ध धर्म के प्रचारक—चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार-कार्य में भारतीय बौद्ध विद्वानों का विशेष हाथ रहा है। वास्तव में इसकी नींव इन्हीं धार्मिक आचार्यों ने डाली जिसके ऊपर अन्य देशों के प्रचारकों ने भव्य प्रासाद खड़ा किया। इनमें सर्वप्रथम धर्मरक्ष थे जिनका वास्तविक स्थान मध्य एशिया में होते हुए भी वे चीन से सम्बंध स्थापित करने में सफल रहे। इन्होंने लगभग १७५ ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया था। इनके सहायक कुमारजीव थे जिन्होंने चीन से लेकर द० पू० एशिया के द्वीपों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था।

इसी प्रकार संघभूमि, गौतम संघदेव, पुण्यत्रात, धर्मयशस, बुद्धयशस, गुणवर्मा एवं विमलाक्ष के भी कार्य सराहनीय हैं जिन्होंने अथक परिश्रम से चीन में इस धर्म की पताका फहराई। भारतीय विद्वानों में उपशून्य, परमार्थ, बुद्धभद्र, बोधिधर्म, धर्मगुप्त, जिनगुप्त आदि प्रमुख हैं।

इन महात्माओं के वरद हस्तों के प्रभाव से चीन में बौद्ध धर्म की अमिट छाप पड़ी जिसकी तुलना केवल ईसाई धर्म से ही हो सकती है। पुनः यह प्रभाव सर्वाङ्गीण था।[२]

इस प्रकार हान-वंश के अवसान के बाद आगे की चार सदियों के चीन के सांस्कृतिक जीवन में तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता के होते

---

१ "Pure Land or a future bliss of life can be had not to the few and at the price of long practice, but many to and by the much easier road of faith."

२. "Buddhism was by far the most important Cultural influence of foreign origin introduced in China in the Han period."

—E. Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए भी वैदेशिक सम्पर्क एवं बौद्ध धर्म का व्यापक और गहरा प्रचार अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं जिनसे चीनी जनता का जीवन व्यापक रूप से प्रभावित हुआ। इसमें ताओवाद और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का समन्वय अधिक महत्वपूर्ण रहा और बौद्ध धर्म का नया कलेवर धारण करना इतिहास के विद्यार्थी के लिए पठन-पाठन की दृष्टि से अधिक आकर्षक है।

तंग-वंश : चीन का स्वर्णकाल
(सन् ६१८-९०७ ई०)

छठीं सदी के अन्त में चीन में एक केन्द्रीय शासन का संगठन हुआ और साढ़े तीन सदियों की राजनीतिक अव्यवस्था समाप्त हुई। इस सफलता का श्रेय प्रारम्भ में सुई (Sui) वंश के सम्राटों को है जिन्होंने सन् ५८९ से ६१८ ई० तक शासन किया। इस वंश में Kao Tsv (या Wen Ti या Yang Chien) और Yang ti प्रसिद्ध सम्राट हुए। इस वंश के बाद चीन में तंग-वंश का शासन शुरू हुआ जो चीन के इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस राजवंश में प्रसिद्ध सम्राट T'ai Tsung (सन् ६२७-६५० ई०), Kao Tsung (सन् ६४९-७०५ ई०) और Hsuang Tsung (Ming Huang) सन् (७१२-७६२ ई०) हुए जिनके शासन-काल में चीन में वे सब सांस्कृतिक धाराएँ अपनी पूर्णता को प्राप्त हुईं, जिनका प्रारम्भ हान-काल में हुआ था। "मानवी जीवन के चतुर्मुखी विकास की जो विभिन्न प्रवृत्तियाँ हान-काल में दृष्टिगोचर होती थीं, वे तग में आकर अति सबल और साकार हो गईं। यह एक बहुमुखी युग था, यह अन्य युगों की अपेक्षा कम परम्परा-निगडित और नवीन प्रभावों के लिए अधिक ग्रहणशील था। तंग-काल के ३०० वर्षों में राजनीति, धर्म, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में हम चीन की प्रतिभा का अपूर्व नवोन्मेष देखते हैं।" प्रसिद्ध विद्वान फू के मतानुसार तंग-युग समस्त चीन में पुनर्जागरण का युग था और इस काल में सम्पूर्ण देश नवीनता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साँचे में ढाला गया । तंगकाल को चीनी इतिहास का स्वर्ण युग कहना अधिक उपयुक्त होगा । यदि हान-काल की तुलना भारतीय इतिहास के मौर्य-युग से हो सकती है, तो तंग-काल चीन का गुप्त-युग था ।

राजनीतिक अवस्था—तंग-वंश के अन्तर्गत चीन पूर्व एशिया का एक अति शक्तिशाली राज्य हो गया था । पश्चिम में मध्य एशिया और फारस के समीपवर्ती प्रदेश तथा पूर्व में कोरिया और जपान तक के प्रदेश चीनी साम्राज्य में सम्मिलित थे । इस समय तुर्क मध्य एशिया के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे । तंग-वंश के लिए यह असह्य था । अतः दोनों में संघर्ष हुआ । तुर्क पराजित हुए और उनका सम्राट् बन्दी बना लिया गया । इस प्रकार चीनी साम्राज्य को सीमा सुरक्षित हो गई । यह विशाल साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था । केन्द्रीय शासन के शक्तिशाली होने के कारण प्रान्तीय गवर्नर पूर्णरूप से चीनी सम्राट् के नियन्त्रण में रहते थे । कुशल सम्राटों ने चीन को अपूर्व सुख-शान्ति दी जिससे संस्कृति-सभ्यता के विविध अङ्गों का द्रुतगति से संवर्धन हो सका ।

तंग-वंश का सर्वप्रमुख सम्राट् ताइ सुंग (६२७—६५० ई०) था । हान-वंश के पतन के पश्चात् चीन में अव्यवस्था प्रारंभ हो गई थी और अनेक अधीन राज्य स्वतन्त्र हो गये थे । उधर बाह्य शत्रुओं ने पुनः अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे । ताइ सुंग ने इन समस्त विपत्तियों का बड़े धैर्यपूर्वक सामना किया । अपने शौर्य का परिचय देते हुए उसने बर्बर आक्रमणकारियों को पराजित किया और उन्हें भगाकर अपने प्रदेशों में शरण लेने पर विवश किया । विद्रोही राज्य पुनः अधीन कर लिये गये । इस प्रकार बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के पश्चात् ताइ सुंग ने अपने साम्राज्य का संगठन करना प्रारम्भ किया । उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को छः भागों में विभक्त किया । प्रत्येक भाग में ८०० से लेकर १००० तक सैनिक थे । यही सेना चीन-साम्राज्य की संरक्षा करती थी । वह प्रशासनीय विषयों में अति दक्ष था । उसने अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण साम्राज्य को दस ताओं (प्रान्तों) में विभक्त कर दिया तथा प्रत्येक प्रान्त में एक कुशल गवर्नर की नियुक्ति की। पुनः साम्राज्य के सिविल और पुलिस विभाग पृथक् कर दिये गये। पद-नियुक्ति के लिए प्रतियोगिता-परीक्षा की प्रतिष्ठा तो पहले ही हो चुकी थी, परन्तु सुंग ने उसका पूर्ण विकास किया। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए विज्ञान, भूगोल, कानून, इतिहास और गणित आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक था। उत्तीर्ण होने के पश्चात् पदार्थी को पहले स्थानीय सरकार के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता था।

अपने आन्तरिक प्रशासन में ताइ-सुंग अति उदार एवं सहिष्णु शासक था। उसके साम्राज्य में बौद्ध, जरथुस्त्र मतानुयायी, ईसाई और कन्फ्यूशियस मतानुयायी समान स्वतन्त्रता के साथ अपने-अपने धर्मों का प्रचार एवं अनुसरण करते थे। सम्राट् स्वयं कन्फ्यूशियन था, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु न था। समकालीन धर्मविग्रह-संत्रस्त यूरोप के लिए चीन की धार्मिक सहिष्णुता का यह प्रयोग नितान्त विस्मयकारी था। ताइ सुंग की इस धार्मिक सहिष्णुता और उदारता से प्रोत्साहित होकर यूरोप और भारत के विभिन्न धर्मावलम्बी चीन आये। उनके पारस्परिक विचार-आदान-प्रदान से मानव संस्कृति के विकास को पर्याप्त योगदान मिला। ताइ सुंग के शासन-काल में ही ह्वेनसांग ने भारत की ऐतिहासिक यात्रा की थी।

धार्मिक दृष्टिकोण के समान सम्राट् की न्याय-व्यवस्था भी उदार थी। वह अभियुक्तों के साथ नम्रता का व्यवहार करता था और उनके हृदय में अपने कुकृत्यों के लिए पश्चात्ताप उत्पन्न कर उसका सुधार करना चाहता था। उसका दण्ड-विधान नम्र और उदार था। कहते हैं कि जब उसके मन्त्रियों न इस दण्ड-विधान को कठोर करने का परामर्श दिया तो उसने उत्तर दिया कि 'यदि मैं व्यय कम करूँ, कर हलके कर दूँ, एकमात्र ईमानदार पदाधिकारियों को नियुक्त करूँ जिससे जनता को पर्याप्त रूप से वस्त्र मिल सके, तो ये कार्य कठोरतम दण्डों की अपेक्षा चोरी-डकैती दूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में अधिक सहायक होंगे।' इस प्रकार का सुधारात्मक दृष्टिकोण आधुनिक शासकों के लिए भी आदर्श है।

सम्राट् कलाप्रेमी और साहित्य-प्रेमी भी था। उसने कन्फ्यूसियस के ग्रन्थों का अनेक बार अवलोकन करके कई महत्वपूर्ण सूक्तियों को प्रजा के हित के लिए उद्धृत किया जैसे 'शीशे के दर्शन की भाँति प्राचीन इतिहास का दर्शन साम्राज्यों की उन्नति एवं अवनति का प्रतीक है।'[१] उसने अपनी राजधानी में अनेकानेक भव्य भवन बनवाये और उन्हें विविध रूप में प्रसाधित किया। राजधानी के वैभव को देखने के लिए प्रतिवर्ष बहुसंख्यक विदेशी चीन आते थे। प्रसिद्ध सुधारक कनफ्यूशियस की पुण्य स्मृति में प्रायः प्रत्येक प्रान्त में मन्दिरों का निर्माण हुआ था। ये साहित्य, धर्म और कला के केन्द्र-विन्दु थे। ताइ सुंग स्वयं विद्वान था। उसने कनफ्यूशीय मत के प्रायः समस्त प्रमुख धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उसके बहुसंख्यक पदाधिकारी भी कवि और साहित्यकार थे। इस प्रकार ताइ सुंग का शासन-काल चीनी जनता के लिए सुख-शान्तिदायक था। एक इतिहासकार का कथन है कि उसकी मृत्यु पर जनता को असीम दुःख हुआ; विदेशियों तक ने अपने हाथ से अपने शरीर से रक्त निकाल कर सम्राट् की अरथी पर छिड़का और इस प्रकार अपना शोक-प्रदर्शन किया। ताइसुंग लोक-प्रिय शासक था। इसी प्रकार वह अनेक कठोर नियमों का भी विरोधी था जिसे उसके मंत्रियों ने पास किया था। उसका वास्तविक उद्देश्य प्रजा पर कम से कम कर लादना था जिससे वे

---

[१]. "By using a mirror of brass you may see to adjust your cap, by using antiquity as a mirror you may learn to foresee the rise and fall of the empires."

—W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुखपूर्वक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।[१] उसके इन दयालुतापूर्ण कार्यों ने उसकी राजधानी को अगणित भ्रमणकारियों से पूर्ण कर दिया जिनमें सुदूर देशों जैसे भारत एवं यूरोप से भाग लेने वाले भी थे। उसने सब को अकबर महान की भाँति संरक्षण प्रदान किया। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है कि उसकी मृत्यु पर उसकी प्रजा का क्षोभ सराहनीय था।[२] निश्चय ही उसका काल चीन का सर्वोत्तम काल था।[३]

तंग वंश का द्वितीय लब्धप्रतिष्ठ शासक मिंग ह्वाँग था। इसने ७१२ ईसवी से लेकर ७५६ ईसवी तक राज्य किया। चीन के इतिहास में यह एक विलक्षण शासक था। तलवार और लेखनी के प्रयोग में वह समानरूप से कुशल था। उसकी रौद्रता के समक्ष टर्की, फारस और समरकन्द नतमस्तक हो गये थे। साम्राज्य-विस्तार करने के पश्चात्

---

१. "If I diminish expenses, lighten the taxes, employ only honest officials, so that the people have clothing enough, this will do more to abolish robbery than the employment of the severest punishments."

—Fitzerald.

२. "When he died, the grief of the people knew no bounds, and even the foreign envoys cut themselves with knives and lancets and sprinkled the dead emperor's bier with their self-shed blood."

—Voltaire.

३. "At this time China undoubtedly stood in the very forefront of civilization, She was then the most powerful, the most enlightened, the most progressive and the best-governed epoch that the world had ever seen."

—Arthur Waley-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने प्रशासनीय सुधार किये। न्यायालयों और काराओं का पुनः संगठन किया गया तथा करों की वृद्धि कर राजकोष समृद्ध किया गया। विधान से मृत्यु-दण्ड हटा दिया गया। शासक के साथ-साथ मिंग ह्वांग एक उच्च कवि भी था। कविता के अतिरिक्त उसने संगीत की भी उपासना की थी। संगीत की अभ्युन्नति के निमित्त उसने अपने बाग में एक संगीत-भवन का निर्माण किया था।

सम्राट् का कवि-हृदय सौन्दर्योपासक भी था। साठ वर्ष की अवस्था में वह यान क्वी-फी नामक एक भ्रष्ट परन्तु सुन्दर रमणी के सम्पर्क में आया जो उसके विनाश का कारण बनी। विलासिता के गर्त में पड़कर वृद्ध सम्राट् प्रशासनीय कार्यों से विरत हो गया। जिस समय मिंग ह्वांग अपने मन-मस्तिष्क की समस्त अवशिष्ट शक्तियों के साथ रति की उद्दाम उपासना कर रहा था उसी समय यान क्वी-फी के एक अन्य प्रणयी आन लू-शान (जो सम्राट् के अधीन उत्तरी प्रदेश का गवर्नर था) ने सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और चीन साम्राज्य की राजधानी चंग-आन को नष्ट-भ्रष्ट करके संख्यातीत निरीह जनता को तलवार के घाट उतार दिया। इस सम्पूर्ण विपत्ति का मूल थी यान क्की-फी। अतः समाट् के क्षुब्ध सैनिकों ने उसके समक्ष ही उस विलासिनी की हत्या कर डाली। अन्त में आन लू-शान स्वयं अपने पुत्र के द्वारा मार डाला गया। कुछ समय पश्चात् मिंग ह्वांग पुनः अपनी राजधानी में लौटा। परन्तु प्रणय और युद्ध के दुःसह आघातों ने उसके वृद्ध कलेवर को जीर्ण-शीर्ण कर दिया था। नारी की उन्मुक्त उपासना के अन्तर्दाही दुष्परिणाम से बोझिल उसका जीर्ण हृदय ७६२ ईसवी में निस्पन्द हो गया।

कला—चीनी कला का इतिहास सुदीर्घ है। उसे अपने जीवन में अनेकानेक सम विषम पथों पर चलना पड़ा है, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। परिणामस्वरूप उसका इतिहास न तो सक्रम है और न विकास एक रूप ही। चीनी कला का इतिहास विभिन्न कालों का इतिहास है। परन्तु अभाग्यवश इसके सम्यक् अध्ययन के हेतु आज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे पास साधनों की अत्यल्पता है। चीन की अधिकांश प्राचीन कला-कृतियाँ विनष्ट हो गई हैं। उनके विनाश के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम चीनी कलाकारों ने अपनी कृतियों के निर्माण के निमित्त अपेक्षाकृत निर्बल सामग्री—लकड़ी और ईंट—का प्रयोग किया था। यह मृदुल सामग्री कालातिपात को सहन करने में सर्वथा अक्षम रही और शीघ्र ही नष्ट हो गई। द्वितीय, चीन की भूमि पर जल-प्रभाव होते रहे हैं, उस पर आप्लावन आते रहे हैं अथवा वह कृषि-कर्म के हेतु पुनः-पुनः जोती-बोई जाती रही है। इन सब का परिणाम यह हुआ कि भूगर्भ में दबे हुए कला के भग्नाव-शेष भी छिन्न-भिन्न हो गये और हम कला के इतिहास-निर्माण में उनका अधिक संख्या में उपयोग न कर सके। यदि मिस्र की भाँति चीन के कला-प्रतीक किसी मरुस्थल की दुर्गम एवं अव्यवहृत पट्टी के नीचे दबे होते तो किसी न किसी दिन अवश्य ही वे पुरातत्ववेत्ता के समक्ष आ जाते। परन्तु ऐसा न हो सका। ऐसी परिस्थिति में हमें चीन के कला-इतिहास-निर्माण में अत्यल्प एवं परोक्ष साधनों से ही सहायता मिल सकती है। ये साधन निम्न प्रकार के हो सकते हैं :

(१) **ग्रन्थ**—चीन के इतिहासकारों एवं लेखकों ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न चीनी कला-कृतियों का यत्र-तत्र वर्णन किया है। उनसे विभिन्न कालों की चीनी कला की अभ्युन्नति एवं रूप-रेखा निर्धारित की जा सकती है।

(२) **विदेशीय कला-कृतियाँ**—भारतीय तथा यूनानी प्रभाव के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर अपेक्षाकृत समानरूपी कला-कृतियाँ का सृजन हुआ था। बौद्ध धर्म एकमात्र भारत की सीमाओं के भीतर ही सीमित न रहा था। वह मध्य एशिया होता हुआ चीन पहुँचा और वहाँ से जपान। इसी प्रकार यूनानी परम्पराएँ उत्तरी पश्चिमी भारत में प्रविष्ट हुई और वहाँ से वे मध्य एशिया और चीन पहुँची। इस प्रकार बौद्धिक आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप चीन की अनेक कृतियाँ भारत एवं जपान की कलाकृतियों के सदृश बनीं। अतः आज यद्यपि चीन की वे अधिकांश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृतियाँ विलुप्त हो गई हैं तथापि उनके सदृश तत्कालीन भारतीय एवं जपानी कला-कृतियों के आधार पर हम उनके विषय में बहुत-कुछ अनुमान कर सकते हैं।

(३) चित्रों एवं उत्कीर्ण आकृतियों से सहायता—कालातिपात ने सबसे अधिक क्षति चीनी वास्तुकला को पहुँचाई हैं। आज चीन की प्राचीन वास्तुकला के अत्यल्प उदाहरण मिलते हैं। परन्तु हम शिला-खण्डों के ऊपर चित्रित अथवा उत्कीर्ण भवनाकृतियों से चीनी वास्तुकला के आकार-प्रकार का अनुमान कर सकते हैं।

चित्रकला—कला के क्षेत्र में चीन-निवासियों ने सबसे अधिक उन्नति की थी चित्रकला में। वे आदिकाल से ही चित्र-कला को कलात्मक विचार-प्रकाशन का सर्वोत्कृष्ट माध्यम मानते आये हैं। परन्तु खेद है कि आज चीनी चित्रकला की अधिक कृतियाँ उपलब्ध नहीं होती। रेशमी वस्त्रादि मृदुल आधारों के ऊपर अङ्कित होने के कारण वे दीर्घकाल तक अक्षत न रह सकीं। पुनः आन्तरिक युद्धों एवं बाह्य आक्रमणों के परिणाम स्वरूप भी चित्रकला के बहुसंख्यक प्रतीक राजप्रासादों तथा देवालयों के साथ-साथ ध्वस्त कर दिये गये थे।

चीनी चित्र-कला सुलेखन-कला (Calligraphy) और कविता (Poetry) का समन्वय है। इसमें प्रथम का तत्व सुदर्शन है और द्वितीय का रस। प्रधानता सदैव चित्र-फलकों (Painted boards) और चित्र-पटों (Painted scolls) की ही है, भित्ति-चित्रों (Mural painting) की नहीं। ये चित्र और चित्र-पट इच्छानुसार यत्र-तत्र प्रदर्शित किये जा सकते थे।

हान-काल के अन्तिम चरण से ही कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था, परन्तु यह प्रभाव चौथी और पाँचवीं शताब्दियों तक आते-आते अधिक दृढ़ीभूत हो गया था। तंगकालीन कलाकार बौद्ध प्रचारक भी है। कलाकार की छेनी और तूलिका ने तथागत के जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके अजस्र सन्देशों को साकार कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानव के व्यक्तित्व की अन्तर्निहित सद्शक्तियों के पूर्ण विकास की योजना प्रस्तुत की थी। भारतीय बौद्ध प्रभाव के साथ-साथ तंग-काल पर यूनानी प्रभाव भी कम नहीं है। कतिपय स्थलों पर सामन्तवादी युग अथवा हान-काल की कृतियों का भी अनुकरण किया गया है। तंगकालीन कला-कृतियों में सौन्दर्य-प्रदर्शन भद्र एवं अनुशासनशील है।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि चित्र-कला पर धर्म का प्रभाव था तथापि चीनी कलाकार एकमात्र धर्म-चित्रकार न था। उसके समक्ष जीवन के अन्यान्य विषय भी थे। चीनी चित्रकार भी था और विद्वान भी। इसलिए उसकी सुरुचि में विविधता थी। वह निर्बाधरूप से किसी भी विषय पर चित्राङ्कन कर सकता था। परिणामतः चीनी चित्रकला की स्वच्छन्दता और असाम्प्रदायिकता कभी भी नष्ट न हो सकी।

जैसा कि अभी कहा गया है, चीनी चित्रकला के विषय विभिन्न हैं। एक ओर बौद्ध और ताओ मत में प्रतिष्ठित अनेक धार्मिक विषयों को मूर्तिमान् किया गया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक वृत्तों का सुरुचि आलेखन है। कहीं भूतल की घटनाएँ हैं तो कहीं आकाश-मण्डल के आश्चर्य। परन्तु चीनी चित्रकार की मनोवृत्ति प्राकृतिक सुषमा के चित्रण में अधिक रमी है। पार्वतीय प्रदेश, विस्तीर्ण क्षेत्र, अगाध जलनिधि, उन्मुक्त खग-वृन्द, स्वच्छन्द पशु-वर्ग के चित्र अति सबल और सजीव हैं।

चीनी साहित्य में चित्रकला के विकास के प्राचीन उल्लेख मिलते हैं। परन्तु अभाग्यवश प्राचीन चित्र अधिकांशतः विनष्ट हो चुके हैं। हान-वंश के जो एकाध उदाहरण मिले हैं उनसे एक सुविकसित चित्रकला-परम्परा के अस्तित्व का परिचय मिलता है। कोरिया में प्राप्त कछुए की हड्डी से बने हुए एक बाक्स पर जो हानकालीन चित्र मिले हैं वे बहुत सुन्दर हैं। इसी प्रकार एक अन्य शृङ्गारदान के ढक्कन पर अङ्कित एक पौराणिक पक्षी (Phoenix) का सजीव चित्र हानकालीन चित्रकला का उत्तम उदाहरण है। चिनवंश अथवा हान वंश में चीन ने तूलिका का आविष्कार किया जिसने कला की अभ्युन्नति में विशेष योग दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हानवंश के पतन के पश्चात् और तंग वंश के उदय के पूर्व का काल भी चीनो चित्रकला के निरन्तर विकास का काल है। लगभग ३६४ ईसवी में कू-काइ-शीह (Ku Kai Chih) का उदय हुआ। यह अभी तक हुए चीन के प्राचीन चित्रकारों में सर्वश्रेष्ठ था। इसने अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण किया था। इनमें 'राजकीय धर्माचार्या की भर्त्सना' नामक चित्र विशेष प्रसिद्ध है।

४७५ ईसवी के लगभग चीन के कलाविद् हो (Hsieh Ho) ने अपना सुप्रसिद्ध कला-ग्रन्थ लिखा। इसमें चित्रकला के छः अंगों का प्रतिपादन किया गया था—(१) लयबद्ध ओजस्विता (२) शारीरिक संगठन (३) प्रकृति के साथ तादात्म्य (४) रंगों की उपयुक्तता (५) कलात्मक संगठन (६) प्रकृष्टता। अच्छे चित्रकार के लिए इन विशेषताओं का अनुसरण करना आवश्यक था।

इसके पश्चात् आता है तंग-काल जो कला के दृष्टिकोण से भी चीन का स्वर्णकाल था। फिट्जेरल्ड नामक इतिहासकार का कथन है कि यद्यपि आगामी शुंगकालीन चित्रकला प्रकृष्टता की दृष्टि से उच्चतर है तथापि रुचि-व्यापकता, प्रत्यक्षता और सबलता में वह तंगकालीन चित्रकला की अपेक्षा हीन है। तंगकालीन २२० चित्रकारों के नाम आज भी संसार के समक्ष हैं। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय है वू ताओ-से। इसमें सहज प्रतिभा थी। अल्पावस्था से ही यह एक कुशल चित्रकार हो गया था। इसने बहुसंख्यक चित्रों का निर्माण किया था जो अपनी सजीवता और सुन्दरता के लिए विश्व-विख्यात थे। इसके द्वारा निर्मित बुद्ध-चित्र आध्यात्मिक रहस्यात्मकता से ओत-प्रोत थे। कहते हैं कि जिस समय वह राजधानी के एक मन्दिर में तथागत के कुछ चित्र अङ्कित कर रहा था उस समय नगर को समस्त जनता उन्हें देखने के लिए आ खड़ी हुई। जिस समय वह महात्मा बुद्ध के मुख के चतुर्दिक आभा-मण्डल चित्रित कर रहा था तो उसके हाथ की झंझागति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि कोई दैवी शक्ति उसे प्रेरित कर रही हो। एक बार उसने नरक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का एक चित्र निर्मित किया। कहते हैं कि इसकी रौरवता एवं भयंकरता को देखकर अनेक कसाइयों एवं मछुओं ने अपनी हिंसात्मक वृत्ति का परित्याग कर दिया। इतना सजीव एवं प्रभावोत्पादक था वह चित्र। वू चीन में अपने रेखा-संगठन में अद्वितीय था।[१] इस चित्रकार के विषय विविध थे। दैवी एवं मानवी आकृतियों के चित्रण में इसकी मनोवृत्ति जितनी रमती थी उतनी ही प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में। वू की तूलिका एक ओर पशु-पक्षियों के स्वच्छन्द विचरण को चित्रित करती है तो दूसरी ओर दैत्य-दानवों के क्रूर कर्मों को। कहीं वैराग्य की शुचिता है तो कहीं विलास का अनुराग। सभी विषयों के चित्रण में कलाकार की महाप्राणता स्पन्दित हो रही है। सभी चित्र सजीव हैं।

तंगकालीन दूसरा प्रमुख चित्रकार ली (Li Ssu-Hsiin) था। यह मिंग ह्वांग की राजसभा में रहता था। इसके चित्र भी अपनी स्वाभाविकता और सप्राणता के लिए प्रसिद्ध हैं। एक बार राजप्रासाद के एक पर्दे पर इसने एक तालाब का चित्र बनाया था। यह इतना सजीव था कि कभी-कभी सम्राट् को इसके जल के कलरव सुनने का भ्रम हो जाता था।

वाँग वी इस युग का तृतीय उल्लेखनीय चित्रकार था। यह अपने रहस्यात्मक एवं सांकेतिक चित्रण के लिए प्रख्यात था। इसके चित्र सामान्य स्वरूपों के द्वारा गूढ़ एवं गम्भीर सन्देशों का वहन करते थे। इसके द्वारा निर्मित प्रत्येक चित्र किसी काव्य-खण्ड की गरिमा रखता था।

वास्तुकला—वास्तुकला का चरम उत्कर्ष प्रायः राज्य और धर्म की छत्रच्छाया में होता देखा गया है। परन्तु चीन में न तो शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की अव्याहत परम्परा ही थी और न संगठित पुरोहित-वर्ग की संस्था। इसलिए इस देश में कभी भी बहुसंख्या में भव्य राजप्रासादों, राज-समाधियों और मन्दिरों का निर्माण न हो सका था। परन्तु अन्य

---

१. 'Never had art known such mastery and dilicacy of line.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालों की अपेक्षा तंग-काल में राजकीय सत्ता की मान्यता और देशीय सम्पन्नता अधिक थी। अतः इस समय प्रासादों और मन्दिरों आदि का निर्माण भी अन्य युगों की अपेक्षा अधिक हुआ। पीछे कहा जा चुका है कि ताइ सुंग और मिंग ह्वाँग दोनों सम्राट् इस युग के प्रसिद्ध निर्माता थे। इन्होंने अपनी राजधानी में अनेक भव्य भवनों का निर्माण कराया था। चीनी वास्तुकला की कतिपय विशेषतायें हैं :

(१) कृत्रिम चबूतरे का प्रयोग—प्रायः अधिकांश भवन कृत्रिम चबूतरों के ऊपर बनाये जाते थे। इन चबूतरों के ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। धनिकों के भवनों एवं मन्दिरों, पेगोडा आदि के चबूतरों और सीढ़ियों के ऊपर अनेक प्रकार का अलंकरण भी होता था।

(२) प्रांगण की प्रधानता—चीनी परिवार प्रायः सम्मिलित रूप से एक ही स्थान पर रहते थे। किसी विस्तीर्ण प्रांगण के भीतर ही उनके अनेक भवन बनते थे जिनमें विशाल परिवार की पृथक्-पृथक् उप-शाखायें रहती थीं। प्रांगण के द्वारा ही एक भवन दूसरे भवन से पृथक् किया जाता था। व्यक्तिगत भवनों के भीतर भी प्रांगण की प्रधानता होती थी।

(३) प्राचीर-वेष्टिका का प्रयोग—चीनी वास्तुकला में प्राचीर-वेष्टिकाओं का विशेष महत्व था। प्रायः नगरों, उद्यानों, राजप्रासादों, सामान्य भवनों, मन्दिरों एवं पैगोडादि के चतुर्दिक चीनी वास्तुकार सदैव प्राचीर निर्मित्त किया करता था जिसका उद्देश्य एकमात्र चोरों-डाकुओं एवं पशु इत्यादि से रक्षा करना था। कभी-कभी तो भवनों के प्रवेश-द्वार के भीतर भी लघु प्राचीर खड़े कर दिये जाते थे। इन्हें 'आवरण-प्राचीर' (Screen Wall) कहते हैं। इनका निर्माण अन्धविश्वासमूलक था। चीनियों का विश्वास था कि दानवी शक्तियाँ सदैव सीधे चलती हैं। यदि उनके समक्ष कोई अवरोध खड़ा कर दिया जाता तो वे घूमकर वक्रपथ से अग्रसर न होंगी। इसी आधार पर चीनी अपने गृह-द्वारों के भीतर दानवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्तियों के प्रवेश-निरोध के हेतु लघु प्राचीर खड़े कर देते थे।

(४) लकड़ी का प्रयोग—चीनी भवनों में पाषाण और ईंट की अपेक्षा लकड़ी का प्रयोग अधिक होता था। कभी-कभी भवनों के बाह्य तो लकड़ी के बनते थे, परन्तु उनके भीतर कच्ची-पक्की ईंटें भर दी जाती थीं। भवन के स्तम्भ और छतें भी प्रायः लकड़ी की ही बनती थीं। परन्तु धनिक व्यक्तियों के भवनों में छतों का पटान बहुधा पक्की ईंटों और पत्थरों (Tiles) की सहायता से होती थी।

(५) उत्तुङ्गता विहीनता—चीन के भवनादि विस्तीर्ण तो होते थे, परन्तु अधिक ऊंचे नहीं। प्रायः उनमें एक अथवा दो मंजिल ही होते थे।

(६) स्तम्भ-योजना—छतों के भार को रोकने के लिये अधिकांशतः स्तम्भों का निर्माण किया जाता था। स्तम्भों के ऊपर जिस प्रकार के ऊपर जिस प्रकार के शीर्षभाग भारतवर्ष में मिलते हैं उस प्रकार के चीनी स्तम्भों के ऊपर नहीं। अधिक से अथिक उनके ऊपर एक पीठिका होती थी।

(७) छतें—चीनी भवनों की छतें प्रायः तम्बू की भाँति ढालू होती थीं। उनमें दोहरी और तेहरी पटान होती थी। बहुधा किनारों पर जाकर छत के दोनों ढाल फिर ऊपर की ओर घूम कर वक्राकार हो जाते थे। इस प्रकार सम्मुख से चीनी छतों के दोनों छोरों पर दो सींग से निकले हुए प्रतीत होते थे। छतों का बहिर्भाग इतना अधिक अलंकृत रहता था कि उसकी रेखायें भी स्पष्टतया दृष्टिगत न होती थीं।

(८) आकार—चीनी के अधिकांश भवन आयताकार होते थे।

(९) रंग—चीनी भवनों का बहिर्भाग और अन्तर्भाग, प्राचीर, छतें, स्तम्भ और द्वार सभी लाल, पीले तथा अन्य प्रकार के रंगों से रँगे रहते थे।

चीनी मन्दिरों का आकार-प्रकार भी चीनी भवनों के समान ही होता था। उनका आधार भी एक विस्तीर्ण प्रांगण होता था। इसी प्रांगण के चतुर्दिक अनेक हाल (Hall) निर्मित किये जाते थे। मध्य काह ाल पूजा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह होता था। उसके इतस्ततः साधुओं एवं भिक्षुओं के निवास-गृह होते थे। प्रमुख हाल विविध अलंकरण-प्रणालियों, विशेषतया बौद्ध अथवा गान्धार प्रणालियों, से प्रसाधित होता था। परन्तु अभाग्यवश शांसी में उपलब्ध एक मन्दिर के अतिरिक्त तंगकालीन किसी अन्य मन्दिर का अभी तक पता नहीं लगा है। परन्तु जापान की वास्तु-परम्परा तंगकालीन चीन से आई थी। अतः जापानी मन्दिरों की सहायता से हम तंगकालीन मन्दिरों का आकार-प्रकार निर्धारित कर सकते हैं। जापान के होर्युजी मठ का स्वर्ण-कक्ष तंगकालीन वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका निर्माण ६०७ ईसवी के लगभग हुआ था।

चीनी वास्तुकला की प्रमुख कृति पैगोडा है। चीन में इसका आविर्भाव बौद्ध धर्म के आगमन पर हुआ। कदाचित् यह भारतीय स्तूप का ही रूपान्तर था। तंगकालीन अनेक पैगोडा आज भी विद्यमान है। इनका उत्तुंगता दर्शनीय है। ये पंद्रह मंजिल तक के होते थे। कभी-कभी इनकी ऊँचाई ३६० फुट तक होती थी। आज जो पैगोडा उपलब्ध होते हैं वे प्रायः पक्की ईंट और पत्थर के बने हैं। सम्भव है कि लकड़ी के बने हुए पैगोडा विनष्ट हो गये हों चीनी पैगोडा प्रधानतः षड्भुजाकार अथवा वर्गाकार होता थ।।

चीन के भवन, समाधि, मन्दिर और पैगोडादि दो शैलियों पर निर्मित हुए थे—(१) उत्तरी शैली और (२) दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली को प्रसाद शैली भी कहते हैं, क्योंकि इस शैली के आधार पर ही चीन के सुन्दरतम राजप्रासादों एवं राजसमाधियों का निर्माण हुआ था। इसके अन्तर्गत छतें अथवा ऊर्ध्वभाग अत्यधिक ढालू और वक्र नहीं होते थे। अधिक से अधिक उनकी वक्रता (Curvature) तम्बू के ढाल के सदृश होती थी। अलंकरण भी अल्प एवं संयत परिमाण में होता था। प्रसाधन-मूर्तियाँ भी एकमात्र छोरों पर ही होती थीं, सम्पूर्ण छत अथवा उर्ध्वभाग पर नहीं। इन मूर्तियों का आकार छोटा, परन्तु निर्माण अधिक कलात्मक होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके विरुद्ध दक्षिणी शैली में छतों अथवा ऊर्ध्वभाग की वक्रता कहीं अधिक होती थी। वे गहरे ढाल की भाँति नीचे उतरते और पुनः घूमकर छोरों पर सीगों की भाँति वक्राकार हो जाते थे। छत अथवा ऊर्ध्वभाग अलंकरण से सम्पूर्णतः आच्छादित रहता था। यही दशा स्तम्भों की भी होती थी। देवो-देवताओं एवं नाना प्रकार के पौराणिक तथा वास्तविक पशुओं की मूर्तियाँ भवन-प्रसाधन के निमित्त विशेष प्रकार से प्रयुक्त होती थीं। इनमें कला की अपेक्षा बहुलता ही अधिक होती थी।

तंगकालीन नगरों की निर्माण-योजना अपने पूर्वगामी और अनुगामी नगरों के सदृश ही थी। प्रायः प्रत्येक नगर में दो प्रमुख सड़कें होती थीं। वे सीधे आकर नगर के मध्य में एक-दूसरे को काटती थीं। इस प्रकार नगर चार आयतों में विभक्त हो जाता था। नगर के मध्य-स्थल पर जहाँ दोनों सड़कें चौराहा बनाती थीं वहाँ एक सुदृढ़ चतुर्द्वार गढ़ होता था। द्वार चारों दिशाओं में होते थे। गढ़ के ऊपर पैगोडा के समान एक तिमंजिला टावर होता था। इस पर सदैव एक सैनिक दल रखा जाता था। टावर के ऊपर रखा हुआ विशाल ढोल जनता को समय की सूचना देता रहता था। बाह्य आक्रमण से संरक्षण के निमित्त प्रत्येक नगर के चतुर्दिक एक आयताकार प्राचीर होता था। इस प्राचीर के चारों कोनों पर भी एक-एक टावर निर्मित्त किया जाता था। नगर में प्रवेश करने के हेतु इस प्राचीर में चार प्रवेश द्वार होते थे। प्राचीन संसार में चीन के ये प्राचीर अपनी सुदृढ़ता और उत्तुङ्गता के लिये प्रसिद्ध थे। साधारणतया न तो तोड़े जा सकते थे और न चढ़े ही जा सकते थे।

चीनी प्रकृत्या सौन्दर्योपासक था अतः उसके प्रत्येक नगर और प्रायः प्रत्येक गृह में उद्यानों एवं वाटिकाओं की योजना थी। इनमें वह नाना प्रकार के पादप, लतायें एवं झाड़ियाँ आदि लगाता और पशु-पक्षी पालता। उद्यानों में बहुधा तालाब और कृत्रिम स्रोत भी होते थे। इनमें चीनी मछलियाँ भी पालता था। इस प्रकार भौतिक वातावरण में रहते हुए भी चीनी प्रकृति से सम्पर्क स्थापित किये रहता था। यह सम्पर्क उसके मन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मस्तिष्क में उदात्त एवं कलात्मक विचारों की सृष्टि करता था।

स्थापत्य, तक्षण एवं धातु-कलायें—चीनी स्थापत्य, तक्षण एवं धातु कलाओं का चरमोत्कर्ष तंग-काल में देखा जाता है। परन्तु उस काल के आगमन् के पूर्व भी इन कलाओं की एक सुसम्बद्ध परम्परा विकसित हो रही थी। आदि काल से ही इन कलाओं के प्रदर्शन के हेतु चीनी कलाकार विविध प्रकार के साधनों का प्रयोग करता रहा है। इनमें पाषाण, संगमरमर, ईंट, धातु और हड्डी विशेष उल्लेखनीय हैं। सभी पर समान रूप से चीनी स्थापत्यकार एवं तक्षणकार का हस्तलाघव प्रदर्शित किया गया है। कुछ में गढ़ाई का काम है, कुछ में ढलाई का और कुछ में खुदाई का। परन्तु प्रत्येक स्थिति में कला-परम्परा के क्रमिक विकास का इतिहास दृष्टिगत होता है।

शैङ्ग-काल के अति प्राचीन अस्थि-खण्ड मिलते हैं जिन्हें 'ओरेकल बोन्स' (Oracle Bones) कहते हैं। इनके ऊपर कुछ अङ्क, रेखायें और नाम उत्कीर्ण मिलते हैं। यह धार्मिक कला-सामग्री है। इसके ऊपर उत्कीर्ण प्रश्नोत्तर कदाचित् तत्कालीन भविष्यवेत्ताओं की महत्ता की सूचना देते हैं।

शैङ्ग और चाउ काल की धातु-कृतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। इनमें प्याले, कटोरे, कलश, तश्तरियाँ, ढक्कन, घण्टियाँ तथा विविध प्रकार की पशु-आकृतियाँ हैं। इन सबके ऊपर विविध रेखा-संगठनों के द्वारा भारी अलंकरण उत्कीर्ण है। कभी-कभी तो अलंकरण इतना अधिक है कि कहीं पर भी धातु की रिक्त सतह नहीं दिखाई देती। धातु में अधिकांशत: काँसे का ही प्रयोग किया गया है। अनेक स्थलों पर जेड नामक पाषाण-विशेष की सहायता से निर्मित पौराणिक एवं वास्तविक पशुओं की आकृतियाँ, कटारें, बक्सुए, आभूषण आदि भी उपलब्ध हुए हैं। कुछ सामग्री अस्थि-निर्मित भी है। सबके ऊपर समान रूप से अलंकरण की बहुलता है। विशुद्ध कला की दृष्टि से यह समस्त सामग्री सुन्दर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हान-काल के आगमन पर यह कला-परम्परा और भी विकसित हो गयी। हानकालीन राजनीतिक संगठन एवं सामाजिक संरचा ने कला को और भी प्रोत्साहन दिया। शैंग और चाउ काल में अधिकांश कला-सामग्री समाधियों के निमित्त बनायी जाती थी, उसका केन्द्र-बिन्दु धर्म था। परन्तु हान-काल में वह विविध-विषया हो गयी। जीवन की अनेकानेक नूतन अनुभूतियों एवं अभिलाषाओं ने कला के क्षेत्र को व्यापक कर दिया। अब वह एकमात्र राजाओं एवं सामन्तों तक ही सीमित न रही। वह जन-साधारण के सामान्य गृहों में भी अवतरित हुई।

हान-काल का रिलीफ-स्थापत्य प्रगल्भ है। यद्यपि यह समाधियों पर मिलता है तथापि इसके विषय धर्मेतर हैं।[१] उदाहरणार्थ एक में हूणों के विरुद्ध युद्ध का दृश्य प्रदर्शित है, दूसरे में कन्फ्यूशियस और लाओत्से का सम्मिलन। अन्यत्र दल-बल के साथ किसी राजकुमार के जलूस का दृश्य है। एक स्थल पर शी ह्वाँग टी की हत्या करने के प्रयास का दृश्य विशद और सजीव है।

हान कलाकारों ने पशुओं की आकृतियाँ भी बड़ी कुशलता के साथ निर्मित की थीं। उनका सर्वप्रिय पशु घोड़ा था। जेड पाषाण की सहायता से निर्मित्त हानकालीन एक अश्व-शीश मिला है जो अपनी शक्ति और सजीवता के लिये विशेष प्रसिद्ध है। अश्व के अतिरिक्त एक पौराणिक पक्षी-विशेष (Dragon) के उत्कीर्ण करने में भी हान-स्थापत्यकार ने अपना विशेष चातुर्य प्रदर्शित किया हैं। तत्कालीन एक रिलीफ में इस अद्भुत पशु की आकृति अति सुन्दर है। कला के क्षेत्र में पाषाण का यह प्रचुर प्रयोग चीन में विदेशों से आया। हान-साम्राज्य का यूनानी संसार और पार्थिया से सम्पर्क था जो पाषाण-प्रयोग में सिद्धहस्त थे। वहीं से चीनियों ने कला के इस स्थायो माध्यम को ग्रहण किया। यद्यपि हान-शैली में भी यत्र-तत्र ईरानी और यूनानी प्रभाव दृष्टिगत होता है तथापि

१. It is the secular scenes which predominate.

—Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारणतया वह स्वदेशीय परम्पराओं की ही अनुगामिनी है।

हान-कलाकारों ने अपनी कलाभिव्यक्ति के लिये लोहे का भी उपयोग करना प्रारम्भ किया, यद्यपि याज्ञिक एवं धार्मिक उपकरणों के निर्माण के निमित्त पूर्व-प्रतिष्ठित काँसे का ही प्रयोग होता रहा। धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होनेवाले कुछ हानकालीन कांस्यनिर्मित दर्पण उपलब्ध हुए हैं जो कला की दृष्टि से सुन्दर हैं। अन्य धातुखण्डों के ऊपर पशु-आकृतियों की सहायता से जो अलंकरण किया गया है उस पर सिथियन शैली का प्रभाव है। पश्चिमीय एशिया में छोटे-छोटे धातु-खण्डों के ऊपर-विशिष्ट पशुओं की आकृतियों को उत्कीर्ण करने एवं उन्हें ताबीज़ों की भाँति पहनने की प्रथा थी। इसी प्रथा का अनुकरण करते हुए चीनियों ने भी अपने लघु धातु-खण्डों के ऊपर पशुओं की सुन्दर आकृतियाँ उत्कीर्ण कीं। इनमें घोड़े तथा ड्रैगन और फोयनिक्स नामक पौराणिक पक्षियों की आकृतियाँ विशेष लोक-प्रिय थीं।

चाउ और हान कालों की चीनी कला मूलतः स्वदेशीय थी। उसमें विदेशीय अंश गौण एवं अप्रत्यक्ष थे। यदि चीनी कलाकार किसी विदेशीय परम्परा का प्रयोग भी करता था तो उसे अपनी अभिरुचि एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाकर। परन्तु तंगकाल में यह स्थिति न रही। तंगकाल चीन में बौद्ध धर्म के महान प्रसार का काल है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ बौद्ध कला की परम्परायें भी चीन में प्रविष्ट हुईं। यह कला प्रधानतः गन्धार-कला थी जो भारतीय एवं यूनानी कला-प्रणालियों के सम्मिश्रण से उद्भूत हुई थी। तंगकाल में यह गन्धार-कला उत्तर-पश्चिमीय भारत चलकर मध्य एशिया से होती हुई चीन पहुँची और वहाँ की कला को प्रभावित किया। यों तो यह विदेशीय प्रभाव तंगकालीन काल की समस्त शाखाओं पर दृष्टिगत होता है, परन्तु वह चीनी स्थापत्य के ऊपर सबसे अधिक अंश में पड़ा। बौद्ध धर्म के प्रविष्ट होते ही चीनी स्थापत्यकार ने महात्मा बुद्ध तथा बोधिसत्वों की बहुसंख्यक प्रतिमाओं का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि शैली के दृष्टिकोण से इन पर यूनानी प्रभाव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी दृष्टिगत होता है, परन्तु उनकी आत्मा पूर्णरूपेण भारतीय है। चीनी स्थापत्यकार ने तथागत को यूनानियों की भाँति आदर्श मानव के रूप में नहीं वरन् निस्पृह लोकोत्तर के रूप में प्रदर्शित किया है। यही कारण है कि उसकी बुद्धि-प्रतिमाओं में शरीर-सौष्ठव के ऊपर इतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना आध्यात्मिक सन्देश के ऊपर। चीनी स्थापत्यकार को इन प्रतिमाओं की मुद्राओं से तथागत का तत्वज्ञान एवं संत्रस्त मानवता के प्रति उनका असीम करुणा-भाव निस्सृत होता है। उनके मुख पर निस्पृह शान्ति विराजमान हैं। तंगकाल के प्रथम चरण में इस प्रकार की अनेकानेक बौद्ध प्रतिमाओं को सर्जना हुई थी।

परन्तु तंगकाल के द्वितीय चरण से, जब चीन की कला अधिक परिपक्व हो गयी, उसने बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण स्वदेशीय मनोवृत्ति के अनुकूल करना प्रारम्भ किया। इन प्रतिमाओं में कठोर असांसारिकता एवं निवृत्तिशालिता के स्थान पर संयत एवं अनुशासनशील मानवीयता के प्रदर्शन की चेष्टा की गयी है। परन्तु महात्मा बुद्ध और बोधिसत्वों को अधिकाधिक मानवीकृत करने के प्रयास ने कालान्तर में चीन के बौद्ध स्थापत्य की अधोगति कर दी। मानवी सौंदर्य के प्रदर्शन ने आध्यात्मिक सन्देश की इतिश्री कर दी। सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के ताओं (Tao Hsiian) नामक एक बौद्ध भिक्षु का कथन है कि तत्कालीन धार्मिक प्रतिमाओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे नर्तकियों की प्रतिमायें हों। उन्हें देखकर राजसभा की प्रत्येक नारी यह कल्पना करती थी कि मैं स्वरूप में बोधिसत्व के ही समान हूँ। बौद्ध-प्रतिमाओं में नारी-सुलभ अतिशय सौन्दर्य के आरोपण का यह दुष्परिणाम था।

तंगकाल में पूर्वकालीन समाधि-स्थापत्य (Tomb Sculpture) भी सक्रम रहा। सम्राट् ताइ सुँग की समाधि पर रिलीफ में उत्कीर्ण छः अश्वों की आकृतियाँ अति सजीव हैं। घोड़ों का अंग-प्रत्यंग चेतना से उत्प्राणित है। उनकी पीठ पर काठी कसी हुई है और वे द्रुतगति से आक्रमण करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। उनके विस्फारित नेत्र, उन्मुख आयाल तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पतनशील खुर स्वाभाविकता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। इस रिलीफ-स्थापत्य को देखने से प्रतीत होता है कि चीनी कलाकार गतिशील मूर्तियों के निर्माण में भी दक्ष था। इसी प्रकार तंगवंश के तृतीय सम्राट् काओ सुँग की समाधि पर उत्कीर्ण शुतुर्मुग की मूर्तियाँ भी कलात्मक हैं।

धातु, विशेषतया काँसे, के ऊपर कला-प्रदर्शन भी पूर्ववत् होता रहा। परन्तु तंगकालीन कलाकारों में धातुखण्डों के ऊपर एकमात्र पौराणिक पक्षियों को ही उत्कीर्ण नहीं किया वरन् अन्य पक्षियों एवं पुष्प-पत्रों को उत्कीर्ण कर अपनी नव अभिरुचि का परिचय दिया। काँस्य-खण्ड पर उत्कीर्ण एक उड़ते हुए पौराणिक पक्षी (Phoenix) का चित्र तंगकालीन धातु-कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

चीनी कलाकार की प्रतिभा का प्रदर्शन मृण्कला में भी हुआ है। मृण्कला ही वास्तव में चीन का स्थापत्य है।[१] इस देश के चाय के प्रति असीम अनुराग ने लघु मृण्पात्रों के निर्माण को विशेष प्रोत्साहन दिया था। चीनी मिट्टी की सुलभता के कारण इस कला का विकास भी सुगम हो गया। अल्पमूल्य के परन्तु सुन्दर और उपयोगी मृण्पात्रों की लोकप्रियता स्वाभाविक थी। यही कारण है कि चीन में इस कला का प्रयोग प्राचीन और प्रचुर दोनों था। इस कला के अन्तर्गत प्यालों, तश्तरियों, कटोरों, गिलासों और कलशों आदि का तो निर्माण हुआ ही, साथ में देवी-देवताओं, मनुष्यों, पशु-पक्षियों आदि की सुन्दर आकृतियों का निर्माण भी प्रचुर मात्रा में हुआ। लोक-कला होने के कारण यह चीनियों की सहज सौन्दर्यभावना की प्रतीक है।

तंगकालीन मृण्यमूर्तियाँ अपनी सजीवता और वास्तविकता की दृष्टि से अपूर्व हैं। इनके निर्माताओं ने मूर्तियों में असाधारण प्रतिभा अथवा लोकोत्तर व्यक्तित्व के प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की है। उनकी मूर्तियाँ प्रधानतः सामान्य मनुष्यों की भावनाओं को ही अभिव्यक्त करती हैं। इसी प्रकार

---

१. Pottery is the sculpture of the Chinese.
— Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृण्भाण्ड एवं मृण्पात्र जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अपनी सार्वजनीनता के कारण चीनी मृण्कला अति लोकप्रिय हो गयी थी।

साहित्य—तंग युग साहित्य के लिए भी स्वर्णयुग था। इतिहास-प्रसिद्ध विशाल प्राचीर के निर्माता उदात्त साहित्य के भी निर्माता थे। तंग युग रचनात्मक युग था। तंगयुगीन शब्द-शिल्पी ने जिन गद्यात्मक एवं पद्यात्मक एवं कला-कृतियों का निर्माण किया है वे किसी भी युग में किसी भी देश के साहित्य मण्डल को अपनी स्वर्ण-रश्मियों से साभिमान प्रदीप्त कर सकती हैं। तंगकालीन साहित्य-सर्जना साहित्यिक आप्लावन था जो चीनी हृदय के अतल रचनात्मक स्रोत से परिपुष्ट हो रहा था। यह आप्लावन चीनी साहित्य-क्षेत्र की समस्त दिशाओं में प्रकट हुआ था। चीन-निवासी को रचनात्मक प्रतिभा साहित्य के समस्त क्षेत्र में समानरूप से प्रस्फुटित हुई थी।

तंग-काल कविता के हेतु उत्कर्ष काल था। इसके पूर्व भी चीन में कवि हुए थे, परन्तु उनकी संख्या अत्यल्प थी। चाउ काल में चाउ यु-आन नामक एक ही प्रसिद्ध कवि हुआ था। हान-काल भी शेन यो नामक एक ही कवि के लिए प्रख्यात है। परन्तु तंग-काल में तो कवियों का मेला-सा दृष्टिगत होता है। ताई सुंग और मिंग ह्वांग के शासन-काल में चीनी कविता अपने विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुकी थी। उच्च पद प्राप्त करने के लिए कविता का ज्ञान महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। परिणामतः राज्य के बहुसंख्यक पदाधिकारी कवि भी थे। ताई सुंग के समय तो कविता की इतनी प्रतिष्ठा हुई कि सम्राट् के समक्ष प्रस्तुत होने वाले आवेदन-पत्र भी पद्यबद्ध होने लगे। मिंग ह्वांग कवियों का प्रख्यात आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में उच्चकोटि के कवि रहते थे। उत्कृष्ट कवियों को राज्य समय-समय पर पुरस्कृत करता था। राजकीय प्रोत्साहन के परिणाम-स्वरूप तंग काल में बहुसंख्यक कविताओं का रचना हुई। अठारहवीं शताब्दी के एक मंचू सम्राट् ने इनका विशाल संग्रह कराया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। इस संग्रह में २३०० कवियों की ४८६०० कविताएँ उपलब्ध होती हैं। तंगकालीन बहुसंख्यक कवियों में ली पो, टू फू, पो चुई और वेंग वे सर्वप्रमुख हैं। प्रसिद्ध रचनाओं में ली पो-रचित 'वंश-समाधि से षट्आलसी' (Six Idlers of the Bamboo-grave), पो चुई रचित 'अनन्त भ्रम' Ever lasting wrong), और तू फू रचित 'अष्ट अमर (Eight Immortals) के नाम आते हैं। वेंग वे चीन का प्रसिद्ध कवि भी था और चित्रकार भी। लेखनी और तूलिका के प्रयोग के यह निर्विशेषरूप से पटु था। चीनी कविता के विषय विविध हैं। कहीं उसमें युद्ध की रौद्रता है तो कहीं मित्र की स्निग्धता। कहीं कौटुम्बिक जीवन की शुचिता है तो कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य के चल-चित्र। प्रणय की अपेक्षा धर्म में चीनी कवि की मनोवृत्ति अधिक रमी हैं। यही कारण है कि चीनी साहित्य में प्रणय-काव्यों की अल्पता और धार्मिक काव्यों की बहुलता है। फिट्जेराल्ड के शब्दों में 'चीन के समस्त कवि उच्चकोटि के विद्वान थे। कविता पर ताओवाद का उतना ही गहन प्रभाव पड़ा था जितना कन्फ्यूशियस का मनुष्य के चरित्र-निर्माण पर।' दुःखान्त नाटकों एवं छायावाद प्रदर्शन में चीन की कविता विश्वसाहित्य में अद्वितीय थी।[१]

चीन के प्रमुख कवियों की रचनाओं का विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

तंग-काल में पद्य के साथ-साथ गद्य की भी सम्यक् उन्नति हुई। हान यू इस समय का अद्वितीय गद्य-लेखक था। इसके लेख राष्ट्रीय उन्नयन की भावना से ओत-प्रोत हैं। इसकी शैली में नवीनता और पुरातनता का सामंजस्य है। वह नितान्त सरल और भावपूर्ण है। तू यू नामक एक अन्य गद्य-लेखक ने विधान के ऊपर तंग यातेन (Tung Tien) नामक एक पुस्तक की रचना की। लियू ची नामक एक सुविख्यात इतिहास-

१. "In the framework of romance and tragedy, the poetry of China flourished as never before."

—W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखक था। चीन के प्राय: समस्त उत्तरकालीन इतिहास-लेखकों ने हान कालीन सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सु-मा चीन की 'शीह् ची' नामक इतिहास-कृति का अनुकरण किया है। चीन के निवासियों को इतिहास-ग्रन्थों की रचना में विशेष रुचि थी। यही कारण है कि जितने इतिहास चीन में रचित हुए उतने किसी भी देश में नहीं। चीनियों ने आख्यायिका-साहित्य का भी सृजन किया था। तंग काल में इस साहित्य को शु-आन-शी (Ch'uan Ghi) के नाम से पुकारते थे। इसमें पौराणिक एवं लोकश्रुत पुरुषों के साहसिक प्रणय-सम्बन्धी कर्मों का वर्णन होता था। जहाँ तक उपन्यास-रचना का सम्बन्ध है, चीनी साहित्यकार इसकी ओर निरपेक्ष था। वह बहुत दिनों तक इसे साहित्य का अंग मानने के लिए ही प्रस्तुत न था।

चीन में नाटकों का प्रादुर्भाव कालान्तर में हुआ, यद्यपि उसका बीजारोपण तंग-काल में ही हो जाता है। तंग नरेश अपनी विजयों के उपलक्ष्य में समारोह करते थे। इन समारोहों में नृत्य-संगीत का विशेष स्थान था। ऐसे अवसरों पर कवि छोटे-छोटे गीत लिखते थे जो उपस्थित जनता के समक्ष नृत्य एवं वाद्य के साथ ही साथ गाये जाते थे। यही प्रदर्शन नाटक का प्रारम्भिक रूप था। ताइ सुङ्ग के शासन-काल में पो चेन ने इसी प्रकार 'युद्धरेखा का ध्वंस' (Breaking the Battle Line) नामक एक गीत बनाया था। यह नृत्य के साथ प्रस्तुत किया गया था। मिंग ह्वांग ने पियर गार्डन (Pear Garden) नामक प्रथम नाट्यशाला की स्थापना की थी। इसमें वस्तुतः नृत्य-संगीत की ही शिक्षा दी जाती थी।

चीनी-धर्म—'पानकू' के समय से चीनी लोग प्रकृति-पूजा में विश्वास रखते थे। प्रागैतिहासिक काल में उर्वरा शक्ति की पूजा होती थी। इनका यह विश्वास था कि यदि प्रकृति देवी प्रसन्न हैं तो हमारी खेती-बारी अच्छी होगी और यदि वह अप्रसन्न हैं तो बाढ़ एवं अकाल से जनता को कष्ट होगा। ऋतु-आगमन के समय विशेष समारोह मनाया जाता था। अपने विविध उत्सवों में ये वायु, वृक्ष, सर्पों तथा दैत्यों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलि देते थे। पूर्वजों की पूजा करना चीनी जनता का विशेष कर्म था। सम्मिलित पारिवारिक जीवन की प्रथा चीन में बहुत पहले से ही थी। ये लोग लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में विश्वास रखते थे। प्राचीन काल से शासक की पूजा की जाती थी क्योंकि उसे ईश्वरीय देन समझा जाता था।

चीन का साधारण जनसमुदाय भारतीयों की तरह दिवंगत आत्मा के लिये अपने भोजन का अंश निकालता था। यह उसका दैनिक क्रम था।

उर्वरता देवी की पूजा के अतिरिक्त चीनी शाँग टी (Shangti) नामक एक अन्य देवता की पूजा करते थे। सामंतवादी युग में आकाश की पूजा भी प्रारम्भ हुई। राजा को इस समय देवपुत्र माना जाता था। ग्रह नक्षत्रों पर विश्वास किया जाता था और अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से उसका प्रभाव आँका जाता था। ज्योतिषियों का स्थान ऊँचा था।

तंग-वंश अपनी धार्मिक अभ्युन्नति के लिये प्रसिद्ध है। जिस समय योरप के विभिन्न देशों में धार्मिक वैमनस्य का सघन तिमिर आच्छादित था उसी समय चीन में धार्मिक जागरण की रश्मियाँ विकीर्ण हो रही थीं। तंग-वंशीय समाज का प्रमुख धर्म बौद्ध था। तथागत के अजस्र सन्देश दुरूह भौगोलिक अवरोधों का अतिक्रमण करके चीन-देश में प्रविष्ट हुए थे और अपनी पीयूष-वर्षा से वहाँ की धर्माकुल जनता के अतृप्त प्राणों को सरस कर रहे थे। बौद्ध धर्म की असीम प्रगति के कारण ही तंग-वंश 'बुद्ध-युग' के नाम से भी प्रख्यात है। भूतकाल में ताओ धर्मानुयायियों की असहिष्णुता से बौद्ध धर्मानुयायियों को अनेक सांघातिक आघात सहने पड़े थे। परन्तु अपनी अदम्य जीवन-शक्ति के कारण वह फिर भी जीवित रहा और अन्त में तंग-काल में राज्य का प्रमुख धर्म बन गया। चीनी बौद्ध धर्मावलम्बियों और भारतीय बौद्ध धर्मावलम्बियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हो चुकी थी। तंग-काल में अनेक भारतीय बौद्ध चीन आये थे और इसी प्रकार ह्वेन सांग प्रभृति अनेक चीनी बौद्धों ने भारतवर्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रमण किया था। धर्म एवं सभ्यता के इन संवाहकों के द्वारा दोनों प्राचीन देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान अधिक सुलभ हो सका। फ़िट्जेरैल्ड के मतानुसार तंग-युग उत्साही बौद्ध यात्रियों और उपदेशकों की भी शताब्दी है। इस काल के प्रमुख बौद्ध प्रचारकों में बोधिरुचि, वज्रबोधि, अमोघवज्र, शुभाकरसिंह एवं प्रभाकरमित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। बोधिरुचि एक दक्षिण भारतीय विद्वान था जिसने अश्वघोष के प्रभाव में आकर बौद्ध धर्म स्वीकृत किया था। वह ६६३ ई० में चीन में आया। उसने अनेकों अनुवाद के कार्य किये। ७०६ ई० में तंग राजधानी चंगन का भ्रमण किया। उसके सम्मान में यहाँ एक मठ की भी स्थापना हुई थी।

वज्रबोधि एक राजकुमार होते हुये भी बौद्ध धर्म का कट्टर पालक था। वह ७२३ ई० से लेकर ७३० ई० तक कैन्टन में रहा और अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसका प्रमुख शिष्य अमोघवज्र भी ७२६ ई० से ७३१ ई० तक लोयंग में रहा। एक मठ दन्तविहार की स्थापना की तथा लगभग ५०० भारतीय ग्रन्थों का प्रचार चीनी भाषा में किया।

परन्तु इन सब में सर्वप्रसिद्ध प्रभाकर मित्र था जो नालन्दा विश्वविद्यालय का सुप्रतिष्ठित आचार्य था। वह ६२७ ई० में चीन आया तथा अनेकों ग्रन्थों का अनुवाद किया।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तंग-कालीन समाज से अन्य धर्मों का विलोप हो गया था। धार्मिक समभाव तंग-सम्राटों की विशेषता थी। अतः उन्होंने किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार न किया। परिणामतः चीन में बौद्ध धर्म के समकक्ष ईसाई धर्म, जरथुस्त्र-मत ताओमत और कन्फ्यूशियस मत भी अव्याहत रूप से पनप रहे थे। राज्य ने इन धर्मों के उनमुक्त प्रचार के लिये पूर्ण सुविधायें दी थीं। इनके अनुयायियों को अपनी विशिष्ट पूजा-प्रणालियों का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इनके पूजा-गृह कर-मुक्त कर दिये गये थे। पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों को विशेष स्थान मिलता था।

लिपि—वर्तमान चीनी लिपि का उद्भव हान काल में हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह लिपि कदाचित् संसार की विचित्रतम लिपि है। इसमें वर्ण नहीं हैं वरन् उनके स्थान पर चिह्न हैं। भिन्न-भिन्न शब्दों और भिन्न-भिन्न विचारों का बोध किसी न किसी विशिष्ट चिह्न के द्वारा होता है। इस प्रकार चीनी लिपि पचपन हजार चिह्नों का वृहद् कोश है। इन समस्त चिह्नों को स्मरण करना सरल नहीं है। अतः साधारणतया चीनी तीन-चार हजार चिह्नों से ही अपना काम चलाते हैं।

सामाजिक जीवन—चीन का समाज चार भागों में विभक्त था—(१) अध्यापक वर्ग (२) कृषक वर्ग (३) व्यवसायी वर्ग और (४) व्यापारी वर्ग। परन्तु यह विभाजन पूर्णरूपेण कर्मज था। वर्गों का निर्धारण जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होता था। यदि कोई मनुष्य अपने पैतृक कर्म को छोड़ कर अन्य कर्म ग्रहण करना चाहता था तो उसे पूर्ण स्वतंत्रता थी। बुद्धिजीवी एवं अनुशासनशील होने के कारण अध्यापक-वर्ग का सबसे अधिक महत्व था। वह समाज में अत्यधिक समादृत था। कृषक-वर्ग की दशा अधिक सन्तोषजनक न थी। राज्य के संचालन हेतु जो करादि लगते थे उनका अधिकांश कृषकों को ही वहन करना पड़ता था। जब तक चीन में सामन्त-प्रथा का बोलबाला था तब तक कृषकों का खूब शोषण होता था। उन्हें विवश होकर बेगार करनी पड़ती थी। चीन में जन-संख्या अधिक होने के कारण प्रत्येक कृषक के भाग में जो भूमिखण्ड पड़ता था वह बहुधा उसके भरण-पोषण के लिये अपर्याप्त होता था। जैसे-जैसे चीन का व्यापारिक प्रसार एवं व्यावसायिक विकास होता गया वैसे ही वैसे अन्तिम दो वर्गों की आर्थिक अवस्था सुधरती गई। अपने व्यावसायिक कर्म के कारण चीनी समाज का कोई भी वर्ग हेय न समझा जाता था।

समाज की इकाई परिवार थी। परिवार में पिता के अधिकार अत्यधिक थे। वह स्वेच्छा से अपनी स्त्री तथा सन्तान का विक्रय भी कर सकता था। वंश-वृक्ष को सक्रम रखना प्रत्येक व्यक्ति का प्रधान कर्तव्य था। अतः समाज में अविवाहित रहना अथवा भ्रूण-हत्या करना अति निन्दनीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म समझे जाते थे। बहुधा सन्तानहीन पत्नी पुत्र-प्राप्ति के हेतु अपने पति से द्वितीय विवाह कर लेने के लिये स्वयं आग्रह करती थी। प्रायः अन्य देशों की भाँति चीन में भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र का जन्म अधिक वांछनीय था। पुत्र-जन्म पर परिवार में अनेक प्रकार के उत्सव मनाये जाते थे। स्त्रियों में परदे की प्रथा थी। अविवाहित कन्या को भी पर्दे में रहना पड़ता था। उनकी चारित्रिक पवित्रता पर अत्यधिक बल दिया जाता था। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से स्त्री पुरुष के अधीन थी। पुरुषों में चारित्रिक भ्रष्टाचार भी क्षम्य था। वे बहुधा विवाहित स्त्री के रहते हुए भी रखेल स्त्रियाँ रखते थे। पति को अधिकार था कि वह किसी भी कारण से अपनी पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले। अपने घरों में भी स्त्रियों के लिये पृथक् अन्तःपुर थे। उनका सामाजिक मूल्य एकमात्र माता के रूप में ही था। समस्त सार्वजनिक कार्यों से वंचित रह कर वे शिशु-पालन और गृह-कार्य करती थीं। परन्तु उच्च वर्ग की स्त्रियों के ऊपर इतने कठोर बन्धन न थे। उनकी सामाजिक स्थिति निम्न वर्गों की स्त्रियों की अपेक्षा अच्छी थी। उनमें शिक्षा का भी प्रसार था। पान कू नामक इतिहासकार की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहन ने उसके अपूर्ण ग्रन्थ की समाप्ति की थी परन्तु सामान्यतया पारिवारिक जीवन सुखमय था। परिवार की अभ्युन्नति के लिये रीति-रिवाज, आचार-विचार, कर्त्तव्य-पालन आदि आवश्यक समझे जाते थे।

प्रत्येक परिवार में वयोवृद्ध पुरुषों का सम्मान था। चीनी ईश्वर के साथ-साथ पूर्वजों और वीरपुरुषों की भी अर्चना-बन्दना करते थे। उनका विश्वास था कि यदि वे पूर्वजों की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन न करेंगे तो वे उन्हें कष्ट देंगी।

सामन्तवादी युग में चीन की स्थिति बहुत-कुछ सामन्तवादी योरपीय देशों की भाँति थी। प्रसिद्ध इतिहासकार लेखक टूची के अनुसार चीन में भी सामन्त-वर्ग ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल वास्काउण्ट और बैरन की भाँति पाँच वर्गों में विभक्त था। ये सामन्त स्थानीय न्यायधीश होते थे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कृषकों एवं श्रमजीवियों के परिश्रम पर सुख-समृद्धि का जीवन व्यतीत करते थे इनका नैतिक स्तर ऊँचा न था। ये भोग-विलास में लिप्त रहते और बहुधा पारस्परिक युद्ध किया करते थे। इनके करों और बेगार से कृषक वर्ग पीड़ित था।

चिन-वंश और हान-वंश का समाज अपनी स्थिरता के लिये राजनीति और प्रशासन पर आधारित था। परन्तु तंग-वंश की सामाजिक रचना का प्रेरणा-स्रोत दर्शन एवं साहित्य थे। कलकलनिनादिनी अजस्र सरिताओं के मध्य में निर्मित तंग-समाज काव्य के मधुर स्रोत में बहता हुआ-सा परिलक्षित हो रहा था। वह जीवन की समस्त अनुभूतियों का दर्शन और धर्म के आधार पर मूल्याङ्कन कर रहा था। काव्य-प्राचुर्य ने जनता के हृदय में अपूर्व उल्लास भर दिया था। धार्मिक नवचेतना के कारण सामाजिक प्राणियों में उदारता और साहिष्णुता के उदात्त भावों की प्रतिष्ठा हो गयी थी। साधु-सन्तों के प्रति असीम श्रद्धा तथा विद्वानों के प्रति असीम सम्मान ने चीनी जीवन को विनीत, अनुशासनशील और गुणग्राही बना दिया था। तंग-काल सामाजिक दृष्टिकोण से भी स्वर्ण युग था।

आर्थिक जीवन—आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि का विशेष महत्व था। प्राचीन काल से चाउ-वंश सामन्तवादी युग तथा चिन साम्राज्य के युग में समाज के जीविकोपार्जन का साधन कृषि ही थी। कृषि के साधन सरल थे। लकड़ी तथा पत्थरों के हलों का प्रयोग होता था। कूपों और तालाबों आदि के अतिरिक्त नदियों तथा नहरों से सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। सामन्तवादी युग में चीन की आर्थिक दशा असंतोषजनक थी। परन्तु हान वंश के सत्तारूढ़ होते ही वह सुधरने लगी। सम्राटों ने नहरों का निर्माण किया, खाद के प्रयोग से अधिक उपज की गयी। आर्थिक समृद्धि का दूसरा साधन व्यापार था। हान वंश के समय विदेशों से व्यापार होता था। चीनियों का मधुर पेय चाय थी। हान वंश के पश्चात् तंग वंश के प्रारम्भ तक चाय की खेती की अवनति हो गयी। परन्तु तंग वंश के समय में चाय की खेती आर्थिक आय का एक साधन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानी जाने लगो। बैलों को खेतों को जोतने में प्रयुक्त किया जाता था। पालतू पशुओं में भेड़, गाय तथा सुअर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। छिछले समुद्र के तटों पर सरिताओं में मछलियाँ मारी जाती थीं। ग्रामीण चीनियों की जीविका का यह एक मुख्य साधन था।

तंग कालीन कृषकों की दशा संतोषजनक थी। कृषि एवं उद्योग-धन्धे हो राज्य के मुख्य साधन थे। प्रथम सम्राट के शासन काल में भूमि का पुनर्वितरण हुआ और राज्य के सारे कृषकों को समान भाव से भूमि वितरित की गई। इस भूमि को विक्रय करने की राज्य की ओर से मनाही थी। परन्तु यह प्रथा अधिक दिन तक न चल सको क्योंकि ज़मींदारों ने निर्धन किसानों की भूमि पर अधिकार जमा कर उन्हें भूमिहीन कर दिया। इस समय राज्य की ओर से नहरों का निर्माण हुआ और सिंचाई का विशेष प्रवन्ध किया गया। यद्यपि समय-समय पर अकाल पड़ता था जिससे जनता का स्तर नीचे गिर जाता था, परन्तु सरकार द्वारा सहायता दी जाती थी। विभिन्न प्रकार के कर लगाये गये थे। इनमें भूमि कर तथा व्यापार कर मुख्य थे। भूमि कर वर्ष में दो बार वसूल किया जाता।

प्राचीन काल में चीन के निवासी गृह-निर्माण एवं मूर्तिकला इत्यादि के निर्माण में मिट्टी का प्रयोग करते थे। मिट्टी के प्रयोग के पश्चात् पत्थरों का प्रयोग हुआ परन्तु चीन के निवासी इस खोज में थे कि वे अपने उद्योग धंधों में पत्थर या ईंट की अपेक्षा कोई अधिक मुलायम वस्तु का प्रयोग करें। अतएव लकड़ी का प्रयोग करना उन्होंने प्रारम्भ किया। लकड़ी के प्रयोग के साथ बाँस के लट्ठों का भी प्रयोग होता था। हान-काल सुखसमृद्धि का काल था। अतः इस समय लकड़ी के प्रयोग से पारिवारिक उद्योग के लिए मेज़, कुर्सियाँ; आलमारियाँ इत्यादि बनाई जाने लगीं। चीन की मृण्कला अति प्राचीन है। चीनी मिट्टी के बर्तन मज़बूत और आकर्षक होते थे। मिट्टी के बर्तनों के साथ शीशे के भी सुन्दर बर्तनों का निर्माण होता था। प्यालों, तश्तरियों, घड़ों, कलशों, लोटों और गिलासों आदि का प्रयोग सामाजिक जीवन में विशेष रूप से होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु फिर भी गृह-उद्योग-धंधों में चीन ने उतनी उन्नति नहीं की जितनी कला, और साहित्य के क्षेत्र में। वस्त्र-निर्माण में चीनी कुशल थे। चीन सिल्क का देश कहा जाता था। रोम, ग्रीस एवं भूमध्य सागरीय देशों तक चीन के बुने कपड़े और सिल्क भेजे जाते थे। विश्व में शिल्क या रेशम का सर्वप्रथम आविष्कार चीन ने किया। रेशम के डोरों को करघे पर तैयार किया जाता था। रेशम के आविष्कार के पश्चात् सूती कपड़ों का प्रयोग किया जाने लगा। चीन के औद्योगिक समुदाय ने कागज़ का भी निर्माण किया। कागज़ के आविष्कार के साथ एक प्रकार की स्याही भी बनाई गयी। वृक्षों की खाल तथा रेशों से चीनी कागज़ बनाया जाता था। लोहे की वस्तुयें तथा सोने के आभूषणों के बनाने में बहुधा चीन के कारीगर ने विदेशों का अनुकरण किया है। सब प्रकार की धातुओं के प्रयोगों से वे अनभिज्ञ थे। वे न तो धातु का मिश्रण करना ही जानते थे और न तो धातु को ढालना ही। यह चीनी कारीगरों की बड़ी दुर्बलता थी। यदि ये कलाकार धातुओं का प्रचुर प्रयोग जानते होते तो चीनी उद्योग-धंधों का विशेष विकास होता। चीन में जिन निर्माण-कलाओं का विकास हुआ था उनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

चीन के प्राचीन काल में सामाजिक क्षेत्र में व्यापारियों का स्थान महत्वपूर्ण नहीं था। चाऊ वंश तथा चिन एवं सामंतवादी चीन में व्यापार निम्नकोटि का था। यद्यपि कला तथा साहित्य के क्षेत्र में सम्यक अत्युत्थान हुआ, तथापि व्यापार के क्षेत्र में न्यूनता परिलक्षित होती रही।

हान वंश के सत्तारूढ़ होते ही व्यापार के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। राज्य में व्यापार तो बढ़ा ही परन्तु विदेशों से भी व्यापारिक सम्बन्ध घनिष्ठ हुए। रोम, ग्रीस, भारत और अफगानिस्तान के देशों से व्यापार होता था। भारत तथा लंका के व्यापारी चीन-यात्रा करते थे और मूल्यवान वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था।

ईसा की मृत्यु के पश्चात् लगभग १२० जादूगर चीन के दक्षिणी प्रदेशों के दूतावास में भेजे गए थे। "लोयांग" नामक नगर में जाकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्होंने पाश्चात्य देशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध बनाने की प्रार्थना की। लगभग १६६ व्यापारी "ता चिन" नामक स्थान से लोयांग पहुँचे और दूतावास की घोषणा की। वे व्यापारी सम्राट अएटोनियस के राज्य से आये थे। रोम साम्राज्य का चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था "पान चाऊ" ने जिस व्यापार-मंडल को रोम भेजा था उसे यह आदेश था कि वह रोम से सीधा सम्बन्ध स्थापित करे। चीन से ऊँटों पर लदे रेशमी कपड़े, चाय, चीनी के बर्तन, बारूद, कागज, सूखेफल ईरान, भारत और मैसोपोटामिया आदि देशों को भेजे जाते थे। ये व्यापारी स्थल मार्ग से अपने समान ले जाया करते थे। स्थल मार्ग के अतिरिक्त जल मार्ग की भी उपयोगिता से व्यापार में अच्छी सफलता मिली थी। फारस की खाड़ी से भारतवर्ष होते हुए विदेशों के जलयान चीन जाते थे। इन वस्तुओं के अनुदान में विदेशों से ऊनी कपड़े, शीशे के सामान, घोड़े, हीरे तथा मूल्यवान जवाहिरात चीन भेजे जाते थे।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक टूची के कथनानुसार हान वंश के सम्राटों ने बाह्य स्थल अथवा जल मार्गों के निर्माण की अपेक्षा आंतरिक मार्गों का निर्माण प्रचुर मात्रा में किया जिसके फलस्वरूप उत्तर तथा दक्षिण के प्रदेशों में व्यापारियों का ताँता लगने लगा। हान वंश के शासन काल में चीन सैकड़ों सड़कों का निर्माण हुआ, बाजार बनवाये गये, नहरें खुदवाई गयीं और सारे चीन में लगभग ३०००० विश्रामगृह बने जहाँ व्यापारी गर्मी और जाड़े के दिनों में विश्राम किया करते थे। उनकी वस्तुओं की देख-भाल के अधिकारी नियुक्त थे और उनको यथोचित प्रबन्ध के लिए राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। व्यापार की इस उन्नति से चीन का सांस्कृतिक विकास हुआ।

तंग-काल में व्यापार की अभूतपूर्व उन्नति हुई। तंग वंश के समय स्थल मार्ग एवं जलमार्ग दोनों प्रचलित थे। तारिम के घाटी से सीमान्त प्रदेशों के मार्ग से होते हुए विदेशी व्यापारी चीन जाते थे। आठवीं सदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मध्य तक चीन के व्यापारिक सम्बन्ध इतने घनिष्ट हो गए थे कि विदेशी व्यापारियों को चीन अपने घर-जैसा प्रतीत होता था। चीन के राज्य में विदेशी व्यापारियों का स्वागत होता था और उनके साथ मैत्री भाव रखे जाते थे।

तंग-काल में व्यापार--व्यवसाय की अभूतपूर्व उन्नति के अनेक कारण थे—(१) साम्राज्य में अपेक्षाकृत सुव्यवस्था एवं सुरक्षा (२) सड़कों और पुलों आदि के निर्माण के फलस्वरूप गमनागमन की सुविधा (३) निश्चित मुद्रा-नीति की प्रतिष्ठा (४) क्रय-विक्रय पर राजकीय नियन्त्रण और (५) विदेशीय सम्बन्ध। इन विशेषताओं का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि देश के स्थानीय उद्योग-धन्धों का प्रचुर विकास हुआ और चीन विश्व में एक महत्वपूर्ण व्यापारी-देश बन गया। देश के भीतर की नदियों और नहरें सदैव व्यापारियों की नावों और लघु जलपोतों से भरी रहने लगीं। चीन के बन्दरगाह सदैव व्यापारिक कार्य-कलापों से व्यस्त रहने लगे। चीन से प्रति वर्ष हजारों रुपये का रेशमी वस्त्र, मसाला, धान और अनाज विदेशों को निर्यात होने लगा। इनके बदले चीन विलासिता एवं आमोद-प्रमोद को विविध सामग्री विदेशों से आयात करता था। आर्थिक समृद्धि ने चीन-निवासी के जीवन को वैभवशाली एवं आकर्षक बना दिया। उसके गृहों में विभिन्न प्रकार की विलास-सामग्री एकत्र होने लगी। चीनी के सुन्दर वस्त्राभरण, आभूषण, प्रसाधन-उपकरण, धातु-पात्र, मृण्भाण्ड, पलंग, कुर्सी, मेज तथा खाद्य-पेय उसके जीवन की वैभवशालिता के प्रमाण थे। सारांशतः अपनी चतुर्दिक अभ्युन्नति के कारण तंग-काल चीन का पेरिक्लीज-काल अथवा आगस्टस-काल कहा जा सकता है। इस समृद्धि-शाली काल की पुण्य-स्मृति में आज भी चीनी अपने को तंग-पुत्र कहता है।[१] इन्हीं सांस्कृतिक विकासों के कारण तंग काल चीनी सभ्यता

[१] "Under the Tang, China was for centuries a unified prosperous and highly civilized empire."

—Latourete.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का महत्वपूर्ण युग एवं सुसंगठित तथा सुसंस्कृत राष्ट्र माना जाता है। इतिहासकार बागची के विचार में यह चीन का सर्वश्रेष्ठ काल था।[१]

तंग वंश के पश्चात्—तंग-वंश के पतन के पश्चात् दीर्घकाल तक चीन के अनेक प्रदेशों पर विदेशी आक्रमणकारियों का अधिकार रहा। चीन की यांगटिसी नदी के घाटी और दक्षिणी चीन में ही स्वदेशीय राजाओं का शासन रहा। शेष भाग पर उत्तर से आने वाले विदेशियों ने अपना अधिकार जमा लिया।

पाँच वंश—९०७ ई० में तंग-वंश की सत्ता का विलोप हुआ। उसके पश्चात् ९३० तक चीन में पाँच राज-वंशों (Five Dynasties) ने राज्य किया—

(१) हाउ लिआंग—चू वेन ने ९०७ ई० में तंग वंश का विनाश करके अपने राजवंश की नींव डाली। यह राजवंश हाउ लिआँग (Later Liang) वंश कहलाता है।

(२) हाउ तंग—९२३ ई० में ली सुन सू (Li Tsun-hsii) नामक एक व्यक्ति ने हाउ लिआंग राजवंश का अन्त कर दिया और अपने नये राजवंश की नींव डाली। यह राजवंश इतिहास में हाउ तंग (Later tang) राजवंश के नाम से प्रख्यात हुआ।

(३) हाउ चिन—शोह चिंग-तंग नामक व्यक्ति हाउ तंग राजवंश की अधीनता में एक सेनापति के रूप में काम करता था। परन्तु यह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। इसने ९३६ ई० में उत्तर की एक बर्बर जाति खितान की सहायता से अपने स्वामी के राजवंश का अन्त कर दिया और उसके स्थान पर अपना राजवंश—हाउ चिन (Later Chin) स्थापित किया।

अपनी अपूर्व प्रतिभा से उसने इतिहासकारों के हृदय को आकर्षित

---

१. "This was the most glorious period of the history of China in all respects."

—Bagchi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर लिया है। यहाँ तक कि उसके विरोधी समालोचकों ने भी उसे प्रजा का शुभ-चिन्तक घोषित किया है। उसका समाजवाद चीन में पुनर्जागृति की सूचना देता है।[१]

(४) हाउ हान—हाउ चिन के पश्चात् राजसत्ता एक अन्य सेनापति ल्यू चीह युआन के हाथ में आई। इसने ९४७ ई० के लगभग हाउ हान (Later Han) नामक अपने नवीन राजवंश की स्थापना की।

(५) हाउ चाउ—हाउ हान राजवंश ने ९५१ ई० तक राज्य किया। इसके पश्चात् हाउ चाउ (Laeer Chou) नामक राजवंश सत्तारूढ़ हुआ। ९६० ई० के लगभग एक नवीन राजवंश—सुंग ने हाउ चाउ वंश का अन्त कर दिया।

सुंग-वंश—चाओ कुआंग-यिन हाउ चाउ राजवंश के अधीन प्रमुख सेनापति था। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर सैनिकों ने उसे सम्राट घोषित किया। उसका वंश इतिहास में सुंग वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चाओ कूआँग-यिन अपने दूसरे नाम ताइ सु के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह बड़ा वीर शासक था। इसने मध्य चीन और दक्षिणी चीन के अनेक प्रदेशों को जीत कर एक वृहत राज्य की स्थापना की। प्रशासन में सहायता देने के लिये इसने योग्य पदाधिकारियों को नियुक्त किया। अपने साम्राज्य में एकता और समता स्थापित करने के लिये इसने चीनी दण्ड विधान को संगठित किया।

परन्तु सुंग साम्राज्य को तीन शत्रुओं से विशेष रूप से हानि पहुँची।

---

१. "By a trick of chance, the only great figure in the records of his country who resembled him was his names-ack Wang Mang, already the turbid stream of history had travelled a thousand years since China's last outstanding experiment with socialism."

—W. Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये शत्रु थे—(१) खितान (२) तंगुत और (३) जुचेन। खितान उत्तर की एक बर्वर जाति थी। यह निरन्तर चीनी साम्राज्य पर आक्रमण करती रही। इसने सुंग-वंश के हाथ से अनेक प्रदेश छीन लिये थे। तंगुत जाति ने सिसिया (Hsi Hsa) नामक राज्य की स्थापना की थी। यह भी बहुधा सुंग-साम्राज्य पर आक्रमण करती रहती थी। जुचेन पहले खितान जाति के अधीन थे। परन्तु बाद को इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और अपने आक्रमणों तथा हस्तक्षेप से चीनी सम्राट को परेशान करने लगे।

सुंग सम्राट—जुचेन जाति पराभूत होकर ११२५ ई० में सुंग सम्राट हुई सुंग ने सिंहासन का परित्याग कर दिया और अपने स्थान पर अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाया। परन्तु झगड़ा फिर प्रारम्भ हो गया और जुचेन ने याँग-चाँग नामक एक चीनी को सम्राट् बनाया। पर कुछ ही दिनों में इस नये सम्राट ने जुचन का साथ छोड़ दिया और उसने हुई सुंग के पुत्रकाओ सुंग को सम्राट् बनाया। इस सम्राट् ने लिन-आन को अपनी राजधानी बनाया। इस नये राज वंश को दक्षिणी-सुंग-वंश कहतेहैं। उत्तरी चीन पर इस वंश का राज्य न था। वहाँ जुचेन ने ल्यू यू को सम्राट् बनाया था। जुचेन और काओ सुंग में बहुत दिनों तक शत्रुता चलती रही परन्तु काओ को आक्रमणकारी के विरुद्ध सफलता न मिली। जुचेन उत्तरी चीन पर शासन करते रहे। उन्होंने अपने राजवंश को चिन-वंश के नाम से पुकारा।

मंगोल आक्रमण—बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मंगोल जाति बैकाल नदी के दक्षिणपूर्व में रहती थी। इनका सर्वप्रथम प्रमुख सर्दार तेमूचीन हुआ। इसका जन्म ११५५ ई० के लगभग हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् यह अपनी जाति का नेता हुआ। शीघ्र ही उसने मंगोलिया तथा आस-पास के और प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके एक सम्राज्य की स्थापना की। १२०६ ई० में उसने चंगेज खाँ (सार्वभौम सम्राट्) की उपाधि धारण की। इसने जुचेन (चिन)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति से अनेक युद्ध किये और उसके अनेक प्रदेश छीन लिये। १२२७ में चंगेज खाँ की मृत्यु हो गयी।

चंगेज खाँ की मृत्यु के पश्चात् मंगोलों ने सुंग-वंश के साथ मित्रता कर ली। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने चिन-वंश के ऊपर आक्रमण कर दिया और उसका अन्त कर दिया।

मंगोलों की शक्ति बढ़ती रही। इन्होंने कोरिया, हंगरी, पोलैंड, मेसोपाटामिआ, जार्जिया और आर्मीनिया आदि प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

१२५१ ई० में चंगेज़ खाँ का पौत्र मंगू मंगोलों का सम्राट् हुआ। मंगू के भाई हलाकू ने बगदाद पर अधिकार कर लिया। अब मंगोलों ने चीन के भीतर भी घुसना प्रारम्भ कर दिया। १२५३ ई० में उन्होंने नान चाओं (शुन्नान) पर अधिकार कर लिया। टांगकिंग और हूनान पर भी उनका अधिकार हो गया। १२५९ में मंगू की मृत्यु हो गई। अतः उसके भाई कुबलाई खाँ ने सुंग-वंश के साथ सन्धि कर ली। सुंग-वंश ने मंगोलों को कर देना स्वीकार कर लिया।

परन्तु थोड़े ही दिनों में कुवलाई खाँ ने सुंग-वंश के विरुद्ध फिर युद्ध छेड़ दिया। उसने १२७६ में चीनी राजधानी लिन आन पर अधिकार कर लिया और सुंग-सम्राट् को बन्दी वना लिया। सम्राट् के स्वामिभक्त सेनापति कुछ दिनों तक युद्ध चलाते रहे। परन्तु अन्त में उनके प्रयत्न निष्फल हुए और १२७९ ई० तक सम्पूर्ण चीन पर मंगोलों का अधिकार हो गया। इस प्रकार सुंग-वंश का पतन हुआ।

सुंग-कालीन सभ्यता

वांग आन-शीह के सुधार—सुंग-काल में वांग आन-शीह अपने सुधारों के लिये विशेष प्रसिद्ध है। यह १०२१ ई० में उत्पन्न हुआ था और इसने १०८६ ई० तक राज्य किया। यह भलीभाँति समझता था कि विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये साम्राज्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धन-जन की वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है। अतः इसने अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये। इसने सम्पूर्ण साम्राज्य के व्यापार को राज्य के अधीन कर लिया। प्रत्येक जिले को व्यापार से जो आमदनी होती थी उससे पहले राज्य को कर दिये जाते थे, फिर जिले की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। इसके बाद जो आमदनी अथवा सामग्री शेष रहती थी उसे राज्य दूसरे ज़रूरतमन्द प्रदेशों में भेज देता था। राज्य के आय-व्यय को स्थिर करने के लिये वाँग ने एक कमीशन नियुक्त किया। खेती को प्रोत्साहन देने के लिये राज्य ने दो प्रतिशत प्रतिमास ब्याज के आधार पर किसानों को ऋण देना प्रारम्भ किया। यही नहीं, वाँग ने भूमि का फिर से वितरण करवाया और प्रत्येक मनुष्य की सम्पत्ति की जाँच करवा कर उससे कर लेना प्रारम्भ किया। किसानों से श्रम के रूप में कर लेना बन्द कर दिया गया जिससे वे अपना पूर्ण श्रम अपने खेतों में लगा सकें। देश की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिये उसने प्रत्येक परिवार के लिये यह नियम बनाया कि वह अपना एक सदस्य स्थानीय पुलिस को दे और एक सेना को। उत्तर में अनेक परिवारों को एक-एक घोड़ा और उसके रखने का आवश्यक खर्च दिया गया। पाठ्यक्रम और परीक्षाओं का पुनः संगठन किया गया।

वांग के अनेक सुधार बड़े क्रान्तिकारी थे। उसने धनिकों के विशेषाधिकारों को नियन्त्रित करके निर्धनों को अनेक सुविधायें प्रदान की। उत्पादन के अनेक साधनों पर राज्य का अधिकार स्थापित करके उसने वांग राज्याधारित समाजवाद (State Socialism) की स्थापना की। परन्तु वांग का विश्वास था कि उसके सुधार चीन की पुरातन परम्पराओं पर ही परन्तु आधारित हैं।[१]

१. Wang An-Shih professed to base his plan upon the principles of ancient sages honored by the confucian school and prepared commentaries on some of the classical book which attempted to show that these latter sanctioned it. —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मत—सुंग-काल अपनी बौद्धिक प्रगति के लिये प्रसिद्ध है[१]। इस समय अनेक विचारकों और लेखकों ने पुराने कन्फ्यूशिअस-मत को नया रूप दिया। यद्यपि इस समय बौद्ध धर्म अवनत अवस्था में था तथापि उसने नवीन कन्फ्यूशिअस-मत को बड़ा प्रभावित किया। इस नवीन मत पर ताओ-मत का भी प्रभाव था। इस युग के विचारकों और लेखकों में निम्नलिखित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं :

(१) **शाओ युंग**—इसका जन्म १०११ ई० में हुआ था। यह अपने जीवन की सरलता, अल्पभाण्डता और सदाचारिता के लिये प्रसिद्ध था। राज्य ने इसे अनेक उच्च पद देने चाहे, परन्तु इसने अस्वीकार कर दिया। इस चिन्तक के विचारों पर ताओवाद का प्रभाव था। इसकी मृत्यु १०७७ ई० में हुई।

(२) **चाउ तुन-ई**—इसका काल १०१७ ई० से १०७३ ई० तक था। यह एक उच्च पदाधिकारी था। फिर भी उसकी रुचि चिन्तन, मनन और लेखन में थी। इसके ऊपर तोओवाद और बौद्धधर्म दोनों का प्रभाव पड़ा था।

(३) **चू सी**—इसका जन्म ११३० ई० में एक पदाधिकारी के घर में हुआ था। इसने नवीन कन्फ्यूशिअस मत का प्रतिपादन किया, यद्यपि इसके ऊपर भी ताओवाद और बौद्ध धर्म का प्रभाव था। यह सृष्टि में दो तथ्य मानता था—

यांग और यिन। यांग गति है और यिन गतिहीनता। इन दोनों का प्रभाव सृष्टि के पाँच तत्वों पर पड़ता है। ये तत्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, धातु और लकड़ी। इन्हीं के सम्मिश्रण से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई है। संपूर्ण सृष्टि का संचालन दो वस्तुओं से होता है—ली और ची। ली का अर्थ है धर्म और ची का अर्थ है भौतिक तत्व। इन सबके ऊपर ताई चो है। यह परतत्व है जो पूर्ण, अनन्त और असीम है। चू सी

---

१. 'However; the Sung period marks the opening of a new intelectual era. —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईश्वर को निर्विकार, निर्गुण और निराकार मानता था। मनुष्य स्वभा-वतः सद्धर्मा है परन्तु मनुष्य की प्रवृत्तियाँ दोष-पूर्ण हैं, क्योंकि वे भौतिक तत्व-रूप हैं। उन्हें ली धर्म) के अधीन रखना चाहिए।

अपने लेखों और विचारों से उसने चीनी जनता के उपर बड़ा प्रभाव डाला। उसकी गणना संसार के प्रमुख विचारकों में होती है[१]।

(४) वान यान मिंग—यह महायानी बौद्ध था। चू-सी बाह्य का अध्ययन और मनन करके अपने निष्कर्षों पर पहुँचा था। परन्तु वान यान-मिंग ने मनुष्यों के अन्तर्जगत को ही सर्वप्रधान माना था। उसका विश्वास था कि आत्मा, परमात्मा और सृष्टि के सारे सत्यों का निरूपण अन्तर्जगत के सूक्ष्म अध्ययन से हो सकता था। इस सत्य निरूपण के लिए मनुष्य का भौतिक ज्ञान, उसके असंख्य ग्रन्थ व्यर्थ हैं। प्रकृति (Nature) विशुद्ध और पूर्ण है। संसार में न कोई वस्तु अच्छी है और न बुरी। ये अन्तर मनुष्य के मस्तिष्क के विकारों के कारण प्रतीत होता है। यदि मनुष्य अपनी अन्तर्वृत्तियों को सहज और शुद्ध कर ले तो वह समदृष्टि हो जायेगा। प्रकृति-धर्म (Law of Nature) के अनुसरण से यह समदृष्टि उत्पन्न होती है।

साहित्य—सुंग-काल में साहित्य की भी बड़ी उन्नति हुई। यह काल विशेषतया अपने इतिहास-ग्रन्थों के लिये प्रसिद्ध है। सू-मा-क्वांग (१०१९-१०८६ ई०) इस समय का प्रथम उल्लेखनीय इतिहासकार था। इसने जू चीह तुंग चिएन नामक इतिहास-ग्रन्थ लिखा। इसमें लगभग पाँचवीं शताब्दी के अन्त से लेकर दसवीं शताब्दी के अन्त तक का इतिहास है। परन्तु सू-मा-क्वांग की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और प्रसिद्ध इतिहासकार चेंगचिआओ था। इसने तुंग चीह नामक इतिहास-ग्रन्थ लिखा। इसमें फू सी से लेकर तंग-काल तक का वर्णन था। तीसरा प्रसिद्ध इतिहासकार मा त्वान लिन था। इसके ग्रन्थ का नाम वेन सिएन तुंग काओ है।

१. 'In the entire history of mankind, few thinkers have been so infuential as he.
—Latourtte.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास-ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में इनसाइक्लोपीडिया की भी रचना हुई। इस काल की सबसे प्रसिद्ध इनसाइक्लोपीडिया ताई पिंग यू लान थी।

इस समय कविता के क्षेत्र में भी बड़ी उन्नति हुई। तत्कालीन कवियों में शू शीह विशेष उल्लेखनीय है। इसने कविताएँ और निबन्ध दोनों लिखे।

साहित्यिक विकास में चीन की लोक-प्रिय मुद्रण-कला ने बड़ा योग दिया। यह लोक-प्रिय-मुद्रण-कला Block Printing की थी।[१] मुद्रण-कला के माध्यम से सुंग-काल में हजारों ग्रन्थ लिखे गये। इतिहास-ग्रन्थों, इनसाइक्लोपीडिया, कविताओं और निबन्धों के अतिरिक्त इस समय वनस्पति-शास्त्र[२], जीव-शास्त्र और युद्ध-शास्त्र के ऊपर भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। युद्ध-शास्त्र के अन्तर्गत बारूद का प्रयोग युद्ध में किया गया। सामुद्रिक यात्राओं में कुतुबनुमा का प्रयोग अधिक होने लगा। इन विषयों पर भी ग्रन्थ-रचना हुई। सुंग-काल के जो ग्रन्थ आज मिले हैं वे अपनी सुन्दर छपाई और संगठन के लिये प्रसिद्ध हैं। इसकी प्रशंसा करते हुए लातूरे महोदय ने कहा है कि—'Examples of the Sung editions still survive and for quality of workmanship have never been surpassed.'

कला—सुंग-काल में कला के प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी उन्नति हुई। चीनी कलाकार ने अपने चतुर्दिक संसार को अनेक रूपों में सजाना

---

१. 'The art of block-printing was one of the sources of the sung Renaissance.' —Will Durant.

२. ....Several treatises and flowers and prints have come down to us among them what is probably the most ancient seientific account of the varieties of cutrus which is known in any language. —Latourette.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भ किया।[१] यह कला उपयोगिता और सुन्दरता का सम्मिश्रण थी। कलाकार ने न एकमात्र ऐसी सुन्दर कृतियों की रचना की जो जीवन से परे हों और न ऐसी उपयोगी कृतियों की जो असुन्दर हों। उसकी सौन्दर्य-भावना जीवन को सुन्दर और समृद्ध बनाने में सहायक हुई थी।

चित्रकला—सुंग-काल के पूर्व अधिकांशतः चित्रकला बौद्ध थी। परन्तु अब वह इस धार्मिक बन्धन से मुक्त होने लगी और उसने जीवन के विविध विषयों को अपनाना प्रारम्भ किया।

इस काल का एक प्रकृष्ट चित्रकार स्वयं सुंग-सम्राट् हुई सुंग था। इसने एक चित्र-संग्रहालय को स्थापना की, चित्रकला को राजकीय परीक्षाओं में एक विषय माना और प्रसिद्ध चित्रकारों को राज्य में ऊँचे-ऊँचे पद दिये। बोस्टन संग्रहालय में इसका एक चित्र अब भी संरक्षित है। इसमें नारियों द्वारा चीनांशुक-निर्माण का आलेखन है। यह अपनी सरलता, स्वाभाविकता और स्पष्टता के लिये प्रसिद्ध है।

दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार कुओ सी था। यह वानस्पतिक और प्राकृतिक जगत् के चित्रण में अद्वितीय था। उत्ताल शृंगों, चंचल तरंगों, सघन वनों और उन्मुक्त खगों के चित्रण में इसकी दक्षता प्रशंसनीय थी।

तीसरा चित्रकार ली लुंग मीन था। यह सुलेखन-कला (Calligraphy) और चित्रकला दोनों में निपुण था। कहते हैं कि एक बार इसने छः घोड़ों के चित्र बनाये जो बिल्कुल सजीव से लगते थे।

---

१. 'It was during the Sung Dynasty that this movement to beautify the person the temple and the home reached its highest expression. It was not only in the realm of political science, philosophy, literature and mechanical invention that the Sung genius expressed itself. It also appeared in art.'

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृन्मयी कला—सुंग काल अपनी मृन्मयी कला के लिये विशेष रूप से प्रख्यात है।[१] इस समय मिट्टी की सहायता से कलाकारों के अनेक प्रकार के प्याले, तश्तरियाँ, बक्से, घड़े, बोतले आदि निर्मित कीं। इनके सतह बड़ी ही चमकदार तथा रंग आकर्षक होते थे। मृन्मयी कला काङ्-फेंग, चिग-ते-चेन और हानचाउ में विशेष रूप से विकसित थी।

स्थापत्य कला—बौद्ध धर्म से पतन के साथ चीनी स्थापत्य का भी पतन हो गया।[२] तंग-काल में स्थापत्य-कला की जो महत्ता थी वह सुंग-काल में न रही। जो स्थापत्य-कृतियाँ बनाई भी गयीं वे या तो पशुओं की हैं या स्त्रैण-भावना से ओतप्रोत।

वास्तु कला—इस क्षेत्र में भी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। वास्तु-कला की जो कृतियाँ बनाई भी गयीं वे विनष्ट हो गयी हैं। चीनी वास्तु-कृतियों की विशेषता उनकी एकरूपता और लघुता है। सैकड़ों वर्षों तक चीनी वास्तुकार एक-से ही छोटे-छोटे भवन बनाते रहे। चीनी वास्तु-कला की अधिक उन्नति न होने के कारण तीन थे—(१) वंशानुगत अभिजात-वर्ग का अभाव (२) संगठित और शक्तिशाली पुरोहित-वर्ग का अभाव तथा (३) शक्तिशाली एवं समृद्ध केन्द्रीय सरकार का अभाव।

---

१. 'Sung was the classic period of Chinese procelain: ceramists ascribe to it both the oldest extant wares and the best.' —Will Durant.

२. 'Probably the strong moral bent of the Chinese impeded the development of sculpture; when the religious motif lost its impelling force, and the attractiveness of physical beauty was not allowed to take its place, sculpture in China decayed; religion destroyed what it could no longer inspire.' —Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ अध्याय

पार्थियन सभ्यता

उत्पत्ति एवं मूल स्थान—सिकन्दर महान के प्रसिद्ध सेनानायक सिल्यूकस के उत्तराधिकारियों की अकर्मण्यता का लाभ उठाकर ईरान की एक निकटवर्ती जंगली जाति ने अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दी। यद्यपि इसकी उत्पत्ति के विषय में एकमत नहीं है फिर भी जैसा कि प्राचीन ईरानी गल्प-कथाओं एवं यूनानी साहित्य से विदित है, यह जाति 'पार्नी' नामक जाति की एक शाखा थी जो शकों का एक भाग थी तथा जिनका मूल स्थान आधुनिक कैस्पियन एवं अरल-सागर के बीच था। प्रारम्भ से ही ये लोग कुशल घुड़सवार एवं योद्धा थे। युद्ध में वीरगति उनके लिए महान वरदान था। एक अन्य विद्वान घर्षमन के अनुसार पार्थियन शब्द पाश्चात्य साहित्य के पार्थवा शब्द से मिलता है जिसका तात्पर्य 'योद्धा एवं घुड़सवार' से है तथा जो साधारणतया सभी खाना-बदोश जातियों के प्रयोग में आता है। पार्थियन सभ्यता के विशिष्ट प्रयोग में इस जाति का ईरान में उपस्थित होना है। लगभग २५० ई० पू० के आस-पास अरस्कीज़ एवं तिरियातीज़ नामक दो भाइयों ने अपने कुशल नेतृत्व में सभी असभ्य जातियों को जीतकर ऊपरी तेजेन नामक जिले में अपनी राजधानी स्थापित की। दो वर्ष पश्चात् उसका भाई अरस्कीज़ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् तिरियातीज़ पार्थियन सम्राट हुआ।

तिरियातीज़—अपनी प्रथम अभेद्य राजधानी तेजेन के अलावा द्वितीय दुर्ग अर्सक की स्थापना की जहाँ अपने को सम्राट घोषित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके इस कार्य का विरोध सिल्यूकस द्वितीय ने किया परन्तु तिरियातीज़ की असीम रण-चातुरी एवं शक-युद्ध कला के समक्ष असफल रहा। इस युद्ध से उसे हर्सेनिया एवं बैक्ट्रिया के प्रान्त मिले।

अपने सैंतीस वर्ष के लम्बे शासन में उसने अपनी नींव दृढ़ बनाई तथा पश्चिम में साम्राज्य-विस्तार किया। राजधानी का स्थानान्तरण 'हेक्टोम्पिलोस' नामक स्थान पर किया।

अर्तबेनुस प्रथम—यह एक अयोग्य एवं शक्तिहीन शासक था जो अन्तियोकस तृतीय के समक्ष नहीं ठहर सका, जिसके फलस्वरूप उसे पुनः सिल्यूकस के उत्तराधिकारियों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

फ्रियाप्तीयस—(१६५ ई० पू०) यह एक कुशल राजनीतिज्ञ था जिसने अन्तियोकस के रोम के द्वारा पराजित होने का पूर्ण लाभ उठाया। इसने पुनः कैस्पियन के दक्षिणी भाग पर कब्जा किया। परन्तु उसकी अकाल मृत्यु के पश्चात् पार्थिया पुनः अनेक लघु राज्यों में विसंघित हो गया।

मिथीदेतीज़ प्रथम—यह पार्थियन साम्राज्य का पुनर्संस्थापक कहा जाता है जिसने समस्त अविच्छिन्न राज्यों को पुनः एक सूत्र में बाँधा। १६० से १४० ई० पू० के बीच उसने मीडिया, इलीमियास, पर्सिस, चार्सीन, बेबीलोनिया एवं असीरिया पर जबरदस्ती कब्जा किया। साथ ही नेड्रोसिया, हेरात एवं सीस्तान को भी अधिकृत किया। दजला नदी पर स्थित सिल्यूशिया उसके राज्य का महान व्यापारिक केन्द्र था जहाँ ६ लाख निवासी रहते थे। यद्यपि उसके इस कार्य का मोडिया, अट्रोयातीन एवं पर्सिस ने कठोर विरोध किया परन्तु वह अन्ततः सफल रहा। इसने अपने नाम को 'महाराज' ('Great King') की उपाधि से विभूषित किया तथा सिक्कों पर फिलहेलीन' की उपाधि धारण की। १३७ ई० पू० में वह अपने पुत्र फ्रातीज़ द्वितीय को विशाल साम्राज्य का नायक घोषित करके संसार से विदा हो गया। उसके महान कार्यों ने उसे साइरस की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोटि में ला रखा है।[१]

फ्रातीज़ द्वितीय—इसे पुनः ग्रान्तियोक सप्तम का सामना करना पड़ा जिसमें तीन युद्धों में वह विजयी रहा। अन्ततः समझौते के द्वारा दोनों राजाओं में शान्ति की स्थापना हुई। इसके फलस्वरूप पार्थियन साम्राज्य की वृद्धि हुई, साथ ही साथ यूनानी शासकों का ह्रास भी हुआ।

फ्रातीज़ की इस विजय के प्रति ईर्ष्यालु सीरिया को एक अन्य बर्बर जाति ने पुनः आक्रमण किया। यह दो धाराओं में हुआ। प्रथम पश्चिमो दिशा में मर्व एवं एकबटना होते हुए तथा दूसरा दक्षिण में हेरात तथा सीस्तान के द्वारा। यद्यपि फ्रातीज़ प्रारम्भ में विजयी रहा परन्तु अन्त में सेना के विद्रोह से वीरगति को प्राप्त किया।

अर्तबेनुस द्वितीय—यह फ्रातीज़ का चाचा था जिसकी अयोग्यता का लाभ उठाकर बेबीलोनिया एवं चार्सीन के गवर्नरों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

मिथ्रादातीज़ द्वितीय—समय की गम्भीर परिस्थितियों ने इसे शासक वरण किया जो पार्थियन इतिहास में सर्वप्रसिद्ध सिद्ध हुआ।[२] पश्चिम में शांति स्थापित करने के बाद पूर्व में उसने अपनी सीमा बंक्षु

---

१. "The few sources that mention Mithridates, speak of him as a monarch possessing many admirable qualities, virtuous, brave and a good legislator. The part he played in the revival of the Iranian state may he compared to that of Cyrus the Great whom in some ways he resembled in character."

—R. Ghirshman

२. "This rular was undoubtedly the most remarkable of the line of Parthian princes."

R. Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी के किनारे मर्व, हेरात, एवं सीस्तान तक बढ़ाई। उसकी इन विजयों से पार्थियन साम्राज्य शकों के आक्रमण से बच गया। उसने आन्तरिक स्थिति दृढ़ करने के बाद विदेशों से सम्बन्ध भी स्थापित किये जैसे ११५ ई० पू० में चीनी दूतावास का शुभागमन कराया जिसकी परिणति एक संधि में हुई। इस संधि से ईरान पश्चिम एवं पूर्व को जोड़ने में एक कड़ी की भाँति सिद्ध हुआ। बीस वर्ष बाद उसने एक सामन्त टिग्रेनीज़ को आर्मीनिया का भार सौंपा जिससे एक नवीन राजनीतिक कार्यों का प्रारंभ हुआ। वास्तव में रोम ने इसकी महानता से जल कर आर्मीनिया के राज्य को जीतना चाहा परन्तु मिथ्रादातीज़ के वीरता के समक्ष असफल रहा।

मिथ्रादातीज़ द्वितीय के इन महत्वपूर्ण कार्यों ने उसे दारा महान के समक्ष ला रखा। वह ईरान को विश्व के साम्राज्यों में लाने वाला था। पूर्व में चीन तथा पश्चिम में रोम के बीच उसकी स्वतंत्र घोषणा निश्चय ही उसकी महत्तम प्रतिभा की परिचायक है।

उसकी मृत्यु के पश्चात ईरान में पुनः राजनैतिक अशांति का युग आया। आर्मीनिया के टिग्रेनीज़ ने अपने को स्वतंत्र घोषित करके अनेक प्रान्त ले लिये। उसने सिल्यूशिया की अधीनता भी स्वीकृत की। इसी प्रकार मिथ्रदातीज़ द्वितीय के उत्तराधिकारियों में भी राज्यसत्ता के लिये गृह-युद्ध छिड़ा जिसमें फ्रातीज़ तृतीय एवं लोकुलस ने मिथ्रादातीज़ तृतीय का विरोध किया। फ्रातीज़ मृत्यु का शिकार हुआ और मिथ्रादातीज़ तृतीय गेबिनियस की सहायता से राजा हुआ। परन्तु वह भी ओरोदीज़ द्वितीय के समक्ष असफल रहा। ईरान को इस समय एक महान योद्धा की आवश्यकता थी जो रोम के सेनानी क्रेसस का सामना कर सके। यह स्वप्न ओरोदीज़ ने पूर्ण किया।

ओरोदीज़ द्वितीय :—यह एक महान रण-नायक था जिसकी कूटनीतिज्ञता के कारण क्रेसस मारा गया; रोम की पराजय हुई तथा पार्थियन राज्य की शक्ति सुदृढ़ बनी। एक बार पुनः ईरान ने पाश्चात्य अधीनता अस्वीकृत की। अब पश्चिम के सभी लघु राज्य सेमाइट्स, फिली-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तीन, नेवेतियन, दमिश्क एवं पामीरा पार्थिया के अधीन हो गये। परन्तु ईरानी सेना के आन्तरिक विद्रोह से उसकी शक्ति क्षीण हो गई। सुरेना नामक जनरल आरोरीज़ के अयोग्य पुत्र पेकोरस के द्वारा मार डाला गया। पेकोरस ने सीरिया पर आक्रमण किया। प्रारंभ में वह काफी सफल रहा। परन्तु अन्ततः अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के फल-स्वरूप बुला लिया गया। इसके बाद लगभग १० वर्ष तक शांति रही। पुनः ४० ई० पू० में पश्चिम में आक्रमण किया और सफल रहा। सेना का विभाजन दो भागों में किया। लेवीनस के नेतृत्व में उत्तरी भाग जैसे एशिया माइनर एवं आयोनिया तथा पेकोरस के नेतृत्व में दक्षिण में सीरिया एवं फिलीस्तीन का भार सौंपा गया। राजनैतिक अशांति के कारण लेबी-नस मारा गया तथा पेकोरस भी षड्यन्त्र का शिकार हुआ। इन सेनानायकों की मृत्यु से पार्थिया को महान क्षति हुई। यूनान को बदला लेने का स्वर्णावसर मिला। आरोदीज़ स्वयं अपने पुत्रों द्वारा मार डाला गया।

फ्रातीज़ चतुर्थ—३७ ई० पू० इसके राज्यारोहण से पुनः आन्तरिक विद्रोह एवं अशांति की ज्वाला धधकी। राज्य दो दलों में विभाजित हुआ। प्रथम के नेता राज्य के वरिष्ठ कर्मचारी एवं द्वितीय के नेता सेनापति थे। परन्तु फ्रातीज़ अपनी कूटनीतिज्ञता से इन्हें दबाने में सफल रहा। उसने अंटोनी के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया तथा काफी नुकसान पहुँचाया। इस विजय में अंटोनी एवं क्लियोपेट्रा की भांति एक सिक्का चलाया। अन्त में सीज़र महान की बढ़ती हुई शक्ति के समक्ष उसके शांतिपूर्ण प्रस्तावों द्वारा मैत्री संबंध बनाया और अपने पुत्रों को उसकी अध्यक्षता में नियुक्त किया। रोम स्वयं भी राजनैतिक परिस्थितियों से बाध्य होकर शांति चाहता था।

फ्रातीज़ पंजम—इसने अपने पिता को जहर देकर मार डाला। परन्तु स्वयं विद्रोह का शिकार बना।

वोनोनीज़ प्रथम—यह फ्रातीज़ चतुर्थ के पुत्रों में से था जो आग-स्टस के राज-दरबार में भेजे गये थे। पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित वह

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्थियन के लिए असफल रहा। फलस्वरूप वह पदच्युत किया गया एवं बाद में मार डाला गया।

अर्त्तवेनुस तृतीय—यह अर्सकीज के मातृपक्ष का एक उत्तराधिकारी था जिसने नवीन वंश की स्थापना की जिससे राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण हुआ। फलस्वरूप रोम एवं पार्थिया के मैत्री-संबंध भी क्षीण हुए। प्रारंभ में इसे सेल्यूशिया का सामना करना पड़ा जिसमें वह पूर्णतया असफल रहा।

वोलोजेसीज़ प्रथम—इसने शांतिपूर्ण समझौते द्वारा रोम के साथ संधि की। उसका भाई तिरीदातीज़ रोम के द्वारा आर्मीनिया का सम्राट घोषित किया गया। स्वयं नीरो ने उसे रोम में राज्य-यात्रा पर आमंत्रित किया। यह क्रिया ५० वर्षों तक चली परन्तु अन्ततः असफल रही। इसके बावजूद भी वोलीजेसीज़ का राज्यकाल ईरान के पुनर्जागृति का काल था। उसने सिक्कों पर अग्नि वेदी तथा पुजारी की आकृति बनवाई तथा पहलवी-अर्सकीड भाषा में लेख लिखवाये। यूनानी विद्रोह का दमन करने के लिए 'वोलोजेसिया' शहर की स्थापना-की।

परन्तु आगस्टस के बाद ट्रोजन के काल में रोमन नीति में परिवर्तन हुआ जिसके कारण आर्मीनिया रोम का प्रान्त घोषित किया गया तथा पार्थिया को अधीन राज्य की संज्ञा दी गई। इसका प्रमुख कारण पार्थियन सम्राटों का आपसी बैर था—-यह लगभग ५० वर्षों तक चला।

वोलोज़ेसीज द्वितीय—१४८-९२ ई०। इसका राज्यारोहण अर्सकीड वंश का पुनर्जागरण घोषित करता है। विशाल सेना निर्मित करके इसने फरात की घाटी से होते हुए सीरिया पर आक्रमण किया। रोम के प्रान्तीय विद्रोहियों का साथ देते हुए सफल रहा।

वालोजेसीज़ तृतीय—इसने भी वीरतापूर्वक रोम के आक्रमण का सामना किया परन्तु अंटोनियस पायस के द्वारा दुरा नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित हुआ। रोम इस प्रकार पुनः ईरान पर अधिकार स्थापित कर सका। पार्थियन राजधानी जला डाली गई। यह क्रिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेप्टिमस सेविरस एवं कैराकल्ला के शासन-काल में जारी रही।

अर्तबेनुस पंचम—इसने अपने प्रतिद्वन्द्वी वोलोजेसीज पंचम को हराकर शक्ति स्थापित की। रोम अपने विनाश के कारण पार्थिया से अलग हो गया। अर्त्तबेनुस पंचम ने विद्रोहों के अभाव में ईरान में नवीन युग की स्थापना की। अन्ततः ससैनियन शासकों की उग्रनीति के फल-स्वरूप उसे झुकना पड़ा।

पार्थियन संस्कृति :

राजनैतिक संगठन—पार्थियन संस्कृति की आधारशिला सिल्यूशियन सभ्यता के भग्नावशेषों पर बनी। अतएव पार्थियन शासक नवीन विचारों के होते हुए भी उनसे पूर्णतया प्रभावित हुए। उन्होंने प्रान्तीय शासकों को पदच्युत नहीं किया; केवल उनसे अपनी अधीनता ही स्वीकृत करवाई। साहित्यिक स्रोतों से लगभग अठारह राज्यों के नाम मिलते हैं जिनमें ग्यारह उच्च श्रेणी के एवं सात निम्न श्रेणी के थे। मीडिया अर्सकीड राज्य के अधीन, आर्मीनिया तिरीदातीज़ के अन्तर्गत थे। शेष क्षत्रपों के अधीन थे। इनका शासक वंशानुगत होता था। इसके अतिरिक्त कुछ खानाबदोश प्रान्त भी थे जैसे कसाई एवं उक्सियन।

सामन्तवादी पार्थियन प्रथा मध्यकालीन यूरोपीय व्यवस्था के समान थी जिसका शासन सात परिवारों में विभाजित था। ये परिवार उच्च श्रेणी के लोगों पर निर्भर थे। शासन की सहायता के लिए कौन्सिल या सीनेट थी जिसके सदस्य उच्च श्रेणी के लोग थे। दूसरी सभा का नाम "Sages and magi" था जो केवल परामर्शदायिनी थी।

परन्तु अन्त में यही उच्च श्रेणी वर्ग शासन के लिए घातक सिद्ध हुआ। इसी सामंत प्रथा ने आगे चलकर इस्लाम धर्म में प्रमुख स्थान प्राप्त किया। पार्थियन समाज में योद्धा एवं घुड़सवारों का वरिष्ठ स्थान था। यद्यपि कोई स्थायी सेना नहीं थी परन्तु उसका संगठन सामाजिक स्तर पर होता था। प्रत्येक सामंत को अपनी सेना थी जो राजा की इच्छानुसार

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायता करते थे। सेना का सर्वोत्तम विभाग अश्वारोही था। इसी प्रकार ऊँटों की सवारी तथा हाथियों की सेना भी उसके आवश्यक अंग थे। प्रमुख शस्त्र लौह-धनुष, कवच तथा बाण थे। पदारोही भी काफी कुशल थे। उन्हें एक विशिष्ट आक्रमक इंजिन का भी ज्ञान था।

धार्मिक अवस्था—साहित्यिक स्रोतों के अभाव में आधुनिक पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर ईरान का प्रमुख धर्म जरथुस्त्र धर्म था। इसके साक्ष्य टेसीटस एवं हेरोडोटस के लेख हैं जिनमें अनहित की प्रधानता, तथा पशुओं के बलिदान की प्रथा मिलती है। इसके अतिरिक्त अहुर-मज्द एवं मिथ्र अनिहित की पूजा भी प्रचलित थी। परन्तु अनहित ही सर्वमान्य देव था जिसकी पूजा पश्चिमी देशों में भी प्रचलित थी। उसकी सहायक देवी "लेडी आफ बैक्ट्रिया" थी जो पान्टुस में विशेष पूजित थी।

तत्कालीन प्रमुख धार्मिक केन्द्रों में शिज सर्वोच्च था जो अनहित के आदर में बनाया गया था। इसके प्रमुख निवासी मगी जो जरथुस्त्र धर्मानुयायी थे, जैसे मृतकों को गाड़ना इत्यादि। इसकी प्रामाणिकता आधुनिक खुदाइयों से भी होती है। परन्तु यह क्रिया केवल राजकीय परिवारों में ही थी। प्रथम दो शताब्दी ई० में यह सर्वसाधारण में भी प्रचलित हो गई।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार सिकंदर महान ने अवेस्ता का विध्वंस किया था जिसका पुनर्निर्माण वालोज़ेसीज़ प्रथम ने करवाया। अर्सकिड लोग कुषाणों की भाँति धर्म-सहिष्णु थे। उन्होंने मेसोपोटानियन धर्मों को अपनी रीतियों में परिवर्तित किया तथा अनेक मंदिर बनवाये जिनमें डुरा-यूरोपोस प्रमुख है। इसी प्रकार यहूदियों के साथ भी उन्होंने शांति का रास्ता अपनाया। जूडो धर्म की भी व्याख्या इस काल में हुई। २० ई० पू० में फरात नदी के किनारे छोटे से यहूदी प्रान्त की स्थापना हुई जिससे सभी पश्चिमी शहरों पर इसका प्रभाव पड़ा। दूसरी सदी की यहूदी क्रान्ति में पार्थियन शासकों ने विशेष मदद पहुँचाई और सदैव के लिए कहावत बन गई कि "जब कभी भी पार्थियन सैनिक दिखाई पड़ें तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी ईश्वर-दूत का आगमन मानना चाहिए" ।[1]

कला एवं नागरिक जीवन—यद्यपि पार्थियन निवासी यूनानियों की भाँति कोई महान निर्माता नहीं थे, फिर भी टेसोफन एवं हत्रा की पठारों पर बनाये गये मंदिर एवं गोर फिरोजाबाद, ससैनियन अर्देशिर इत्यादि के शहर आज भी अपनी तुलना में बेजोड़ हैं।

इनकी नगर-योजना वृत्ताकार है जिसकी समानता पश्चिमी एशिया से की जा सकती है। टेसीफोन पहले एक सैनिक केन्द्र था जो बाद में रोमन सेना के विरुद्ध सुरक्षा केन्द्र और व्यापारिक केन्द में परिवर्द्धित हो गया।

इसी प्रकार पार्थियन गृह-स्थापत्य के अवशेष भी काफी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इनकी योजना शाखामनीष शासकों से मिलती है। प्रत्येक मकान में आँगन था। कहीं-कहीं ईरानियन शैली में बने ईवान जो तिकोने आकार के थे तथा उनमें तीन कमरे होते थे। निर्माण-पदार्थों में चूने एवं ईटों का प्रयोग था। विशेष आकर्षण की वस्तु पत्थरों की काट-छाँट थी। दीवारों पर अनेक पच्चीकारी एवं चित्र बनाये गये थे जिनके अवशेष बेबीलोनिया, असीरिया, कुही-ख्वाजा एवं लेक हमुन से मिले हैं।

भित्ति-चित्रावली भी विशेष कला थी जिसके नमूने बास रिलीफ्स एवं दीवारों पर मिलते हैं। कूही-ख्वाजा के चित्रित चित्र अपनी डिज़ाइन एवं कल्पना के लिए विशेष उल्लिखित हैं।

पार्थियन कला के विषय में दो मुख विचारधारायें प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार पार्थियन सभ्यता अपनी पहली ५ शताब्दियों में निम्नतम कोटि की कला का प्रदर्शन करती है। दूसरी विचारधारा के अनुसार पार्थियन कला सभी ईरानियन प्रभावों से मुक्त थी। वह पूर्णतया राष्ट्रीय थी जिसमें नवीन ईरानियन भावों का सम्मिश्रण था।

---

१. "When you see a Parthian changer tied up to a tombstone in Ralestive, the hour of the Messiah will be near."

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्थियन कला की सर्वोत्तम विशेषता law of frontality है जो शाखामनीष कला में भी नहीं मिलती। इसकी उत्पत्ति प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० में सियाल्क के सीमेट्री 'बी' से होता है। इस कला का आदर्श नमूना शामी जिले से प्राप्त ताम्र-मूर्ति है जो मालमिर के मंदिर से मिली थी। इसी प्रकार सिर-विहीन संगमरमर की मूर्तियाँ हैं जो सूसा एवं हम्मा-डान से प्राप्त हुई हैं, पार्थियन कला की परिचायक हैं। यद्यपि ये पाश्चात्य प्रभावों से मुक्त हैं परन्तु इनकी प्रमुख विशेषता fratadara है जो दर-वाजों के जोड़ों पर की जाती थी। इसके प्राचीनतम उदाहरण मिथ्रा-दातीज द्वितीय के काल से मिलते हैं। तांग-ई-साखाक से मिले बास रिलीफ्स, जिसमें एक राजा यज्ञ करते हुये प्रदर्शित है, सर्व प्रमुख है। राजा अर्तवेनुस पंचम की वर्तुलाकार मुकुट-शैली भी उच्च कोटि की है। इसी प्रकार एक राजा की हरे पत्थर पर खुदी हुई मूर्ति, जिसके गले में एक हार है, पार्थियन राष्ट्रीय कला एवं शैली का भव्य नमूना है। इसकी शांति-पूर्ण प्रतिभा एवं आभा दर्शनीय है।[१]

पार्थियन कला राष्ट्रीयता के बावजूद भी पाश्चात्य प्रभावों से वंचित न रह सकी। इसके प्रमाण तत्कालीन आभूषणों एवं वस्त्रों में मिलते हैं। अन्त में पार्थियन कुम्भ-कला एवं भाण्ड-निर्माण कला भी अपनी उपयोगिक भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है जिसमें विशाल कब्रस्तानों के लिए बनाये गये वर्तन, सारकोफैगस एवं मृण्मयी मूर्तियां हैं।

आर्थिक एवं सामाजिक जीवन—सिकन्दर महान की विजयों ने पश्चिम एवं पूर्व को सर्वप्रथम जोड़ने में विशेष सहायता पहुँचाई। इस कार्य में ईरान मध्यस्थ था। ईसवी की प्रथम दो शताब्दियों में रोमन शासकों की दिग्विजयों ने ईरान को रोम का एक प्रान्त बना दिया था। इस क्षेत्र में

---

१. "The realism and calm distinction of its expression rank this small piece among the best examples of the Parthian art."

—R. Ghirshman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक व्यापारिक मंडियाँ बनीं, व्यापारिक वर्गों एवं मध्यम श्रेणी के वर्गों का उदय हुआ । इस व्यापारिक संबंध का पूर्वी छोर चीन एवं पश्चिमी छोर बाल्टिक सागर का तट था । आज भी इतिहास में दमिश्क की तलवारें एवं मर्व के औजार प्रसिद्ध हैं । रेशमी-सूती कपड़े, कपास, चिड़िया, पशु-पक्षी, पत्थर एवं दवाएँ इत्यादि का पूर्वी देशों को निर्यात किया जाता था तथा विभिन्न धातुओं के सामान, मसाले एवं साधारण जीवन से संबंधित वस्तुएँ आयात की जाती थीं ।[१]

व्यापारिक मार्गों में सड़कें प्रमुख थीं जिनमें पामोरा, दुरा एवं पीट्रा प्रमुख है । पत्र-व्यवहार के लिए इन्होंने पोस्टल व्यवस्था भी बनाई थी । इनकी हस्त-कला एवं मानसिक प्रतिभा का परिचय इनकी वस्तुओं से होता है । कृषि के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई । विशाल क्षेत्र 'लेटीफंडिया' कहलाते थे । छोटे-छोटे खेतों की जगह विशाल फार्म थे जिनका अधिकार उच्च वर्गों में निहित था । साधारण वर्ग केवल पारिश्रमिक के अधिकारी थे । फलतः आधुनिकतम यन्त्रों द्वारा कृषि कार्य किया जाता था ।

इस दिशा में हेलिनिस्टिक एवं रोमन आदर्शों का भी प्रभाव पड़ा । फलतः जो लोग कलात्मक अधिक थे उन्हें उच्च वर्ग या de luxe श्रेणी का कहा जाता था । दास प्रथा उच्च कोटि की थी । यूनानी एवं ईरानी प्रभावों के सम्मिश्रण से एक नवीन वर्ग का उदय हुआ । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में मुख्य चार वर्ग थे—

(१) वंशानुगत—या श्रेष्ठ वर्ग या योद्धा वर्ग
(२) धार्मिक—या पुजारी वर्ग
(३) आनेस्टियोर्स या लेखक या कर्मचारी
(४) ह्यूमिलियोर्स या श्रमिक वर्ग

१. "Never had the states of East and West been so closely linked nor before the time of Augustus, had there been so much trade in either direction"

—R. Ghsrihman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान की यह सामाजिक स्थिति वर्षों के संघर्ष का परिणाम थी जिसमें रोम का विशेष हाथ था। रोम ने जहाँ इसे आदर्श प्रदान किये वहीं इसके विनाश में भी सहायता पहुँचाई। यह विनाश की क्रिया आन्तरिक विद्रोहों के फलस्वरूप अधिक बढ़ी। साथ ही साथ बर्बर जातियों के आक्रमण से यह आधार-शिला सदैव के लिए ध्वस्त हो गई यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने इसे पुनर्जागृति काल कहा है परन्तु वास्तव में यह एक कहानी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठा अध्याय

ससैनियन सभ्यता

उत्पत्ति एवं मूल-स्थान

ईरान के फार्स नामक प्रान्त में फारसियों के एक हजार वर्ष पूर्व ईरानियन जाति का पुनर्जागरण प्रारंभ हुआ था जिसकी क्रिया शाखामनीष शासकों से होती हुई अर्सकीड के समकाल तक रही। ये लोग वास्तविक ईरानी सभ्यता के संस्थापक थे। उन्होंने सुदृढ़ केन्द्रीय राज्य की स्थापना की। स्थानीय निश्चित सेना की व्यवस्था की तथा उच्च शासन-व्यवस्था द्वारा रोम के समकक्ष स्थान प्राप्त किया। कुछ इतिहासकार तो इन्हें रोम से भी बढ़कर सभ्य देश बताते हैं।

परंपरागत कहानियों के अनुसार ससैनियन वंश का संस्थापक 'ससन' नामक एक उच्च वर्ग का पुरोहित था जो स्तख़ के अनहित के मंदिर का प्रधान पुजारी था। यही सर्व-प्रथम ससैनियन शासक माना जाता है।

पपक—यह ससन का पुत्र था जिसने एक स्थानीय शासक की पुत्री से शादी करके उसके राज्य को छीन लिया। कुछ लोग इसे वास्तविक संस्थापक कहते हैं क्योंकि उसका राज्यारोहण २०८ ई० एक नवीन युग का परिचायक है।

अर्देशिर—उसके दो पुत्रों अर्देशिर एवं शापुर में राज्य-सत्ता के लिए युद्ध छिड़ा जिसमें शापुर विजयी रहा। उसने अपनी राज्य सीमा इस्फहान, कर्मान एवं फार्स तक बढ़ाई। इससे भयभीत होकर अर्तबेनुस पंचम ने उसे रोकना चाहा परन्तु अर्देशिर द्वारा पराजित कर दिया गया। इस प्रकार वह अपने कार्य में सफल रहा। परन्तु उसने अपने को ईरान का सर्व-सत्ताधारी शासक बनाने की इच्छा से आर्मीनिया के कोसरोज प्रथम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संधि की। अर्देशिर ने रोम एवं कुषाणों के कई शासकों को घूस देकर युद्ध से रहित किया और शेष को युद्ध में परास्त किया। अन्त में आर्मीनियन शासक ने अकेले होने पर स्वयं को समर्पित कर दिया। इस प्रकार अर्देशिर फरात से लेकर सीस्तान तक विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बन गया।

अपने ५० वर्ष के विशाल राज्य में उसने ईरान को नया मार्ग दिया। सेना को शक्तिशाली बनाया। इस कार्य में अपने पुत्र शापुर को सहायक बनाया और अन्ततः राज्यभार भी उसी को सौंप दिया।

शापुर—उसने अपने पिता से सामंत प्रथा प्राप्त की परन्तु उसे केन्द्रीय व्यवस्था में परिणत किया जिसके आधार सुशिक्षित सेना एवं नवीन शासन-प्रणाली थे। राज्यरोहण से ही उसने पूर्वी साम्राज्यों को जीतने का दृढ़ संकल्प किया। परन्तु कुषाणों एवं आर्मिनियन शासकों के मध्य उसकी स्थिति चिंताजनक थी। नक्शे-रुस्तम के अभिलेख में मिलता है कि उसने पेशावर को, जो कुषाण-राजधानी थी, जीत लिया, सिंधु नदी पार की, हिन्दूकुश, बैक्ट्रिया, वंक्षु नदी एवं समरकन्द-ताशकन्द तक राज्य सीमा बढ़ाई।

पश्चिम में भी भाग्य ने उसकी सहायता की। यहाँ उसने अन्तियोक को हराया, गार्डियन को मारा, अरब के फिलिप से संधि की। पंद्रह वर्ष बाद रोम से युद्ध किया तथा एडेसा के निकट वेलेरियन को बुरी तरह पराजित किया। इस विजय से उसे असंख्य इंजीनियर, चिकित्सक एवं कलाकार प्राप्त हुये जिनसे सभ्यता के निर्माण में विशेष मदद मिली।

आन्तरिक संगठन में भी शापुर ने उतनी ही कुशलता दिखाई। उसने अनेक यूनानी एवं भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद कराया तथा सार्वजनिक धर्म Mani 'मनी' की स्थापना की जिसके मुख्य तत्व जरथुस्त्र, बुद्ध एवं ईसाई धर्म से लिये गये थे। इस धर्म के बहाने वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं प्रभुत्त्व का प्रदर्शन करना चाहता था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्म उसके उत्तराधिकारी द्वारा निषिद्ध कर दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरमुज्द प्रथम एवं बहराम प्रथम—इतिहास इन्हें केवल शापुर के अयोग्य उत्तराधिकारियों के रूप में जानता है जिसके अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है।

बहराम द्वितीय—(२७६-९३ ई०) इसके काल में पूर्वी राज्य में सर्वप्रथम विद्रोह हुआ जिसके पीछे कुषाणों का हाथ था। परन्तु उसने अपनी कूटनीज्ञिता से रोम के साथ संधि करके सामयिक नीति का पालन किया।

बहराम तृतीय—केवल कुछ ही महीनों बाद शापुर के अन्य पुत्र नर्सह-द्वारा पदच्युत कर दिया गया।

नरसह—यह छोटी ससैनियन शाखा का शासक था। उसे भी रोम के साथ युद्ध करना पड़ा और दारा तृतीय की भाँति शत्रुओं के हाथ में पड़ गया। अन्ततः अपने पुत्र होरमिज्द द्वितीय के वैवाहिक संबंध के साथ यह युद्धक्रिया खतम हुई। परन्तु होरमिज्द द्वितीय की अकाल मृत्यु के बाद राज्य-सत्ता पुनः शापुर द्वितीय के हाथ में चली गई।

शापुर द्वितीय—(३०९-७९ ई०) इसने ७० वर्ष की लम्बी अवधि में अपने को योग्य शासक सिद्ध किया। उसके प्रारंभिक वर्षों में कुषाणों ने अपनी सीमा ईरान तक बढ़ा ली थी परन्तु उसने पूर्णतया कुषाणों की सत्ता छिन्न-भिन्न करके बल्ख को अपना प्रान्त बनाया। साथ ही साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी, जैसे कला पर, प्रभाव डाला।

पूर्व में अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के बाद पश्चिम में भी उसने रोम के साथ की गई संधियों को तोड़कर फिर से नवीन नीति अपनाई। यद्यपि रोम ने इस दिशा में संधि के प्रस्ताव रखे परन्तु अन्ततः यह युद्ध में परिणत होकर रहा। इस युद्ध की प्रसिद्ध घटना शापुर द्वारा अमोदा पर अधिकार स्थापित करना था। रोम की टेसीफोन पर दृष्टि पड़ी परन्तु रोमन शासक जूलियन की मृत्यु के बाद यह स्थगित रहा।

कांस्टैन्टाइन महान के ईसाई धर्म को राज्यधर्म घोषित करने के बाद यह प्रगति एक नवीन दिशा की तरफ मुड़ी। इसके फलस्वरूप सभी ईसाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरानियों की दृष्टि में देश-द्रोही बन गये जिसका परिणाम आगे घातक सिद्ध हुआ।

इसकी मृत्यु के पश्चात् ससैनियन काल में पुनः एक क्रान्ति आई जिसमें अनेक विद्रोहियों ने भाग लिया।

शापुर तृतीय तथा बहराम चतुर्थ—आर्मीनिया के प्रश्न पर दोनों शासकों में सहमति हुई और वे रोम के साथ सहिष्णुतापूर्ण नीति के पालक बन गये।

याज्दगर्द प्रथम—इसने एक यहूदी लड़की से शादी की और अपने को 'ईसाई-शासक' कहा। साथ ही एक ईसाई सभा का भी आह्वान किया जो 'Catholicos' के नाम से प्रसिद्ध है। पाँच शहरों में ईसाई धर्म का स्वतंत्र प्रचार किया गया। चियोनाइट एवं एफ्थेलाइट दोनों में सर्वप्रथम संघर्ष हुआ। इसी प्रकार उसके पुत्रों में भी भयंकर शत्रुता उत्पन्न हो गई थी जिसमें बहराम पंचम सफल रहा।

बहराम पंचम—इसने अरब राजकुमार हीरा की सहायता से पूर्व में फरात नदी तक राज्य की सीमा का निर्माण किया।

यह सस्सेनियन शासकों में सबसे प्रसिद्ध शिकारी, कवि एवम् संगीतज्ञ था। उसका नाम ईरानी कथाओं एवम् कला में आज भी अमर हैं। आन्तरिक संगठन से उसने सभी विद्रोहों का दमन किया। बाहरी आक्रमण में हूणों को पराजित किया। रोम के साथ फिर से सन्धि की। इसी प्रकार ईसाई धर्म के प्रचार के लिए उसने एक विशिष्ट नियम बनाया। जिसके अनुसार ईरानी एवम् ईसाई लोग साथ-साथ रह सकते थे।

यज्दगर्द द्वितीय—यह शासक धार्मिक एवम् साहित्यिक अधिक तथा राजनैतिक कम था। इसने आरमीनिया को जरथुस्त्र धर्म के अन्तर्गत किया जिससे लोगों में विद्रोह की ज्वाला भड़की। परन्तु उसने इसका सफलतापूर्वक सामना किया।

पेरोज—प्रारम्भिक वर्षों में अकाल एवं राजनैतिक विद्रोह हुए। जिसका दमन इसने अनाज तथा पैसे के वितरण से किया। इसके शासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में ईसाई धर्म दो भागों में विभाजित था।

(१) निस्टोरियन—जो ईसा को प्रमुख देवता मानते थे।

(२) मोनोफिसिट—जो ईसा को मनुष्य के रूप में मानते थे।

अन्तिम वर्षों में हूणों ने विद्रोह किया जिससे वह बन्दी बना लिया गया। पेरोज की मृत्यु के बाद उसके चार उत्तराधिकारियों ने पचास वर्ष तक शासन किया। इस अवधि में हूणों ने उनसे न केवल प्रचुर मात्रा में कर ही लिये वरन् अधानता भो स्वीकृत करायी। पेरोज का पहला पुत्र बलश था जिसका उत्तराधिकारो कवध हुआ। यह चार वर्ष तक शासक रहा। इसे धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों अशान्तियों का सामना करना पड़ा जिसमें वह पूर्ण असफल रहा।

अपने विदेशी सम्बन्धों में भी पेरोज यूनानी शासकों से शान्तिपूर्ण न रह सका।

धार्मिक क्रान्ति में मनि की शिक्षाओं का विशेष प्रचार हुआ परन्तु सामाजिक स्तर नीचा था। उच्च वर्गों एवं निम्न वर्गों दोनों में काफी मतभेद था। कवध ने इस भेद को दूर करने के लिए नये कानूनों का निर्माण किया जैसे समाज में स्त्रियों की दशा में सुधार, हूणों से सुरक्षा इत्यादि। अन्त में वह हूणों के द्वारा ही पद-विहीन कर दिया गया।

जद्धरच—इसने हूणों की सहायता से शासन-सत्ता अपने हाथों में ली जिसके उपलक्ष्य में उसे निरन्तर हूणों की सेवा करनी पड़ी। परन्तु इसके साथ ही उसने रोम को वार्षिक कर देना बंद कर दिया जिससे पुनः दोनों में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई। इसके शासन काल में जरथुस्त्र धर्म फिर से जीवित किया गया जिसके कारण लोगों में असन्तोष पैदा हुआ। अनेक लोगों की सम्पत्तियाँ छीन ली गईं तथा स्त्रियों को बहिष्कृत कर दिया गया।

सामाजिक सुधारों में वह आधुनिकतम विचारों से पूर्णतया परिचित था जैसे प्रत्येक वर्ग की एकता। उसके शासन में निस्टोरियन विचार-धारा विशेष प्रसिद्ध थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोसरोज़ प्रथम—इस शासक के काल में राजतन्त्र व्यवस्था का फिर से निर्माण हुआ। इसमें उच्च वर्ग तथा पुरोहित वर्ग को कम अधिकार मिले। साथ ही साधारण वर्ग को उनकी छीनी गई जमीनें फिर से मिलीं। स्त्रियों एवं बच्चों को कानूनी कार्यवाहियों द्वारा पुनः प्रतिष्ठित किया गया। गाँवों की फिर से रचना हुई। सड़कों तथा पुलों का निर्माण हुआ। सम्पूर्ण भूमि की नाप-जोख हुई तथा निश्चित कर लगाये गये।

सेना की व्यवस्था में भी इसने नये सुधार किये जैसे सेना का विभाजन चार भागों में किया। प्रत्येक का स्वामी मुख्य सेनानायक होता था। सेना की भरती सभी वर्गों से होती थी। बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए अनेक दुर्ग बनाये गये।

अ ने इन शान्तिपूर्ण कार्यों के बावजूद भी उसे सीरिया के शासकों से युद्ध करना पड़ा। अन्तियोक का शहर जला डाला गया। अन्त में सन्धि प्रस्ताव पास हुए। बीस वर्ष बाद इसने पुनः हूणों तथा तुर्कों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया।

उसकी इस साम्राज्यवादी नीति से भयभीत होकर रोम के शासकों ने फिर विद्रोह की अग्नि भड़कानी शुरू की। उन्होंने तुर्कों से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए अपने दूत भेजे परन्तु इसी बीच में कोसरेज की मृत्यु हो गई। लगभग पचास वर्ष की ल बी अवधि में कोसरेज ने अपने को मानव जाति का संरक्षक तथा ससैनियन सभ्यता का सर्वोच्च शासक सिद्ध कर दिया था।

होरमज्द् चतुर्थ--यह एक योग्य, बुद्धिमान एवम् शिक्षित शासक था। इसने अपने पिता की नीति का अक्षरशः पालन किया परन्तु उच्च वर्ग के लोगों पर अधिकार जमाने में असफल रहा। वह ईसाई धर्म का अनुयायी था। उसने पश्चिम तथा उत्तर में हूणों एवम् तुर्कों से युद्ध किया। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्त में एक षड्यन्त्र के द्वारा वह पद से हीन कर दिया गया।[१]

कोसरोज़ द्वितीय—यह एक महान शासक था जिसने अपने को स्वतन्त्र घोषित किया परन्तु बहराम कोबिन के विद्रोह के समक्ष उसे झुकना पड़ा। अन्त में मारिस की सहायता से बहराम को पराजित किया। आगे चलकर यूनान तथा आरमिनिया पर भी अपना अधिकार जमाने की चेष्टा की। इस दिशा में वह बिजेंटियम का शत्रु बना। उसे हेराक्लिटिस नामक शासक से युद्ध करना पड़ा जिसमें उसे पूर्ण सफलता मिली। परन्तु युद्धक्षेत्र से भागते हुए वह पकड़ा गया एवम् मार डाला गया।

यद्यपि उसका अन्त दर्दनाक था फिर भी इतना निश्चित है कि उसने आन्तरिक दशा में काफी सुधार किये। साहित्य एवम् कला का विस्तार किया। उसकी सबसे बड़ी कमी उसका आरामतलब होना था। जिसके फलस्वरूप वह ईरान के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जाता है।

उसकी मृत्यु के पश्चात् से लेकर पन्द्रह वर्षों तक का इतिहास लगभग, बारह छोटे राजाओं का इतिहास है। इस अवधि में एक के बाद एक शासक आते गये तथा सभी विद्रोही शक्तियों के शिकार बनते गये। कभी-कभी राजाओं के अभाव में रानियों को शासन पर बैठाया गया जैसे बौरन, अजरमेदुखत। इस काल में सेनानायकों का भी विशेष स्थान था। वास्तव में वे ही राष्ट्र के निर्माता थे। आन्तरिक विद्रोहों के कारण ससैनियन सत्ता उखड़ती गयी। कोई भी ऐसा शक्तिशाली राजा नहीं हुआ जो पुनः उसे सुदृढ़ बना सके। यद्यपि ईरानी सेनापति रुस्तम ने इस दिशा में कुछ कार्य किया परन्तु वह कदशिया के द्वारा युद्ध में मार डाला गया। सातवीं शताब्दी के मध्य में अरबों के आक्रमण के फलस्वरूप

१. "His reign may be considered as the most brilliant period of Sassanian age, both for its military and diplomatic triumphs and for the achievement of Iranian civilization in art, science and literature."

—R. Ghrishman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो गया ।

ससैनियन सभ्यता का सांस्कृतिक इतिहास :

राजनैतिक संगठन—इस काल की राजनैतिक व्यवस्था बहुत ही संकुचित थी । इतिहासकारों ने उसकी तुलना एक ऐसे पिरामिड से की है जिसके शिखर पर राजा बैठता था । उसके नीचे चार वर्गों के व्यक्ति स्तंभ के रूप में खड़े होते थे । पहला वर्ग सामन्त राजाओं का था । जिसमें सीस्तान एवम् करमान के राजपुत्र थे । पार्थियनों की अपेक्षा इस काल में सामन्तों की संख्या कम थी ।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत सात बड़े राजघरानों के लोग थे जो वंशानुगत होते थे । वास्तविक शासन इन्हीं के हाथों में था । परन्तु शापुर द्वितीय एवम् कोसरोज प्रथम ने इनकी शक्ति को कम करने के लिए अनेक नियम बनाये जो आगे चलकर विनाशक सिद्ध हुए । इनका कार्य प्रान्तों का शासन करना, प्रजा से कर वसूल करना, राजा को सैनिक सहायता पहुँचाना इत्यादि था ।

तृतीय वर्ग साम्राज्य का उच्च वर्ग या "The grandees and the nobles" कहा जाता था । इसके अन्दर राज्य के विशिष्ट कर्मचारी तथा मन्त्रीगण आते थे ।

अन्तिम वर्ग स्वतन्त्र एवम् ग्रामीण कृषकों का था जो राजा एवम् शासकों के बीच की कड़ी थे ।

ससैनियन शासन-व्यवस्था का दूसरा क्षेत्र मन्त्रि-मण्डल था जिसमें प्रधानमंत्री प्रमुख था । यह राजा की अनुपस्थिति में शासनकार्य करता था । इसको विदेशों के साथ राजनैतिक सन्धि करने का अधिकार था । सेना का भी महान नायक यही था । मन्त्रालय का मुख्य या दीवान भी यही होता था । मन्त्रालय के विभिन्न भाग थे जैसे—न्याय, सैनिक एवम् वित्त ।

राज्य की आय के प्रमुख साधन भूमि पर लगाये गये कर तथा व्यक्तिगत कर थे । परन्तु कर वसूलने की व्यवस्था ठीक न होने से आये दिन प्रजा एवम् कर्मचारियों में संघर्ष होता रहता था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्याय के क्षेत्र में राजा सर्वोच्च न्यायाधोश था। यही अन्तिम निर्णय-दाता था। इसके नीचे एक छोटा न्यायालय था। जिसका अधिकारी मुख्य दीवान कहलाता था। कभी-कभी वरिष्ठ पुरोहित भी नियुक्त किये जाते थे। यद्यपि किसी लिखित न्याय-ग्रन्थ का पता नहीं चलता फिर भी अपराधों एवम् कानूनों को एक निश्चित व्यवस्था थी।

राज्य का आन्तरिक संगठन प्रान्तों में विभाजित था। जिसके अध्यक्ष गवर्नर होते थे। इनकी नियुक्ति वास्तव में बड़े घरानों से होतो थी। प्रान्तों को पुनः जिलों में विभाजित किया जाता था जो गवर्नर के अधीन थे। जिले का पुनः कैन्टन में विभाजन होता था जिसका कर्मचारी कोई उच्चवर्ग का व्यक्ति हाता था। इस काल को शासन-व्यवस्था का प्रमुख क्षेत्र उच्च वर्ग के शासकीय परिवारों में था जो केन्द्र एवम् प्रान्तों के बीच जोड़ने वाली कड़ी थे।

अदालतों के कठोर नियम थे जिनका उल्लंघन अपराध समझा जाता था। अदालत के तीन प्रमुख कर्मचारी थे। (१) राजकीय घराने के व्यक्ति (२) उच्च वर्ग के व्यक्ति (३) विद्वान श्रेणी के लोग जैसे संगोतज्ञ एवम् कलाकार। सरकार अदालतों पर काफी खर्च करती थी जिसके स्रोत कर एवम् विदेशी आय थे।

सैनिक व्यवस्था महान नायक के हाथ में थी जिसका पद वंशानुगत था। उसकी सहायता के लिए दो उच्च अफसर थे।

(१) एडजूटेएट जनरल

(२) प्रधान अश्वारोही दल

कोसरोज प्रथम ने इस व्यवस्था को चार सेनापतियों के अधीन किया जो उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवम् पश्चिम के मालिक थे। इस विभाजन का उद्देश्य सेनापतियों की महत्वाकांक्षा को रोकना था।

प्रमुख शस्त्रों में कवच तथा लोहे के धनुष थे। सेना के पीछे हाथियों एवं ऊँटों की सवारियाँ होती थीं। सेना के सबसे पीछे पदारोही होता था। सेना की सहायता के लिए प्रान्तीय सामन्तों को भी अपनी स्थानीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेनाएँ भेजनी पड़ती थीं।

धर्म—जैसा कि परम्पराओं से मालूम है इस काल का मुख्य धर्म जरथुस्त्र धर्म था। इसके अनुसार अनहित की पूजा प्रमुख थी। इसके सम्मान में स्तख़ में एक मन्दिर की रचना की गई जिसमें अनेक पुजारी नियुक्त किये गये। इस मन्दिर की आश्चर्यजनक वस्तु जमीन के नीचे से पानी की व्यवस्था करना था। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि यह जल-देवता की पूजा का संकेत करता है।

ईरान के उत्तर-पूर्वी भाग में प्राचीन धार्मिक व्यवस्था प्रचलित थी जिसमें मगी की पूजा प्रमुख थी। इसके सम्मान में शिज नामक नगर में मन्दिर बनाये गये थे।

ईरानियन धर्म का एक अन्य पहलू वह राजकीय धर्म था जिसकी उत्पत्ति शापुर प्रथम के काल में हुई। उसके अनुसार प्रमुख देवता जरथुस्त्र एक उच्च परिवार के व्यक्ति थे जो ईसा तथा बुद्ध की भाँति इस संसार में मनुष्यों को सही मार्ग प्रदर्शित करने के लिए भेजे गये थे। वास्तव में यह धर्म अनेक धर्मों का संग्रह था जिनमें ईसाई एवं बौद्ध प्रमुख थे। शापुर प्रथम ने इसके अनुयायियों को अनेक सुविधाएँ प्रदान कीं। उसका अनुमान था कि शक्तिशाली राष्ट्र को नया उद्देश्य प्रजा के समक्ष रखना चाहिए। परन्तु यह धर्म उसकी मृत्यु के बाद नष्ट हो गया। बहराम तृतीय के काल में बुद्ध-धर्म की विशेष प्रतिष्ठा हुई। पश्चिम में ईसाई धर्म अपने स्थान पर सुदृढ़ रहा।

जहाँ तक जरथुस्त्र धर्म के प्रभाव का प्रश्न है यह एकेश्वरवाद में विश्वास करता था। यही भावना भूमध्य सागर तथा पूर्वी देशों में आगे चलकर प्रचलित हुई। इसका ग्रन्थ अवेस्ता था। इसने ईसाई धर्म एवं बुद्ध धर्म को पराजित किया। यहाँ तक कि रोम में भी इसका प्रचार विशेष सीमा तक पहुँच चुका था।

कला एवं विज्ञान—ससैनियन कला किसी आकस्मिक पुनर्जागृति का प्रतीक नहीं वरन् वास्तव में यह पार्थियन कला के अन्तिम स्वरूप का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकास है ! इसमें यूनानी तथा पश्चिमी सभी देशों के आदर्शों का सम्मिश्रण है । साथ ही साथ यह पूर्वी आदर्शों का उन्नत स्वरूप प्रदर्शित करतो है ।

इस कला का प्रमुख अंग वास्तु कला थी जिसके अन्दर अनेक शहर बनाये गये । जैसे फिरोजाबाद, नैशापुर इत्यादि । इनकी योजना चौकोर थी । नगर के बोच में सड़कें चौराहों पर मिलती थीं । शापुर प्रथम ने गुणदेशपुर में एक विशाल नगर की स्थापना की जिसके अवशेष आज भो मौजूद हैं । शापुर द्वितीय ने सूसा के निकट ईवाने-किरखा नामक नगर का निर्माण किया । इस काल को वास्तु कला अच्छे कटे हुए पत्थरों में प्रदर्शित है । कहीं-कहीं इनपर अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ भी चित्रित की गई हैं । जैसे ताक-ई-गिर्रे का राज-प्रासाद । इस काल के प्रमुख मन्दिरों में नैशापुर का मन्दिर प्रसिद्ध है जहाँ से अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं । मुख्य महलों में फिरोजाबाद का महल है जो अर्धगोलाकार आकृति का है । इसमें अनेक कमरे हैं । इसके किनारों पर गोलाकार मीनारें भी बनायी गयी हैं । जिनकी शैली रोम के मीनारों से मिलती हैं । इस काल की वास्तुकला वास्तव में आगे चलकर बाहरी प्रदर्शनों के लिए विशेष प्रसिद्ध हो गई । इसका उद्देश्य जानवरों, पेड़-पौधों एवं राजाओं के चित्रों का प्रदर्शन रह गया । इस काल के दीवारों पर बनाये गये चित्र प्रमुख हैं जिनमें नृत्य करती हुई स्त्रियाँ, संगीतज्ञ तथा अन्य सामाजिक चित्र दिखलाये गये हैं । इनकी संख्या लगभग तीस है । कहीं-कहीं इनमें धार्मिक विषयों का भी दृश्य मिलता है, जैसे प्रमुख देवता अहुरमज़्द की मूर्ति ।

शापुर प्रथम ने पश्चिमी प्रभाव में पड़कर चित्रों को आभूषणों तथा वस्त्रों से सजाने की क्रिया का प्रचार किया । ये चित्र रोम के शासक ट्रोजन की कला से मिलते हैं । इनके सर्वोच्च स्वरूप बहराम प्रथम के काल में मिलते हैं जैसे तकी-बुस्तान के चित्र जिसमें राजा की दिग्विजय का भव्य दृश्य प्रदर्शित है । ससैनियन कब्रिस्तानों की कला का कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेष रूप नहीं प्राप्त होता। केवल हड्डियाँ एकत्र करके किसी शान्तिपूर्ण स्थान पर इकट्ठी कर दी जाती थीं।

कला का एक अन्य प्रदर्शन ईटों तथा चट्टानों में मिलता है जहाँ मिथ् तथा जर्वान के चित्र मिलते हैं। चीन के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित होने के कारण ससैनियन शासकों ने कला के क्षेत्र में भी अनेक आदर्शों को अपनाया। साथ ही इसके प्रभाव पूर्व तथा पश्चिम दोनों देशों में गये जहाँ अनेक मध्यकालीन कलात्मक आदर्शों को उत्पत्ति प्रदान की जैसे आर्लियन्स के बने हुए मन्दिर तथा वैजन्टाइन काल के अनेक मंदिर। इसी प्रकार ससैनियन कला मध्य एशिया के अनेक बौद्ध चित्रों का भी स्रोत बनी। परन्तु इसकी वास्तविक उत्तराधिकारिणी मुस्लिम कला थी।

साहित्य—साहित्य के क्षेत्र में अवेस्ता प्रमुख ग्रन्थ था। साथ ही अनेक यूनानो, लैटिन, भारतीय एवं रोमन ग्रन्थों का भी अनुवाद हुआ। ससैनियन शासकों जैसे शापुर प्रथम एवं कोसरोज़ प्रथम को साहित्यिक प्रतिभाओं ने नवीन युग का निर्माण किया जिसे "Century of Chosroes" कहते हैं। इस काल का सर्वप्रसिद्ध लेखक बुर्जो था जिसने सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। इसकी उक्तियाँ आज भी उद्धृत की जाती हैं।

आर्थिक एवं सामाजिक जीवन—ससैनियन आर्थिक प्रणाली का आधार कृषि एवं वाणिज्य था। पश्चिम में रोम एवं पूर्व में चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने से विशेष प्रगति हुई। तत्कालीन मुद्रा रजत एवं ताम्र थी। कहीं-कहीं पर बैंकिंग प्रणाली भी प्रचलित थी जिसमें असंख्य व्यक्ति कार्य करते थे। मुद्राओं का प्रचलन सभी शहरों एवम् प्रान्तों में हुआ यहाँ तक कि सैनिकों, कर्मचारियों एवम् किसानों को वेतन भी मुद्रा के रूप में दिया जाता था।

तत्कालीन व्यापार राजकीय कर्मचारियों के हाथ में था जो यातायात के साधनों, स्टेशनों, सड़कों, नदियों एवम् नहरों का प्रबन्ध करते

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। आयात की प्रमुख वस्तुओं में चीन का रेशम तथा शीशे के पदार्थ थे। कागज एवम् मसाले भी मँगाये जाते थे। निर्यात की वस्तुओं में जानवर तथा अनाज प्रमुख थे। आन्तरिक व्यापार सड़कों एवम् नदियों द्वारा होता था जिसमें व्यक्तिगत व्यापारी तथा अनेक बैंक भाग लेते थे। व्यापारिक उन्नति के साथ-साथ देश की उत्पादन शक्ति में भी वृद्धि हुई। इसके फलस्वरूप राज्य एक महान उत्पादक केन्द्र बन गया। परन्तु व्यक्तिगत जमींदारों को भी उन्नति करने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। अतएव अनेक श्रमिक, काष्ठ-शिल्पी, जुलाहे इत्यादि भी काफी धनी हो गये।

यद्यपि राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था काफी उन्नतिपूर्ण थी परन्तु साधारण वर्ग चिन्तनीय अवस्था में था। राष्ट्र के अधिकांश वर्ग को भोजन एवम् शिक्षा के लिए जमींदारों तथा राज्य पर निर्भर रहना पड़ता था। जमींदार लोग केवल कर वसूल करने के जिम्मेदार थे। किसानों की रक्षा करना उनके कार्य से बाहर था। राज्य भी वास्तव में इन्हीं जमींदारों पर निर्भर था। इन जमींदारों की स्वतंत्रता तथा आर्थिक उन्नति ने उन्हें सामन्त के रूप में बदल दिया। वे साधारण प्रजा पर मनमाने अत्याचार करने लगे। अन्ततः यही क्रान्ति इस सभ्यता के विनाश में सहायक सिद्ध हुई।

राज्य की आर्थिक व्यवस्था भी कठोर थी। उसमें दया नाम की कोई वस्तु नहीं थी। जहाँ वह एक तरफ राजकीय महलों एवम् विशाल सड़कों के निर्माण के लिए प्रजा पर अधिक से अधिक कर लगा सकती थी वहीं प्रजा को अकाल के समय भोजन देना उसके लिए कठिन था। वास्तविक प्रगति राज्य के केवल कुछ ही शहरों एवम् उपजाऊ भागों में केन्द्रित थी। शेष भाग पूर्णतया अविकसित थे। यद्यपि इस क्षेत्र में कोसरोज प्रथम ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये परन्तु अन्त में असफल रहा। जैसा कि इतिहास साक्षी है, प्रजा का असन्तोष विद्रोह की ज्वाला में परिणत होता है तथा जैसा कि यूनान, मिश्र एवम् रोम के इतिहास से विदित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, इस काल में भी साधारण किसानों एवम् दासों ने राज्य के विरुद्ध आवाजें लगायीं। उनको सहिष्णुता का प्रतीक तत्कालीन कवि एवं उच्च वर्ग के शिक्षित व्यक्ति थे जैसा कि महान कवि बुर्जो ने लिखा है—उसका काल ससैनियन सभ्यता के ह्रास का काल था।[१]

यद्यपि आधुनिक इतिहासकार को आँखों में ससैनियन सभ्यता के महान सैनिक आदर्श एवं राष्ट्रीय कला आश्चर्य की लहर पैदा करते हैं परन्तु फिर भी उसकी आन्तरिक प्रगति पूर्णतया खोखली थी जिसका आधार छिन्न-भिन्न हो चुका था। ऐसी दर्दनाक परिस्थिति में भयानक अरब जातियों के आक्रमण ने उसके विनाश की प्रगति को काफी तीव्र बना दिया और वह सदैव के लिए इतिहास के पृष्ठों पर धराशायी हो गई।[२]

---

१. "Our age is decadent everywhere."

२. "The civilisation of the Sassanian state might dazzle the eye and its armed force seems omnipotent, but its social structure was rotten, and this delivered the country into the arms of the conqueror. It proved powerless against the Arab invader."

R. Ghrisnman.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवाँ अध्याय

भारतीय सभ्यता

(मौर्य काल से गुप्त-काल तक)

भारतीय सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है। पूर्व-वैदिक युग से लेकर आज तक का इसका इतिहास और विकास बहुत लम्बा और रोचक है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति, पुराण तथा महाकाव्यों के काल से लेकर जैन और बौद्ध युग तक इस देश की सभ्यता का स्वरूप विकसित और प्रौढ़ होता आया और यह सभ्यता व्यापक एवं ग्रहणशील होकर अपने भीतर अनेक तरंगों को छिपाये पुरातन एवं नूतन का अद्भुत सामंजस्य लिये अव्याहत रूप से अग्रसर होती रही। मौर्य-वंश के कुछ पूर्व इसका सम्पर्क फारस और यूनान की सभ्यताओं से हुआ था। पर इस सम्पर्क ने इस देश की संस्कृति एवं सभ्यता पर कोई परिवर्तनकारी प्रभाव नहीं डाला और यह समन्वय का दृष्टिकोण ले मौर्य सम्राटों के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं व्यापक सृजनात्मक शक्ति की प्रतीक्षा करती थी।

(१) भारत में मौर्य वंश का शासन ई० पू० ३२४-२३ में प्रारम्भ हुआ। इसका अन्त लगभग ई० पू० १८७ में हुआ। अतः हमारे पाठ्य-विषय का प्रथम काल लगभग १२५ वर्षों का हुआ। इस काल में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे प्रतापी शासक हुए जिन्होंने अपनी शासन-नीति एवं कार्यों से भारतीय सभ्यता को एक नये रंग में ढालने का प्रयास किया। (२) तत्पश्चात् शुङ्ग-कण्व-सातवाहन युग का प्रारम्भ हुआ जो लगभग ४०० वर्षों तक रहा। पर इस काल में शकों के आक्रमण हुए और उन्होंने इस देश के एक बड़े भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता पायी। इसी युग में यवन भी आ धमके और उन्हीं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीछे शकों की कुषाण नामक एक शाखा भी भारत में आकर राज्य करने लगी। कनिष्क (सन् ७८--१०१ ई०) इस वंश का सबसे प्रतापी राजा था और उसके शासन-काल में भारतीय सभ्यता का क्षेत्र व्यापक बना और वृत्ति सामासिक हुई। (३) कुषाण साम्राज्य के टूटने के बाद भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य उठ खड़े हुए और यह क्रम गुप्त-वंश के उदय काल तक चलता रहा। कुछ इतिहासकारों ने गुप्त-वंश के पूर्व की सदी को भारतीय इतिहास का अन्धकार-युग कहा है। (४) चौथी सदी का प्रारम्भ गुप्त-वंश के उदय का समय माना जाता है और ३१८ ई० चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन की प्रारम्भिक तिथि कही जाती है। लगभग २०० वर्षों तक गुप्तों का वैभव-काल रहा और यह काल भारतीय संस्कृति का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस प्रकार हमारे पाठ्य-क्रम की पूरी अवधि लगभग ८०० वर्षों की है। इस काल की भारतीय सभ्यता के इतिहास की रूपरेखा अगले पृष्ठों में प्रस्तुत की जा रही है। हमें भारतीय इतिहास की इस लम्बी अवधि की मूलभूत निष्ठाओं, संस्थाओं, कला और जीवन के विविध अंगों का परिचय प्राप्त करना है।

मौर्य-युग की सभ्यता

समाज—इस काल की सामाजिक दशा पर मेगस्थनीज के विवरण, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों से प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण, मुद्राराक्षस नाटक, कथा सरित् सागर, बृहत्कथा मंजरी, महावंश, दिव्यावदान और परिशिष्टपर्वन आदि ग्रन्थों से भी इस युग की संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

मेगस्थनीज ने लिखा है कि "भारत की सारी आबादी सात जातियों (वर्गों) में विभाजित है। पहली जाति **दार्शनिकों** के समुदाय की है जो यद्यपि संख्या में अन्य जातियों की अपेक्षा कम है, पर प्रतिष्ठा में उन सब से श्रेष्ठ हैं। दार्शनिक लोग सभी सार्वजनिक कर्तव्यों से मुक्त हैं, इसलिए न तो किसी के दास हैं और न किसी के स्वामी। गृहस्थ लोगों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा ये बलि प्रदान करने तथा मृतकों का श्राद्ध करने के लिए नियुक्त किये जाते हैं।" उसके अनुसार यह वर्ग देवताओं का बहुत प्रिय था। वे परलोक-सम्बन्धी बातों में निपुण थे। वे गृहस्थों से बहुत दान प्राप्त करते हैं। भविष्यवाणी में ये निपुण थे। वृष्टि, अनावृष्टि, आँधी, शीत, महामारी आदि के विषय में ये भविष्यवाणी करते हैं। दूसरी जाति में किसान लोग थे। ये लोग संख्या में अधिक थे। वे राजा को भूमिकर देते थे। वे अपने परिवार के साथ गाँवों में रहते थे। तीसरी जाति के अन्तर्गत अहीर, गड़रिये और चरवाहे थे। वे न तो गाँवों में रहते थे और न शहरों में। वे डेरों में रहते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे। वे जंगली पशुओं को फँसा कर खेती का नुकसान करने को रोकते थे। इसके लिए उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कार मिलता था। चौथी जाति कारीगर लोगों की थी। इनमें से कुछ कवच बनाते थे, और कुछ विविध प्रकार के अन्य औजार तैयार करते थे जिनका किसान तथा अन्य व्यवसायी लोग प्रयोग करते थे। पाँचवी जाति सैनिकों की थी जो भलीभाँति संगठित और सुसज्जित रहती थी। संख्या में इनका स्थान दूसरा था। शान्ति के समय ये आमोद-प्रमोद में मस्त रहते थे। इस वर्ग का सारा व्यय राजकीय कोष से दिया जाता था। छठीं जाति निरीक्षकों की थी। इनका काम देश-विदेश की बातों, घटनाओं तथा प्रशासकों की बातों की जानकारी प्राप्त करना था। तत्पश्चात् वे इन बातों की सूचना राजा को देते थे। सातवीं जाति सभासदों, शासनकर्ताओं और मंत्रियों की थी। ये लोग राज्य से कार्यों की देखभाल करते थे। संख्या में यह वर्ग सब से छोटा था, पर अपने चरित्र एवं बुद्धि के कारण सबसे अधिक प्रतिष्ठित था। राजा अपने मंत्री, कोषाध्यक्ष, न्यायाधीश, सेना-नायक और प्रमुख प्रशासक नियुक्त करता था। उसने यह भी लिखा है कि इन जातियों के मनुष्य अपने-अपने व्यवसाय का अनुसरण करते थे। और अन्तर्जातीय विवाह की पद्धति नहीं थी।

मेगस्थनीज का यह वर्णन वास्तव में जातियों का वर्गीकरण नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बतलाता, बल्कि उसने कुछ मुख्य धन्धों को ध्यान में रख कर समाज का यह विभाजन किया। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में परम्परागत चार वर्णों और चार आश्रमों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कृषक गोपाल, सत्रिक (होटल चलाने वाले) शिल्पी आदि का भी वर्णन किया है। इतना सत्य मालूम होता है कि इन दिनों विभिन्न जातियों और उपजातियों में खान-पान और विवाहादि के विषय में कठोरता आ गयी थी और बौद्ध धर्म के प्रभाव ने इस दिशा में अधिक सफलता नहीं प्राप्त की। समाज में ब्राह्मणों और श्रमणों को अधिक सम्मान प्राप्त था। अशोक के तृतीय शिलालेख में लिखा है कि "ब्राह्मणों की सेवा करना उत्तम है।"

स्त्रियों की दशा—समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से हीन थी। मेगनस्थनीज ने लिखा है "पुरुष बहुत-सी स्त्रियों से विवाह करते हैं। कुछ को तो वे दत्तचित्त सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह कर लाते थे और कुछ तो केवल आनन्द के हेतु तथा घर को लड़कों से भरने के लिए।" अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि "पुरुष कितनी ही स्त्रियों से विवाह कर सकता है, स्त्रियाँ सन्तान पैदा करने के लिए ही हैं।" इससे स्पष्ट है कि उन दिनों समाज में **बहु-विवाह** की प्रथा थी। विवाह के समय **दहेज की** प्रथा का भी उल्लेख है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि आर्य विवाह में पिता एक जोड़ी बैल के बदले अपने पुत्री का विवाह करता था। इस प्रकार लड़की का पिता ही पुत्री के दान में वर-पक्ष से कुछ लेता था। चाणक्य ने दहेज के विषय में विविध प्रकार की व्यवस्था अर्थशास्त्र में दी है। स्त्रियाँ साधारणतः घर के भीतर रहती थीं। समाज में वेश्याएँ भी थीं। राज्य उनसे कर लेता था और उन पर नियंत्रण रखता था। मौर्य-काल में स्त्री-पुरुष दोनों को **पुनर्विवाह** का अधिकार था। कौटिल्य ने लिखा है कि "यदि कोई पति बुरे आचार का है, परदेश गया हुआ है, राज्यद्रोही है या खूनो है, पतित या नपुंसक है, तो स्त्री उसका त्याग कर सकती है।' पुरुषों के लिए लिखा है कि "यदि किसी स्त्री के आठ साल तक बच्चा न हो, या कोई पुरुष सन्तान न हो, या जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वन्ध्या हो, उसका पति विवाह के बाद आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे। इसके बाद पुत्र की इच्छा होने पर दूसरा विवाह कर सकता है।" पति या पत्नी के मरने पर भी दूसरे विवाह की प्रथा थी। उस समय **तलाक** (मोक्ष) की भी प्रथा थी। अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख है। ध्यान देने की बात है कि ये प्रथाएँ साधारणतः पूरे समाज में प्रचलित नहीं थीं। कुछ विशेष वर्गों में ये प्रथाएँ अधिक थीं। पर इतना तो सत्य है कि मौर्य-काल में स्त्रियों की दशा ऊँची नहीं थी। उन्हें घर से बाहर निकलने का अधिकार नहीं था और यदि वे पति की आज्ञा के बिना ऐसा करती थीं, तो अर्थशास्त्र के अनुसार उन पर १२ पण जुर्माना होना चाहिए। उस युग में **नियोग** की प्रथा थी अर्थात् पति के दीर्घकाल तक विदेश में रहने पर या उसके नपुंसक होने पर स्त्री को किसी दूसरे योग्य पुरुष से अपने वंश की रक्षा के लिए सन्तान उत्पन्न करने का अधिकार राज्य की ओर से प्राप्त था। वह सन्तान अवैध नहीं समझी जाती थी।

भोजन और पान—भोजन के पदार्थों में अन्न, फल, दूध, मांस आदि का उल्लेख है। अशोक के शिलालेख में स्पष्ट लिखा है कि उसके रसोई घर में प्रतिदिन मांस पकता था। बौद्ध होने के बाद उसने यह प्रथा बन्द करा दी। मालूम होता है कि बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से मांसाहार की प्रथा कम हो रही थी। मेगस्थनीज़ के अनुसार धनी लोग सोने के पात्र में भोजन करते थे। उसने लिखा है कि "भारतीय अकेले में भोजन करते हैं। वे कोई ऐसा नियत समय नहीं रखते हैं जब कि इकट्ठे मिलकर भोजन किया जाय। जिस समय जिसको इच्छा होती है, वह तभी भोजन कर लेता है।" बाजार में विविध प्रकार के भोजन की सामग्री अलग-अलग दूकानों पर बिकती थी। मांस और शराब का रिवाज अधिक था। शराब की बिक्री राज्य द्वारा नियंत्रित होती थी। इसीलिए शराब पीने वालों पर भी नियंत्रण था।

मनोरंजन—अर्थशास्त्र में आमोद प्रमोद करने वालों का पृथक वर्ग था जो स्थान-स्थान पर घूम कर तमाशा दिखाया करते थे। अर्थ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शास्त्र में ऐसे नट, नर्तक, गायक, वादक, बाजीगर का उल्लेख है। तमाशा के लिए उन्हें लाइसेन्स लेना पड़ता था। शिकार भी मनोरंजन का एक साधन था। यवन यात्री ने लिखा है कि "जब राजा शिकार के लिए राज-प्रासाद से बाहर निकलता है तो स्त्रियों की भीड़ उसे घेरे रहती है। बाहर बरछे वाले रहते हैं। रास्ते में रस्सा से चिन्ह लगाया जाता है और उसमें अनधिकारी प्रवेशकर्ता को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।" अशोक के अभि-लेखों से मालूम होता है कि विविध प्रकार के 'समाजों' में पशुओं के युद्ध की व्यवस्था की जाती थी। अशोक ने इन 'समाजों' को बन्द करा दिया था। मेगस्थनीज ने भी रथदौड़, हाथी दौड़, साँड़-युद्ध, हाथी-युद्ध का उल्लेख किया है। नगर में नियंत्रित जुआ-गृह का भी उल्लेख है। प्रेक्षा-गृहों में नाटकों का आयोजन किया जाता था। ऐसे नाटक जनता के मनोरंजन के साधन थे।

नैतिकता—मेगस्थनीज ने तत्कालीन समाज की नैतिकता की बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि "अपने आचरण में सरल और मित-व्ययी होने के कारण भारतीय काफी सुखी हैं। यज्ञों के अतिरिक्त वे कभी शराब नहीं पीते हैं। चोरी की घटनाएँ बहुत कम होती हैं। वे अपने घरों और सम्पत्ति को बहुधा अरक्षित अवस्था में ही छोड़ जाते हैं। उनके कानूनों और लेन-देन के मामलों की सादगी इसी बात से प्रमाणित होती है कि वे बहुत ही कम लेते थे। उनके पारस्परिक झगड़ों का निर्णय साधा-रण तौर पर उनकी प्राचीन काल से चली आने वाली पंचायतों में हो जाता है।" उसने लिखा है कि "भारतीय सत्य और गुण का आदर करते हैं। उनका आचार सादा है, पर वे विशेष अवसरों पर सौन्दर्य-प्रसाधन की सामग्रियों का व्यवहार करते हैं।" अशोक ने भी अपने धर्म-लेखों में नैतिक पक्ष पर बहुत जोर दिया है। वह बाह्याडम्बर के स्थान पर अन्तः-शुद्धि को अधिक महत्व देता था। माता-पिता की आज्ञा का पालन, गुरु-जनों का आदर, मित्रों-पड़ोसियों और सम्बन्धियों के प्रति उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों के विकास पर जोर देता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक व्यवस्था

मौर्य काल में भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि किसानों की संख्या देश में सबसे अधिक थी। वे लोग युद्ध करने या अन्य राजकीय कार्यों से मुक्त थे और अपना सारा समय कृषि में ही लगते थे। उस यूनानी ने लिखा है कि "भूमि के अधिक भाग में सिचाई होती है, अतः उसमें एक साल के भीतर दो फसलें होती हैं।.... एक साथ होने वाले फल और मूल, जो दलदलों में उत्पन्न होते हैं और भिन्न-भिन्न मिठास के होते हैं, मनुष्यों को प्रचुर खाद्य-सामग्री प्रदान करते हैं।" युद्ध के समय भी भारत में किसानों का कोई नुकसान नहीं किया जाता था।

अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के चावल (शाली, व्रीहि और कोद्रव), एवं तिल, प्रियंगु, वरठ, जो वर्षा के प्रारम्भ में बोई जाती थीं; मूँग, उड़द, शैव्य जो वर्षा ऋतु के मध्य में बोई जाती थीं; मसूर, जौ, गेहूँ, चना, अलसी, सरसों आदि जो वर्षा के अन्त में बोई जाती थीं, आदि का वर्णन है। इनके अतिरिक्त ईख, कपास, खरबूजे तथा अन्य कतिपय फलों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में है। कौटिल्य ने जुती हुई (कृष्ट), बिना जुती हुई (अकृष्ट) और ऊँची भूमि का वर्णन किया है। खेती हल-बैल से होती थी। सिंचाई के लिए प्रबन्ध था। जूनागढ़ अभिलेख से प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्त के एक प्रान्तीय शासक पुष्यगुप्त वैश्य ने सौराष्ट्र में सुदर्शन झील का निर्माण कराया था ताकि उससे सिंचाई हो सके। अर्थशास्त्र में लिखा है कि सिंचाई नदी, कूप, तालाब आदि से की जाती थी। सिंचाई की व्यवस्था अच्छी होने के कारण पैदावार अच्छी होती थी। इसीलिए मेगस्थनीज ने लिखा है कि "भूमि पशुओं के निर्वाह योग्य चारा तथा अन्य खाद्य पदार्थ प्रदान करती है। यह माना जाता है कि भारत में अकाल कभी नहीं पड़ा है और खाने की वस्तुओं की महँगाई भी साधारणतः कभी नहीं हुई है।" भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए विविध प्रकार की खादों के प्रयोग का भी उल्लेख कौटिल्य ने किया है। खाद बनाने में

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोबर, हड्डी और राख आदि का प्रयोग किया जाता था। अर्थशास्त्र में सिंचाई के पाँच साधन लिखे हैं—१. हस्तप्रावर्त्तिमम् अर्थात् पानी को किसी गढ़े में एकत्रित कर हाथ से रस्सी और डोल की मदद से सिंचाई करना, २. स्कन्धप्रावर्त्तिमम् अर्थात् कन्धे की सहायता से पानी निकाल कर सिंचाई करना, ३. स्रोतयंत्रप्रावर्त्तिमम् अर्थात् हवा-चक्की से पानी निकाल कर सिंचाई करना, ४. नदी सरस्तटाककूपोदघाटम् अर्थात् नदी, सर, तटाक और कूप द्वारा सिंचाई करना और ५. सेतुबंध अर्थात् बाँध बनाकर उसमें पानी एकत्रित कर सिंचाई की व्यवस्था करना।

अर्थशास्त्र में विविध प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख है—तंतुवाय अर्थात् कपड़ा बुननेवाले बुनकर कपास, सन् और ऊन के अनेक प्रकार के कपड़े बुनते थे। सूत चरखों पर काता जाता था और खड्डी पर उसकी बुनाई होती थी। विविध प्रकार के ऊन का वर्णन भी अर्थशास्त्र में है। विभिन्न प्रदेशों के कपड़ों के विषय में कौटिल्य ने लिखा है कि "जो कपड़ा वंगदेश में बनता है, वह श्वेत और चिकना होता है। पुंड्र देश का कपड़ा काला और मणि की तरह चिकना होता है। सुवर्ण कड्य देश का कपड़ा सूर्य की तरह रंगवाला और मणि के समान चिकना होता है। इसे एक समान सीधा रखकर और उलटा टेढ़ा रखकर दोनों तरह से बुना जाता है। काशी तथा पुण्ड्र देश के बने सन से कपड़े भी बहुत उत्तम होते हैं। मगध, पुण्ड्र और सुवर्णकुड्य देशों में विविध वृक्षों के पत्तों व छाल के रेशों से भी कपड़े बनाये जाते हैं।" मेगस्थनीज ने पहनावे के विषय में लिखा है कि "वे मलमल के फूलदार कपड़े पहनते हैं, सिर पर पगड़ी बाँधते हैं और चमकीले रंगों में रंगे हुए वस्त्रों का प्रयोग करते हैं।" कौटिल्य ने ऊनी वस्त्रों, कंबलो और पानी से न भीगने वाले कपड़ों का भी वर्णन किया है। ऐसे व्यवसाय का मुख्य प्रदेश नेपाल था।

वस्त्र-व्यवसाय के साथ धोबी, रंगरेज और दर्जी के काम का भी उल्लेख है। वहीं रस्सी और कवच बनाने वाले व्यवसायियों का भी उल्लेख है। यूनानी लेखक एरियन ने लिखा है कि "भारतवासी सफेद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चमड़े के जूते पहनते हैं जिनके तल्ले रंग-बिरंगे और पंजे भाँति-भाँति के कटावदार होते हैं।"

इस देश में खानों में काम करने वालों का व्यवसाय भी महत्वपूर्ण था। चाणक्य ने अर्थशास्त्र में खानों के व्यवसाय का विस्तार के साथ वर्णन किया है। इस विभाग के अध्यक्ष को 'आकराध्यक्ष' कहते थे। विविध प्रकार की खानों का पता लगाने के लिए तरह-तरह के उपाय काम में लाये जाते थे। कच्ची धातुओं को शुद्ध करने, उन्हें, नरम, लचकदार, कड़ा बनाने की विधियाँ भी अर्थशास्त्र में दी हुई हैं। खानें राज्य के अधिकार में थीं। राज्य उन्हीं निश्चित शर्तों पर दूसरों को भी देता था। मेगस्थनीज ने भी लिखा है कि "भारत की भूमि अपने ऊपर हर प्रकार के फल तथा कृषि-जन्य पदार्थ तो उपजाती ही है, पर उसके गर्भ में भी सब प्रकार की धातुओं की अनेक खानें हैं। इस देश में सोना और चाँदी बहुत होता है। ताँबा और लोहा भी कम नहीं होता। जस्ता तथा और धातुएँ भी होती हैं। इनका व्यवहार आभूषण और युद्ध के हथियार तथा साज आदि बनाने के निमित्त होता है।" पंजाब के मालव गणराज्य से सिकन्दर को सौ टैलेंट श्वेत लोहा प्राप्त हुआ था। चन्द्रगुप्त के सोने की पालकी का उल्लेख मेगस्थनीज ने किया है। कौटिल्य ने स्वर्णकार और जौहरियों की कला का विशेष उल्लेख किया है। खनिज पदार्थों से रथ, अस्त्र-शस्त्र और अन्य चीजें बनायी जाती थीं। अर्थशास्त्र में निम्नलिखित अन्य व्यवसायों का भी उल्लेख है :

नमक का व्यवसाय, समुद्र से रत्नादि निकालने का व्यवसाय, स्वर्णकार, वैद्य, शराब का व्यवसाय, बूचड़खाने, चमड़े का व्यवसाय, बर्तनों का व्यवसाय, जंगलों से सम्बन्धित व्यवसाय, लुहारी, जहाज और नौका बनाने का काम, मनोरंजन करने वाले व्यवसाय, भोजनालय चलाने का काम, वेश्यावृत्ति, सुगन्धियाँ बनाने और बेचने वालों का काम, ग्वाले का काम, मजदूरी, मूर्तियाँ बनाने का काम आदि।

मौर्य-काल में भारत का सम्पर्क दूर-दूर के देशों के साथ बढ़ा। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में प्रशासन की दृढ़ता के कारण शान्ति और व्यवस्था भी अपेक्षाकृत अधिक रही और साम्राज्य का विस्तार भी अधिक था। अतः यह युग व्यापार की दृष्टि से अधिक उपयुक्त एवं सम्पन्न था। अर्थशास्त्र और पाली बौद्ध ग्रन्थ भी इस विषय पर अधिक चर्चा करते हैं। इस युग में देश के भीतर अन्तरदेशीय व्यापार बहुत उन्नत दशा में था। यह व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों द्वारा होता था। विशाल मगध में सड़कों का जाल-सा बिछा था। पाटलिपुत्र से उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम हर दिशा में सड़कें जाती थीं। नदियों से यातायात खूब होता था। चम्पा से वाराणसी और तत्पश्चात् कौशाम्बी तक गंगा और यमुना में नावों से लगातार व्यापार होता था। कौशाम्बी से सिन्धु तक घोड़ों का व्यापार होता था। मध्य-देश में कौशाम्बी व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। वह श्रावस्ती, उज्जैन, विदिशा तथा ताम्रलिप्ति से सड़कों द्वारा मिला था। इस युग में विदेशी व्यापार का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में हुआ है। विदेशी सार्थवाहों (काफिलों) का उल्लेख कौटिल्य ने किया है जो पश्चिमोत्तर प्रान्त से होकर भारत में प्रवेश करते थे। समुद्री मार्ग को कौटिल्य ने 'संयानपथ' एवं समुद्री जहाज को 'प्रवहण' कहा है। कौटिल्य का कथन है कि "तूफान के कारण आहत हुआ जब कोई जहाज बन्दरगाह पर पहुँचे तो बन्दरगाह के अध्यक्ष को उस पर पिता की भाँति अनुग्रह करना चाहिए।" चीन, ईरान, मिश्र आदि देशों से भारत का व्यापार अधिक होता था। पूर्वी द्वीपों से भी भारत का व्यापार उन्नत दशा में था। जातकों से मालूम होता है कि कभी-कभी जहाजों को समुद्रयात्रा में छः-छः महीने लगते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि "रेशम और चीनपट्ट, जो चीन देश में उत्पन्न होते हैं, श्रेष्ठ समझे जाते हैं। ईरान के कार्दमिक मुक्ता (ईरानी मोती) बहुत अच्छे थे।" भारत से ईरान, मिस्र आदि देशों को नील, मसाले, मूल्यवान काष्ठ, औषधियाँ, सूती व रेशमी कपड़े अधिक भेजे जाते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन मिश्री शासक टाल्मी था जो व्यापार में विशेष रुचि लेता था। उसके राज्य में अलेक्जेंड्रिया व्यापार की सबसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़ी मण्डी थी जहाँ भारतीय व्यापारी सामान एकत्रित कर पश्चिमी देशों को वितरित करते थे।

हिमालय के प्रदेश, द्वादश ग्राम, आरोह. बाह्लव आदि अच्छे चमड़े के लिए प्रसिद्ध थे। कोशल, कश्मीर, विदर्भ, कलिङ्ग आदि हीरे; ताम्रपर्णी, पाण्ड्य, केरल आदि मोती, मलयकूट पर्वत मणियों के लिए देश भर में प्रसिद्ध थे। नैपाल के कम्बल दूर-दूर भेजे जाते थे। वंग, काशी, पुण्ड्र विशेष प्रकार के कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे।

मौर्य युग में व्यापारी श्रेणियों एवं संघों में संगठित थे। एक तरह की चीजों के व्यापारी एक श्रेणी में संगठित होते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि कृषि, गोरक्षा और व्यापार के कारण ये संघ बड़े समृद्ध थे। श्रेणियों के अध्यक्ष को श्रेष्ठी या मुख्य कहते थे। प्रत्येक श्रेणी के लिए श्रेणी-नियम थे और उन्हीं के अनुसार ये श्रेणियाँ संचालित होती थीं। ये श्रेणियाँ स्वशासित समूह थे। ये वस्तुओं के उत्पादन और बिक्री पर नियंत्रण भी रखते थे। वे इस बात पर ध्यान देती थीं कि घटिया वस्तु न तैयार हो। वे उद्योग-धन्धों की शिक्षा देने की व्यवस्था करती थीं। ये आपसी व्यापारिक झगड़ों का निर्णय भी किया करती थीं। सरकार वस्तुओं के मूल्यों का नियन्त्रण करती थी।

मौर्य-युग के सिक्कों के विषय में हमें कम ज्ञान है। चाँदी के पंच किये हुए सिक्के (पंचमार्क्ड) जो अधिक संख्या प्राप्त हुए हैं, इसी युग के हैं। उन पर 'पर्वत', 'अर्द्धचन्द्र' तथा 'मोर' के चिन्ह अंकित हैं। कौटिल्य के अनुसार सिक्का-विभाग के अमात्य को 'लक्षणाध्यक्ष' कहते थे। यह सच है कि अभी तक यवन देशों की तरह सुडौल सिक्कों के ढालने की प्रथा नहीं चल पायी थी।

मौर्यकालीन साहित्य और भाषा

मौर्य-काल की सबसे प्रसिद्ध साहित्यिक कृति उस समय के महापण्डित चाणक्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' है। कौटिल्य ने 'अर्थ' का लक्षण इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार बताया है : "मनुष्यों की वृत्ति अर्थ है, अर्थात् मनुष्य-सहित भूमि। उस पृथ्वी के लाभ और पालन का उपाय-रूप अर्थशास्त्र है।" इस प्रकार अर्थशास्त्र में मनुष्य की जीविका, उसके साधन की प्राप्ति और पालन और मनुष्य के लौकिक कल्याण सम्बन्धी सब ज्ञान एवं चिन्तन का विषय-प्रतिपादन रहता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्य-शासन-पद्धति, कानून-व्यवहार, आर्थिक दशा आदि-आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। कात्यायन ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर अपने **वार्तिक** इसी समय लिखे। इसी युग में सुबन्धु ने **'वासवदत्ता नाट्य धारा'** और वात्सायन ने अपना प्रसिद्ध **कामसूत्र** लिखा।

अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म की **तीसरी संगीति** का अधिवेशन पाटलिपुत्र में हुआ था। इस संगीति के अध्यक्ष प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान आचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्स थे। इसी संगीति के निर्णयानुसार अभिधम्म पिटक नामक तीसरा पिटक तैयार हुआ। इसके पूर्व विनय पिटक और सुत्त पिटक ही थे। अभिधम्म पिटक दार्शनिक व्याख्या का ग्रन्थ है। इसी संगीत में **'कथावत्थु'** नामक एक संकलन हुआ। इस ग्रन्थ में उस समय के सभी प्रचलित मतों का खण्डन हुआ है। यह ग्रन्थ भी अभिधम्म पिटक के अन्तर्गत ही आता है। जैन धर्म ग्रन्थ **दशवैकालिक** के रचयिता स्वायंभव और जैन ग्रन्थों पर **निर्युक्ति** (भाष्य) के लेखक भद्रबाहु इसी काल में पैदा हुए थे। भद्रबाहु ने **कल्पसूत्र** नामक ग्रन्थ भी लिखा। रामायण और महाभारत के कुछ अंश भी इसी काल में जोड़े गये, ऐसा कहा जाता है।

अशोक के समय में आर्य-भाषाओं का प्रचार बढ़ रहा था। प्रायः सम्पूर्ण उत्तरी भारत में इनका प्रवेश हो गया था। छोटा नागपुर के आस-पास मुंडा और दक्षिण में द्रविड़ भाषाओं का प्रचार था। अशोक के अपने प्रदेश में प्राकृत भाषा का प्रचार था। मौर्य-युग के अन्तिम चरण में पूर्वी प्राकृत की प्रतिष्ठा कम हो चली और उसका स्थान पाली भाषा ने ले लिया। मौर्य काल में दो लिपियाँ प्रचलित थीं—ब्राह्मी और खरोष्ठी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक के पश्चिमोत्तर प्रान्त के अभिलेख खरोष्ठी लिपि में ही लिखे हैं। यह लिपि दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी। अन्य सभी अभिलेखों में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग है। इसी से आर्य परिवार की सभी भारतीय भाषाओं की लिपियाँ निकली हैं। शिष्ट जन में संस्कृत का ही प्रचार था।

डा० स्मिथ ने लिखा है कि ब्रिटिश भारत की अपेक्षा मौर्य-युग में साक्षरता अधिक थी। अशोक द्वारा इतने अभिलेखों का उत्कीर्ण कराया जाना इस बात का संकेत है कि उस युग की जनता लिखना पढ़ना जानती थी। इस समय शिक्षा का काम आचार्य, पुरोहित और श्रोत्रिय करते थे। राज्य की ओर से ऐसे व्यक्तियों को सहायता दी जाती थी। ऐसे व्यक्ति राजकीय करों से मुक्त कर दिये जाते थे। इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से अध्यापन करने वालों के अतिरिक्त कुछ विद्या-केन्द्र भी थे जहाँ एक संस्था के रूप में विद्याध्ययन का काम होता था। इस प्रकार की तत्कालीन प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था तक्षशिला में थी जहाँ आचार्य चाणक्य ने भी शिक्षा प्राप्त की थी और आचार्य भी रहे थे। जातकों में कथा है कि वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने पुत्र को विद्याध्ययन के लिए तक्षशिला भेजा था। वहाँ दो प्रकार के विद्यार्थी थे। कुछ विद्यार्थी दिन में आचार्य का काम करते थे और रात को विद्या अध्ययन करते थे। इनको 'धम्मन्तेवासिक' कहते थे। दूसरे प्रकार के वे छात्र थे जो आचार्य को पूरी फीस देते थे, उनके घर रहते थे और नियमपूर्वक शिक्षा ग्रहण करते थे। उन्हें 'आचारिय भाग दायक' कहा जाता था।

तक्षशिला उस समय का प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था। यहाँ वेद, अष्टादश विद्या, विविध शिल्प, धनुर्विद्या, हस्ति विद्या, मंत्र विद्या, प्राणियों की बोलियाँ समझने की विद्या, आयुर्वेद आदि की शिक्षा दी जाती थी। तक्षशिला में राजा बिम्बसार का राजवैद्य जीवक और कोशल के राजा प्रसेनजित् शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। तक्षशिला के समान ही काशी भी भारत का प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था। राजगृह और पाटलिपुत्र भी शिक्षा के केन्द्र थे जहाँ विद्यार्थी दूर-दूर से आकर विद्याध्ययन करते थे। तक्षशिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का स्थान सर्वोपरि था।

मौर्यकालीन धर्म

यद्यपि इस युग से लगभग दो-तीन सदी पूर्व बौद्ध और जैन धर्म का प्रादुर्भाव हो चुका था, तथापि अभी तक ब्राह्मण धर्म का जोर कम नहीं हुआ था और साधारण जनता से लेकर राजवंशों तक अभी उसी धर्म का प्रभाव अधिक था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि "पर्वतों के ब्राह्मण शिव (दियोनीसस्) की और मैदान के लोग हिराकिल अर्थात् विष्णु-कृष्ण की पूजा करते थे। उनका केन्द्र देवताओं का नगर मथुरा था।" यत्र-तत्र से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित मालूम होता है कि इस युग के प्रारम्भिक दिनों में वासुदेव-कृष्ण की पूजा का अधिक प्रचार था। धार्मिक सुधार आन्दोलनों के बाद भी यज्ञ, बलि, श्राद्ध की परिपाटी प्रचलित थी। अशोक ने भी पशु-बलियुक्त यज्ञों को रोकने का आदेश दिया था। कौटिल्य ने मन्दिरों में शिव, कुबेर, लक्ष्मी, अग्नि आदि की पूजा का उल्लेख किया है। साधारण जनता जादू-टोना, ज्योतिष, शकुन, मुहूर्त, स्वप्न, विचार आदि में विश्वास रखती थी। जनता में स्वर्ग और नरक का भी विचार प्रचलित था। नाग-पूजा, वृक्ष-पूजा आदि के भी प्रमाण मिलते हैं। तीर्थ-यात्रा की महिमा प्रचलित थी। दान देने की प्रथा भी थी। चित्तौड़ के समीप माध्यमिका नगरी में इस काल का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें वासुदेव की पूजा के लिए दान देने का उल्लेख है। इन बातों से ब्राह्मण धर्म की व्यापकता सिद्ध होती है। बौद्ध और जैन अनुश्रुतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ब्राह्मण धर्म को मानते थे और कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का स्वागत दान-दक्षिणा से करते थे।

इतना होते हुए भी बौद्ध और जैन धर्म के प्रचारक इतने सक्रिय थे कि ब्राह्मण-वर्ग उनसे सशंकित था। अनुश्रुति के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य और सम्पति जैनधर्म मानते थे। सम्पति ने जैन संन्यासियों के लिए बिहारों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण कराया । इसी काल में जैन धर्म का आचार्य भद्रबाहु हुआ था जो चन्द्रगुप्त का समकालीन था । अशोक ने बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार किया । इसी समय बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत के बाहर पहुँचा । अशोक अपने इस प्रयास के कारण विश्व-इतिहास में प्रसिद्ध हो चुका है । मालूम होता है कि इस धर्म में भी मत-मतान्तर पैदा हो गये थे । अशोक ने उन्हें संगठित और फूट से बचाने का प्रयास किया ।

मौर्य-काल में एक पंथ आजीवक सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित था । आजीविकों का मुख्य व्यक्ति गोसाल था । आजीवका नग्न संन्यासी की भाँति जीवन व्यतीत करते थे । ये नियतिवादी थे और मनुष्य को नियति का दास मानते थे । इन्द्रिय-निग्रह पर उनका जोर नहीं था । अशोक ने आजीवक संन्यासियों के लिए बराबर की गुफाओं को निर्मित कराया था ।

आचार्य चाणक्य को, जो वर्णाश्रम धर्म का कट्टर पक्षपाती था, बौद्धों तथा जैनों का युवा अवस्था में संसार-त्याग पसन्द नहीं था । भावावेश में आकर अपने परिवार की चिन्ता किये बिना प्रव्रज्या ग्रहण करना उसे अनुचित मालूम होता था । स्त्रियों का संघ में प्रवेश भी वह स्वस्थ नहीं मानता था । इसीलिए अर्थशास्त्र में प्रव्रज्या ग्रहण करने और भिक्षुओं के विचरण पर नियंत्रण लगाने की बात कही गयी है । अशोक के समय में सम्भवतः ये नियंत्रण हटा लिये गये ।

मौर्ययुगीन कला

भारतीय कला का प्रारम्भ तो अति प्राचीन काल में हुआ था, पर उन प्रारम्भिक कृतियों के अवशेष नहीं बचे । केवल सिन्धु-सभ्यता-काल की कला-कृतियों के कुछ नमूने हमें उपलब्ध हो सके हैं । केवल कुछ मूर्तियाँ मगधराज अजातशत्रु और उसके वंशजों की हमें उपलब्ध हैं जिन्हें हमने पहले यक्ष-मूर्तियाँ समझ रखा था । लेकिन डाक्टर जायसवाल ने इस भ्रम को दूर किया । पर वास्तव में भारतीय कला के उत्कृष्ट एवं अधिक नमूने हमें अशोक के समय में देखने को मिलते हैं । "अशोक ने जिस प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक क्षेत्र में 'समवाय' अर्थात् सब धर्मों के सारभूत गुणों पर जोर देकर संसार के इतिहास में एक अद्भुत प्रयोग किया, उसी प्रकार उसने कला के क्षेत्र में भी समवाय का प्रयोग कर एक नये युग का प्रवर्तन किया।" अशोक ने प्राग्-ऐतिहासिक काल से चली आती हुई भारतीय कला में आवश्यक परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन कर उसे प्रौढ़ बनाया।

अशोक के पूर्व चन्द्रगुप्त के राजप्रासाद और नगर का वर्णन मेगस्थनीज ने किया है। उसने लिखा है कि "भारत में सबसे बड़ा नगर प्राच्य देश का पाटलिपुत्र है। वह नगर गंगा-सोन के संगम पर बसा है। इस नगर की लम्बाई ८० स्टेडिया (५ $\frac{१}{४}$ स्टेडिया = लगभग १ मील) और चौड़ाई १५ स्टेडिया है। यह नगरी समानान्तर चतुर्भुज की शकल का है। इसके चारों ओर लकड़ी की एक प्राचीर (दीवार) है जिसके बीच में तीर छोड़ने के लिए बहुत से छेद बने हैं। दीवार के साथ चारों ओर एक खाईं है जो युद्ध से रक्षा और शहर की गन्दगी बहाने के काम आती है। यह खाईं गहराई में ४५ फुट और चौड़ाई में ६०० फुट है। शहर के चारों ओर की प्राचीर में ५०० बुर्ज और ६४ द्वार हैं।.........इसी नगर में चन्द्रगुप्त का विशाल राजप्रासाद निर्मित है। वह प्रासाद एक सुविस्तृत उद्यान के बीच खड़ा है। उसके स्तम्भ सुनहरे हैं। उसमें कृत्रिम तालाब है जिसमें रंग-बिरंगी मछलियाँ नृत्य करती हैं। उसकी विस्मयजनक विभूति के समक्ष सूसा (Susa) और एकबताना (Ekbatana) के ईरानी राजमहलों का सौन्दर्य भी फीका पड़ जाता है।" गुप्त-काल में आये चीनी यात्री फाह्यान के समय तक वह राजमहल ज्यों का त्यों खड़ा था। वह चीनी यात्री पाँचवीं सदी में उसे देखकर चकित रह गया था। वह लिखता है कि "पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) राजा अशोक की राजधानी थी। नगर में अभी तक अशोक का राजभवन एवं सभा-भवन है। सब असुरों के बनाये हुए हैं। पत्थर चुनकर दीवारें और द्वार बनाये गये हैं। उन पर सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के मनुष्य उन्हें नहीं बना सकते। अब तक ये नये के समान हैं।" अब तो वह नगर और वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजभवन विलुप्त हो चुका है। लकड़ी की सभी चीजें नष्ट हो गयी हैं। उसके अवशेष भी पृथ्वी के नीचे दब गये हैं।

मौर्यकाल में बराबर और नागार्जुनी पर्वतों में गुहाविहारों का निर्माण हुआ था। उनकी पालिश अच्छी है। ये गुफा-मन्दिर अशोक और उसके पोते दशरथ ने बनवाये थे। महाराष्ट्र के कुछ स्थानों पर इसी प्रकार के गुहा चैत्य पिछले मौर्य-युग में बने थे। "ये गुफाएँ बहुत ही कड़े तेलिया पत्थर की हैं जिनका काटना असम्भव-सा है। परन्तु ये काटी ही नहीं गयी हैं, वरन् इनकी भीतों पर काँच-सरीखी ओप (पालिश) भी की गई है।" ये गुफायें साधुओं के रहने के लिए बनायी गयीं थी, अतः इनकी आकृति कुटिया-जैसी है। इनमें छाजन की नकल की गयी है और देखने से फूस के फूलों सी जान पड़ती हैं।

मौर्ययुग में मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। इसी समय की मथुरा के पास से ७ फुट ऊँची एक यक्ष की मूर्ति, बेसनगर भेलसा से ६ फुट ७ इंच यक्षिणी की मूर्ति, और दीदारगंज से चामरग्राहिणी की मूर्ति प्राप्त हुई हैं। सारनाथ की वेष्टनी (रेलिङ्ग), बोध गया का सिंहासन अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर और कलात्मक हैं। ये कृतियाँ उस समय की ओर संकेत करती है जब भारतीय कलाकारों ने लकड़ी से हटकर पाषाण-खण्डों पर अपनी छेनी चलानी प्रारम्भ की थी। कुछ ही दिनों में उनके हाथ प्रौढ़ हो गये।

मौर्य-युग की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने अशोक के समय के स्तम्भ हैं। दिल्ली, साँची, कौशाम्बी, सारनाथ, लुम्बिनी, प्रयाग, लौरिया अरराज और नन्दनगढ़ तथा रामपुरवा (बिहार के चम्पारन जिले में स्थित) में अशोक के १३ स्तम्भ अच्छी दशा में खड़े हैं। "अशोककालीन कला के सर्वोत्तम नमूने बलुआ पत्थर के बने चिकने ओप-युक्त स्तम्भ हैं। उनकी औसत ऊँचाई ४० फुट है। समूचा स्तम्भ केवल एक पत्थर की शिला को काटकर बनाया गया है जो आधार की ओर मोटा है एवं शीर्ष की ओर थोड़ा पतला होता जाता है। अधिकांश स्तम्भों पर अशोक की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म-लिपियाँ हैं। कुछ सादे हैं। परन्तु सारे स्तम्भों पर ओप और शीर्ष में पशु-मूर्तियाँ हैं। उनकी शिलाएँ चुनार के पास पर्वत से काटी गयी थीं। उनकी हलकी गुलाबी झलक आँखों को बहुत भली लगती है। उनमें धुँधले काले रंग की चित्तियाँ पड़ी हैं जो शोभा को और बढ़ाती हैं। स्तम्भों में सबसे सुन्दर स्तम्भ सारनाथ में मृगदाव में खड़ा किया गया था जहाँ बुद्ध ने सबसे पहले आर्य सत्य-चतुष्टय का उपदेश दिया था। एक लम्बी शैल-यष्ठि के सिरे पर पंखुड़ियों से ढके हुए कमल का अलंकरण है। इस कमल के ऊपर एक गोल अण्डाकृति भाग है, जिसमें चार दिशाओं में चार धर्मचक्र एवं चार अवान्तर दिशाओं में चार दौड़ते हुए पशु—हाथी, बैल, घोड़ा और सिंह अंकित किये गये हैं। धर्म-चक्र के ठीक ऊपर पीठ सटाकर उकड़ू बैठे हुए चार सिंह हैं। धर्म चक्रों में २४ आरे हैं जो मूल रूप में ३२ थे[१]।"

इन स्तम्भों के प्रत्येक भाग की ऊँचाई और चौड़ाई बड़ी आनुपातिक है। कला की दृष्टि से ये स्तम्भ शिरोमणि हैं। आज भी इनकी पालिश ताजी मालूम होती है। इनका वजन लगभग हजार मन है। ये स्तम्भ मूल स्थान से अपने स्थान तक कैसे लाये गये, गढ़े और चमकाये गये, खड़े किये गये और इन पर ऊपर सिंह, बैल, हाथी या घोड़े की मूर्तियाँ कैसे जोड़ी गयीं, ये विषय ऐसे हैं जिनमें बुद्धि चकरा जाती है। इनके ऊपर पशुओं की आकृतियाँ इतनी सजीव और वास्तविकता के निकट है कि ये मानव हाथों के कौशल की पराकाष्ठा को प्रकट करती हैं। ये संसार की सर्वश्रेष्ठ आकृतियाँ कही गयी हैं। "उनमें अंकित समस्त प्रतीक चिन्ह एक गम्भीर जीवन-दर्शन को प्रकट करते हैं। अर्थ की दृष्टि से उसे एक पूरा ग्रन्थ कहा जा सकता है।"

स्तम्भों के उपर जो पशुओं की आकृतियाँ बनी हैं, वे डा० मुकर्जी के अनुसार बुद्ध की जीवनी के प्रतीक हैं। बीच के अण्डाकार भाग का सिंह स्वयं बुद्ध का प्रतीक है, बैल उनके वृषभ नक्षत्र में जन्म का संकेत करता

१. 'भारत की युगयात्रा' से साभार उद्धृत, पृष्ठ ९४, ९५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, हाथी बुद्ध के माँ के गर्भ में आने का प्रतीक है क्योंकि उनकी माता ने गर्भ-धारण सम्बन्धी स्वप्न में एक हाथी उतरते देखा था; ऊपर के चार सिंह बुद्ध के चतुर्दिक सिंहनाद (चक्रवर्ती सिंहनाद) के सूचक हैं और धर्म बुद्ध की शिक्षाओं (आर्य सत्य चतुष्टय) का प्रतीक चिन्ह है।

बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने ८४ हजार स्तूपों का निर्माण कराया था। पर अब उनमें से कुछ ही खड़े हैं, शेष नष्ट हो गये हैं। इन स्तम्भों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। डा० स्मिथ ने लिखा है कि "कठोर पाषाण को चिकना करने की कला इस पूर्णता तक पहुँच गयी थी कि यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग की कलात्मक शक्तियों के लिए यह एक खोई हुई कला ही है।"

स्तम्भों की नींव की ऊँचाई और ऊपर के पशुओं की आकृतियों को देखकर कुछ विद्वानों ने इस कला पर ईरानी कला के प्रभाव का अनुमान लगाया है। जो भी हो, उसे भारतीय कलाकारों ने इतना आत्मसात् कर लिया था कि उसकी आत्मा विशुद्ध भारतीय हो गयी थी। "Their fabrication, conveyance and erection bear eloquent testimony to the skill and resource of the stonecutters and engineers of the Mauryan age."

मौर्य-काल की विविध प्रकार की कला-कृतियाँ सारनाथ, साँची, भरहुत, तक्षशिला आदि स्थानों पर देखी जा सकती हैं। अन्य सामग्री विभिन्न संग्रहालयों में संचित हैं। मौर्य-युग की वास्तुकला और पाषाणकला भारतीय कला के भविष्य की मंगल-सूचना देती है और एक ऐसी दृढ़ नींव तैयार करती है जिस पर भविष्य में कला के विविध स्वरूप का निखार हुआ।

शुंग-सातवाहन युग की सभ्यता

युग की विशेषताएँ—ई० पू० १८७ में मौर्य वंश का अन्त हुआ और भारतीय इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ। इस युग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रारम्भ अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग द्वारा हत्या से हुआ। इस समय कलिंग स्वतंत्र हो चुका था और वहाँ खारवेल नामक एक सबल व्यक्ति राज्य कर रहा था। आन्ध्र-महाराष्ट्र में सातवाहन (सिंह जिसकी सवारी है) राजवंश का उदय हुआ जिसके अधिकार में दक्षिण और पश्चिम भारत का अधिकांश भाग लगभग तीन सौ वर्षों तक रहा। इस वंश में श्री सातकर्णि हाल (सन् २०-२४ ई०), गौतमीपुत्र सातकर्णि (सन् १०६-१३० ई०) पुलुमावी और यज्ञश्री सातकर्णि (सन् १७४-२०३ ई०) अधिक प्रसिद्ध सम्राट हुए। इन सम्राटों के अभिलेख नासिक, नानाघाट (पूना जिला), साँची (मध्य प्रदेश), थाना, अमरावती आदि स्थानों पर प्राप्त हैं जिनसे इनके इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पहले इनकी राजधानी कृष्णा के तट पर श्रीकाकुलम् थी, बाद को उन्होंने पैठन को अपनी राजधानी बनाया। इसी समय कुछ दिनों तक सौराष्ट्र, महाराष्ट्र और मध्य भारत में महाक्षत्रप क्षहरात, नहपान चष्टन और रुद्रदामन का भी अधिकार हो गया था। पश्चिमोत्तर भारत में कनिष्क का शासन-काल लगभग सन् ७८ ई० से १०१ ई० तक रहा। भारतीय संस्कृति के इतिहास में कनिष्क के शासनकाल का विशेष महत्व है क्योंकि इस युग में भारतीय संस्कृति की कुछ नई धाराएँ प्रस्फुटित हुईं। मगध में मौर्य-वंश के बाद जिस शुङ्ग ब्राह्मण सम्राट पुष्यमित्र ने नया राजवंश स्थापित किया, उस वंश का शासन ११२ वर्ष (ई० पू० १८७-७५) तक रहा। पुष्यमित्र के सम्बन्ध में अयोध्या के संस्कृत में लिखे अभिलेख, दिव्यावदान और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के लेखों से विशेष जानकारी प्राप्त होती है।

सम्भवतः अशोक की नीति से असन्तुष्ट होकर समाज के व्यवस्थापक ब्राह्मणों ने देश की बागडोर अपने हाथ में लेने का निश्चय किया और देश को संकटापन्न एवं संशयात्मक स्थिति से बचाने का काम प्रारम्भ किया। इस कार्य का संचालन मौर्यों के ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने अपने हाथ में लिया और देश तथा समाज को एक नई गति दी। उसने यवनों

Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से देश की रक्षा की और देश की शिथिल राजनीति को दृढ़ बनाया। उसके वंशजों ने लगभग एक सदी तक शासन की बागडोर अपने हाथ में रखी। मौर्यों की अहिंसक, दुर्बल एवं प्रजा के धन, जन, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा में असमर्थ वृहद्रथ को मारने के लिए ब्राह्मण नेता पुष्यमित्र ने शस्त्र ग्रहण किया।

इस युग की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(१) प्राचीन ब्राह्मण या वैदिक धर्म का पुनरुत्थान और अश्वमेध यज्ञ की परम्परा को जीवित करना, (२) एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना का प्रयास, (३) इस प्रयास के साथ-साथ मालव, यौधेय, कुनिन्द, आर्जुनायन, शिवि, लिच्छवि आदि पुराने गणराज्यों का पुनः उदय, (४) यवन, शक, पल्हव और कुषाण विदेशी जातियों का भारत में आक्रमण और उनका भारतीय-करण, (५) विदेशी सम्पर्क से भारत के विज्ञान और कला के क्षेत्र में नई धारा का सूत्रपात, और (६) भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विदेशों में प्रचार और वैदेशिक सम्पर्क से बौद्ध धर्म का संरक्षण तथा नवीन शक्ति का उद्भव।

ब्राह्मण होकर भी पुष्यमित्र ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण किया। चाणक्य ने जो काम चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बैठा कर किया, वही पुष्यमित्र ने चन्द्रगुप्त के वंश के अन्तिम राजा का स्वयं बध कर किया। इतिहास की पुनरावृत्ति इस रूप में हुई। मौर्योत्तर काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना भारत में बौद्ध धर्म का ह्रास और ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान है। अशोक ने कलिङ्ग विजय के बाद अपने हथियार डाल दिये और उसके बाद मगध साम्राज्य की सेना क्रमशः क्षीण होने लगी। अशोक को धम्म-विजय की नीति उसके बाद नहीं चल सकी और वह उसके निर्बल उत्तराधिकारियों के हाथ में असफल एवं बदनाम हो गयी। अतः जनता में असन्तोष फैला। फलतः जनता और जन-नेताओं में बौद्ध धर्म के प्रति भी असन्तोष पैदा हुआ और स्वभावतः ब्राह्मण धर्म की ओर लोगों का ध्यान गया। पुष्यमित्र ने शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयोजन किया। सातवाहन राजा सातकर्णि ने भी इसी समय दो अश्वमेध यज्ञ किये। पुष्यमित्र शुंग के अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक, पातंजलि के महाभाष्य और अयोध्या के अभिलेख में हुआ है। मालविकाग्निमित्र में लिखा है कि पुष्यमित्र ने अपने पौत्र वसुमित्र की अध्यक्षता में अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा था जिसे सिन्धु के दक्षिणी तट पर यवनों ने पकड़ लिया। वहाँ वसुमित्र और (सम्भवतः डेमेट्रियस और मिनाण्डर के नेतृत्व में) यवनों में युद्ध हुआ जिसमें वसुमित्र की विजय हुई। तत्पश्चात् पुष्यमित्र अपने पुत्र अग्निमित्र को जो उस समय विदिशा में था, अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर निमंत्रित करते हुए लिखता है—

"आपका कल्याण हो। विदिशा में स्थित अपने पुत्र चिरंजीवि अग्निमित्र को स्नेह से गले भेंट कर अश्वमेध की दीक्षा लिये हुए सेनापति पुष्यमित्र लिख रहा है कि मैं बताना चाहता हूँ, कि अश्वमेध की दीक्षा लेकर मैंने एक वर्ष के भीतर लौट आने के नियम के अनुसार जो खुला घोड़ा छोड़ा था और जिसकी रक्षा के लिए सैकड़ों राजपुत्रों के साथ वसुमित्र को भेजा था, वह घोड़ा जब सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर चर रहा था, तब घुड़सवार सेना वाले एक यवन ने उसे पकड़ लिया। इस पर दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। तब धनुर्धारी वसुमित्र ने बड़ी वीरता से शत्रुओं को मार भगाया और छिने हुए घोड़े को वापस लाया। अतः जैसे अंशुमान द्वारा वापस लाये हुए घोड़े से सगर ने यज्ञ किया था, वैसे ही मैं भी यज्ञ कर रहा हूँ। इसलिए अब आप तत्काल प्रसन्न चित्त होकर बहुओं के साथ यज्ञ देखने चले आइये।" अयोध्या के अभिलेख में पुष्यमित्र को "द्विरश्वमेधयाजी" कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये। सम्भवतः प्रथम यज्ञ यवनों को परास्त कर और दूसरा कलिंग-राज खारवेल को परास्त करने के बाद किया था। सातवाहन सम्राट शातकर्णि की रानी नायानिका के नानाघाट अभिलेख में सम्राट-द्वारा किये हुए दो अश्वमेध यज्ञों का उल्लेख है। यज्ञ के अवसर पर सम्राट ने बहुसंख्यक गौ,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोड़े, हाथी, गाँव, सोना और अन्य वस्तुएँ दान में ब्राह्मणों को दी थीं।

पुष्यमित्र को बौद्धों का द्रोही कहा गया है। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ और दिव्यावदान का कहना है कि पुष्यमित्र शुंग बौद्धों का घोर शत्रु था। दिव्यावदान में लिखा है कि पुष्यमित्र ने मगध से जलंधर तक के सारे बौद्ध विहारों को जला डाला और उनके श्रमणों को मरवा डाला। उसने साकल (स्यालकोट) में घोषणा की कि "यो मे श्रमणशिरो दास्यति तस्याहं दीनारशतं दास्यामि।" अर्थात् जो मुझे एक श्रमण-मस्तक देगा, उसे मैं सौ दीनार दे दूँगा। क्या सचमुच पुष्यमित्र के समय में ऐसी धार्मिक प्रतिक्रिया हुई थी ? इस प्रकार की अभारतीय असहिष्णुता प्राचीन भारत के इतिहास में कभी नहीं सुनी गयी। घटनाओं एवं साक्ष्यों की छान-बीन करने से आभास मिलता है कि उन दिनों पश्चिमोत्तर प्रदेश में यवन अधिक प्रबल थे और वे बार-बार मध्य देश पर आक्रमण कर रहे थे। स्वयं पुष्यमित्र को उनके विरुद्ध तीन बार लोहा लेना पड़ा था। इस षड्यंत्र में ब्राह्मण पुष्यमित्र की नीति से सर्वथा असन्तुष्ट बौद्धों का अवश्य हाथ रहा होगा। बौद्ध श्रमण उन यवनों को स्वदेश पर आक्रमण करने और ब्राह्मण धर्म के उन्नायक शुंग सम्राट को अपदस्थ करने के लिए आमंत्रित करते रहे होंगे। अतः शुंग सम्राट पुष्यमित्र ने बौद्ध श्रमणों के प्रति यह कठोर नीति अपनायी थी। इस कठोरता के पीछे राजनीतिक कारण थे, धार्मिक नहीं। यवनों को परास्त करने के बाद शुंग सम्राट ब्राह्मण-धर्म के उद्धारकर्ता होते हुए भी अपनी धार्मिक नीति में उदार थे, अन्यथा पुष्यमित्र के दक्षिणी शासन-केन्द्र विदिशा में साँची और भरहुत में इसी युग में बौद्ध स्तूपों, वेदिकाओं एवं तोरणों का निर्माण एवं अलंकरण कैसे सम्भव हो सका ? ज्ञात होता है कि यवन-आक्रामकों की विजय के बाद पुष्यमित्र सहिष्णु और उदार हो गया होगा।

शुंग-सातवाहन-युग के सम्राटों ने नई पदवियाँ धारण कीं। वे अपने को देवों से अभिसिंचित समझते थे। उन्होंने इस प्रकार दैवी अधिकार का प्रतिपादन किया। चूँकि राजा में इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रमा आदि का अंश था, अतः वे मनुष्य से अधिक तेज-युक्त हैं, ऐसो भावना का प्रचार हुआ। मनुस्मृति-द्वारा प्रतिपादित दण्ड शक्ति का द्योतक राजा हुआ। दण्ड-शक्ति का अर्थ है राजशक्ति। उसका आधार परम्परागत चले आते धर्म और व्यवहार हैं। वह वस्तुतः दैवी है, अतः राजा धर्म का प्रणेता नहीं, पालनकर्ता है। धर्म एवं व्यवहार से विचलित राजा की हत्या में कोई पाप नहीं है। राज-धर्म के विषय में इस युग में ऐसा ही विचार चल पड़ा। राजा को अपनी दण्ड-शक्ति का प्रयोग मंत्रियों या सचिवों की सहायता से करना चाहिए। जब ब्राह्मणों के हाथ में राज-शक्ति आ गयी, तो ऐसी विचारधारा का दृढ़ होना स्वाभाविक ही था। आश्चर्य है कि इस युग में राजतंत्र के दृढ़ होने के बाद भी स्थानीय गण-राज्यों का विकास हुआ जो राजतंत्र की छत्रछाया में अपनी स्थानीय स्वतंत्रता बनाये हुए थे।

इस युग में **विदेशी सम्पर्क** का तांता वर्षों तक बना रहा। लगभग ४०० वर्ष तक यवन, शक, पल्हव और कुषाण आदि विदेशी जातियाँ भारत में आती रहीं और वे विजयी के रूप में आईं, पर कुछ ही दिनों में यहाँ के समाज और यहाँ की संस्कृति ने उन्हें अपने में पचा लिया। कुछ ने ब्राह्मण धर्म और कुछ ने बौद्ध धर्म अपनाया और वे अपने नये धर्म के प्रचारक बन गये। नासिक के एक गुफा-अभिलेख में लिखा है कि "सिद्धि! उत्तरापथ के दिमित्र द्वारा स्थापित दात्तामित्री नगरी के निवासी यवन धम्मदेव के पुत्र इद्राग्निदत्त का दान। उस धर्मात्मा ने यह गुहा तिरण्ह पर्वत में खुदवायी और गुहा के भीतर चैत्यगृह तथा पोढ़ियाँ बनवाईं।" इसमें यवनों के भारतीय नाम और बौद्ध धर्म का स्वीकार करना भारतीय संस्कृति के विजय-चिन्ह हैं।

तक्षशिला के यवन राजा ऐन्टिडालकिडस ने एक अपना दूत विदिशा के शुंग राजा भागभद्र के दरबार में भेजा था। उसका नाम हेलिउदोर था। उसने भागवत धर्म स्वीकार किया और बेसनगर में एक स्तम्भ का निर्माण कराया जिसके शीर्ष भाग पर गरुड़ की मूर्ति बनवायी। वह भगवान्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु का गरुड़ध्वज स्तम्भ कहलाता है। उस पर खुदा हुआ अभिलेख इस प्रकार है—"देवों के देव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज यहाँ बनवाया। महाराजा अन्तलिकित के यहाँ से राजा कासीपुत्र भागभद्र भ्राता के—जो कि अपने शासन के चौदहवें वर्ष में वर्तमान है—पास आये हुए तक्षशिला के रहने वाले दिये के पुत्र यवन दूत भागवत हेलिउदोर ने।" इसमें यवन राजदूत द्वारा भागवत धर्म स्वीकार करने की बात स्पष्ट है।

यवन राजाओं में मिनाण्डर का नाम महत्वपूर्ण था। उसने अपनी राजधानी शाकल से मध्य देश तक छापा मारा और मथुरा तक का इलाका अपने अधिकार में कर लिया। पर भारत में वह एक बौद्ध राजा के रूप में प्रसिद्ध है। पाली ग्रन्थ 'मिलिंद पन्ह' (मिलिंद-प्रश्न) के अनुसार वह प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान नागसेन द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ। उसके सिक्कों पर धर्मचक्र बना हुआ था। जब उसकी मृत्यु ई० पू० ९० के लगभग हुई तो उसके 'फूल' को पवित्र समझ कर विभिन्न नगरों में वितरित किया गया।

इसी प्रकार महाक्षत्रप नहपान के जामाता उषावदात का नासिक गुहा-लेख प्रमाणित करता है कि वह वैदिक धर्मावलम्बी हो गया था और उसने ब्राह्मणों को गायें दान दीं, उन्हें भोजन कराया और दक्षिणा में सुवर्ण दिया। मथुरा के महाक्षत्रप रजुल ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। कुषाणों में कुजुल के सिक्कों पर "सत्य धर्म स्थितस्य" अंकित है, विम के सिक्कों पर 'माहेश्वर' अंकित है और कनिष्क तो जगत-विख्यात बौद्ध था ही। उसके बाद हुविष्क बौद्ध और वासिष्क (वासुदेव) शैव था।

किसी भारतीय के विदेशी धर्म स्वीकार करने के उदाहरण इस समय नहीं मिलते हैं। बल्कि भारतीय उन विदेशियों को नीची निगाह से देखते थे और उन्हें 'दुष्ट विक्रान्त' कहते थे। पर आश्चर्य है कि ब्राह्मणों ने इन विदेशियों को भारतीय धर्मों में दीक्षित कर अपने समाज में आत्मसात् कर लिया और उन्हें अपने वर्णाश्रम व्यवस्था में ला बैठाया। सिद्ध है कि उस युग में भारतीय समाज में अद्भुत पाचन-शक्ति थी। मालूम होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि जिन ब्राह्मणों ने समाज के संरक्षण का काम अपने हाथ में लिया था, वे समाज की गतिशीलता की संजीवनी शक्ति से विज्ञ थे, अतः उन्होंने विदेशियों के लिए अपने समाज का दरवाजा खोल दिया।

शुंग-सातवाहन युग का साहित्य

यह युग अपनी साहित्यिक सृजनात्मक विशेषता के लिए विख्यात है। कतिपय स्मृति-ग्रन्थों का रचना-काल यही युग माना गया है। **मनुस्मृति** का वर्तमान रूप इसी काल में तैयार हुआ। इस प्रकार कुछ अन्य स्मृतियों के विषय में भी कहा जाता है। **महाभारत** के कुछ अंश इसी समय लिखे गये। इस युग में काव्य और नाटक ग्रन्थों की भी रचना हुई। **भास** कण्व-युग में हुआ था। उसने **प्रतिज्ञा यौगन्धरायण** नाटक लिखा। आचार्य **अश्वघोष** कनिष्क के समय हुए थे उनका **बुद्धचरितम्** महाकाव्य अति प्रसिद्ध है। मृच्छकटिक नाटक के लेखक **शूद्रक** नाट्यशास्त्र के प्रणेता **भरतमुनि** और कामसूत्र के लेखक **वात्सायन** इसी काल में थे।

संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत के भी ग्रन्थ इस काल में लिखे गये। सातवाहन राजा हाल स्वयं एक कवि था। उसी ने गाथा सप्तशती लिखी। वृहत्कथा का लेखक **गुणाढ्य** भी सातवाहन-युग में था। इस काल में तामिल क्षेत्र में **संघम्** नामक विद्वत्परिषद् का संगठन हुआ जिसके संरक्षण में तामिल भाषा के कुछ अमर ग्रन्थ तैयार हुए।

व्याकरण के क्षेत्र में संस्कृत का प्रसिद्ध **महाभाष्य** पुष्यमित्र शुंग के पुरोहित पतंजलि ने लिखा। यह पाणिनि की अष्टाध्यायी पर अधिकारी महाभाष्य है। सुप्रसिद्ध अमरकोश की रचना का काल भी यही युग माना जाता है।

इसी युग में महायान-सम्प्रदाय का विकास हुआ और उससे सम्बन्धित अनेक बौद्ध ग्रन्थ इस समय लिखे गये। चौथी बौद्ध संगीति के बाद कनिष्क के समय में बौद्ध त्रिपिटक पर **महाविभाषा** नाम का एक नया भाष्य तैयार हुआ। प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक, नाटककार तथा कहानी-लेखक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्वघोष ने 'बुद्ध चरितम्' महाकाव्य इसी समय लिखा। उसने अन्य कई ग्रन्थ (सौन्दरानन्द, वज्रसूची, सारिपुत्र-प्रकरण) भी लिखे। माध्यमिक दर्शन के महान आचार्य **नागार्जुन** ने 'प्रज्ञापारमिता सूत्र' लिखा। उसमें प्रतिपादन किया गया है कि सत्ता, सच-झूठ, सत्-असत् सब सापेक्ष्य हैं। एक के विना दूसरा सम्भव नहीं है। इसी काल में **वसुमित्र** और **चरक** भी हुए थे। वसुमित्र ने ही महाविभाषा भाष्य लिखा था। आयुर्वेद का सबसे प्रसिद्ध लेखक **चरक** कनिष्क का राजवैद्य कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्र की पहली प्रसिद्ध पुस्तक गार्गी संहिता इसी युग की लिखी बताई जाती है।

स्पष्ट है कि यह युग साहित्यिक प्रौढ़ता का युग था। इस युग की विशेषता यह है कि बौद्ध विद्वानों ने भी संस्कृत में ही अपनी पुस्तकें लिखीं। अतः संस्कृत का महत्व बढ़ गया और अभिलेखों में भी संस्कृत का प्रयोग होने लगा।

शुंग-सातवाहन युग का धर्म

वैदिक धर्म का पुनरुत्थान—मौर्योत्तर काल में बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही था। अतः शुंग-सातवाहन सम्राटों ने वैदिक धर्म को प्रश्रय दिया और सनातन धर्म का प्रचार बढ़ा। बौद्ध भिक्षुओं की विलासिता एवं ऐश्वर्यमय जीवन से भी यह प्रतिक्रिया अधिक तीव्र हुई और कुछ राजनीतिक कारणों ने भी इसमें योग दिया। पहले लिखा जा चुका है कि प्रथम शुंग सम्राट पुष्यमित्र ने नाना प्रकार के वैदिक यज्ञों एवं अनुष्ठानों को पुनः जीवित किया और यही मार्ग सातवाहन सम्राटों ने भी अपनाया। अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों की धूम मच गयी और वैदिक देवी-देवताओं की पूजा का प्रचार बढ़ा। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा समाज में अधिक हो गयी और वर्ण तथा आश्रम की व्यवस्था को पुनः मान्यता प्रदान का उपक्रम हुआ।

परन्तु वैदिक धर्म का पुराना रूप बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ परिवर्तित हो गया। चूंकि बौद्ध धर्म में ईश्वर का विचार नहीं है, अतः इस काल के सांख्य दर्शन में ईश्वर को सृष्टि-कर्ता के रूप में स्थान नहीं दिया गया। इस प्रकार नयी दर्शन-पद्धतियों पर बौद्ध प्रभाव की स्पष्ट छाप है। चूंकि बौद्ध लोग बोधिसत्वों और जैन अपने तीर्थङ्करों को लोकोत्तर मानते थे और उनकी पूजा करते थे, अतः नये वैदिक धर्म में कृष्ण, शिव, विष्णु आदि की मूर्ति रूप में पूजा होने लगी। इसी लपेट में बौद्धों ने भी बुद्ध की प्रतिमा बना उनकी पूजा शुरू कर दी। इसी नये बौद्ध धर्म का नाम 'महायान' हुआ, जिस पर आगे विचार किया जायगा। चूंकि बौद्ध अपने बुद्ध को सर्वज्ञ, पूर्ण, निर्विकार मानते थे, अतः ब्राह्मणों ने अपने कृष्ण और राम को उसी रूप में देखना प्रारम्भ किया। बौद्धों और जैनों ने यज्ञादि कर्मों और पशु-बलि के विरुद्ध बहुत प्रचार किया था। अतः वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के बाद यज्ञों की वह पूर्व जन-प्रियता नहीं लौट सकी। केवल राजाओं द्वारा अपनी विजय के प्रतीक रूप कुछ विशेष प्रकार के यज्ञों की ही चर्चा सुनने को मिलती है। वह यज्ञवाद जन-जीवन में इस युग में प्रवेश न पा सका। यज्ञों के स्थान पर मूर्ति-पूजा का प्रचार अधिक हुआ, यही सनातन धर्म का प्राण समझा गया। देवताओं में विष्णु और शिव को सर्वाधिक प्रधानता मिली और उसी आधार पर नये वैदिक धर्म की, जिसे पौराणिक धर्म कहना अधिक उचित होगा, दो मुख्य शाखाएँ हो गयीं। एक शाखा भागवत धर्म और दूसरी शैव धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुई। विष्णु और शिव के विभिन्न रूपों की द्योतक मूर्तियों की भरमार हो गयी और मूर्तियों में धार्मिक आस्था केन्द्रित होने लगी।

भागवत धर्म—शूरसेन जनपद में बहुत दिनों से अन्धक-वृष्णि संघ के प्रमुख कृष्ण को लोग लोकोत्तर पुरुष के रूप में पूजते आ रहे थे। कृष्ण एक विचारक, वीरकर्मा, धर्मोपदेश के रूप में उस क्षेत्र में मान्य थे। बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से कृष्ण को सर्वज्ञ मान ईश्वर का प्रतीक कहा जाने लगा और उनकी पूजा का प्रचार बढ़ने लगा। धीरे-धीरे कृष्ण को वैदिक विष्णु का अवतार माना जाने लगा और उनकी भगवद्गीता को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रत्यधिक मान्यता प्राप्त हुई। उनका एक सम्प्रदाय उठ खड़ा हुग्रा जो भागवत सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुग्रा। शुंग-सातवाहन युग में इस धर्म का प्रचार ग्रधिक हुग्रा। भागवत धर्म में पशु-हिंसा को स्थान नहीं था, यज्ञों पर विशेष जोर नहीं दिया गया, उसमें कृष्ण बुद्ध की तरह पूर्णता के द्योतक समझे गये, यज्ञों के स्थान पर मन्दिरों ग्रौर मूर्तियों की प्रधानता मानी गयी। इन मन्दिरों में यज्ञों ग्रौर बलिदानों के स्थान पर भक्ति को ही स्थान मिला। चूंकि साधारण जनता के लिए मन्दिर में एकत्रित हो पूजा करने, नैवेद्य चढ़ाने तथा भजन गाने में यज्ञादि कर्मों से ग्रधिक ग्रासानी थी, ग्रतः इस भागवत धर्म का प्रचार जनता में तेजी से हुग्रा। कृष्ण के विविध रूपों का दर्शन जनता मन्दिरों में करने लगी। यहाँ तक कि यवन ग्रौर शक जैसे विदेशी ग्राक्रामक भी इसके बढ़ते प्रभाव से नहीं बच सके। यह यवन राजदूत हेलियदोर द्वारा बेसनगर में गरुड़ध्वज की स्थापना से इस बात की पुष्टि होती है। महाभारत ग्रौर भागवत-पुराण में कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित विविध प्रकार की कथाएँ संग्रहीत हैं। सातवाहन सम्राटों ने भी इस उठते धर्म का ग्रादर किया जैसा कि नानाघाट के ग्रभिलेख से विदित है।

शैव धर्म—कुछ विद्वानों का मत है कि इस युग में जिस शैव धर्म का प्रचार हुग्रा, उसका मूल सिन्धु-सभ्यता के युग में था। पर मान्यता है कि गुजरात में भरुकच्छ के पास प्रकट होने वाले शिव के रूप ग्राचार्य लकुलेश इस शैव धर्म के ग्रादि प्रणेता हैं। उन्होंने पंचाध्यायी या पंचार्थ विद्या नामक ग्रन्थ लिखा। उनके ग्रनुयायी शैव कहलाये।

शिव भी वैदिक देवताग्रों में से एक थे। जब बाद को शिव एक सर्वोपरि देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए तो लकुलेश के साथ उनकी ग्रभिन्नता स्थापित की गयी जैसा कि विष्णु के साथ कृष्ण की हुई। शैव धर्म में त्रिशूल ग्रौर ग्रौर नन्दी की बड़ी महिमा है। इस युग के कुछ राजाग्रों ने त्रिशूलधारी शिव ग्रौर नन्दी को ग्रपना राजचिन्ह बनाया। शैव सम्प्रदायवालों ने ग्रपने मन्दिर भी बनवाये ग्रौर शिव-पार्वती को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्तियाँ और शिवलिंग की प्रतिष्ठा कराई। कुषाण सम्राट विम और औधेय गणराज्य के शासक शैव थे।

विष्णु और शिव की पूजा के अतिरिक्त सूर्य की पूजा का प्रचार भी इसी काल में हुआ। इसी प्रकार गणेश, शक्ति आदि अन्य देवताओं की पूजा भी शुरू हुई।

इस प्रकार वैदिक धर्म के पुनरुत्थान ने मूर्तिपूजा और भक्ति-प्रचार का रूप लिया और सब पुराने धार्मिक अनुष्ठानों को छोड़ कर विष्णु या शिव या किसी अन्य देवता की शरण में जाने को अधिक महत्व प्राप्त हुआ।

बौद्ध धर्म और महायान सम्प्रदाय

शुंग-सातवाहन काल में वैदिक और ब्राह्मण-व्यवस्था के पुनरुत्थान से बौद्ध धर्म पर प्रभाव पड़ा। ज्यों-ज्यों आश्रम-व्यवस्था के पक्ष में जनमत तैयार होता गया, त्यों-त्यों बौद्ध-भिक्षु-प्रणाली की ओर से जनता का विश्वास उठता गया। यह प्रणाली प्रारम्भ में मनुष्य मात्र के कल्याण के निमित्त बनायी गयी थी और बौद्ध संघ ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया था। बौद्ध पद्धति के अनुसार युवा और वृद्ध सबको भिक्षु-जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता थी। पर अब यह व्यवस्था वैदिक काल की आश्रम-व्यवस्था के विपरीत पड़ी, अतः मनु आदि धर्मशास्त्रियों ने इसे पसन्द नहीं किया। परिवार के उत्तरदायित्व को छोड़कर किसी युवा के लिए भिक्षु होना अशोभनीय समझा गया। उस काल के कतिपय ग्रन्थों में भिक्षु जीवन और असमय के संन्यास का उपहास किया गया है। स्त्रियों का भिक्षुणी बनाना तो आर्य-विचारधारा के बिलकुल विरुद्ध था। भिक्षुणी को इस समय बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था।

सब कुछ होने पर भी बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से वैदिक धर्म अछूता न रह सका। हिंसा, यज्ञ, पशुबलि आदि के विरुद्ध बौद्ध धर्म ने सबल आवाज उठायी थी। इसकी प्रतिक्रिया में राजाओं ने अश्वमेध,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजसूय आदि यज्ञों की परिपाटी पुनः चलायी। पर यह प्रवृत्ति जनता में स्थान नहीं बना सकी। महाभारत की यह उक्ति—"जीवो जीवस्य भोजनम्" या मनुस्मृति द्वारा मांस भोजन की स्वीकृति हिंसा को बहुत जन-प्रिय नहीं कर सके।। मनुस्मृति में भी स्थान-स्थान पर हिंसा के विरोध में तर्क दिये गये हैं। व्यर्थ की हिंसा को अच्छा नहीं समझा गया, जो बौद्ध प्रभाव की विजय थी। मांसाहार की छूट मिलने पर भी यह प्रथा समाज में मान्य नहीं हो सकी।

वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के इस युग में भी अभी बौद्ध धर्म सबल था। गौतम के समय से लेकर अशोक के समय तक बौद्ध धर्म का जो प्रचार एवं प्रसार हुआ था, उसका प्रभाव व्यापक एवं गहरा हो गया। इसीलिए इस प्रतिकूल युग में भी विदेशी आक्रामक भारत में आकर बौद्ध धर्म की ओर अधिक आकृष्ट हुए। सम्भव है कि इसका एक कारण यह भी हो कि बौद्ध धर्म उन दिनों पश्चिमोत्तर प्रान्त से लेकर मध्य एशिया के कतिपय भागों में अधिक प्रभावशाली था और उधर से आने वाले ये विदेशी आक्रामक उस धर्म से पूर्व-परिचित रहे हों। मिनाण्डर नामक वीर सेनापति ने बौद्ध विद्वान् नागसेन से प्रभावित हो बौद्ध होना स्वीकार किया और स्यामी अनुश्रुतियों के अनुसार उसे अर्हत् पद मिला। पाली ग्रन्थ 'मिलिन्दपन्ह' से मालूम होता है कि मिनाण्डर ने नागसेन से धर्म और दर्शन-विषयक अनेक पेचीदे प्रश्न पूछे और अन्त में प्रभावित होकर वह बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया। मिनाण्डर के सिक्कों पर धर्मचक्र अंकित है और उसने 'ध्रमिक' पदवी धारण की थी। कनिष्क का बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रयास इतिहास-विदित है।

महायान सम्प्रदाय—महात्मा बुद्ध के निर्वाण के सौ वर्ष बाद ही बौद्ध धर्म दो निकायों (सम्प्रदायों) में विभाजित हो गया था। उनमें से एक स्थविरवाद (थेरवाद) और दूसरा महासांघिक कहलाया। अशोक के समय तक बौद्ध धर्म के अठारह निकाय हो गये थे जिनमें से बारह का सम्बन्ध थेरवाद और छः का सम्बन्ध महासांघिक सम्प्रदाय से था। महा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांघिक में बुद्ध को अलौकिक और अमानव रूप दिया गया था और थेरवाद में बुद्ध के मानव रूप पर अधिक बल था। ईसापूर्व पहली शताब्दी में महासांघिक सम्प्रदाय से एक नया सम्प्रदाय निकला जो वैपुल्यवाद कहलाया। इसने बुद्ध को पूर्ण रूप से अमानव घोषित किया और उन्हें अलौकिक कहा। यही मत आगे चल कर महायान सम्प्रदाय में परिवर्तित हो गया।

महायान के अनुसार मानव का कल्याण ही जीवन में सर्वोच्च आदर्श है। इस मत का स्पष्ट विकास कनिष्क के समय में हुआ। बौद्ध अनुश्रुतियों से मालूम होता है कि कनिष्क ने जब बौद्ध धर्म स्वीकार किया तो उसे उसमें विरोधाभास दीख पड़ा। अतः बौद्ध धर्म से सम्बन्धित विचारों की स्पष्टता के लिए उसने ५०० बौद्ध भिक्षुओं की एक संगीति बुलाई। इसे चौथी बौद्ध संगीति कहते हैं। इसका अधिवेशन कश्मीर के कुण्डलवन में हुआ और वसुमित्र इसके अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनकी अनुपस्थिति में अश्वघोष ने अध्यक्ष का स्थान लिया। इसी संगीति के प्रयास के फलस्वरूप विभाषा-शास्त्र की रचना हुई। इस सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक और दार्शनिक पक्ष का विशद विवेचन नागार्जुन और असंग ने किया।

महायान मत में बोधिसत्व की व्याख्या की गयी है। बोधिसत्व वे हैं जिन्होंने बुधत्व-प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण किया है। निर्वाण-प्राप्ति के लिए बुद्ध ने अनेक जन्म धारण किये। उन जन्मों में वे बोधिसत्व थे। बोधिसत्व केवल अपने ही निर्वाण का प्रयास नहीं करता है, बल्कि वह मानवमात्र के कल्याण की चिन्ता करता है। महायान सम्प्रदाय ने बुद्ध के साथ-साथ अनेक बोधिसत्वों की कल्पना की और उनकी पूजा को विधि प्रतिपादित की। इस प्रकार महायान मत में पौराणिक धर्म की तर बौद्ध धर्म का भी देव-मण्डल बन गया। और महायान मत वाले केवल बुद्ध से ही सन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि उन्होंने मानव के कल्याण के लिए बुद्ध एवं बोधिसत्वों की कल्पना की और उनकी पूजा-विधि का प्रचार किया। यह प्रथा हिन्दू धर्म के अवतारों की प्रथा से मिलती-सी दीख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ती है। इसी विचार की पुष्टि में महावस्तु, ललितविस्तार और बुद्ध-चरित्र जैसे ग्रन्थ लिखे गये जिसमें बुद्ध के बाल्यकाल, युवा और वृद्धावस्था के चरित्र को असाधारण एवं देवतुल्य बनाने की प्रयास किया गया।

बोधिसत्व के लिए ये पारमिताएँ (सद्गुण और नैतिक आचार) आवश्यक समझी गयीं—दान, शील अर्थात् सदाचार, सहनशीलता, मानसिक शक्ति, मन की एकाग्रता, सत्यज्ञान की प्राप्ति, साधनों की कुशलता, व्रत-संकल्प-इच्छा बल, शक्ति, ज्ञान।

बोधिसत्व को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, दोष एवं दुर्गुण से दूर रहना चाहिए, बुद्धि निर्मल रखनी चाहिए, तथा अविद्या-वासना से रहित होना चाहिए, सन्तप्त मानवता के लिए सदा शीतल रहना चाहिए।

महायान मत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर सकता है। हीनयान मत की तरह अर्हत् पद से ही वे सन्तोष नहीं करते।

महायानी विश्वास करते हैं कि आत्मा कोई शाश्वत तत्व नहीं है। समस्त संसार परिवर्तन तथा कार्य-कारण का प्रवाह है। विश्व में कोई सत्ता नित्य नहीं है। इसी मत को लेकर नागार्जुन ने अनित्यता (शून्य-वाद या सापेक्षवाद) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। संसार की सब वस्तुओं को शून्य या सारशून्य घोषित किया।

महायानी, हिन्दुओं की तरह मूर्ति-पूजा में विश्वास करते हैं। बुद्ध और बोधिसत्वों को मूर्तियों की व्यापक पूजा का प्रचार महायान मत के कारण ही हुआ। इससे बौद्ध धर्म जन-प्रिय हो सका और कला के क्षेत्र में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

महायान शब्द का अर्थ है 'उत्कृष्ट मार्ग।' महायान सम्प्रदाय के लोग अपने से भिन्न विचार वाले बौद्धों को हीनयान कहते थे। चौथी सदी तक महायान मत का प्रचार अधिक हो गया। भारत के विभिन्न भागों, मध्य एशिया, चीन, जपान में इसी मत का प्रचार हुआ।

हीनयान और महायान में प्रमुख अन्तर ये हैं:

(१) हीनयान का आधार केवल बुद्ध की शिक्षा है पर महायानवादी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के साथ-साथ बोधिसत्वों को शिक्षाओं पर भी उतना ही विश्वास एवं श्रद्धा रखते हैं।

(२) हीनयान में व्यक्ति स्वयं अपना निर्वाण चाहता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति-विशेष को मुक्ति दिलाना है, पर महायान विश्व-कल्याण को अधिक महत्व देता है।

(३) हीनयान का मानने वाला स्वयं अर्हत् पद प्राप्त कर निष्क्रिय हो जाता है। पर महायान में व्यक्ति तब तक सक्रिय रहता है, जब तक सारा विश्व मुक्त न हो जाय। महायानी संसार को शोकार्त्त छोड़ स्वयं कैवल्य प्राप्त करना नहीं चाहता है। इस प्रकार महायान अधिक उदार, व्यापक एवं निःस्वार्थ है।

(४) हीनयान का दर्शन शुष्क है, महायान आचार-प्रधान धर्म है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति रुचि ले सकता है।

(५) हीनयानी बुद्ध को एक महापुरुष मानते हैं, पर महायान के अनुसार बुद्ध सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। बुद्ध सम्पूर्ण संसार के जन्मदाता, त्राता और संरक्षक हैं।

(६) हीनयान में अष्टांग मार्ग की प्रधानता है। महायान में श्रद्धा-भक्ति पूजा को अधिक महत्व दिया गया है। बुद्ध और बोधिसत्वों के प्रति भक्ति और और अनुराग को ही मोक्ष का सुगम साधन महायानी मानते हैं।

(७) हीनयानी शुष्क दार्शनिक हैं, महायानी भक्तिवादी, अवतारवादी और मूर्तिवादी हैं।

(८) हीनयान मत के ग्रन्थ पाली में हैं, महायान के ग्रन्थ संस्कृत में हैं।

(९) हीनयान अपरिवर्तनवादी और महायान परिवर्तनवादी है।

(१०) हीनयान मत में बुद्ध का उपदेश अन्तिम सत्य है। महायान में बुद्ध के उपदेश बीज-रूप में ग्रहण किये गये और कालान्तर में उन्हें अंकुरित एवं पल्लवित किया गया। इस प्रकार हीनयान मत इत्यात्मक और महायान मत विकासात्मक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्हीं कारणों और विशेषताओं से महायान मत अधिक उदार, व्यापक एवं विकासशील रहा और लौकिक मनोवृत्तियों का सम्यक् मनोरंजन करने में समर्थ हो सका।

शुंग-सातवाहन युग में कला

मौर्य काल में निर्माण कला का जो काम तेजी से शुरू हुआ था, वह इस युग में भी उतनी ही तेजी से चलता रहा। इस युग में स्तम्भों के साथ-साथ स्तूपों, गुफाओं, मन्दिरों, मूर्तियों एवं चैत्यगृहों तथा तोरणों आदि के निर्माण का काम विशेष रूप से हुआ।

इस काल के स्तूप भरहुत, साँची, अमरावती में निर्मित हुए थे। स्तूप का आकार अण्डाकार होता है और वह अण्डाकार इमारत एक ऊँचे चबूतरे पर बनी होती है। उसके अन्दर किसी महात्मा की अस्थियाँ या फूल रखे जाते हैं। इस प्रकार स्तूप बौद्ध काल के स्मारक-समाधि हैं। कहा जाता है कि बुद्ध की अस्थियों को आठ स्थानों पर जमीन में रख उनके ऊपर स्तूप बनाया गया था। अशोक ने उन्हें निकाल कर ८४००० स्तूपों में रखवाया। स्तूप का आकार उल्टे कटोरे की तरह होता था। उसका आधार कुछ ऊँचा होता है। उस आधार के चारों ओर घेरा होता है। उस ऊँचे चबूतरे को मेधि कहा जाता हैं और उसी पर परिक्रमा की जाती है। स्तूप के सिरे पर छत्र-जैसी एक बनावट होती है जिसे हर्मिका कहते हैं। उसी के ऊपर ठीक मध्य में छत्र-यष्टि होती है। साँची में अशोक ने भी स्तूप बनवाये थे। पर इसका विस्तार सातवाहन राजाओं ने किया। कला की दृष्टि से साँची का स्तूप अधिक महत्वपूर्ण है। इस स्तूप की मेधि के बाहर चारों ओर शुंगकालीन वेदिका (रेलिंग और जंगला) बनी है। इस वेदिका पर सर्वत्र अलंकरण है। वेदिका से लगे हुए चारों दिशाओं में चार तोरण (द्वार) हैं जो अलंकृत हैं। पूरे तोरण की ऊँचाई लगभग ३४ फुट है और उनमें लगे स्तम्भ १४ फुट ऊँचे हैं। स्तम्भों और उनके ऊपर लगी पट्टियों पर बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध घटनाएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुदी हुई हैं। इन पर हाथी, सिंह, धर्मचक्र, त्रिरत्न, यक्षिणियाँ, मोर, हिरण आदि बड़ी सफाई से उत्कीर्ण हैं। इस स्तूप के तले का व्यास १२१½ फुट और ऊँचाई ७७½ फुट है। साँची का स्तूप और तोरण भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है। यहाँ दो छोटे और एक बड़ा स्तूप है। बड़े स्तूप का विवरण ऊपर दिया गया है।

भरहुत में भी एक स्तूप इस काल में बना था। उसके अवशेष अब कलकत्ता म्यूजियम में रखे हुए हैं। उसके तोरण पर अंकित है कि इसका निर्माण शुंगों में शासनकाल में हुआ था। इसके तले का व्यास ६८ फुट था। अमरावती में भी एक ऐसे ही स्तूप के भग्नावशेष मिले हैं। इसकी वेदिका सातवाहन राजाओं की बनवायी हुई है। कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर में ४०० फुट ऊँचा एक स्तूप बनवाया था। उसका आधार १५० फुट था। चीनी यात्री ह्वेन सांग ने उसे देखा था। अब वह स्तूप नष्ट हो गया है और उसके चिह्न भी नहीं हैं। उसी के पास कनिष्क ने एक बड़ा बौद्ध विहार भी निर्मित कराया था जो बहुत दिनों तक विद्या का केन्द्र रहा।

शुंग-सातवाहन युग में चैत्य-निर्माण की कला भी विकसित हुई। स्तूप के निकट जो बौद्ध पूजा-गृह होता है, वही चैत्य कहलाता है। चैत्य-भवन एक चौकोर बड़ा कमरा होता है और पीछे की ओर वह गोला होता है। वहीं एक पूज्य वस्तु के रूप में स्तूप होता है और उसके चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ रहता है। इस कला का प्रारम्भ मौर्य-युग में हुआ था, पर इस समय इस कला का उत्कर्ष हुआ। अब ऐसे चैत्य-गृह पहाड़ों को काट कर गुफा के रूप में बनाये जाने लगे। ऐसे गुफा-गृह महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश, उड़ीसा में अधिक बने। महाराष्ट्र में कोंडाना, नासिक, कार्ले और अजन्ता में ऐसे पूजा-गृह हैं। अजन्ता की गुफा नं० ९ और १० का निर्माण पहली और दूसरी सदी में हुआ था। इसी प्रकार के गुफा-विहार या पूजा-गृह कार्ले में भी हैं। यह १२४ फुट ३ इंच लम्बा, २५ फुट ७ इंच चौड़ा और ४५ फुट ऊँचा है। अशोक के समय के गुफामन्दिर इसके समक्ष बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारण प्रतीत होते हैं। यह शैल-मन्दिर सबसे अधिक सुन्दर कहा जाता है। इसका निर्माण भूतपाल नामक गक श्रेष्ठी ने कराया था। इसकी ऊपरी आकृति फूल के छाजन की तरह है। सारा भवन एक पहाड़ काट कर बनाया गया है। नासिक के एक गुहा-गृह में एक अभिलेख है जिससे मालूम होता कि सातवाहन सम्राट कण्ह (जो सिमुक का भाई था) के समय में उसके एक महामात्य ने इसे बनवाया था। वास्तव में गुहा-विहार बनाने की कला सातवाहन-काल में बहुत बढ़ी। इसी प्रकार के चैत्य-गृह भाजा में हैं जिनकी दीवारों पर उभरी हुई सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उड़ीसा में इस काल की गुफाएँ उदयगिरि और खण्डगिरि पहाड़ियों पर हैं। इनमें हाथीगुफा में खारवेल का प्रसिद्ध अभिलेख है जिस पर उसके जीवन की घटनाएँ अंकित हैं। यह अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण है। यहाँ एक गुफा दो मंजिल वाली है जिसे खारवेल की रानी ने बनवाया था। छत्तीसगढ़ इलाके में भी इसी प्रकार के गुहागृह बने हैं।

शुंग और सातवाहन युग के प्रारम्भ के बने स्तूपों, चैत्यों और विहारों में कहीं बुद्ध की मूर्ति नहीं पायी जाती है। भरहुत, साँची तथा नासिक के पास की वेदिकाओं और तोरणों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र अंकित हैं, हाथी, बैल, सिंह, मनुष्य, पक्षी, पत्र, पुष्प आदि के चित्र उत्कीर्ण हैं, पर उन पर कहीं बुद्ध की प्रतिमा नहां है। ज्ञात होता है कि अभी तक महायान सम्प्रदाय का प्रभाव व्यापक नहीं हुआ था और बौद्धों में बुद्ध की मूर्ति-पूजा की प्रथा अभी प्रचलित नहीं हुई थी।

स्तूपों और चैत्यों के पास ही विहारों का निर्माण हुआ था जिन्हें संघाराम भी कहते हैं। इन विहारों में बौद्ध-भिक्षु वर्षा ऋतु में निवास करते थे। ये विहार पहाड़ों को काट कर बनाये जाते थे और इनके अन्दर की पालिश अति आकर्षक होती थी। इनमें भिक्षुओं के रहने के लिए चारों ओर कमरे बनाये जाते थे। बीच में पूजा के लिए बड़ा हाल होता था। अजन्ता में ऐसे विशाल विहारों का निर्माण हुआ था। इनके निर्माण का काम इसी युग में शुरू हुआ था और आठवीं सदी तक चलता रहा।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे विहार कौशाम्बी और उड़ीसा में भी बने थे।

शुंग-सातवाहन काल में मिट्टी और पत्थर की मूर्तियों की बाढ़-सी आ गयी। मूर्तियों में यक्ष, दक्षिणी, बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विविध घटनाओं का प्राधान्य है। कुछ पशु-पक्षियों और पत्र-पुष्प को भी स्थान दिया गया है। कुछ मूर्तियों में लोक जीवन की घटनाएँ भी दिखायी गयी हैं। अधिकांश मूर्तियाँ बोधिसत्वों को लेकर बनी हैं। मूर्ति-निर्माण की विभिन्न शैलियाँ इस युग में चल पड़ीं—(१) मथुरा शैली का क्षेत्र सारनाथ से साँची तक था। इस शैली में वेदिका और तोरण पर मूर्तियाँ बनाने का काम अधिक हुआ। इसी शैली में यक्ष-यक्षिणी, बोधिसत्वों, जैन तीर्थङ्करों, हिन्दू देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ। (२) दूसरी शैली अमरावती शैली कहलाती है। इसका प्रचार सातवाहन राज्य में हुआ था। इसी शैली में अमरावती, कार्ले, नासिक और अजन्ता के गुफा-मन्दिर और उन पर बनी मूर्तियाँ हैं। इस शैली की मूर्तियाँ अधिक सजीव, कमनीय और आकर्षक हैं। (३) तीसरी शैली गान्धार-शैली के नाम से विख्यात है जिसका परिचय आगे दिया जा रहा है।

गान्धार कला की शैली—जिस प्रकार बौद्ध धर्म के क्षेत्र में महायान सम्प्रदाय का जन्म हुआ था, उसी प्रकार भारतीय कला के क्षेत्र में इस युग में कला की एक नयी शैली का आविर्भाव हुआ जो गान्धार शैली के नाम से विख्यात है। ईसा की पहली सदी में विशेष रूप से गान्धार के इलाके में एक नयी कला-शैली का उदय हुआ जो ऊपर से देखने में यूनानी थी, पर उसका विषय बौद्ध है। इसी नवीन शैली का नाम गान्धार शैली है। कला की इस शैली का उत्कर्ष कनिष्क और उसके बाद के वर्षों में हुआ। कला की इस शैली की उत्पत्ति के विषय में दो विरोधी मत हैं—(१) फ्रांसिसी फूशे, स्मिथ और मार्शल का कहना है कि इसी शैली के कारीगरों ने सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्तियों की कल्पना की और मूर्तियाँ बनाईं। बुद्ध की मूर्ति की कल्पना इससे पूर्व किसी ने नहीं की थी। इसी से भारत में बुद्ध की मूर्तियाँ बनाने का प्रचार हुआ और इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैली का प्रभाव भी भारतीय कला पर बहुत दिनों तक रहा। (२) विद्वानों का दूसरा वर्ग जिसमें हैवेल, आनन्दकुमार स्वामी, जायसवाल, कृष्णदास आदि प्रमुख हैं, यह कहता है कि पश्चिमोत्तर और मध्य भारत में बसे हुए शक-पल्हव-कुषाण राजाओं ने महायान धर्म के प्रभाव से बुद्ध-मूर्ति की माँग की और चूंकि उनमें कोई अच्छा कलाकार नहीं था और भारत में तब तक बुद्ध मूर्ति-निर्माण की प्रथा नहीं थी, अतः उन्होंने गान्धार में प्रचलित यूनानी कला की वास्तविकता के साथ मिला कर बुद्ध की मूर्तियाँ बनायीं। इसी कला का विकास होने पर उसे गान्धार शैली का नाम मिला। शक-कुषाण काल में यह कला अधिक फली-फूली। इसे इण्डोग्रीक शैली कहते ।

इस कला का क्षेत्र आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान और अफगानिस्तान रहा है। तक्षशिला इसका प्रधान केन्द्र था। गान्धार प्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण ही इसका नाम गान्धार शैली पड़ा। इसमें बुद्ध, बोधिसत्वों, बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित बातों का प्रदर्शन अधिक हुआ है। बुद्ध की अभय, वरद मुद्राओं का, धर्मचक्र प्रवर्तन और ध्यान-मुद्रा का अंकन इस शैली में विशेष रूप से हुआ है। मूर्तियाँ काले स्लेटी पत्थर और पिसे हुए चूने तथा पकाई मिट्टी की बनाई गयी हैं। इन मूर्तियों को सुनहरे रंग से रँगकर स्वर्णिम आभा-युक्त बनाया जाता था। इनमें बुद्ध का जन्म, सम्बोधि, महापरिनिर्वाण, धर्मचक्र-प्रवर्तन, बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर आदि की मूर्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

गान्धार शैली की मूर्तियों में ये विशेषताएँ हैं: (१) गांधार शैली की मूर्तियों में मनुष्य-शरीर को यथार्थ रूप में दिखाने का प्रयास हुआ है। इनमें शरीर के अंग—प्रत्यंग, मांसपेशियाँ, आँख, कान, मुख, मूँछ आदि का विन्यास यथार्थ बनाने का प्रयास है। इन चीजों को बारीकियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस दिशा में यूनानी मूर्ति-कला का प्रभाव स्पष्ट मालूम होता है। (२) बुद्ध की मूर्तियाँ सर्वप्रथम इस शैली में बनी हैं। उन मूर्तियों में बुद्ध को यथार्थ मानव का रूप दिया गया है। भारतीय

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावुकता और आदर्श का इनमें अभाव है। (३) इस शैली की बुद्ध-मूर्तियाँ यूनानी देवता अपोलो से मिलती-जुलती हैं। (४) उनके सिर पर बाल और मुख पर मूँछ प्रदर्शित किया गया है। बाल लहरदार दिखाया गया है। मथुरा शैली के मूर्तियों में बुद्ध की मूर्ति में बाल नहीं दिखाया गया है क्योंकि भारतीय पद्धति के अनुसार संन्यास के बाद सिर पर बाल नहीं रखा जाता है। (४) गान्धार शैली की मूर्तियों पर, बुद्ध या बोधि-सत्वों की मूर्तियों पर मुखमण्डल की आभा या आध्यात्मिकता का प्रदर्शन नहीं हुआ है। (५) इस शैली में शरीर को विशेष रूप से अलंकृत किया गया है। इनके वस्त्र भड़कीले और शरीर रत्न-जटित है। इस शैली के बुद्ध राजा-जैसे लगते हैं। (६) मूर्तियों पर पारदर्शी या अर्द्धपारदर्शी वस्त्रों का सुन्दर अंकन है। उनमें वस्त्रों की चुन्नट या सलवटें बड़ी निपुणता से दिखायी गयी हैं। वस्त्र बाएँ कन्धे के ऊपर और दाहिने कन्धे के नीचे दिखाया गया है। (७) इस शैली की अधिकांश मूर्तियाँ अभय या ध्यान मुद्रा में बनायी गयी हैं। (८) गान्धार शैली की मूर्तियों में अलंकार की प्रधानता है, नक्काशी अधिक और सुन्दर है।

इन्हीं विशेषताओं से कुछ बिद्वानों का मत है कि इनके विषय तो भारतीय हैं, पर इनमें हाथ और छेनी यूनानी है। यूनानी कलाकारों ने इस शैली में भारतीय अभिप्रायों को अपनी ग्रीक छेनी से, ग्रीक शैली से सँवारा और अंकित किया है। सम्भवतः दो संस्कृतियों के सम्पर्क में यूनानी कलाकार अपना और पराया भूल गया। उसने बुद्ध और उनसे सम्बन्धित विषय को स्वीकार किया और अपनी सीमा में उसे सवाँर कर उन्हें अमरत्व प्रदान करने का प्रयास किया। यह मानना पड़ेगा कि यूनानी कलाकारों ने सब कुछ करके भी भारतीय भावुकता को नहीं अपनाया। इसीलिए प्रतीत होता है कि इस शैली की मूर्तियाँ एक ही टकसाल में ढाली गयी हैं। भारतीय आध्यात्मिकता को पाकर सम्भवतः वे अधिक आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक हुई होतीं।

गांधार कला का समय लगभग ई० पू० ५० से लेकर ५०० ई० तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा। इन मूर्तियों के प्रधान केन्द्र लाहौर, पेशावर, तक्षशिला, काबुल, गान्धार और मध्य एशिया के कुछ भाग रहे हैं। यहीं से यह चीन की ओर भी गयी। कनिष्क के शासन-काल में महायान के प्रचार के बाद इन मूर्तियों की माँग बढ़ी और तब इस शैली के कलाकारों को प्रोत्साहन मिला। इस कला का मथुरा और अमरावती शैली पर क्या प्रभाव पड़ा और आगे आने वाली गुप्त-कला को इसने कहाँ तक प्रभावित किया, यह विवाद और खोज का विषय है।

गुप्त-काल की सभ्यता एवं संस्कृति

कुषाण वंश का अन्त होते-होते भारत की राजनीतिक दशा अस्थिर हो गयी। अफगानिस्तान और सिन्धु घाटी में फारस के सासानी वंश का आधिपत्य हो गया। उन्हीं सासानी राजाओं के नीचे कुषाण सामन्त राज्य करते थे। पंजाब में कुछ दिनों तक शक सामन्तों का और तत्पश्चात् कुषाण सामन्तों का अधिकार रहा। किदार उनका प्रसिद्ध राजा था। मालवा और गुजरात में पश्चिमी क्षत्रपों का राज्य था। उनकी राजधानी उज्जैन थी। इस वंश में रुद्रदमन मुख्य हुए। सन् १५० ई० का रुद्रदमन का गिरनार शिलालेख इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अजमेर, उदयपुर प्रदेश में मालव, यौधेय, कुणिन्द, आर्जुनायन, मद्र आदि गणराज्य थे। मथुरा, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग में नागवंश का अधिकार था। उनके मुख्य नगर पद्मावती, मथुरा, कान्तिपुर आदि थे। ये शैव थे अतः इन्हें भारशिव नाग भी कहा जाता है। इन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ किये और सम्भवतः काशी का दशाश्वमेध घाट उसी की स्मृति है। दक्षिण में सातवाहन वंश के स्थान पर वाकाटक वंश का उदय हुआ। नागवंश और वाकाटक वंश का समकालीन मगध का गुप्त-वंश था जिसका शासन-काल प्राचीन भारत के इतिहास में स्वर्ण-युग कहलाता है।

गुप्त वंश की स्थापना चौथी सदी के प्रारम्भ में हुई थी। इस वंश में निम्नांकित प्रतापी एवं अधिक शक्तिशाली सम्राट हुए जिनका भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति के उन्नयन में योगदान इतिहास की अमर कहानी बन चुकी है—

चन्द्रगुप्त प्रथम	(लगभग सन् ३१८—३२० ई०)
समुद्रगुप्त	(लगभग सन् ३२०—३७५ ई०)
चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य)	(लगभग सन् ३७५—४१५ ई०)
कुमारगुप्त प्रथम	(लगभग सन् ४१५—४५५ ई०)
स्कन्दगुप्त	(लगभग सन् ४५५—४६७ ई०)

इस वंश का अन्त लगभग ५५० ई० में हुआ। इस वंश के शासन के अन्तिम दिनों में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया और इसके पतन में सहायता की। इस वंश के कुछ प्रमुख शासकों ने अपने समकालीन प्रमुख राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया जिसका राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्व था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली की लिच्छवि राजकुमारी से विवाह किया था। सम्भवत: इसी कारण वह मगध और वैशाली का शासक हो सका। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नागवंशीय राजकुमारी कुबेर नागा के साथ विवाह किया। इसी सम्बन्ध से उत्पन्न प्रभावती गुप्ता का विवाह सम्राट ने वाकाटक नरेश रुद्रसेन के साथ किया। गुप्त और वाकाटक राजवंशों की मैत्री इस काल की एक प्रभावशाली घटना थी। अत: इस युग को इतिहासकारों ने **वाकाटक-गुप्त** युग कहा है। नीचे इसी काल के सांस्कृतिक विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाकाटक गुप्त-युग का साहित्य

शुङ्ग-सातवाहन युग में साहित्य के सृजन का जो नवीन क्रम शुरू हुआ था, वह इस युग में आकर अधिक प्रौढ़ और विकसित हुआ। साहित्यिक विकास का यह प्रवाह अविच्छिन्न रूप में चल रहा था और इस काल में संस्कृत का परिष्कृत रूप व्यापक बन गया। यहाँ क्रम से इस युग की साहित्यिक कृतियों एवं साहित्यकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

इस युग के लेखकों में समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति के लेखक **हरिषेण**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का नाम कालक्रम से पहले सामने आता है। उसकी भाषा प्रौढ़, काव्यमय और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। इसमें अलंकारों का भी प्रयोग अधिक हुआ है। इसी प्रकार युग के प्रशस्तिकारों में प्रसिद्ध मन्दसोर-प्रशस्तिका-लेखक **वत्सभट्टि** है। एक अन्य प्रशस्तिकार **वासुल** ने मालवा के जनेन्द्र यशोधर्मन की प्रशस्ति मन्दसोर में ही लिखी। **रविशान्ति** ने मौखरि नरेश ईसानवर्मन को हरहा प्रशस्ति लिखी। इन सब प्रशस्तियों के लेखकों की भाषा कालिदास-युग के अनुकूल है।

काव्य और नाटक के क्षेत्र में गुप्त-काल की देन बेजोड़ है। विश्व के महान् कवियों एवं नाटककारों में उच्च स्थान प्राप्त **कालिदास** इसी युग की विभूति थे। आधुनिकतम खोजों के आधार पर यही मत निश्चित हुआ है कि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समसामयिक थे और सम्राट ने उन्हें वाकाटक वंश की रानी और चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती के पुत्रों की शिक्षा के लिए वाकाटक दरबार में भेजा था। यों तो दलील दी जाती है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए अश्वघोष की रचनाओं में कालिदास की अनेक उक्तियाँ मिलती हैं और इसी आधार पर कालिदास को अश्वघोष से पहले खींचा जाता है। यह भी युक्ति प्रस्तुत की जाती है कि कालिदास का नाटक 'मालविकाग्निमित्र' शुङ्ग-युग की घटनाओं पर अधिक टिकता है, अतः कालिदास का शुङ्ग-युग में पैदा होना अधिक सम्भव मालूम होता है। पर विद्वानों का एक दूसरा दल इस बात से सहमत नहीं है। उनकी राय में समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति की विजय-यात्रा 'रघुवंश' में वर्णित रघु-विजय की आधार-पीठिका है। 'कुमार-संभव' का कथानक भी चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त की ओर संकेत करता है। चन्द्रगुप्त के दौहित्र प्रवरसेन द्वारा लिखित प्राकृत काव्य सेतुबंध की टीका में उल्लेख है कि विक्रमादित्य ने कालिदास को वाकाटक-राजधानी में भेजकर इस काव्य-ग्रन्थ को शुद्ध कराया था। कालिदास ने प्रभावती गुप्ता के पुत्रों को पढ़ाया भी था, ऐसी अनुश्रुति है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में जिस युग का चित्र चित्रित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है, वह एक जीवित राष्ट्र का चित्र है और उसकी समृद्धि, शौर्य और संस्कार गुप्त-काल के ही अनुरूप हैं। अतः अधिकांश विद्वान् अब कालिदास को गुप्त-युग का ही एक कवि मानते हैं। कालिदास की प्रथम रचना ऋतुसंहार है। मेघदूत और कुमारसम्भव में उनकी प्रतिभा विकसित हुई है। रघुवंश उनकी काव्य शक्ति की पराकाष्ठा का द्योतक है। नाटकों में क्रम से मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान शाकुन्तल के नाम आते हैं। यह शाकुन्तल विश्व के श्रेष्ठतम तीन नाटकों में एक माना जाता है। इस नाटक को पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन कवि एवं विद्वान गेटे ने उसे 'वसुन्धरा में परिपूर्णता' की संज्ञा दी थी।

गुप्त-युग के दूसरे नाटककार शूद्रक थे जिसने मृच्छकटिक नाटक लिखा। यह एक सामाजिक नाटक है जिसमें उज्जैन की वसन्तसेना के लिए चारुदत्त की प्रेम-कथायें वर्णित हैं। कथानक एवं शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति उत्कृष्ट है। इसी काल के विशाखदत्त ने राजनीतिक नाटकों को लिखकर अद्भुत ख्याति प्राप्त की है। मुद्राराक्षस और देवी चन्द्रगुप्तम् उसके दो प्रमुख नाटक हैं। दूसरा नाटक अब मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार इस काल के गद्य-लेखक सुबन्धु, अलंकारशास्त्र के विद्वान लेखक भामह, प्रसिद्ध कोशकार अमरसिंह थे। गुप्त-काल के अन्तिम चरण में किरातार्जुनीय काव्य के लेखक भारवि, भट्टिकाव्य के लेखक भट्टि और नीति, शृङ्गार, वैराग्य शतक के लेखक भर्तृहरि भी हुए थे। भर्तृहरि का स्थान उक्ति-साहित्य में बहुत ऊँचा है।

गुप्त-काल दर्शन-ग्रन्थों की रचना की दृष्टि से भी अति समृद्ध है। इस काल में षट् दर्शनों पर विविध प्रकार भाष्य ग्रन्थ लिखे गये। सांख्य दर्शन के क्षेत्र में विन्ध्यवासी और ईश्वरकृष्ण के नाम विशेष उल्लेखनीय है। प्रथम ने 'सांख्यशास्त्र' और द्वितीय ने 'सांख्यकारिका' नामक ग्रन्थ लिखे हैं। न्यायदर्शन के क्षेत्र में वात्स्यायन ने 'न्याय-भाष्य' लिखकर नाम प्राप्त किया। वे सम्भवतः कांची के निवासी थे। मीमांसा के सूत्रों पर भाष्य लिखने वाले शबर-स्वामी इसी काल में हुए थे। वास्तव में गुप्त-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल दर्शन के क्षेत्र में भाष्यकारों का युग था। ये भाष्य-ग्रन्थ अपनी तरह के अनूठे ग्रन्थ हैं और उन्हीं के कारण यह युग भारतीय दर्शन के इतिहास में अमर हो गया है। पतंजलि के योगसूत्रों पर भी इस समय विशिष्ट भाष्य ग्रन्थ लिखे गये।

गुप्त-काल वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिए अपना महत्व रखता है। गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट का नाम विख्यात है। सम्भवतः वे पाटलिपुत्र के निवासी थे। इनका जन्म सन् ४७६ ई० में हुआ था। उनकी पुस्तक 'आर्य भट्टीय' बहुत प्रसिद्ध है। इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में अंक और दूसरे खण्ड में गणित, काल और गोल की व्याख्या है। उन्होंने १ से ९ तक के अंकों के स्थान-मान, शून्य और पाई के चिन्ह (π) का वैज्ञानिक विवेचन किया है। उन्होंने पृथ्वी की गोलाई और दैनिक गति पर भी प्रकाश डाला है। ग्रहण के वैज्ञानिक कारण भी उन्होंने बताये और राहु द्वारा चन्द्रमा के ग्रसित होने की कथा को कल्पित बताया। आश्चर्य है कि आर्यभट्ट ने अपनी पुस्तक 'आर्यभट्टीय' चौबीस वर्ष की आयु में ही लिखी थी। गणित और ज्योतिष इनके मुख्य विषय थे।

वराहमिहिर गुप्त-युग के सबसे बड़े ज्योतिषी थे। इनका जन्म काम्पिल्य (कालपी) में सन् ५०५ ई० में हुआ था। कुछ लोग इन्हें मगध-निवासी शाकद्विपीय बाह्मण मानते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंचसिद्धान्तिका' में हर प्रकार के ज्योतिष के सिद्धान्तों का विवेचन है। इनके दूसरे ग्रन्थ 'वृहत् संहिता' को विज्ञानों ने ज्ञानराशि कहा है। इस ग्रन्थ में छन्दोवद्ध क्रम से सूर्य, चन्द्रमा की गतितारों का सम्बन्ध, ग्रहण, शरीर विद्या, धातु-विज्ञान, भूगोल आदि अनेक विषयों की व्याख्या है। वराहमिहिर की गति गणित (तंत्र) ज्योतिष, कुण्डली और फलित ज्योतिष में समान थी। उनके ग्रन्थों में यवन-सिद्धान्त का भी विवेचन है। उन्होंने लिखा है कि यवनों की गणना म्लेच्छों में है, पर विज्ञान-वेत्ता होने के कारण वे ऋषियों के समान आदरणीय हैं।

भारत का आयुर्वेदशास्त्र बहुत पुराना विज्ञान है। चरक और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुश्रुत नामक विद्वान पहले हो चुके थे। उनके ग्रन्थों का विवेचन वाग्भट्ट द्वारा लिखित 'अष्टांग संग्रह' में हुआ। हाथियों के रोगों के विषय में पालकापय का लिखा ग्रन्थ 'हस्त्यायुर्वेद' प्रसिद्ध है। बौद्ध दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित नागार्जुन ने 'रस-चिकित्सा का आविष्कार किया और चिकित्सा-पद्धति में एक क्रान्ति पैदा कर दी।

अर्थशास्त्र की पुस्तक कमन्दकीय नीतिसार इसी काल की रचना है। यह गुप्त काल के विज्ञान-साहित्य की प्रधान कृति है। कामशास्त्र के क्षेत्र में वात्स्यायन का बहुत नाम है। उसने 'कामसूत्र' लिखा।

गुप्त युग में आकर पुराणों का अन्तिम रूप तैयार हुआ, ऐसा विद्वानों का मत है। वायु, भविष्य, विष्णु और भागवत पुराण में गुप्त-वंश का उल्लेख है। वायु में लिखा है कि :

> **अनुगंगं प्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा।**
> **एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ।।**

इससे स्पष्ट है कि गुप्त वंश के प्रारम्भिक दिनों में ही इस पुराण की रचना हुई होगी अन्यथा विस्तृत गुप्त साम्राज्य का उल्लेख होता।

धर्मशास्त्र के कतिपय ग्रन्थ इस युग में लिखे गये। मनुस्मृति, विष्णु और याज्ञवल्क स्मृतियाँ गुप्त पूर्व युग की हैं, पर नारद, वृहस्पति और कात्यायन स्मृतियाँ गुप्त काल में ही लिखी गयीं।

गुप्त सम्राट भागवत धर्म के अनुयायी थे। वे विष्णु की पूजा करते थे। पर इस युग में बौद्ध साहित्य का जितना सृजन हुआ, वह अद्भुत था। वास्तव में बौद्ध दर्शन के विवेचन का यह स्वर्ण-युग था। यह युग ब्राह्मण दर्शन और बौद्ध दर्शन की स्पर्द्धा का युग था, अतः विचार-विमर्श और काट-छाँट में बौद्ध विद्वानों ने अपनी अन्तिम शक्ति लगा दी और उन्होंने ऐसी दार्शनिक बारीकियों से पूर्ण ग्रन्थों की रचना की कि वे आज तक विस्मय एवं सम्मान के केन्द्र बने हुए हैं। इस काल के सभी बौद्ध ग्रन्थ उत्तम संस्कृत में लिखे गये।

गुप्त काल के पूर्व बौद्ध धर्म में दो मत हो गये थे। एक हीनयान और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा महायान था। हीनयान की भी दो शाखाएं थीं—थेरवाद और (स्थविरवाद) और वैभाषिक (सर्वास्तिवाद)। महायान में भी दो भेद थे—माध्यमिक और योगाचार।

योगाचार मत का जन्म गुप्त काल में ही हुआ। इसके प्रवर्तक आचार्य मैत्रेय थे। आचार्य ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि योगाभ्यासी ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह सम्प्रदाय यौगिक क्रियाओं को अधिक महत्व देता था। मैत्रेय ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे पर आजकल उनमें से कुछ ही उपलब्ध हैं। उनके अधिकांश ग्रन्थ चीनी भाषा में सुरक्षित हैं। मैत्रेय का 'अभिसमयालंकारिका' नामक ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है। योगाचार सम्प्रदाय के सर्वोत्तम विचारक आर्य असंग हैं। ये मैत्रेय के शिष्य थे। आर्य असंग के एक भाई का नाम वसुवन्धु था जो भाई के समान ही बौद्ध दर्शन के पण्डित थे। इनका जन्म पुरुषपुर में हुआ था। इनके ग्रन्थों का पता हमें चीनी अनुवादों से लगता है। कहा जाता है कि वसुवन्धु के जीवन का अधिक समय अयोध्या में व्यतीत हुआ जहाँ आप पर समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त की शिक्षा का भार सौंपा गया था। वसुवन्धु का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'परमार्थसप्तति' कहा जाता है। वसुवन्धु के कई ग्रन्थों का अनुवाद ह्वेनसांग ने किया था। उनका लिखा 'अभिधर्मकोश' अपने तरह का अनूठा ग्रन्थ माना जाता है।

हीनयान की स्थविर शाखा के उद्‌भट विद्वान बुद्धघोष थे। वे संस्कृत और पाली दोनों के ही अधिकारी ज्ञाता थे। आपने सिंघल की भी यात्रा की थी और वहीं सिंघली भाषा के ग्रन्थ अट्टकथा का अध्ययन कर उसका अनुवाद पाली में किया। आपके लिखे एक दर्जन से अधिक ग्रन्थ बताये जाते हैं। आपका बौद्ध संसार में बहुत सम्मान है और जब तक इस संसार में बुद्ध के धर्म का एक भी अनुयायी रहेगा, बुद्धघोष का नाम जीवित रहेगा।

'प्रमाण समुच्चय' के लेखक आचार्य दिङ्नाग भी बौद्ध दर्शन के बड़े सम्मानित व्याखाता हैं। आप कांची के रहने वाले थे। आपने ब्राह्मण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दार्शनिकों के तर्कों का अकाट्य उत्तर उपस्थित किया है। इनसे बौद्ध दर्शन सम्मानित हुआ है।

गुप्त-काल बौद्ध दर्शन के लिए उत्कर्ष का युग था। इसी समय बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार चीन में हुआ। इसका वर्णन अन्यत्र दिया जायगा। भारत से कुमारजीव और परमार्थ जैसे विद्वान चीन गये और अपनी बुद्धि एवं शक्ति लगा चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

बौद्ध साहित्य की तरह गुप्त काल में जैन धर्म के विशिष्ट ग्रन्थों की रचना हुई। इसी युग में जैन आगमों के अन्तिम संस्करण तैयार हुए। इसी युग में जैन-न्याय का रूप व्यवस्थित हुआ। इसी युग में देवनन्दि नामक आचार्य ने 'जैनेन्द्र व्याकरण' की रचना की जो जैन दर्शन का एक स्वतंत्र व्याकरण है। जैन साहित्य में यह एक अभूतपूर्व ग्रन्थ था। सिद्धसेन दिवाकर जैन तर्क-शास्त्र के जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्होंने ३२ ग्रन्थ लिखे, जिनमें से २१ आज भी उपलब्ध हैं। इनकी महत्ता को स्वीकार कर जैनियों ने इन्हें 'न्यायावतार' की उपाधि दी है।

ऊपर की बातों से स्पष्ट है कि गुप्त-काल साहित्य के विकास की दृष्टि से बेजोड़ है। साहित्य का कोई अंग ऐसा नहीं है जिस पर इस युग में उच्च-कोटि की पुस्तकें न लिखी गयी हों। डाक्टर मैक्समूलर का यह कथन सत्य ही है कि "इस युग में संस्कृत साहित्य मानों जाग पड़ा।" एक ओर कालिदास ने अपनी पीयूषवर्षिणी पदावली से इस युग में काव्य का रसास्वादन कराया, तो दूसरी ओर बौद्ध आचार्य असंग, वसुबन्धु और दिङ्नाथ ने उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थों की रचना कर भारती के कोश को भरा। सम्भवतः उच्चकोटि का इतना साहित्य अन्य किसी एक युग में नहीं लिखा जा सका।

गुप्तकालीन कला

गुप्त-काल की ललित कला ने सौन्दर्य और भारतीय अनुभूति को जिस मात्रा में प्रकट करने में सफलता पायी है, उतनी सफलता का श्रेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भवतः किसी अन्य युग को नहीं प्राप्त हो सका है । इस युग की कला की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से विशुद्ध भारतीय है और इस पर किसी विदेशी कला का दबाव नहीं है । गुप्त-सम्राट स्वयं कला-प्रेमी थे और उनकी सुरुचि ने कला के निखार में अद्भुत योग दिया । यह युग समृद्ध एवं शान्तिपूर्ण व्यवस्था में था, अतः कला के क्षेत्र में पूर्ण गम्भीरता, सौन्दर्य एवं समृद्धि रही । अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाय कि गुप्त-युग की कला में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् ने साकार रूप धारण किया । नीचे इस युग की कला के विभिन्न रूपों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

वास्तुकला—(१) गुप्त-युग के **भवनों** के नमूने आजकल नहीं मिलते हैं क्योंकि वे नष्ट हो चुके हैं । पर उनका कुछ आभास तत्कालीन साहित्य से मिलता है । उनमें ज्ञात होता है राजकीय महल कई मंजिल के बनते थे, उनकी छतें स्तम्भों पर खड़ी की जाती थी । मृच्छकटिक में बसन्त सेना के मकान और कालिदास ने उज्जयिनी के महलों का वर्णन किया है । (२) इस काल में भी **स्तम्भ निर्माण** की कला, जो अशोक के समय में चलती थी, जीवित थी । इस युग के निर्मित स्तम्भ एरण, भिलसा, भीतरी में हैं । दिल्ली में स्थित मेहरौली का लौह-स्तम्भ भी इसी काल की कीर्ति है । यह लगभग २४ फुट ऊँचा है, इसके नीचे भाग का व्यास १५ इंच और ऊपर का १२ इंच है । इस पर 'चन्द्र' की विजय अंकित है । गुप्त काल के स्तम्भों के ऊपर गरुड़ की आकृति निर्मित है । स्तम्भ के सिरे के नीचे का भाग चौकोर होता है । क्रम से इसके ऊपर आठ कोना, सोलह कोना और पुनः आठ कोना आकृति होती है । स्तम्भ के सिरे का निचला भाग अधोमुखी कमल सदृश होता है । स्तम्भ के ऊपरी भाग पर गरुड़ के नीचे सिंह पीठ से पीठ लगाये बैठे हैं । गुप्त युग के स्तम्भ विजयों के परिचायक हैं, अतः उन्हें कीर्ति-स्तम्भ कहते हैं । कुछ धार्मिक स्तम्भ भी है जिनको ध्वज स्तम्भ कहा जाता है । एरण का एक स्तम्भ स्मारक-स्तम्भ भी है । (३) गुप्त काल में बने दो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध स्तूप आजकल पाये जाते हैं एक राजगिरि में और दूसरा सारनाथ में है। सारनाथ का धमेक स्तूप कला की दृष्टि के अति उत्तम है। यह स्तूप पत्थर के टुकड़ों को जोड़ कर बनाया गया है। पत्थर पर सुन्दर बेल-बूटे बने हैं। इन पर स्वस्तिक और नालयुक्त कमल बने हैं। इन पर लुभावने जलपक्षी और अन्य जल-जन्तु बने हैं। यह स्तूप १२८ फुट ऊँचा है। इसमें चार दिशाओं में चार ताख हैं जिन पर सम्भवतः बुद्ध की मूर्तियाँ निर्मित थीं, जो अब नहीं हैं। पत्थरों की खुदाई अति कमनीय है। (४) इस युग की वास्तुकला में गुहा-मन्दिर का स्थान महत्वपूर्ण है। ये गुहा-मन्दिर पत्थरों को काट कर निर्मित किये जाते थे। जब इनमें मूर्ति स्थापित की जाती थी, तो वे चैत्य कहलाते थे। इस काल के गुहा-मन्दिर अजन्ता, मध्यप्रदेश के उदयगिरि, भिलसा और दक्षिण में कुछ स्थानों पर बने थे। अजन्ता में गुहा नंबर १६, १७ और १६ गुप्त-काल की कृतियाँ हैं। अजन्ता की गुहा में लकड़ी का प्रयोग नहीं हुआ है। उसमें बुद्ध की मूर्तियाँ निर्मित है। शुंग-शातवाहन काल में बुद्ध की मूर्ति बनाने की प्रथा नहीं थी। इस गुहा की दीवारों पर बहुत सजीव एवं आकर्षक चित्र बने हैं। उदयगिरि और भिलसा के पास बने बाघ की कुछ गुहाएँ चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में बनी थीं। गुहा-द्वार पर तथा बाहर की दीवारों पर अनेकानेक मूर्तियाँ बनी हैं। द्वार के दोनों ओर चार द्वारपाल की प्रतिमाएँ हैं। चौखट के ऊपरी भाग पर गंगा-यमुना की प्रतीकात्मक मूर्तियाँ हैं। उनमें विष्णु-वाराह और महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्ति है। बाघ की गुफा की दीवारों की चित्रकारी अति कलात्मक है। (५) गुप्त काल की वास्तु-कला का उत्कृष्ट नमूना तत्कालीन मन्दिरों में प्राप्त है। अब इन मन्दिरों के अवशेष ही पाये जाते हैं, पर उनसे उनकी निर्माण कला का अच्छा परिचय मिलता है।

गुप्त युग के निर्मित मन्दिरों के अवशेष भूमरा, (मध्यप्रदेश) में नचना-कूथर, तिगवा, एरण, साँची लड़खान (बम्बई प्रदेश) में देवगढ़ (झाँसी जिला) में और भितरगाँव (कानपुर जिला) में और बोध गया में पाये जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। इन मन्दिरों की बनावट में ये बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) इन मन्दिरों की स्थापना एक ऊँचे चबूतरे पर हुई है। (२) उन पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। (३) गुप्त-काल के प्रारम्भिक दिनों में बने मन्दिरों की छतें चिपटी हैं और अन्तिम काल के मन्दिरों में शिखर बने थे। (४) मन्दिर की बाहरी दीवार सादी होती थी। (५) मन्दिर में बाहर से भीतर जाने के लिए मार्ग होता था और पहले एक हाल और तब मन्दिर का गर्भ गृह होता था जहाँ मुख्य मूर्ति की स्थापना की जाती थी। (६) गर्भ गृह के चारों ओर प्रदक्षिणपथ होता था। (७) बड़े हाल में चारों ओर स्तम्भ होते थे और उन स्तम्भों पर तरह-तरह के बेल बूटे अलंकार के लिए बनाये जाते थे। स्तम्भों के ऊपरी भाग पर एक वर्गाकार पत्थर के टुकड़े पर सिंह की मूर्तियाँ बनी रहती थीं। उसी के ऊपर छत डाली जाती थी। (८) मुख्य द्वार पर गंगा-यमुना की प्रतीकात्मक मूर्तियाँ बनी होती थीं।

छत की शैली के आधार पर इन मन्दिरों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—चिपटी छत वाले मन्दिर जो इस इस युग के पूर्व भाग में बने थे। नचचा, भूमरा आदि के मन्दिर इसी शैली के हैं। दूसरी शैली में शिखरयुक्त मन्दिर थे। ऐसा देवगढ़ का दशावतार मन्दिर था। उत्तरी भारत में आजकल शिखरयुक्त मन्दिर-निर्माण की ही प्रथा है। इल शैली का प्रारम्भ गुप्तयुग के उत्तरार्द्ध में हुआ था। झाँसी जिले में देवगढ़ का मन्दिर गुप्त के उत्तरार्द्ध में बना था। आजकल इसके खण्डहर और नींव के ही भाग शेष बचे हैं। यह एक ऊँचे चबूतरे पर बना था, इसके गर्भगृह में चार द्वार थे। इसके प्रस्तर-स्तम्भ खूब अलंकृत हैं और चौखट में कमल और कीर्तिमुख की आकृतियाँ हैं। इस पर एक शिखर होने का भी संकेत है। शिखर गर्भगृह के ठीक ऊपर बनाया जाता था। शिखर में नीचे का भाग चौड़ा और क्रमशः ऊपर का भाग सँकरा (Slope) होता जाता था। शिखर के सिरे के दो भाग होते थे। निचला भाग आमलक और ऊपरी भाग कलश कहलाता था। उसी पर ध्वज-दण्ड की स्था-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पना की जाती थो । देवगढ़ के मन्दिर का शिखर ४० फुट ऊँचा था । यहीं अनंतशायी विष्णु की मूर्ति है । बोध गया के मन्दिर में आमलक और कलश युक्त शिखर वर्तमान हैं । इस युग का अन्य कोई मन्दिर अपने मूल रूप में नहीं खड़ा है । गुप्त युग के मन्दिरों में दीवारें वैष्णव धर्म से सम्बन्धित सजीव, उभरी हुई मूर्तियों से भरी थीं ।

गुप्त-काल में भारत में पाटलिपुत्र, वैशाली, पुंड्रवर्धन, कौशाम्बी, अहिच्छत्र, वाराणसी, उज्जैन, मथुरा आदि प्रसिद्ध नगर थे । इनके भवन, राजप्रासाद, सड़कों, बाजार आदि के विषय में पता लगाने का श्रमसाध्य काम पुरातत्व के विद्वान कर रहे हैं। काल-क्रम से इनकी विशेषताएँ प्रकाश में आती रहेंगी । इन नगरों का कुछ ज्ञान हमें फाह्यान के वर्णन से भी प्राप्त होता है ।

स्थापत्य या मूर्ति कला—मूर्ति-कला की दृष्टि से गुप्त-युग सबसे अधिक सम्पन्न युग है । इस क्षेत्र में कला उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी और उसमें प्रौढ़ता एवं विविधता के साथ-साथ सौन्दर्य का अभूतपूर्व सामंजस्य स्थापित हो गया । इस युग की मूर्तियों में बाह्य सौष्ठव के साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति एवं गम्भीरता का भी सफल प्रदर्शन है । इस युग की मूर्तियों को तीन प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है :—हिन्दू, बौद्ध और जैन । मूर्ति-निर्माण के तीन प्रमुख केन्द्र इस समय थे—मथुरा, सारनाथ और पाटलिपुत्र ।

हिन्दू धर्म से सम्बन्धित प्रतिमाओं में विष्णु के विविध रूप, कृष्ण, कार्तिकेय, शिव, सूर्य, दुर्गा आदि की मूर्तियाँ विशेष निर्मित होती थीं । चूंकि गुप्त-सम्राट वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, अतः इस काल में विष्णु की मूर्तियों के निर्माण में अधिक उत्साह रहा । झाँसी जिले के देवगढ़ नामक स्थान पर विष्णु-मन्दिर में आदि शेष पर शयन करती हुई विष्णु की मूर्ति श्रेष्ठ कला का नमूना है । इस शेषशायी विष्णु-प्रतिमा में विष्णु भगवान शेषनाग पर सोये हुए दिखाये हैं । उनके चरण की ओर लक्ष्मी बैठी पैर दबा रही हैं । विष्णु भगवान के सिर पर शेष का फन उठा हुआ है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु के सिर पर किरीट-मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार, केयूर, माला तथा हाथों में कंकण शोभायमान है। वे अधोवस्त्र पहने हैं। नाभि से एक कमल-दण्ड निकला हुआ है और उसी पर ब्रह्मा आसीन है। लक्ष्मी के पीछे दो अंग-रक्षक खड़े हैं। दाहिनी ओर ऐरावत पर इन्द्र और मयूर पर कार्तिकेय हैं। बायीं ओर शिव और पार्वती हैं। इसे विद्वानों ने 'भोग शयन मूर्ति' कहा है। इसी प्रकार की शेषशायी विष्णु की प्रतिमाएँ उदयगिरि, एरण और अन्य स्थानों पर भी मिली हैं।

इस काल की दूसरी विष्णु-मूर्ति भोपाल के पास उदयगिरि में गुहा मन्दिर की दीवार पर है। यह विष्णु के वाराह रूप को लेकर बनायी गयी है। इस मूर्ति का पूरा आकार मनुष्य का है और केवल मुखाकृति वाराह की है। वाराह एक स्त्री उठाये हुए हैं। दाहिना पैर सीधा है और बाएँ पैर के नीचे आदि शेष की आकृति है। सम्भवतः शास्त्रों में वर्णित आदि शेष और वाराह के अनुरूप यह मूर्ति बनायी गयी है। बाराह की मूर्ति के बाएँ कन्धे पर पृथ्वी देवी की आकृति बनी है। विद्वानों ने इस मूर्ति को भू-वाराह या आदि वाराह नाम दिया हैं।

पहाड़पुर (उत्तरी बंगाल) से कृष्ण चरित सम्बन्धी विविध प्रकार की इस काल की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ के मन्दिर की दीवारों पर राधा-कृष्ण की जैसी मूर्तियाँ हैं, वैसी अन्यत्र नहीं हैं। कृष्ण के सिर पर काकपक्ष विराजमान है। उनका जन्म, गोकुल में जाना, गोवर्धन धारण आदि कृष्ण-लीला की कथाएँ वहाँ उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार भारत कला भवन में रखी हुई कार्तिकेय की मूर्ति, करमदण्डा (फैजाबाद जिला) में से प्राप्त शिव-लिंग, खोह (मध्यभारत में) से प्राप्त एकमुखी शिवलिंग आदि मूर्तियाँ गुप्त-काल के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस युग की सूर्य-प्रतिमा भी उल्लेखनीय है। कुमारगुप्त के शासन-काल के मन्दसौर अभिलेख में सूर्य-पूजा का स्पष्ट उल्लेख है। काशी के भारत कला भवन में रखी हुई सूर्य की मूर्ति में सूर्य देव हार पहने हुए हैं। दोनों ऊषा और सन्ध्या को दो स्त्रियों के रूप में दिखाया गया है। उदयगिरि गुहा-गृह की दीवार पर महिषमर्दिनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्गा की भी एक सुन्दर मूर्ति उत्कीर्ण है। यह मूर्ति अष्टभुजी है।

गुप्त-युग की मूर्तियों की एक विशेषता यह है कि उनका अंग-प्रत्यंग तालमान (उचित अनुपात) के सिद्धान्त के अनुसार बनाया गया है। इसीलिए इनका सौष्ठव अति उत्कृष्ट है।

कुषाण काल में गान्धार शैली के अनुसार बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनाने की जो कला प्रारम्भ हुई थी, वह गुप्त युग में आकर भारतीय कला-शैली में परिवेष्ठित हो और प्रस्फुटित हो गयी। इस युग में बुद्ध की मूर्तियों की बाढ़ आ गयी और उनके निर्माण का केन्द्र गान्धार से हट कर मथुरा, सारनाथ औरर पाटिलपुत्र हो गया। गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियो की वि शेषताएँ उल्लेखनीय है:—(१) पहलों विशेषता वस्त्रों की है। इस युग की मूर्तियों पर वस्त्र चिकने और पारदर्शी दिखाये गये हैं। (२) दूसरी विशेषता यह है कि इस युग की मूर्ति पर वस्त्र-परिधान सम्पूर्ण शरीर पर है। कुषाण काल में एक कन्धे के नीचे वस्त्र रहता था। (२) इस युग की मूर्तियों में बायीं ओर घूमे हुए केश और उष्णोष दिखाया गया है। (४) गुप्त युग में कुषाण काल की तरह भौंहों के मध्य उर्णा (तिलक) नहीं होता और भौंहें सीधो दिखायी गयी हैं। (५) इस युग की मूर्तियों में वक्षस्थल पूर्ण विकसित दिखाया गया है। (६) इस समय की मूर्ति का प्रभा-मण्डल अलंकार-युक्त होता था। (७) गुप्त-काल की मूर्तियाँ सफेद बलुआ पत्थर की बनती थीं। इसके पूर्व भूरे और लाल पत्थर की मूर्तियों की प्रथा थी। इस विशेषताओं से गुप्तकालीन मूर्तियाँ आसानी से पहचानी जा सकती हैं।

गुप्त-काल की मूर्तियों में बुद्ध की पाँच मुद्राओं (ध्यान मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा और धर्मचक्र मुद्रा) को मूर्त रूप दिया गया है। सारनाथ संग्रहालय में बुद्ध की खड़ी और बैठी दोनों प्रकार की मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में संग्रहीत हैं। सारनाथ और कलकत्ता के संग्रहालय में धर्मचक्र मुद्रा की कई मूर्तियाँ हैं जो प्रसिद्ध मर्मज्ञ हेवेल की राय मे इस युग की सब मूर्तियों में श्रेष्ठतम हैं। सारनाथ की इस मुद्रा वाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"बुद्ध-मूर्ति के दोनों कन्धे सुन्दर वस्त्रों से ढके हुए दिखाये गये हैं और बुद्ध आसन पर बैठे हैं। दक्षिणावर्त केश और उष्णीष सिर की शोभा बढ़ा रहे हैं। मस्तक के चारों ओर अतीव सुन्दर अलंकृत प्रभा-मण्डल है जिसके दोनों ओर दो देवों की मूर्तियाँ बनी हैं तथा वे पुष्प-पात्र लिये हैं। प्रतिमा के पृष्ठ-प्रस्तर भी अलंकृत हैं। मूर्ति के दोनों ओर दो खड़े व्याल (Leograph) का अपने मस्तक पर प्रस्तर धारण किये हैं जिसमें पुष्प और पत्तों से मकर सिर निकलता हुआ दिखाया गया है। बुद्ध की मूर्ति के आसन के बीच में एक चक्र बना हैं जिसके दोनों ओर दो मृगों की आकृतियाँ बनी हैं। निचले भाग में पाँच मूर्तियाँ और हैं जो पंच भद्रवर्गीय कहे जाते हैं।" इस मूर्ति में धर्मचक्र, मृगदाव, पंचभद्र वर्ग और धर्मोपदेश के दृश्य उत्कीर्ण हैं। हेवेल ने इसे गुप्तकालीन मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट, अतीव सुन्दर, व्यंजनापूर्ण और भाव-प्रधान नमूना कहा है।

इस समय बरमिंघम संग्रहालय में रखी हुई एक ताँबे की मूर्ति है जो अभय मुद्रा में है। यह मूर्ति बिहार के भागलपुर जिला के सुलतानगंज में मिली थी। यह मूर्ति संसार को अभय दान देने वाली मुद्रा की अनुकृति है। कमर में अन्तर्वासक है, संघाटी दोनों कन्धों से लटकती हुई दिखायी दे रही है जो बहुत ही पारदर्शी और बारीक है। लम्बे कानों में लोर, सिर पर दक्षिणावर्त कुटिल केश और उष्णीष है। दाहिना हाथ अभय दान करते हुए और बायाँ हाथ संघाटी का एक छोर पकड़े दिखाया गया है।

गुप्तकाल के मूर्ति-निर्माताओं ने बुद्ध-जीवन की चार घटनाओं को अधिक प्रदर्शित किया है—(१) लुम्बिनी में बुद्ध का जन्म, (२) बोध गया में सम्बोधि (बुद्धत्व प्राप्ति के समय की घटना) (३) सारनाथ में धर्म-चक्र प्रवर्तन और (४) कुशीनगर में महापरिनिर्वाण। कुछ मूर्तियों में बुद्ध के इस अन्तिम जन्म धारण करने के पूर्व के जन्मों की प्रतीकात्मक कथाएँ भी दिखायी गयी हैं।

इस युग की जैन मूर्तियों में मथुरा की महावीर से प्राप्त मूर्ति एवं गोरखपुर से प्राप्त एक तीर्थङ्कर की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय हैं। मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली महावीर मूर्ति के नीचे लेख खुदा है जिससे मालूम होता है कि यह कुमारगुप्त के समय में बनी थी।

गुप्त-काल में मूर्ति-निर्माण जनजीवन से भी सम्बन्धित था। पत्थर की मूर्तियों के समान इस युग की मिट्टी की मूर्तियाँ भी अति सुन्दर हैं। मिट्टी की मूर्तियों में देवताओं, दैनिक जीवन की घटनाओं, स्त्रियों और बुद्ध से सम्बन्धित मूर्तियाँ अधिक संख्या में मिली हैं। इसमें बैल, गाय, घोड़े, खिलौने की मूर्तियाँ भी अधिक हैं। ऐसी मूर्तियाँ उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी गयी हैं। इन पर लाल, गुलाबी, पीला, सफेद रंग चढ़ाने की भी प्रथा थी।

गुप्त-काल के कारीगर जिस प्रकार कठोर पाषाण को काट कर सजीव मूर्तियों के निर्माण में कुशल थे, उसी प्रकार उन्होंने मुलायम मिट्टी से भी अपने हाथ की सफाई दिखा कलात्मक मूर्तियाँ तैयार करने में पूरी सफलता पायी। मूर्ति-कला का प्रत्येक अंग इस युग में पूर्ण और परिष्कृत हो चुका था। इस युग की मूर्तिकला की विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार कही जा सकती हैं—

(१) गुप्त युग के कलाकारों ने बाहर का अनुकरण त्याग विशुद्ध भारतीय पद्धति अपनायी।

(२) उन मूर्तियों की स्वाभाविकता, अंगविन्यास, आकार-प्रकार प्रौढ़ और दोष-रहित है।

(३) गुप्त कला धर्म-प्रधान है।

(४) रचना-सौष्ठव के साथ-साथ इस युग की मूर्तियों में भाव-व्यंजना और आध्यात्मिकता का सफल प्रदर्शन हुआ है। मूर्तियों में युग का हृदय-भाव स्पष्ट झलकता है। उनमें रस की प्रधानता अनूठी है।

(५) गुप्त युग में मूर्तियों के निर्माण की प्रथा व्यापक थी। राजा से रंक तक में यह कला व्यापक हो चुकी थी।

(६) ये मूर्तियाँ युग की धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और सह-अस्तित्व की परिचायिका हैं। इसीलिए सर जान मार्शल ने इस काल की कला को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर और गहन कहा है।

चित्रकला—गुप्तयुगीन साहित्य से ज्ञात होता है कि यह काल चित्र-कला में विशेष अभिरुचि रखता था। स्थूल रूप में अजन्ता और बाघ की गुफाओं की चित्रकला साहित्य में दिये संकेत को पुष्ट करते हैं। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर जिस प्रकार चित्रशाला, चित्र, चित्रभूमि, रंग और उसके उपकरणों एवं निर्माण का वर्णन किया है, उससे गुप्त-युग में चित्रकला की व्यापकता एवं प्रचार का पता लगता है। तत्कालीन चित्रकला के दो ही नमूने आजकल उपलब्ध हैं—एक बम्बई प्रदेश में स्थित अजन्ता के गुहा-मन्दिरों में और दूसरा ग्वालियर से कुछ दूर बाघ की गुफाओं में। यह स्थान अमझेरा जिले में बाघ नदी के किनारे स्थित है।

अजन्ता बम्बई प्रदेश में जलगाँव स्टेशन से लगभग ४० मील दूर है। वहाँ एक अर्द्धगोलाकार पहाड़ी के मध्य में चट्टानों को काटकर अजन्ता गुहाभवन का निर्माण किया गया है। यहाँ २९ गुफाएँ हैं जिनमें से २ अगम्य हैं और शेष देखी जा सकती हैं। पहाड़ को काटकर उसी के अन्दर कमरे और मूर्तियाँ बनाया गयी हैं। अन्दर कमरों की दीवालों पर एक प्रकार का प्लास्टर लगाया गया है और उसी पर सफेदी से सुन्दर चित्र बनाये गये हैं। ये गुफाएँ एक समय की बनी नहीं हैं। इनमें से कुछ वाकाटक सम्राटों के समय में और कुछ गुप्त-काल में बनीं। कुमारस्वामी का मत है कि गुफा नंबर १७ और १९ गुप्तकालीन हैं।

अजन्ता के चित्रों के विषय अनेक प्रकार के हैं। इन चित्रों में बुद्ध और उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं की प्रधानता है। गौतम का जन्म ग्रहण करना, महाभिनिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन सम्बन्धी चित्र प्रमुख हैं। एक चित्र में एक माता और पुत्र बुद्ध को भिक्षा दे रहे हैं। कुछ राजकीय जीवन से सम्बन्धित चित्र भी हैं जिनमें राजदरबार, जुलूस और अलंकार-प्रधान बातें चित्रित की गयी हैं। पशु-पक्षी, पुष्प-लता के चित्र भी अत्यन्त सजीव एवं आकर्षक हैं।

अजन्ता की १७ वीं गुफा का चित्रकला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। इस चित्र में एक माता और उसका पुत्र बुद्ध को भिक्षा देते हुए दिखाये गये है। सम्भवतः स्त्री यशोधरा है और बालक बुद्ध का पुत्र राहुल है। सम्बोधि के बाद जब बुद्ध एक बार कपिलवस्तु गये, तो यशोधरा ने राहुल को ही भिक्षा में दिया। माता के मुख पर विवशता, वात्सल्य और समर्पण के भाव हैं। बुद्ध करुणा एवं सहानुभूति के पुंज के रूप में चित्रित किये गये हैं। हेवेल ने इस चित्र के सम्बन्ध में लिखा है—"And in its exquisite sentiment it is comparable with the wonderful Madonas of Giovanni Belline."

उसी गुफ़ा के एक दूसरे चित्र में एक जुलूस दिखाया गया है जिसमें बहुत आदमी सज-धज के साथ चल रहे हैं। कुछ बड़ा छत्र लिये हैं और किसी के हाथ में बजाने का शृंगी बाजा है। इस जुलूस में स्त्री-पुरुष दोनों हैं। स्त्रियों के हाथ में सन्दर कङ्कण और गले में हार है। स्त्रियों की कमर बहुत लचीली और पतली हैं। कुच उभरे, वस्त्र बारीक, गर्दन तिरछी, टाँग टेढ़ी, गति वक्र दिखायी गयी है। प्रतीत होता है कि वे सब भाव-मुद्रा में हैं। चित्र में उल्लास, नाच राग-रंग और अलंकार की प्रधानता है। इसी गुहा के एक चित्र में एक राजा कुछ सुनहरे राजहंसों की बातें बड़ी रुचि से सुनता चित्रित किया गया है। बहिन निवेदिता के शब्दों में "इससे श्रेष्ठतर चित्र संसार में कोई अन्य नहीं हो सकता।"

एक अन्य चित्र हाथियों वाले जुलूस का है। इसमें बहुत से हाथी चित्रित किये गये हैं जिन पर स्त्री-पुरुष बैठे कहीं जा रहे हैं। इनमें प्रधान हाथी बहुत सुन्दर, आकर्षक और ओजपूर्ण है। प्रधान हाथी पर जो व्यक्ति बैठा है, वह सम्भवतः कोई राजा है।

इसी प्रकार एक चित्र में बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण अंकित है। चित्र में सिद्धार्थ का शरीर सुडौल है। सिर पर मुकुट है। कमर में एक धोती है। कान लम्बे, आँखें अधखुली हैं। चेहरा अहिंसा, शान्ति और वैराग्य का द्योतक है। चित्र का टोन (Tone) सांसारिकता के प्रति उदासीनता का वातावरण उपस्थित करता है। इसे देखकर निवेदिता ने कहा था :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"This picture is perhaps the greatest imaginative presentment of Buddha that the world ever saw. Such a conception could hardly occur twice."

सभी मर्मज्ञों ने अजन्ता की चित्रकला की मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है। श्रीमती ग्रेबोस्का (Grabowska) ने लिखा है कि—"The art of Ajanta is the classical art of India. The beauty of the paintings is marvellous and they are the high watermark of Indian painting." वास्तव में इस कला की जितनी प्रसंशा की जाय, थोड़ी ही है। इन्हें देखकर कोई भी सुरुचिपूर्ण व्यक्ति तृप्त नहीं होगा। "ये चित्र दर्शक को एक कल्पनामयी मधुर दुनिया में ले जाते हैं जहाँ पहुँच कर मनुष्य अपने को पूर्णतया भूल जाता है।" इस चित्रकला में सादगी के साथ आकर्षण, अलंकार के साथ शुद्ध विचार, यथार्थ के साथ भावना और स्वाभाविकता के साथ सौन्दर्य का ऐसा मेल है कि अजन्ता में भारतीय चित्रकला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। यहाँ भारतीय चित्रकला का चरम-उत्कर्ष है।

गुप्त-युग की चित्रकला का दूसरा नमूना ग्वालियर के कुछ दूर बाघ की गुफाओं में है। यहाँ नौ गुफाएँ हैं। यहाँ की प्रसिद्ध गुफा 'रंग महल' के नाम से विख्यात है। यहाँ के चित्रों में जिन स्त्रियों, पुरुषों को चित्रित किया गया है, वे साधारण एवं जन जीवन से लिये गये हैं। यहाँ कुछ गायिकाओं एवं नर्तकों के चित्र भी बने हैं जो कला की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। इन चित्रों में भाव-व्यंजना, औचित्य, अनुपात आदि गुण अजन्ता से कम नहीं हैं। मार्शल ने इनके विषय में लिखा है कि "The artists, to be sure, have portrayed their subjects direct from life—of that there is no shadow of doubt but however fresh and vital the portrayal may be, it never misses that quality of abstraction which is indispensible to mural decoration, as it indeed to all truly great paintings." इन चित्रों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजन्ता की ही तरह अपांगभंगी, चरणविन्यास, सुन्दर हस्त निक्षेप और अलौकिक भाव-व्यंजना के गुण हैं। साधारण जनजीवन से अपना विषय चुनने के कारण बाघ के कलाकार को अधिक उल्लास एवं स्वतंत्रता से काम करने का अवसर मिला है। और इसीलिए इसमें सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ आत्मानन्द की मात्रा अधिक है।

संगीत और अभिनय—गुप्त काल भारतीय इतिहास का समृद्धि-युग है। अतः संगीत का उत्कर्ष भी स्वाभाविक है। लोगों की संगीत में रुचि थी, इसके प्रमाण समुद्रगुप्त की प्रशस्ति, सिक्के, अजन्ता और बाघ के चित्रों के विषय हैं। तत्कालीन साहित्य में भी संगीत-नृत्य का विशेष उल्लेख हैं। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में मालविका के गीत तथा नृत्य का, रघुवंश में प्रातःकाल के प्रबोधगान और जन्मोत्सव के गान का, शूद्रक ने मृच्छकटिक में चारुदत्त के संगीत-प्रेम का उल्लेख किया है। गुप्तकाल के नाटक अभिनय की दृष्टि से उत्तम हैं। स्पष्ट है कि इसमें संगीत और अभिनय का प्रचार था और इस कला का इस समय अच्छा विकास हुआ।

गुप्तयुगीन कला का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है। श्री जयचन्द विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक भारतीय दृष्टि का क ख—में उचित ही लिखा है कि "भारतीय कला में ओज और सौन्दर्य का तथा भाव और वास्तविकता का जैसा पूरा मिलन गुप्त युग में होता है वैसा और कभी नहीं। गुप्तयुगीन भारत का कला-प्रेम और उत्कृष्ट रुचि उस युग की प्रत्येक कृति से टपकती है।"

वृहत्तर भारत : भारत का विदेशों के साथ सम्पर्क

पाश्चात्य इतिहासकारों के इस कथन के बावजूद भी कि 'पूर्व पूर्व है, पश्चिम पश्चिम है और दोनों का संयोग असंभव है,' भारतीय सभ्यता मानव के अत्यन्त प्राचीन काल से ही विश्व-सभ्यता का एक प्रमुख अंग रही है। अति प्राचीन काल से भारत का अन्य देशों के साथ सम्पर्क रहा है। सिन्धु घाटी को सभ्यता-युग में भी इस प्रकार के अन्तर्देशीय सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कुछ झलक मिलती है। आर्यावर्त ईरान और यूनान के जीवन और विचारों की समानता तो ऐतिहासिक युग की बात है क्योंकि इन तीनों की सभ्यता का स्रोत एक ही समझा जाता है। अवेस्ता की भाषा, बोगजकाई अभिलेख की भाषा और विषय में जो समानता वैदिक आर्यों की भाषा से पायी जाती है, वह इस सम्पर्क को बहुत गहरा सिद्ध करती है। यह सम्पर्क पुनः छठी सदी ई० पू० में बढ़ा। इस समय ईरानी साम्राज्य मध्यएशिया तक और तत्पश्चात् साइरस (Cyrus) और डेरियस (Darius) के समय में भारत की सीमा का छू रहा था। यूनानी लेखक हेरोडोटस (Herodotus) के अनुसार डेरियस के साम्राज्य का बीसवाँ प्रान्त सिन्धु-पंजाब का एक भाग था। यहाँ उसका एक क्षत्रप राज्य करता था। इस प्रान्त से फारस के सम्राट को सुवर्ण चूर्ण के ३६० थैले (लगभग १० लाख पौण्ड की कीमत) कर के रूप में प्राप्त होते थे। इस सम्पर्क के फलस्वरूप पश्चिमोत्तर प्रान्त में खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ जो अशोक और कनिष्क के समय तक चलती रही। सीमान्त के अशोक के अभिलेख इसी लिपि में लिखे गये थे । पश्चिमोत्तर भारत में तत्कालीन ईरानी सिक्के भो मिले हैं जिनसे इन दोनों देशों के व्यापारिक सम्बन्ध का भी संकेत मिलता है। मौर्य-युग की पाषाण-कला पर भी ईरानी प्रभाव पड़ा था, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। अशोक के पूर्व उस देश में स्तम्भ-निर्माण की परिपाटी नहीं थी।

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत और यूनान का सम्पर्क बढ़ा। इस आक्रमण के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभाव पड़े। सिकन्दर का आक्रमण भारतीय इतिहास की तिथि को निश्चित करने में प्रकाशस्तम्भ की तरह है। भारत का पश्चिमी देशों के साथ व्यापार भो बढ़ा और "यूनानियों की सेना की विशिष्टता देखकर चन्द्रगुप्त और कौटिल्य ने समझ लिया कि उनकी सैनिक व्यवस्था में कुछ दोष है। उन्होंने यूनानी सैनिक व्यवस्था को इतनी जल्दी अपना लिया कि वे सिकन्दर के योग्यतम उत्तराधिकारी को उस कला में मात दे सके।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौर्य-काल में भारत का विदेशों से सम्बन्ध बढ़ा। इस सम्बन्ध के तीन क्षेत्र थे—(१) राजनीतिक, (२) व्यापारिक और (३) सांस्कृतिक या धार्मिक। सिकन्दर ने भारत-विजय की योजना बनायी थी, वह पूरी न हो सकी। पर उसके द्वारा जीती भूमि पर उसके उत्तराधिकारी अपना अधिकार समझते थे। सिल्यूकस ने भी प्रायः इसी विचार से भारत पर आक्रमण किया था। उस समय तक सिकन्दर के युग का भारत बदल चुका था। अतः सिल्यूकस को मात खानी पड़ी और चन्द्रगुप्त का हेरात (एरिया), कन्दहार (एराकोशिया) और काबुल (परोपनिसदि) पर अधिकार स्वीकार हुआ। चन्द्रगुप्त ने एक ग्रीक राजकुमारी के साथ विवाह भी किया। उसी समय मेगस्थनीज नामक यूनानी राजदूत पाटलिपुत्र दरबार में आया और यहाँ वर्षों रह कर अपनी आँखों देख भारत का वर्णन उसने 'इण्डिका' नामक ग्रन्थ में लिखा। 'इण्डिका' अब उपलब्ध नहीं है, पर उसके बहुत से अंश अनेक ग्रीक और रोमन लेखकों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत करके उसकी रक्षा की है। मेगस्थनीज के बाद पाटलिपुत्र में सीरिया का राजदूत डैमेक्स आया था।

अशोक के शासन-काल में अन्य देशों के साथ सम्पर्क—कलिंग-युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उसने धर्म-प्रचार का जो कार्य अपने राजकीय पद से किया, उससे भारत का अनेक देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। अशोक के धर्मगुरु मोग्गलिपुत्त तिस्य की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र के 'अशोकाराम' में बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति का आयोजन हुआ। उसके बाद तिष्य ने विदेशों में धर्म प्रचार की एक योजना बनायी। लंका की प्राचीन अनुश्रुति[१] के अनुसार उस

१. महावंश का कथन है कि अशोक ने अपने राज्य के सत्रहवें वर्ष पाटलिपुत्र में तिष्य की अध्यक्षता में बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति की। इसी संगीति की समाप्ति पर धर्मप्रचारक विभिन्न देशों में भेजे गये। दीपवंश और समन्त पासादिका में भी थोड़े हेर-फेर के साथ इसी प्रकार की बातें लिखी गयी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योजना में निम्नांकित देशों में विभिन्न नेताओं के साथ कतिपय देशों में भारतीय प्रचारकों के शिष्ट-मण्डल भी भेजे गये—

देश	नेतृत्व करने वाला प्रधान भिक्षु
कश्मीर और गान्धार	माध्यान्तिक (मज्झंतिक)
महिश मण्डल	महादेव
वनवास	रक्षित
अपरान्तक	धम्म रक्षित
महाराष्ट्र	महाधर्म रक्षित
यवन-देश	महारक्षित
हिमवन्त	मज्झिम और कस्सप
सुवर्ण भूमि	सोण और उत्तर
लंका	महेन्द्र

अशोक के पाँचवें और तेरहवें शिलालेख में उन देशों की सूची दी गयी है जहाँ सम्राट ने अपने धर्म-प्रचारक भेजे थे। अशोक के पाँचवें शिलालेख में लिखा है कि "धर्म महामात्र सब धर्म सम्प्रदायों के बीच धर्म में रत लोगों के तथा यवन, काम्बोजहित और सुख के लिए गान्धार, राष्ट्रिक, पीतिनिक और पश्चिमी सीमा पर रहने वाली जातियों में धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि और लोगों के हित और सुख के लिए नियुक्त हैं।" अशोक ने अपने तेरहवें शिलालेख में लिखा है कि "धर्म विजय को ही देवताओं के प्रिय....। यह धर्म विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में बार-बार प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राज्य करता है और उस अन्तियोक (सीरिया का राजा ऐन्टिओकस) के परे चार राजा अर्थात् तुलमय (मिस्र का राजा टालेमी) अन्तेकिन (मेसिडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोनेटस), मका (साइरीनी का राजा मागस) और अलिक्यशुदल (एपिरस का राजा एलेक्जैण्डर) राज्य करते हैं और इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोल, पांड्य तथा ताम्रपर्णि (लंका) तक (प्राप्त की) है। इसी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ (राजा के राज्य में) यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, भाग पंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आन्ध्रों में और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं ।"

इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थों एवं अनुश्रुतियों में अशोक के धर्म प्रचार की जो बातें लिखी हैं, उनकी पुष्टि पुरातत्व-सम्बन्धी प्रमाणों से भी होती है । नीचे संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है कि इस संदर्भ में किन-किन विभिन्न देशों में किस हद तक भारतीय संस्कृति का प्रसार हो सका था ।

भारतीय सभ्यता के विकास का यह इतिहास मुख्य तीन श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(१) भारत एवं मध्य तथा उत्तरी एशिया ।

(२) भारत एवं सुदूर-पूर्व ।

(३) भारत एवं पाश्चात्य देश ।

(१) भारत एवं मध्य तथा उत्तरी एशिया—भारत माता के साहसी पुत्रों ने सभी प्राकृतिक अवरोधों का तिरस्कार करते हुए मध्य तथा उत्तरी एशिया के भयानक रेगिस्तानों एवं दुर्गम पहाड़ियों में अपनी सभ्यता की पताकायें फहराईं । इस श्रेणी के देशों में नेपाल, पूर्वी तुर्किस्तान, बल्ख एवं बुखारा प्रमुख हैं—

(१) नेपाल—नेपाल का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही बौद्ध धर्म के साथ रहा । गौतम का जन्म ई० पू० ५४४ में नेपाल की भूमि (कपिलवस्तु से १४ मील दूर लुम्बिनी) में हुआ था । अशोक उस पवित्र स्थान पर गया था और वहाँ उसने एक स्तम्भ निर्माण करा कर अभिलेख खुदवाया । अनुश्रुति है कि उसके बाद अशोक की पुत्री चारुमती ने एक नैपाली सरदार से विवाह किया और उसने वहाँ कई स्तूप और मठ निर्मित कराये । अशोक के समय में हिमवन्त प्रदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए आचार्य मज्झिम गये थे । उनके साथ और भिक्षु भी थे । अनुश्रुति है कि अशोक ने नेपाल की पुरानी राजधानी ललितपत्तन को बसाया था । उसके खण्डहर अब भी काठमांडू के निकट हैं । यह नगर चारुमती के पति देवपाल

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नाम से बसाया गया था। धीरे-धीरे हिमालय के सम्पूर्ण प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। महावंश के अनुसार बहुत-से गन्धर्व, यक्ष आदि लोगों ने इस धर्म को स्वीकार किया था। यक्षों के एक राजा ने जिसका नाम पंचक था, इस धर्म की दीक्षा ली। कश्मीर और गान्धार के कुछ निवासी भी इसी समय इस धर्म में दीक्षित हुए। वैसे इन प्रदेशों में आचार्य मज्झन्तिक भी पृथक रूप से धर्म का प्रचार कर रहे थे। राजतरंगिणी के अनुसार "श्री विजयेश (श्रीनगर) के टूटे-फूटे किले को हटाकर उसके स्थान पर अशोक ने सब दोषों से रहित विशुद्ध पत्थरों का एक विशाल किला बनवाया। उसने झेलम के सारे तट को स्तूपों द्वारा आच्छादित करा दिया था।" लद्दाख और उसके आस-पास के क्षेत्रों में आज भी बहुत-से बौद्ध धर्मानुयायी हैं। अशोक और परवर्ती प्रयासों के कारण नेपाल में बौद्ध धर्म का प्रभाव व्यापक हो गया था। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन आचार्य वसुबन्धु ने भी नेपाल की यात्रा की थी। नेपाल के राजा अंशुवर्मन जो सातवीं सदी में हुए थे, बौद्ध धर्म के पूरे समर्थक हुए। उन्हीं के प्रयास से बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत में भी हुआ।

(२) मध्य एशिया—अशोक के समय तक मध्य एशिया के अधिकांश भाग में "खानाबदोश पशुपालक" जातियाँ थीं। "अशोक ने तक्षशिला के कुछ अपराधियों को उस देश से निर्वासित कर खोतान उपनिवेश की नींव डाली थी।" श्री जयचन्द विद्यालंकार के मतानुसार अशोक के तेरहवें शिलालेख में वर्णित नाभक और नाभपंक्ति का इलाका ही खोतान था। एक प्राचीन तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार अशोक के एक पुत्र कुस्तन ने यह राज्य ई० पू० २४० में स्थापित किया था। बाद को अशोक के एक मंत्री 'यश' के साथ बहुत से भारतीय वहाँ जाकर बस गये। कुस्तन के प्रपौत्र विजयसम्भव ने खोतान में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसी समय एक बौद्ध विद्वान आर्य वैरोचन भारत से वहाँ गये थे। खोतान में पहला बौद्ध विहार ई० पू० २११ में स्थापित हुआ था। उसी अनुश्रुति के अनु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार एक भारतीय राजवंश ५६ पीढ़ियों तक खोतान में राज्य करता रहा। उनका राजधर्म यही बौद्ध धर्म था। खोतान में उन दिनों अनेक मठ, विहार, चैत्य निर्मित हुए। आठवीं-नवीं सदी तक यहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा। इधर हाल ही में इस प्रदेश में जो खुदाई हुई है, उसमें वहाँ प्राचीन बौद्ध प्रभाव के प्रमाण अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर हुए हैं। खोतन का यह राज्य चीन के पश्चिमी सीमा पर कश्मीर के ऊपर तारीम नदी की घाटी में था।

खोतान के उपनिवेश बसाने की प्रक्रिया मौर्योत्तर काल में भी जारी रही। इसी मार्ग से भारत और चीन का भी सम्पर्क हुआ। ईसा की पहली सदी में खोतान एक शक्तिशाली राज्य था। उसका प्रभाव नीया से काशगर तक फैला था। धीरे-धीरे इस प्रदेश की लिपि ब्राह्मी हो गयी और उसने खरोष्ठी लिपि का स्थान ले लिया। शुंग-सातवाहन-गुप्त युग तक खोतान राज्य में भारतीय प्रभाव बढ़ता रहा। साथ ही चीन की सभ्यता भी उस क्षेत्र में गहरी होती गयी। जिस समय फाह्यान उस मार्ग से भारत आया, उस समय उसने वहाँ अनेक विहार देखे थे। उवमें गोमती-विहार सबसे अधिक प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था। उसका कथन है कि वहाँ ३००० भिक्षु निवास करते थे। फाह्यान ने खोतान में एक बौद्ध रथ-यात्रा भी देखी थी। उस समय नगर में सफाई की जाती थी, मकान सजाये जाते थे, जुलूस में गोमती-विहार के भिक्षु सबसे आगे चलते थे। रथ का आकार एक बौद्ध चैत्य-सा बनाया जाता था। रथ के मध्य में बुद्ध की मूर्ति और आस-पास में बोधि-सत्वों की भूप्रतिमाएँ रखी जाती थीं। फाह्यान ने उस समारोह का बहुत रोचक वर्णन किया है। उन दिनों खोत्तन की भाषा संस्कृत हो चली थी। सन् ४३३ ई० में चीन में बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध प्रचारक धर्मक्षेत्र महापरिनिर्वाण सूत्र की खोज में खोतान आया था। ह्वेनसांग ने भी इस क्षेत्र में भारतीय धर्म एवं संस्कृति का विकास देखा था। अरबों के आक्रमण के बाद इस क्षेत्र के विहार, मठ, स्तूप, चैत्य और विद्याकेन्द्र नष्ट कर दिये गये। अभी हाल की खुदाई में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोतान के पास योत्कन, रावक, दंदन-उलिक एवं निया की खुदाई में अनेक विहारों, मूर्तियों, हस्तलिखित ग्रन्थों तथा भवनों के खण्डहर निकले हैं।

(३) कूचि—कूची भी मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति का एक प्रधान क्षेत्र रहा है। खोतान की भाँति उत्तरी क्षेत्र में कूची ने भी एक महत्वपूर्ण भाग भारतीय सभ्यता के विकास में लिया है।[१] आधुनिक तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में चीन की सीमा की ओर से शान-शान (चल्मदा), खोतान, यारकन्द (चोक्कुक) और काशगर (शैलदेश) प्रदेश थे। उत्तरी भाग में काओ-चांग (तुरफान), कराशहर (आनिदेश) कूचि (कुचार) और उच्च तुरफान (भारुक) के राज थे। इनमें से खोत्तन और कूचि भारतीय संस्कृत के दो प्रधान केन्द्र थे। कूचि तारीम (सीता) नदी के उत्तरी पेटे में था। चीनी तुर्किस्तान के उत्तरी भाग में ऊपर लिखे चार राज्यों में कुचि राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। कुचि में बौद्ध धर्म ईसा की प्रथम सदी में फैला। पुराणों में सम्भवतः इसी को कुशद्वीप भी कहा गया है। चौथी सदी तक कुचि का पूरा राज्य बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था। प्राचीन चीनी अनुश्रुति के अनुसार यहाँ बौद्ध विहार और चैत्यों की संख्या दस हजार थी। तामू, चेलो, किएन मू, वेनसू नाम के विहार बहुत प्रसिद्ध थे। इन विहारों का संचालन-कार्य बुद्धस्वामी नाम के भिक्षु के हाथ में था। कुचि के सम्बन्ध में कुमारजीव का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। उनके पिता कुमारायन उत्तरी भारत के किसी राजा के मन्त्री थे। वे युवा अवस्था में ही भिक्षु हो गये थे। वे भ्रमण करते-करते कुचि पहुँचे और वहाँ वे राजगुरु के पद पर नियुक्त किये गये। कुछ दिनों बाद उन्होंने वहाँ के राजा की बहिन जीत से विवाह कर लिया। कुमारजोव उसी के पुत्र थे। कुमारजीव भी अपनी माता के साथ भिक्षु हो गये। उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उनकी माता भारत आयीं और कुमारजीव ने काश्मीर के प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित बन्धुदत्त के पास रह कर शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् वे

---

१. "The kingdom of Kuchi played the same importent role in the north as that of Khotan in the south"—Bagchi

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैलदेश (काशगार) गये। वहाँ भी विद्याध्ययन किया। उन दिनों वह देश देश वैदिक धर्म एवं साहित्य का बहुत बड़ा केन्द्र था। तब कुमारजीव चोक्कुक (यारकन्द) होता हुआ कुचि पहुँचा। इस समय तक वह बौद्ध धर्म एवं दर्शन का प्रकाण्ड पण्डित हो चुका था। उसके शिष्य के रूप में दूर-दूर से विद्यार्थी आने लगे। सन् ३८३ ई० में चीनी सेनापति पान-छाओं ने कुचि पर आक्रमण किया और कुमारजीव कैदी के रूप में चीन की राजधानी पहुँचे। पर कुमारजीव अपनी विद्वत्ता के कारण चीन के सम्राट के आदर के पात्र बन गये। उन्हें भारतीय भाषा के बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद का काम सौंपा गया। लगभग दस वर्षों में उन्होंने १०० से अधिक संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इस अनुवाद कार्य में मदद देने के लिए कुमारजीव ने अनेक भारतीय विद्वानों को चीन बुलाया था। आचार्य कुमारजीव की मृत्यु सन् ४१२ ई० में चीन में ही हुई थी। अनुवाद के अतिरिक्त कुमारजीव ने अनेक ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनमें आचार्य अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव वसुवन्धु की जीवनियाँ अधिक लोकप्रिय थीं।

सभ्यता के अन्य क्षेत्रों में करसहर प्रमुख था। इसका प्राचीन नाम अग्नि देश था। इसी प्रकार बजक्लिक भी बौद्ध धर्म का एक केन्द्र था जहाँ कई देवालय निर्मित थे। भारतीय चित्रों में भिक्षु-पीत-वस्त्रधारी एवं ब्राह्मी लिपि में अक्षर मिलते हैं। कहीं-कहीं पर कुबेर के चित्र भी अङ्कित हैं। मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति के अन्य क्षेत्र तुर्फान, काशगर आदि रहे हैं। सम्भवतः कनिष्क के शासन-काल में इन राज्यों में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। फाह्यान ने इन प्रदेशों में बौद्ध धर्म को फलता-फूलता देखा था।

खोतान, कुचि, तुर्फान और काशगर के विभिन्न भागों से कुछ पुराविदों ने बहुत परिश्रम के साथ ऐसी चीजों के अवशेष खोद निकाले हैं कि उनसे उन क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। कुचि और तुर्फान के आगे चीन की सीमा पर तुन-ह्वाङ नाम की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़ियाँ हैं। उनमें चौथी सदी से छठीं सदी तक की बनी अनेक गुफाएँ हैं। इन गुफाओं की दीवालों पर बनी मूर्तियाँ और चित्रों को देखकर अजन्ता की गुफाओं का स्मरण हो आता है। इन गुफाओं को सहस्र बुद्ध गुहा विहार कहते हैं। यहाँ के चित्रों एवं मूर्तियों का सम्बन्ध अधिकतर महायान सम्प्रदाय से है। यहाँ पुस्तकों का भी एक भण्डार उपलब्ध हुआ है। ये पुस्तकें चीनी, तिब्बती और संस्कृत भाषाओं की हैं। इसी प्रकार कूचि, काशगर, लोलन के विभिन्न भागों से भी पुरातत्व सम्बन्धी बहुत-सी चीजें प्राप्त हुई हैं।

वास्तव में उन दिनों तारीम नदी का दोनों किनारा और आसमान की भूमि बहुत हरी भरी थी। मालूम पड़ता है कि हिमालय के ऊपर उठने से यह भाग धीरे-धीरे रेतीला हो गया और आबादी के अनुकूल नहीं रहा। पर पुरातत्व सम्बन्धी खोज से यह सिद्ध हैं कि मध्य एशिया का यह भाग अशोक के समय से लेकर आठवीं सदी तक भारतीय संस्कृति का प्रधान क्षेत्र रहा और यह निश्चित रूप से बृहत्तर भारत का एक प्रमुख अंग था। वास्तव में मौर्य काल से सातवाहन युग तक तक्षशिला, पुष्करावती आदि स्थानों से लेकर तारीम तथा आमू (वंक्षु) और सीर नदियों तक भारतीय राज्य का प्रसार था। कनिष्क के शासन-काल में तो उस क्षेत्र का सीधा सम्बन्ध भारतीय राज्य से हो गया था। इस क्षेत्र के विभिन्न नगरों एवं स्थानों तथा राजाओं के नाम भारतीय थे। तारीम नदी की एक शाखा को सीता कहते थे। खोतान के राजाओं के नाम विजय सम्भव, विजयवीर्य और कुचि के राजाओं के नाम स्वर्णदेव, हरदेव, सुवर्ण पुष्प, हरिपुष्प इन क्षेत्रों में भारतीय सभ्यता के प्रभाव के द्योतक हैं। इस क्षेत्र में न केवल भारतीय धर्म का ही प्रचार था, अपितु यहाँ की भाषा और संस्कृति पर भी भारत का प्रभाव था।" इस क्षेत्र के पुरातत्व-सम्बन्धी खोज के लिए सर आरेलस्टीन के प्रति हम सब आभारी हैं। उन्हीं के अन्वेषण एवं उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ अनेक नगर, स्तूप, विहार, मूर्तियाँ और पुस्तकें मिली हैं जो इन क्षेत्रों में भार-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीय बस्तियों से सम्बन्धित अनुश्रुति को वास्तविकता प्रदान करती हैं। इन प्रदेशों की ऐतिहासिक खोज के समय सर आरेल स्टीन ने लिखा था कि "जब मैं इन उत्खनन-क्षेत्रों में घूम रहा था तो मुझे ऐसा लगा कि मैं पंजाब के किसी प्राचीन नगर का भ्रमण कर रहा हूँ।" कौन जाने अभी गोबी मरुस्थल के गर्भ में अनेक नगर और दबे पड़े हों जिनकी खुदाई भविष्य में अब तक के विस्तृत इतिहास को प्रकाश में लाये।

२. भारत एवं सुदूर-पूर्व—प्राचीन भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय तथा अविच्छिन्न अङ्ग उसको सभ्यता का दक्षिणी-पूर्वी-एशिया के असंख्य द्वीपों में प्रचार होना है,। परन्तु आधुनिक शताब्दी से पूर्व यह पूर्णतया अंधकारमय था। इस दिशा में सर्वप्रथम सराहनीय प्रयास कुछ फ्रांसीसो विद्वानों का था जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के मध्य में अथक परिचयो द्वारा इसका भूमिका तैयार की थी। तत्पश्चात् अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानां ने इस दिशा में अपने हाथ बढाये हैं और अब इसका सम्पूर्ण चित्र हमारे मानस-पटल पर स्पष्ट प्रदर्शित है।

३. उपनिवेशवाद का प्रारंभ—भारतीय सभ्यता का यह इतिहास विश्व के इतिहास की एक अनोखी घटना है क्योंकि अन्य सभ्यताओं की साम्राज्यवादी नीति की अपेक्षा इसका उद्देश्य शांतिपूर्ण सह-अस्तित्त्व एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार का था। इसका ध्येय उपनिवेशीकरण नहीं वरन् अगणित नग्न एवं अर्द्धनग्न मानवों को सभ्यता के पाठ पढ़ाना था। यद्यपि इसके प्राचीनतम अवशेष भारतीय एतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र मिलते हैं परन्तु उनके आधार पर कोई निश्चित कहानी नहीं तैयार को जा सकती। उदाहरण के लिए रामायण से सीता की खोज के लिए आये हुये विभिन्न द्वीपों का वर्णन, पाली-ग्रन्थों में आये हुए अनेक व्यापारिक द्वीप, मिलिन्दपन्हों, बौद्ध-जातक, बृहत्कथा, रघुवंश एवं अर्थशास्त्र इत्यादि में वर्णित घटनाएँ—केवल खण्डित ही हैं। इनमें सामयिक तथ्य एवं सभ्यता के प्रचार की निश्चित घटनाओं का अभाव है।

इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य में भी जैसे टालेमी, प्लिनी, पेरीप्लस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं डियोनिसस के ग्रन्थों में विभिन्न द्वीपों का वर्णन इस बात का संकेत है कि सुदूर-पूर्व में भारतीय सभ्यता के उपनिवेश उपर्युक्त इतिहासकारों के पूर्व स्थापित हो चुके थे। इसकी प्रामाणिकता प्राचीन चीनी साहित्य एवं आधुनिक पुरात्तात्विक साक्ष्यों से भी होती है जिन्हें अनेक खुदाइयों से प्राप्त हुई सामग्रियाँ प्रमाणित करती हैं।

परन्तु जहाँ तक इसकी तिथि का प्रश्न है इतिहासकारों में मत-वैभिन्य है। इतिहासकार ब्रायन हैरीसेन में इसकी तिथि ई० की सातवीं-आठवीं शताब्दी दी है जिसका आधार रामायण एवं महाभारत में वर्णित घटनाएँ हैं परन्तु डा० मजूमदार ने इसका खंडन करते हुये बताया है कि अगर हम इसे मान भी लें तो सभ्यता की स्थापना के तथ्यों के अभाव में यह मत टिक नहीं सकता।

इसी प्रकार कुछ अन्य विद्वानों ने अर्थशास्त्र के आधार पर इसकी तिथि चतुर्थ शताब्दी ई० पू० दी है, परन्तु अर्थशास्त्र का उदाहरण केवल साधारण ही है; उसमें कोई विशेष लक्ष्य नहीं प्रतीत होता। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान फेराँ ने चीनी साहित्य के आधार पर प्रथम शताब्दी ई० की तिथि दी है। उसका समर्थन करते हुए कोबीज़ ने भी लिखा है कि आधुनिक यूरोप द्वारा अमेरिका के औपनिवेशीकरण की भाँति प्राचीन भारत भी ई० की प्रथम दो शताब्दियों में सुदूर-पूर्व में अपनी सभ्यता के प्रचार में संलग्न था। इसकी प्रामाणिकता हमें साहित्यिक ग्रन्थों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से मिलती है।

उपनिवेशवाद के कारण—इस प्रश्न पर भी सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ लोगों ने राजनैतिक विजयों को प्रधान कारण बताया है परन्तु डा० मजूमदार ने इसका सफलतापूर्वक खण्डन करते हुए लिखा है कि अगर राजनैतिक विजय भारतीय उद्देश्य होता तो उसके अवशेष तत्कालीन साहित्य अथवा अन्य किसी क्षेत्र में अवश्य मिलते परन्तु आश्चर्य है कि बहुत बाद में लिखे गये रामायण एवं महाभारत स्वयं इस विषय में मौन हैं। अतः यह मत अमान्य है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्रांसीसी विद्वानों फेराँ, क्रोम, ब्रेन्दीज़ एवं फिनों के अनुसार कलिङ्ग के भीषण रक्तपात से क्षुब्ध होकर भारतीय लोगों ने इन द्वीपों की शरण ली। परन्तु यहाँ भी डा॰ मजूमदार का कहना है कि भारत इतना विशाल देश था कि जनसंख्या के निर्वासन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पुनः भारतीय नीति सर्वदा शान्तिपूर्ण रही है न कि उच्छेद्रवादी अतः यह समीचीन नहीं प्रतीत होता।

इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने तामिल ग्रन्थों में आई हुई व्यापारिक यात्राओं के आधार पर उपनिवेशीकरण की व्याख्या की है परन्तु दक्षिणी भारत के सुप्रसिद्ध इतिहासकार पंडित नीलकंठ शास्त्री ने इसका विद्वत्तापूर्ण खण्डन करते हुए लिखा है कि तामिल ग्रन्थों में कहीं भी जनसंख्या के इतनी अधिक मात्रा में विदेशों में जाने का वर्णन नहीं मिलता। कुछ अन्य लोगों ने धार्मिक अत्याचारों एवं धार्मिक दूतावासों के कार्यों का परिणाम इस उपनिवेशवाद को लिखा है। उनके अनुसार भारतीय राजाओं की, विशेषतया मौर्य शासकों की पक्षपातपूर्ण बौद्ध धर्म की नीति इस असंतोष का कारण थी परन्तु इसके विरोध में कहा जा सकता है कि भारतीय राजाओं की नीति सदैव बसुधैव कुटुम्बकम एवं सहिष्णुता की की नीति रही है जिसके अन्तर्गत सभी धर्मों को स्थान दिया गया था।

अंतिम महत्वपूर्ण मत डा॰ मजूमदार का है जिनके अनुसार व्यापारिक सौदागरों एवं उनके द्वारा अपनाये गये मार्गों के फलस्वरूप ही यह सफल हो सका। उनका कहना है कि ई॰ सन् की प्रथम दो शताब्दियों में भारत एवं पाश्चात्य देशों में मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने, मानसूनी हवाओं की खोज एवं चीन में हान वंश की स्थापना के फलस्वरूप उपनिवेशों की स्थापना हुई। इनमें भारत का स्थान महत्वपूर्ण था। यह संभव है कि व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद धार्मिक दूतों एवं बौद्ध भिक्षुओं ने इसकी नींव मजबूत करने में विशेष सहायता पहुँचाई होगी।

बर्मा—महावंश के अनुसार अशोक ने बर्मा की ओर दो उपदेशकों—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोण और उत्तर—को भेजा था। पर बर्मा में पाँचवीं सदी के पूर्व बौद्ध धर्म के प्रवेश के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। वर्तमान प्रोम से लगभग पाँच मील दक्षिण प्युस के पुराने राज्य को श्रे-क्षेत्र कहा जाता था। उसकी राजधानी के अवशेष ह्मावजा के निकट पाये गये हैं। वहाँ जो अभिलेख और पुस्तकें मिली हैं उनसे पता चलता है कि वहाँ पाली भाषा का प्रचार था। अभिलेखों में कदम्ब लिपि और पाली भाषा में बुद्ध-वचन अंकित हैं। यहाँ बौद्ध धर्म का थेरवादी रूप फैला था। यहाँ से पेगू या हंसावती में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। वैसे पूरे बर्मा में ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अनिरुद्ध (अनवरथ) नामक राजा के समय में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

मलाया—वर्तमान सिंगापुर के ठीक ऊपर मलय प्रायद्वीप है। यहाँ भारतीय संस्कृति के अनेक अवशेष चिह्न प्राप्त हुए हैं। अनुश्रुति के अनुसार ईसा पूर्व तीसरी सदी में पाटलिपुत्र का कोई राजकुमार समुद्री मार्ग से मलाया पहुँचा था। मलाया में उस राजकुमार का नाम 'मरोङ' प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि उसने लंकाकुश नामक एक उपनिवेश बसाया था। लंकाकुश का राज्य छठी सदी तक रहा और ५१५ ई० में वहाँ का राजा भागदत्त था। लंकाकुश के पास पन-पन से पांचवीं सदी के मध्य में एक दूत-मण्डल चीन गया था। उस दूत-मण्डल में कुछ ब्राह्मण थे जो दान-दक्षिणा लेने का काम करते थे। मालूम होता है कि मलय प्रायद्वीप में छोटे-छोटे कई भारतीय राज्य स्थापित हो गये थे। समुद्री किनारे पर स्थित यहाँ के एक राज्य का नाम ताम्रलिङ्ग था और उसकी राजधानी लिगोर थी। इस मलय प्रायद्वीप के विभिन्न भागों से भवनों, मन्दिरों और मूर्तियों के ऐसे अवशेष मिले हैं जो यहाँ गुप्त-युग की भारतीय संस्कृति के प्रचार के प्रमाण हैं। लिगोर से बौद्ध देवता पारमिता और ब्राह्मण ऋषि अगस्त्य की पूजा से सम्बन्धित अभिलेख मिले हैं। लंकाकुश राज्य के एक स्थान से गरुड पर सवार एक विष्णु-मूर्ति मिली है। केदह पर्वतीय क्षेत्र से महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा, नन्दी का सिर और शैव चिह्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त हुए हैं। वहीं से संस्कृत और दक्षिण भारत की लिपि में अंकित अभिलेख भी मिले हैं, जो पद्य में हैं जैसा कि गुप्त-युग में भारत की प्रथा थी। केदह पर्वत के समीप पद्य में लिखित कुछ अभिलेखों से वहाँ महायान सम्प्रदाय के प्रचार का संकेत मिलता है। पेराक से प्राप्त एक मुहर पर वाकाटक लिपि में "श्री विष्णुवर्मस्य" अंकित लेख भी प्राप्त हुआ है। ये सब बातें वहाँ भारतीय संस्कृति के प्रचार के प्रमाण हैं।

स्याम (थाईलैण्ड)— बरमा से पूरब उसी सीमा पर स्याम नाम का राज्य है। पहली या दूसरी सदी में इस प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ। आधुनिक बैंकाक से कुछ दूर पश्चिम में कुछ इमारतों के खण्डहर, कुछ प्रतिमाएँ, मिट्टी की मूर्तियाँ, बौद्ध धर्म के प्रतीक (धर्म-चक्र) पाये गये हैं जो उस क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रचार के चिन्ह हैं। यहीं एक राज्य द्वारावती था जो सम्भवतः गुप्त-युग में स्थापित हुआ था। गुप्तकालीन अनेक भाग्नावशेष तथा मूर्तियाँ आदि यहाँ मिली हैं। ह्वेनसांग ने लिखा है कि द्वारावती का राज्य बहुत समृद्ध था। चौदहवीं सदी तक इस क्षेत्र में जिसे आजकल लाओस कहते हैं, बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार था। थाई राजा श्री सूर्यवंश राम महाधार्मिक राजाधिराज बौद्ध धर्म के बहुत बड़े संरक्षक थे। स्याम के कतिपय स्थानीय वृत्तान्त पालि भाषा में उपलब्ध हैं।

इण्डोचीन—वर्तमान चीन की दक्षिणी सीमा पर समुद्र में निकला हुआ स्याम के पूर्व जो देश स्थित है, उसे आजकल इण्डोचीन कहते हैं। इस राज्य के उत्तरी भाग में कम्युज और दक्षिणी भाग में फुनान और चम्पा नामक राज्य प्राचीन काल में स्थित थे। ये तीनों राज्य भारतीय थे।

इन प्राचीन तीनों राज्यों में से अधिक पुराना भारतीय राज्य फुनान का था। आधुनिक कोचीन, चीन, कम्बोडिया इसी फूनान राज्य में थे। इतिहासकारों का मत है कि हिन्दुओं का प्रथम उपनिवेश इसी प्रदेश में बना। यहाँ के मूल निवासी जंगली और असभ्य थे। भारतीयों ने उन्हें कपड़ा पहनना और नागरिक जीवन व्यतीत करना सिखाया। कहते हैं कौडिल्य

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक एक ब्राह्मण ने भारत से यहाँ आकर नागराज की एक कन्या सोमा से विवाह किया और उन्हीं के पुत्र फूनान के राजा हुए। इसी वंश के राजा फान्-चे-मन् (मृत्यु तिथि २२५ ई०) ने अपना राज्य विस्तृत किया और मलाया के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया। तीसरी सदी में फूनान के राजदूत भारत आये थे। पाँचवीं सदी के मध्य में इसी वंश के एक राजा का नाम जयवर्मा था। उसने सन् ४८४ ई० में नागसेन नामक एक दूत चीनी दरबार में भेजा था। उसके वंशजों का भी चीन के साथ अच्छा सम्बन्ध था। छठीं सदी के मध्य में इस राज्य को पास के कम्बुज राज्य ने आत्मसात् कर लिया।

फूनान के राजा शैव थे। जयवर्मा की रानी कुल प्रभावती और उसके पुत्र रुद्रवर्मा के शिलालेख संस्कृत में थे, जिनसे मालूम होता है कि राजवंश का धर्म शैव था, पर वहाँ बौद्ध धर्म भी पहुँच चुका था। जयवर्मा के समय में संघपाल और मन्द्रसेन नामक दो विख्यात बौद्ध भिक्षु इस प्रदेश में थे। इन्होंने कई बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया था। अभिलेखों में इस प्रदेश में अनेक बौद्ध स्तूपों के निर्माण की बातें लिखी हैं।

कम्बुज का राज्य वर्तमान कम्बोडिया के उत्तरी भाग में स्थित था। विद्वानों ने लिखा है कि भारत से एक महर्षी **कम्बु** फूनान आये। उसी के नाम से कम्बुज निकला। भववर्मा नामक एक प्रभावशाली व्यक्ति ने कम्बुज राज्य को फूनान से पृथक एवं स्वतंत्र किया। फूनान के राजा रुद्रवर्मा के समय में यह कार्य हुआ था। कम्बुज राज्य की दक्षिणी सीमा पर एक शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ है जिस पर यह अभिलेख अंकित है—"धनुष के पराक्रम से जीती निधियों को प्रदान कर उभय लोक करधारी राजा श्री भववर्मा ने त्रयम्बक के इस लिङ्ग की प्रतिष्ठा की।" एक दूसरे अभिलेख में अंकित हैं—"वह श्री भववर्मा की भगिनी तथा श्री वीरवर्मा की पुत्री थी जो अपने पति और धर्म की भक्ति में दूसरी अरुन्धती थी। उसी हिरण्यवर्मा की माता को जिसने पत्नी के रूप में ग्रहण किया, उस ब्राह्मणों में सोम समान स्वामी सोमवेदवित् अग्रणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री सोमशर्मा ने पूजाविधि और अतुलदान के साथ सूर्य और त्रिभुवनेश्वर को प्रतिष्ठा की। प्रतिदिन अखण्ड पाठ के लिए उसने रामायण और पुराण के साथ सम्पूर्ण भारत प्रदान किया।" इन लेखों से स्पष्ट है कि छठीं सदी में कम्बुज में भारतीय संस्कृति का कितना प्रचार था। राजा शैव धर्म को मानने वाले थे।

भववर्मा के बाद क्रम से महेन्द्रवर्मा और ईशानवर्मा कम्बुज के राजा हुए। ईशानवर्मा की राजधानी 'ईशानपुर' थी। वह हर्षवर्द्धन का समकालीन था। सातवीं सदी के अन्त में यवद्वीप के शैलेन्द वंशीय राजाओं ने कम्बुज पर आक्रमण किया था। नवीं सदी में यह राज्य पुनः स्वतंत्र हो गया। इस नये वंश का प्रथम वीर पुरुष जय वर्मा (सन् ८०२-८६९ ई०) था जिसने यशोधर पुर नाम की नगरी को अपनी राजधानी बनाया। उसके भग्नावशेष अंगकोरथोम में उपलब्ध हैं। सन् १२९६ ई० में कम्बुज को मंगोल सम्राट कुबलाई खाँ ने जीत अपने अधीन कर लिया।

कम्बुज के राजा छठीं सदी तक शैव और नवीं सदी के बाद बौद्ध थे। वहाँ शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की पूजा होती थी। वेद, पुराण, रामायण और महाभारत आदि का पाठ होता था। राजा ईशान वर्मा ने वहाँ अनेक आश्रम बनवाये थे। नवीं सदी के राजा यशोवर्मा की राजधानी (यशोधरपुर) के चारों ओर ३३० फुट चौड़ी खाइँ थी। खाइँ के भीतर एक विशाल प्राचीर था। नगर वर्गाकार था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई दो-दो मील के लगभग थी। इसे 'महारमणीय अंगकोर' कहा जाता था। यह नगर सीजर के रोम नगर से बड़ा था। इस नगर के बीच में शिव का एक विशाल मन्दिर था। एक दूसरे नगर अंगकोरवात में एक प्राचीन विष्णु-मन्दिर के अवशेष हैं। अंगकोरवात के मन्दिर की दीवारों पर रामायण की कथाएँ अंकित एवं उत्कीर्ण हैं। "ये सब अवशेष जिस युग के स्मारक हैं, उसमें कम्बुज पूर्ण रूप से भारतीय उपनिवेश था, और उसकी भाषा, धर्म, संस्कृति आदि सब भारतीय थे। इस देश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के धर्म में पहले पौराणिक हिन्दू धर्म की प्रधानता थी पर बाद में इस धर्म का ह्रास होकर बौद्ध धर्म का जोर बढ़ गया।"

चम्पा भी इस प्रदेश के समुद्री किनारे पर (वर्तमान नाम वियतनाम) एक प्राचीन भारतीय राज्य था। यह चम्पा वर्तमान अन्नाम का एक भाग था। अमरावती उसकी राजधानी थी। चम्पा का राज्य ईसा की पहली सदी में स्थापित हुआ था। अनुश्रुति के अनुसार इसका प्रथम राजा श्रीमार था। सन् ३४० में यहाँ के भारतीय राजा फनवेन ने चीनी सम्राट के पास एक राजदूत भेज कर अपनी सीमा ठीक करने का आग्रह किया था। सम्भवतः फनवेन का भारतीय नाम भद्र वर्मा था। उसका उत्तराधिकारी गंगाराज था। कहा जाता है कि वह राज्य त्याग कर भारत गंगा के किनारे रहने के लिए आया था। पहली सदी से लेकर तेरहवीं सदी तक यहाँ भारतीय राजवंशों का शासन रहा। अन्त में मंगोलों ने इस राज्य का अन्त किया।

चम्पा के राजाओं में भारतीय परम्परा के अनुसार शक सम्वत् का प्रयोग अपनी राजकीय तिथि के लिए किया है। यहाँ भारतीय संस्कृति के अवशेष अधिक संख्या में पाये गये हैं। तीसरी सदी की एक बुद्ध प्रतिमा जो काँसे की है, और अमरावती शैली की बनी है, यहाँ से प्राप्त हुई है। एक चीनी वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि जब सन् ६०५ ई० में चीनी सेना ने चम्पा को जीता था, तब वे अपने साथ १३५० बौद्ध ग्रन्थ भी ले गये थे। महायान सम्प्रदाय का जोरदार प्रचार यहाँ अन्त तक बना रहा। चीनी अनुश्रुतियों के अनुसार चम्पा का राजा भद्रवर्मा वेदों का महापण्डित था। उसने शिव का एक विशाल मन्दिर निर्मित कराया था। वह मन्दिर चम्पा की संस्कृति एवं धर्म का केन्द्र बन गया था।

इण्डोनेशिया और भारत—एशिया के दक्षिण-पूर्व में छोटे-बड़े द्वीपों का एक समूह है जिनका आधुनिक नाम इंडोनेशिया है। इसमें क्रम से सुमात्रा (सुवर्ण द्वीप), जावा (यव द्वीप), बोर्नियो (वरुण द्वीप) तथा बाली द्वीप अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब द्वीपों में ईसा की तीसरी-चौथी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सदी से लेकर मुसलमानों के ग्रागमन तक भारतीय राजवंशों का शासन रहा। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति डाक्टर सुकर्ण ने एक बार भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल को लिखा था: "ग्रापका देश ग्रौर ग्रापकी जनता इतिहास के ग्रारम्भ से ही हमारे साथ रक्त ग्रौर संस्कृति, दोनों ही, सूत्रों के बँधी हुई है। इंडिया नाम को एक क्षण के लिए भी विस्मृत करना हमारे लिए ग्रसम्भव है, क्योंकि यह शब्द हमारे देश से नाम का प्रथमार्द्ध (इंडो) है। जिस स्थान से मैं ग्रापको पत्र लिख रहा हूँ उसका जोगजक्र्ता नाम भी (योग्यकर्ता) जावा ग्रौर सुमात्रा के समान शुद्ध संस्कृत नाम है। ग्रापके प्राचीन देश की संस्कृति का उत्तराधिकार हमें कहाँ तक प्राप्त हुग्रा है, इसका एक उज्ज्वल प्रमाण मेरा ग्रपना नाम भी है। जब मैं ग्रापको यह पत्र लिख रहा हूँ तभी प्रोबोलिंगो बन्दरगाह के जहाज पर चावल लादा जा रहा है जो भारत भेजा जायगा प्रोवोलिंगो दो संस्कृत शब्दों—पूर्व ग्रौर कलिंग—के योग से बना है। यही वह स्थान है जहाँ पहले-पहल भारतीयों की टुकड़ी इण्डोनेशिया में उतरी थी। वे लोग कलिंग के निवासी थे ग्रौर यव की खोज करते हुए यहाँ ग्राये थे जिससे इस देश का नाम जावा पड़ा।" ('संस्कृति के चार ग्रध्याय' से उद्धृत) इस उद्धरण में जो भाव व्यक्त किये गये हैं वह सुमात्रा, बोर्नियो ग्रौर बाली ग्रादि सब द्वीपों के लिए सत्य हैं।

इतिहासकारों का ग्रनुमान है कि जब भारतीय प्राचीन काल में प्रशान्त महासागर की ग्रोर बढ़ने लगे होंगे, तब उनका सबसे पहला पड़ाव सुमात्रा में ही पड़ा होगा जिसे उन्होंने सुवर्ण द्वीप कहा। सुमात्रा की पुरानी राजधानी श्रीविजय थी। जिसका ग्राधुनिक नाम पलेमबंग है। श्रीविजय की स्थापना चौथी सदी के पूर्व ही हुई थी ग्रौर सातवीं सदी मे वह उन्नति के शिखर पर था। सन् ६८४ में वहाँ का राजा जयनाग था। वह बौद्ध था। चीनी यात्री इत्सिंग वहाँ सात वर्षों (सन् ६८८—६९५ ई०) तक रहा ग्रौर उसने ग्रपने निवास-काल में वहाँ संस्कृत तथा पाली का ग्रध्ययन किया। यह भी कहा जाता है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुमात्रा के ही थे। सुमात्रा से अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो संस्कृत और पाली में लिखे हैं। इससे सुमात्रा को वृहत्तर भारत का एक अंग कहना अधिक उचित होगा।

इण्डोनेशिया का जावा द्वीप भी भारतीय संस्कृति का एक प्रधान क्षेत्र रहा है। इसका नाम यव द्वीप था। यव द्वीप का नाम रामायण, ब्रह्माण्ड पुराण और कथासरित्सागर में भी आया है। चीनी अनुश्रुति के अनुसार ६५ ई० पू० के लगभग भारतीयों ने इस द्वीप में बसना प्रारम्भ कर दिया था। सन् १३२ ई० में यव द्वीप के राजा का नाम देववर्मा था। उसने अपना एक दूत चीनी राजदबार में भेजा था। पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में लौटते समय फाह्यान वहाँ ठहर था। उसने लिखा है कि वहाँ शैव मत का अधिक प्रचार था। फाह्यान को ले जाने वाले जहाज में २०० भारतीय व्यापारी भी उधर गये थे। गुप्त-काल में वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार होने लगा। इस क्षेत्र के प्रधान बौद्ध धर्म प्रचारक गुणवर्मा थे। गुणवर्मा काश्मीर के एक राजा संघानन्द के पुत्र थे। गुणवर्मा लंका होकर वहाँ पहुँचे थे। गुणवर्मा के यश का विस्तार चीन तक हुआ और वे चीनी सम्राट-द्वारा आमंत्रित किये गये। सन् ४३१ ई० में वे नानकिंग पहुँच गये। वे भारतीय व्यापारी नन्दी के जहाज में चीन गये थे। वास्तव में जावा तथा समीपवर्ती द्वीपों में बौद्ध धर्म के प्रचार का अधिक श्रेय गुण-वर्मा को ही है।

"जावा की भूमि हिन्दू और बौद्ध स्थापत्य तथा मूर्तिकला से भरी पड़ी है। हिन्दू कला और स्थापत्य के जो अवशेष जावा में हैं, उनमें से कुछ तो खण्डहर हैं और कुछ अच्छी अवस्था में भी हैं। इनमें से बोरोबुदुर, प्रम्बनम आदि के मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं।" जावा के पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी का नाम सुमेरु है। रामायण और महाभारत की कथाएँ जावा के निवासियों के जीवन में घुली है। आज भी इन्हीं कथाओं के नायक वहाँ की जनता के आदर्श माने जाते हैं। वहाँ के नाटकों में राम-रावण युद्ध, द्रौपदी-स्वयम्बर, अर्जुन विवाह आदि दृश्य दिखाये जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"जावा के अनेक खण्डहरों, मन्दिरों एवं प्रतिमालयों में हिन्दुत्व का प्राचीन रूप सोया हुआ है, किन्तु, उसका जीता-जागता स्वरूप वहाँ के नाटकों में अब भी गतिवान् है।"

जावा में पहले ब्राह्मण धर्म पहुँचा था, तत्पश्चात् वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। सातवीं सदी में सुमात्रा के शैलेन्द्र वंशीय राजाओं ने जावा को अपने अधीन कर लिया था। शैलेन्द्र वंश के सम्राटों ने मलाया, बरमा के कुछ भाग भी जीत लिये थे। शैलेन्द्र वंशीय राजा नालन्दा विश्वविद्यालय के संरक्षकों में से थे। नालन्दा की खुदाई में प्राप्त एक ताम्रपत्र पर "शैलेन्द्रवंश तिलक यवभूमिपाल महाराजा श्री बालपुत्र" उत्कीर्ण है। उन्होंने नालन्दा में एक विहार का निर्माण कराया था। शैलेन्द्र वंश की वास्तुकला में कलसन-मन्दिर और बोरोबुदूर के महान स्तूप तथा चैत्य का स्थान अति ऊँचा है। यह स्तूप संसार के समस्त बौद्ध स्तूपों में बड़ा है। यह सौ सीढ़ीनुमा चक्करों से मिलकर बना है और सबसे नीचे के इसके चक्कर की लम्बाई १३१ गज और सबसे ऊपर की ३० गज है। सबसे ऊपर के चक्कर के ऊपर घण्टाकार चैत्य है। इसके विविध गलियारों पर १५०० चित्र बौद्ध कथाओं से सम्बन्धित अंकित हैं। इन्हें 'पत्थरों पर तराशे महाकाव्य' की संज्ञा दी गयी है। स्थापत्य कला के इस विलक्षण नमूने को देखने के लिए संसार के सभी देशों से लोग यहाँ आते हैं।

पूर्वी द्वीप समूह में बोर्नियो सबसे बड़ा द्वीप है, पर इसकी आबादी कम है। इस द्वीप में महकम नदी के किनारे कुछ अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे भारतीयों का वहाँ रहना सिद्ध होता है। चौथी सदी के चार शिलालेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ अश्ववर्मा के पुत्र मूलवर्मा का राज्य था जिसने यज्ञ किये थे और दान दिया था। अन्य स्थानों से भी शिव, गणेश, नन्दी, अगस्त्य, ब्रह्मा, स्कन्द और महाकाल की मूर्तियाँ मिली हैं जिनसे हिन्दू संस्कृति का वहाँ प्रसारित होना सिद्ध होता है।

"आज भारत से बाहर भारतीयता का सबसे प्रोज्ज्वल प्रमाण यदि कहीं अवशिष्ट है तो वह बाली द्वीप में है।" यह एक छोटा द्वीप है और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनसंख्या लगभग १५ लाख है। इनमें से अधिकांश लोग आज भी हिन्दू हैं। वे शिव के उपासक हैं। उनमें मंत्रादि सब आज भी संस्कृत में हैं। यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता है कि बाली द्वीप में भारतीय कब पहुँचे थे। पर लियांग-वंश के चीनी इतिहासकारों ने लिखा है कि बाली के राजा कौंडिन्य वंश के थे। बाली के पुरोहित-पण्डितों में आज भी संस्कृत के लिए बहुत उत्साह है। वे चतुर्वर्ण को मानते हैं, शवों को जलाते हैं, मृतक का श्राद्ध करते हैं और लड़की का विवाह प्रायः स्वयम्वर द्वारा करते हैं। उनके जीवन पर रामायण और महाभारत का अधिक प्रभाव है।

भारतीय संस्कृति का सुदूरपूर्व पर प्रभाव : सुदूरपूर्व के इन द्वीपों पर भारतीयता ने अपने अमिट छाप छोड़ी है जिनके प्रमाण आज भी वहाँ के शासन-प्रणाली, साहित्य, धर्म एवं कला इत्यादि विभिन्न अङ्गों में देखे जा सकते हैं। आश्चर्य की वस्तु तो यह है कि लगभग पंद्रह सौ वर्षों के पश्चात् आज भी जबकि राजनैतिक प्रभुत्व एक काल्पनिक वस्तु रह गयी है, ये द्वीप भारतीयता के एक अविभाज्य अङ्ग प्रस्तुत करते हैं। डा० मजूमदार के शब्दों में इन्हें भारतीय सभ्यता का "सच्चा प्रतिनिधि" कहना अतिशयोक्ति न होगी।

राजनैतिक प्रभाव—इन उपनिवेशों ने अपने राजनैतिक आदर्शों की कल्पना भारतीय आदर्शों पर ही निर्धारित की। इनके आदर्श भारत की विजिगीषुनीति, अशोक, समुद्रगुप्त एवं हर्ष थे। राजनैतिक ग्रन्थों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनु के मानव-धर्मशास्त्र, शुकनीति इत्यादि इनके पथ-प्रदर्शक थे। भारत की ही भाँति राजा सर्वोच्च शासक, पदाधिकारी एवं प्रजा-हितकारी था। वह ईश्वर का प्रतिनिधि और लौकिक नियमों का पालक था। यहाँ तक कि राजाओं के नाम भी—जैसे शंभुवर्मन, महेन्द्र वर्मन इत्यादि भारतीय राजाओं के नामों से मिलते हैं। वह सर्वोच्च न्यायाधीश भी था। उसकी सहायता के लिए मंत्रिगण हुआ करते थे। सेना का विभाजन चार भागों में था उसका अध्यक्ष महासेनापति होता था। पड़ोसी एवं मित्र

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रों से अच्छे संबंध स्थापित करने के लिए ये लोग संधि-विग्रह इत्यादि नीतियों का भी पालन करते थे।

सामाजिक प्रभाव—भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने इन द्वीपों को पूर्णतया अपने रंग में रंग दिया। न केवल वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था वरन् समाज के प्रत्येक अङ्ग का चित्रण इनमें प्रदर्शित है। शिलालेखों में 'चतु-र्वर्णं' चार वर्णों का द्योतक है। वैवाहिक संबंध भी अन्तर्जातीय अधिकतर थे। यद्यपि विजातीय विवाह भी प्रचलित था। समाज में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। क्षत्रियों का कार्य रक्षा करना एवं व्यापारियों का कार्य आर्थिक उन्नति करना था। सभी वर्णों में आपसी सहयोग था।

समाज में स्त्रियों की दशा संतोषजनक थी। उन्हें अपने पति चुनने में पूर्ण स्वतंत्रता तथा समाज में विचरण की छूट भी थी। वे सभी कार्यों में बराबर भाग लेती थीं, उनकी शिक्षा का विशेष प्रबंध था। विधवा-विवाह बहुत कम थे। नियोग एवं सतीप्रथा भी प्रचलित थी। लोगों की वेश-भूषा पूर्णतया भारतीय थी। धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन होता था। सभी संस्कार, त्योहारों एवं राजनैतिक अवसरों पर सभी कृत्य भारतीयों भी तरह संपादित किये जाते थे। शव को जलाना, गाड़ना एवं नदियों में फेंकने आदि की भी प्रथा थी। भारतीय मनोरंजन के साधन भी प्रचलित थे जैसे 'वजंग' नामक छाया नाटकों का प्रचलन। संगीत-वाद्य-नृत्य आदि की क्रियायें भी प्रचलित थीं।

साहित्यिक प्रभाव—भारतीयता के जाज्वल्यमान प्रतीक सुदूर-पूर्व से प्राप्त अनेक शिलालेख हैं, जिनसे संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। न केवल उनका संस्कृत साहित्य से ही परिचय था वरन् उसके गूढ़ तथ्यों जैसे दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, छन्द-शास्त्र इत्यादि का संपूर्ण ज्ञान था। इनमें कौटिलीय अर्थशास्त्र, मनुस्मृति रामायण-महाभारत, बृहत्कथा, कथासरित्सागर रघुवंश, मेघदूत, भवभूति के ग्रन्थ, कादम्बरी, नैषध, शिशुपाल वध एवं पाणिनि प्रमुख हैं। यहाँ तक कि इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं वास्तविक उद्धरण समान हैं। साथ ही साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्हें शार्दूल विक्रीडित, वसन्त तिलका, स्रग्धरा एवं अनुष्टुम छन्दों का भी ज्ञान था।

साहित्य का एक विशिष्ट अङ्ग जावा में प्रचलित था जिसे "इण्डो-जावानीज-साहित्य" कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि यह भारतीय आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी ने पूर्णतया जावानी हैं। इसमें भारतीय ग्रन्थों के आधार पर अनेक रचनायें हुई हैं जैसे रामायण, महाभारत, अर्जुन विवाह, सुमन शांतक, चित्ररथ, हरिवंश, भारत-युद्ध, कृष्णायन, संगह्यंगकमत्रयनम्', बलि-बेध, चौरपंचाशिका इत्यादि। पौराणिक ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड एवं कूर्म मुख्य हैं। इनकी कथावस्तु एवं शैली भारतीय हैं। इनके शब्दकोष भारतीय अमरकोष पर निर्धारित हैं। कहीं तो वास्तविक पद्यांश भी उद्घृत मिलते हैं।

धार्मिक प्रभाव—भारतीय सभ्यता की इन बर्बर द्वीप-निवासियों को सबसे महत्त्वपूर्ण देन धर्म एवं धार्मिक विचार थे। छोटे-से-छोटे धार्मिक विचारों से लेकर बड़े-से-बड़े सभी मत इन द्वीपों के विभिन्न भागों पर प्रचलित थे और आज भी अपनी पूर्ववत् प्रभुता का परिचय प्रदान करते हैं। डा० मजूमदार तो यहाँ तक कह गये हैं कि ये द्वीप समूह धार्मिक पक्ष में भारत की सच्ची रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।[१] इनका अवलोकन तत्कालीन ग्रन्थों, लेखों एवं कलात्मक वस्तुओं से प्राप्त होता है।

शैव धर्म—यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली था। इसके प्रारंभिक रूप फूनान में पल्लवित हुये जिसे कौंडिन्य नामक ब्राह्मण ने प्रदान किया था। वहाँ से यह कम्बुज में राज-धर्म की पदवी पर सुशोभित हुआ। प्रसिद्ध कम्बुज शासक जयवर्मन द्वितीय ने इसकी स्थापना हरि-

---

१ "So far as the religion is concerned, these Hindu colonies represent a veritable replica of Indian religions, both Brahmanical and non-Brahmanical."

—Dr. R. C. Majumdar.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरालय पर्वत पर पुरोहित शिवकैवल्य की सहायता से की। उसके सभी उत्तराधिकारियों ने इसे अपनाया। यहाँ तक कि अनेक राजाओं के नाम शिव पर आधारित थे जैसे—महेश्वर, महादेव, अमरेश, ईशान, ईशानेश्वर शंभु, शंकर, शर्व, भीम, उग्र तथा रुद्र इत्यादि। चम्पा के शासकों ने भी इसे सर्वश्रेष्ठ देवता माना है। वहाँ इसे त्रिनेत्रयुक्त, त्रिशूलधारी, जटाधारी इत्यादि कहा जाता था।

शिव के साथ पार्वती को पूजा भी अपने संहारकारी एवं सृष्टि-कारी रूपों में प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त जगदम्बा, माता, दुर्गा एवं कपालिनी इत्यादि स्वरूप भी पूजित थे। शिव के प्रमुख सहायक देवों में गणेश, कार्तिकेय एवं नान्दी प्रसिद्ध हैं।

वैष्णव धर्म—इसका द्वितोय स्थान था। इसके प्रमुख केन्द्र कम्बुज, चम्पा, जावा थे। कम्बुज दो अभिलेखों में सूर्यवर्मन द्वितीय तथा अंकोर-वाट की विशाल विष्णुमूर्ति प्रमुख हैं। चम्पा में इन्हें पुरुषोत्तम, नरायण, गोविन्द, माधव इत्यादि नामों से पुकारा जाता था। इनके विशेष स्वरूपों में चतुर्भुज, गरुड़ध्वज, शेषशायी एवं वराह-वामन प्रमुख हैं। इसी प्रकार राम एवं कृष्ण की विशेषता भी काफी प्रचलित थी।

विष्णु की सहायक श्री लक्ष्मी एवं देवी थीं, जिन्हें कभी विष्णु के साथ और कभी अकेले प्रदर्शित किया जाता था।

बौद्ध धर्म—इसका तृतीय स्थान था परन्तु यह ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। इसके प्रथम अवशेष बर्मा में प्राप्त हैं जहाँ से यह कम्बुज, चम्पा एवं जावा में गया। बाद की शताब्दियों में जावा इसका प्रमुख केन्द्र बन गया जहाँ शैलेन्द्र शासकों की अध्यक्षता में यह राजधर्म बना। इण्डोचीन का वो-चिन्ह लेख बौद्ध धर्म का प्रतीक है। जावा के विशाल बोरोबुदुर, चंडी-मेन्डत एवं अंगोरवाट इसी की देनें हैं। यह धर्म अपनी सभी शाखाओं जैसे मूल सर्वास्तिवाद, महासंघिक, सम्मतीय, स्थविरवाद एवं महासंगतिवाद में प्रचलित था।

अन्य धार्मिक मत—इनमें ब्रह्मा की पूजा मुख्य है जिन्हें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'चतुरानन' तथा त्रिमूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही यम, वरुण, इन्द्र, कुबेर, कालभैरव, सूर्य एवं सर्प-पूजा प्रमुख हैं।

प्रमुख धार्मिक मतों के साथ ही रीति-रिवाज एवं पूजा-अनुष्ठान भी प्रसिद्ध थे जैसे लक्षहोम, महाहोम, गायत्री जप इत्यादि। इन्हें भी चतुर्युगों का ज्ञान था तथा ज्योतिष एवं भविष्य-जीवन में आशा थी।

कलात्मक प्रभाव—वास्तव में कला धर्म की दासी थी जिसके माध्यम से दोनों की ख्याति इन द्वीपों में हुई। अपने सभी आदर्शों, शैलियों, कल्पनाओं एवं विधियों में कला पूर्णतया भारतीय थी। उस पर सभी कलाओं की छाप थी जिसके प्रतीक आज भी कम्बोडिया, चम्पा, जावा के भव्य मन्दिर हैं।

कला का सर्वोच्च विकसित अंग वास्तुकला थी जिसके अवशेष नगर निर्माण में है। इसका ज्वलन्त उदाहरण अंगोर थाम था जिसे जयवर्मन सप्तम ने बनवाया। यह एक वर्गाकार २ मील लम्बी ३३० फुट चौड़ी सड़क से घिरा एवं पुलों से सुशोभित नगर था। इसके पाँचों द्वार विभिन्न चित्रों से सुशोभित थे।

दूसरा प्रसिद्ध उदाहरण अंगकोरवाट है जिसे विश्व-कला का एक महत्तम आश्चर्य माना जाता है। इसके निर्माता सूर्यवर्मन द्वितीय थे; यह पत्थर का बना हुआ, लम्बी चहारदीवारी से घिरा, खाईं से सुरक्षित नगर था। इसकी दीवारों पर विभिन्न धार्मिक कहानियाँ चित्रित थीं।

तीसरी अमर कृति बोरोबुदुर का स्तूप है जिसे "एशिया का पार्थेनन" कहा जाता है। यह शैलेन्द्र शासकों की समृद्धि, एवं वैभव का शानदार स्मारक है। केदू की पहाड़ी पर आश्चर्यजनक शैली में निर्मित सीढ़ीनुमा पिरेमिड के रूप में पाँच चबूतरों से युक्त तथा दीवारों पर अनेक जातक कथाओं से चित्रित एक विशाल चित्रशाला प्रस्तुत करता है। इसकी प्रसिद्ध मूर्तियों के ध्यानी, अमिताभ एवं अमोघसिद्ध बुद्ध, बोधिसत्व अवलोकितेश्वर, वैरोचन एवं रत्नसंभव प्रमुख हैं। इसमें कुल ७२ स्तूप हैं।

इसी प्रकार बर्मा का आनन्द पैगोडा, श्वेजैगोडान-स्वर्ण-पैगोडा,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंगोरथाम का बेयोन मन्दिर, चम्पा के माइसोन, चण्डी मेण्डत एवं चण्डी कलसन तथा पूर्वी जावा के लाराजोंगरम एवं डोंगडुआंग प्रमुख हैं। इन सब में भारतीयता की स्पष्ट झलक मिलती हैं।

कला का दूसरा प्रमुख क्षेत्र स्थापत्य था जिसमें बुद्ध, विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा इत्यादि की विशाल मूर्तियाँ हैं। चम्पा के डोंग-डुआंग की बुद्ध मूर्ति, कम्बोडिया के रोमलोक तथा ताकियो, आनन्द पैगोडा के रिलीफ विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार मन्दिरों की दीवालों पर भी अंकित अनेक चित्र प्रमुख हैं।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि भारतीय सभ्यता ने सर्वाङ्गीण रूपों में सुदूर-पूर्व के द्वीपों को प्रभावित किया है जिसकी कल्पना आधुनिक युग में असंभव है। सहस्राब्दियों के बाद आज भी ये भारतीय सभ्यता के केन्द्र हैं और विश्व को इस बात की शिक्षा देते हैं कि भारत के अमर संदेश शांतिपूर्ण-सह-अस्तित्व में निहित हैं न कि पाशविक व्यवहारों द्वारा उपनिवेशों की स्थापना में।

३. भारत एवं पाश्चात्य देश—सिन्धु-सभ्यता के युग में इस सभ्यता के लोगों का सुमेर और बेबिलोन के साथ निकट सम्बन्ध था क्योंकि इन सभ्यताओं के अवशेष-चिन्हों में पर्याप्त समानता दीख पड़ती है। आर्यों और ईरानियों के सम्बन्ध की बात भी वेद और अवेस्ता से सिद्ध होती है। ये दोनों जातियाँ मूल रूप में एक ही थीं, ऐसा प्रायः सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। बुद्ध-युग में भी यह सम्बन्ध व्यापक बना रहा। "कहते हैं, ईसामसीह ने जिस भूभाग में अपना धर्मोपदेश किया, वहाँ ईसा के सैकड़ों वर्ष पूर्व ही, बौद्ध धर्म का अमृत बरस चुका था। बौद्ध एवं ईसाई धर्मों के बीच हम जो समानता देखते हैं, उसका यही कारण है। बौद्ध मत के प्रभावों के कारण ईसाइयत का उदय हुआ, इस बात को रोमन चर्च के अनुयायी मानते हैं, गल्कि, सेंट बोसाफेत के नाम से वे बुद्ध को भी ईसाई सन्तों में ही गिन लेते हैं।" यह सम्पर्क व्यापारिक क्षेत्र में भी अधिक घनिष्ट था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथी सदी ई० पू० में पाणिनि को यवन लिपि का ज्ञान था। कहा जाता है कि ई० पू० ४८० में यूनान पर होने वाले आक्रमण के समय ईरानी सेना में भारतीय भी थे। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक पैथागोरस (जन्म ई० पू० ५६०) के दर्शन में भारतीय दर्शन की अनेक बातें पायी जाती हैं। सिकन्दर के आक्रमण के बाद पश्चिमी जगत् से भारत का सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ठ हो गया। सीरिया के यूनानी दरबार से भारत में राजदूत आया करते थे। मेगस्थनीज और डेमेक्स के नाम तो सभी जानते हैं। बिन्दुसागर ने यहाँ के राजा एंटियोकस के दरबार में दूत भेजा था। अशोक के समय में तो यह सम्पर्क अति गहरा हो गया। मौर्य साम्राज्य के ह्रास के बाद बैक्ट्रिया के यूनानियों का अधिकार पश्चिमोत्तर भारत पर हुआ। मिनेण्डर की राजधानी साकल (स्यालकोट) थी। मिलिन्दप्रश्न से स्पष्ट है कि उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। तत्पश्चात् भारत का एक बड़ा भाग कुषाण राजा कनिष्क के अधिकार में आया। उसके समय में भारतीय एवं यूनानी कला के मेल से गान्धार कला का जन्म हुआ था। उन दिनों रोम साम्राज्य में एशिया का अधिकांश पश्चिमी भाग शामिल था। अतः यूरोप, एशिया माइनर एवं भारत का सम्पर्क अधिक बढ़ गया था। उधर दक्षिण भारत के मलावार तट से रोम साम्राज्य के विभिन्न देशों के साथ खूब व्यापार होता था। मिस्र का प्रसिद्ध बन्दरगाह सिकन्दरिया इस व्यापार का प्रधान केन्द्र था। इस व्यापार में तत्कालीन मिस्री शासक टाल्मी को बहुत रुचि थी। उसी ने लाल सागर पर एक नये बन्दरगाह (बनरिस) की स्थापना की थी। उन दिनों भारत से विविध प्रकार के उपयोगी एवं विलास को चीजें (इत्र, आभूषण, बारीक कपड़े आदि) रोम के बाजारों में बिकने जाती थीं। रोमन इतिहासकार प्लिनी ने लिखा है कि ७००० पौंड मूल्य के रोमन सिक्के व्यर्थ को पूर्वीय वस्तुओं के खरीदने में व्यय हो जाते हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने इसी प्रकार के प्रमाणों की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "रोम के एक लेखक ने शिकायत की है कि भारत रोम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से हर साल साढ़े पांच करोड़ का सोना खींच लेता है और यह कीमत हमें ऐयाशी और स्त्रियों की खातिर देनी पड़ती है। एक दूसरे रोमन लेखक ने रोम की स्त्रियों की शिकायत करते हुए लिखा है कि वे भारत से आने वाले 'बुनी हुई हवा की जाली' अर्थात् जालीदार कपड़े पहन कर अपना सौन्दर्य दिखाती हैं।" कनिष्क के समय में और उसके बाद कई सदियों तक तक्षशिला में दूर-दूर से विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। पूर्व और पश्चिम के सम्पर्क का वह भी एक केन्द्र था। दूसरी सदी में क्लिमेन्ट ने लिखा है कि "अलेक्जेड्रिया में बौद्धों की संख्या बहुत है और यूनान वालों ने इन्हीं से दर्शन चुराया है।" प्रथम सदी से लेकर पाँचवीं सदी तक भारतीय चिकित्सा-विज्ञान, गणित, ज्योतिष और विज्ञान ने पश्चिमी देशों की विद्याओं को प्रभावित किया और स्वयं भी प्रवाहित होता रहा। पर यह सच है कि इस युग में भारतीयता के प्रसार का प्रधान क्षेत्र मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्वी एशिया ही रहा।

भारतीयता के इस प्रसार के पीछे कई प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही थीं। प्रथम कारण आर्थिक था। अपने व्यापार के प्रसार-हेतु तथा अर्थोपार्जन के लिए उन दिनों भारतीय सुदूर प्रदेशों को गये। भारतीय व्यापारी अपने जहाजों में बैठकर इधर सिकन्दरिया और उधर चीन तक बिना खटके जाया करते थे। उनके माल की इन देशों में खपत थी। दूसरा कारण यह था कि उन दिनों भारतीयों में साहस और शौर्य के गुण प्रचुर मात्रा में थे। वे अपने उद्देश्य को पूरा करने में डरते नहीं थे, उनमें अनावश्यक संकोच एवं धार्मिक रूढ़िवादिता नहीं थी और समुद्र-यात्रा में उन्हें आनन्द आता था। तब तक भारतीय समाज में वह निर्जीव-पन नहीं आया था जिसने नवीं सदी के बाद इस देश को जकड़ लिया। इस प्रसार का एक तीसरा कारण यह भी था कि उन दिनों भारतीयों के मन में यह भावना दृढ़ रूप में जमी हुई थी कि उनका धर्म, दर्शन और कला उच्चतर एवं कल्याणकर है। उन्हें यह आत्मविश्वास था कि उन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार को कल्याणार्थ कुछ देना है और इसी के प्रसार में विश्व का हित निहित है। इसी भावना से प्रेरित होकर हिन्दू और बौद्ध पण्डितों एवं भिक्षुओं ने प्राणों की बाजी लगाकर असभ्य, अर्द्धसभ्य एवं सभ्य देशों में अपने लोक-कल्याणकारी धर्म एवं संस्कृति का प्रसार किया। अशोक के समय में इस कार्य में विशेष गति आ गयी। भारतीयता के इस प्रसार में विध्वंसक प्रवृत्ति को स्थान नहीं था। अशोक जैसे शक्तिशाली सम्राट् ने अपने प्रसार कार्य में अद्भुत शालीनता एवं नियंत्रण से काम लिया था। संसार ने इतना अधिक सक्रिय, धार्मिक, उदार और सहिष्णु सम्राट् नहीं देखा है। डा० राजबली पाण्डेय ने लिखा है कि "एक विशाल पैमाने पर धर्म-संगठन और धर्म-प्रचार की योजना संसार के इतिहास में अशोक द्वारा एक अभिनव, परन्तु सफल प्रयास था। इसके साथ राजनैतिक, आर्थिक और सभी प्रकार के साधनों का सम्पूर्ण त्याग और सर्व लोकहित के आदर्श के लिए अपने जीवन के सभी साधनों का समर्पण संसार के इतिहास में कोई उपमा नहीं रखता।" निस्सन्देह अशोक का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के प्रसाद का अपने देश के इतिहास में एक अद्भुत अध्याय है। मौर्य युग से गुप्त युग तक का समय भारत में शान्ति, समृद्धि, सृजन एवं राजनीतिक प्रौढ़ता का काल था। अतः इस अवधि में भारतीय जीवन में गति एवं ओज था। देश में सभी प्रकार की झंझटों एवं आशंकाओं से मुक्त होकर आदर्श एवं कल्याण के प्रचारार्थ भारतीय विद्वान एवं समाज-सेवक तथा व्यापारी दूर-दूर तक निश्चिन्त होकर निकल जाते थे। उन्हें न बाहर किसी प्रकार के प्रतिद्वन्द्वी का आतंक था और न देश में अपने परिवार, धर्म एवं सम्पत्ति के लिए खतरा था। अतः इस अवधि में भारत में चिन्तन, खोज, अनुसन्धान और बौद्धिक उन्नति की प्रक्रिया अबाध रूप से चलती रही। फलस्वरूप मध्य एशिया से लेकर लंका तक, यूरोप से लेकर चीन और पूर्वी द्वीपों तक भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की धारा प्रवाहित हो चली थी और इस संस्कृति ने अपने अतीत काल में अपने पड़ोसी सभी देशों में भास्कर के समान अपनी स्वस्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं जीवनदायिनी संस्कृति की किरणें बिखेर कर जीवन संचार किया था। उस धर्म-विजय-यात्रा के स्तूप आज भी साची के रूप में अमर हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नव भारती
प्रकाशन